भूमिका

प्रिय पाठकगण ! आजतक आपने हमारे द्वारा अनुवादित और प्रकाशितग्रंथोंका जैसे गौरवके साथमें आदर कर उनके गुणको ग्रहण किया है. आपकी उस अमोघ कृपाके लिये सच मुचही हम आजन्म ऋणी बने रहेंगे क्योंकि जैसे जैसे आप गुण ग्रहण करते गये उसी क्रमसे हमारे उत्साहकी वृद्धि होती गई । अपने कर्त्तव्यका पालन करते हुए आज हम एक अनूठे और परमोपयोगीग्रंथकी भेंट लेकर आपके समक्ष उपस्थित होते हैं और आशावान् हैं कि आप कृपापीयूषपरिपूरित दृष्टिसे अवलोकन कर अवश्यमेव गुणग्राहकताका परिचय देंगे ।

आजकी नई भेंट ' योगिनीतंत्र ' है । इस तंत्रमें भगवतीकी उपासना—उसका मंत्र—पुरश्चरण और अनुष्ठानविधिका सविस्तर वर्णन करके महामायाओंके उन गूढ रहस्योंका उद्घाटन—किया गया है जिनका अन्यत्र प्राप्त होना असंभव है ।

यद्यपि मंत्रशास्त्रके अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथ मुद्रित हुए उपलब्ध होते हैं. परन्तु उनकी अनुष्ठानपद्धति ऐसी टेढी है कि उसका साधन करना अतीव कठिन है. किन्तु योगिराज महादेवजीने इस तंत्रको अतिशय सरल तथा सुखसाध्य रीतिसे वर्णन किया कि जिससे मनुष्यमात्र इसके द्वारा लाभ उठा सकते हैं ।

इस योगिनीतंत्रका वर्णन करते करते इसमें प्राचीन तीर्थोंका माहात्म्य और वर्णन एवं मंत्रशास्त्रके अन्यान्य उपकरणोंका विधान कर्मकाण्डकी आवश्यक विधि आदि अटूटविषय सन्निविष्ट कियेगये हैं । मंत्रतंत्र अथवा कर्मकांडसंबंधी जो विषय ऐसे थे की—जिनका प्राप्त होना अन्यान्य ग्रंथोंमें कठिन था. उन सबका इस ग्रंथमें भलीप्रकार संग्रह हुआ है । इसी कारण यह पुस्तक जैसी तंत्रशास्त्रियोंको प्राणाधिक प्रिय है. वैसीही अन्य मंत्रशास्त्रियोंको भी प्रिय है । मंत्रतंत्रके ज्ञाता जैसा इससे लाभ उठा सकते हैं. उतनाही लाभ इससे सामान्य व्यक्ति भी उठा सकेंगे यह तंत्र नरसमुदायमात्रके हृदयका हार है ।

यों तो और बहुतसे ऐसे तंत्रशास्त्र हैं कि जिनके द्वारा प्राणी अपने अभीष्टकी सिद्धिका लाभ कर सकते हैं. परन्तु—उनमें नतो इतने अधिक

विषयोंका ही संग्रह है कि जिससे वे शास्त्र मनुष्यमात्रके उपयोगीकहे जा सकें ! और बहुतसे ऐसे भी हैं, जिनकी विधि अधूरी सापेक्ष अथवा क्लिष्ट है, जब कि उनसे फलसिद्धि भी अधिक विलम्बमें होती है । परन्तु इस ग्रंथके द्वारा साधना करनेवाले व्यक्ति अवश्यही हमारे स्वरमें स्वर मिलाकर मुक्तकंठसे यह कहेंगे कि सरल विधान रहते हुएभी उक्त तंत्रके प्रयोग अचिरादेव पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं ।

यह बात आबाल वृद्ध किसीसेभी छिपी नहीं है कि–बँगालमें मंत्रशास्त्रका कैसा प्रचार है उस प्रान्तके मंत्रशास्त्री सिद्धहस्त और बडे बडे विद्वान् होते हैं. वरन यहांतक भी कहेजानेमें अत्युक्तिका भय नहीं है कि यावन्मात्र मंत्र तंत्र यंत्रोंका अधिकार आजकल केवल बँगालनिवासी मंत्रवेत्ताओंकेही बांटेमें रहगया है । उन्हीं महात्माओंसे हमने इस सर्वोपयोगी अनर्घ रत्नस्वरूप तन्त्रोत्तम ‘ योगिनीतंत्र ’ को हस्ताधिगत करके प्रकाशित किया । यह ग्रंथ देवगिरामें होनेसे सार्वजनिक नहीं होसकता था यही विचार कर हमने इसका शुद्ध और सरल विस्तृत हिन्दी भाषानुवाद किया ।

यद्यपि अनुवाद बनाते समय सब ओर दृष्टि रखकर इसको सर्वाङ्ग सुंदर और सरल बनानेकी यथासाध्य पूर्णचेष्टा की गईहै, तथापि यदिनरधर्मानुसार इसमें कहीं किसी प्रकारकी त्रुटि अवशिष्ट रहगई हो, उसकेलिये हम अपने गुणज्ञ पाठकोंसे क्षमा प्रार्थनापूर्वक निवेदन करते हैं कि यदि आप उसकी सूचना देदेंगे, तो आगामी आवृत्तिमें उस दोषको दूर कर दियाजायगा ।

उपसंहारमें निवेदन है कि–इस ग्रंथको छापकर प्रकाशित करने और समूल्य वितरण करनेसे संपूर्ण अधिकार परमोदारवर गुणग्राहक विश्वविख्यात श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको दिये गये हैं, उन्होंने अपनी अमोघ कृपासे इसको निज “ श्रीवेंकटेश्वर ” यंत्रालय बंबई में छापकर विविध प्रकारके दानमानसे हमें उपकृत किया है अतएव हम भी भगवान् श्रीमहादेवजीसे उक्त सेठजीकी आयु, यश और लक्ष्मीकी वृद्धिके लिये प्रार्थना करते हैं ॥

सज्जनोंका अनुगृहीत–

पं० कन्हैयालाल मिश्र. मोहल्ला दीनदारपुरा, मुरादाबाद.

तंत्ररहस्य ।

तंत्रशास्त्रके प्रधान प्रधान तीन भेद हैं आगम यामल और तंत्र· बाराहीतंत्रके मतानुसार—

'सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां तथार्चनम् ।
साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च ॥

षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः ।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद्विदुर्बुधाः ॥"

सृष्टि प्रलय देवताओंकी पूजा सबका साधन पुरश्चरण षट्कर्मसाधन और चार प्रकारका ध्यानयोग जिसमें यह सात प्रकारके लक्षण हों उसको आगम कहाजाता है.

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मंत्रनिर्णय एव च ।
देवतानां च संस्थानं तीर्थानां चैव वर्णनम् ॥

तथैवाश्रमधर्मश्च विप्रसंस्थानमेव च ।
संस्थानं चैव भूतानां यंत्राणां चैव निर्णयः ॥

उत्पत्तिर्विबुधानां च तरूणां कल्पसंज्ञितम् ।
संस्थानं ज्योतिषां चैव पुराणाख्यानमेव च ॥

कोषस्य कथनं चैव व्रतानां परिभाषणम् ।
शौचाशौचस्य चाख्यानं नरकाणां च वर्णनम् ॥

हरचक्रस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम् ।
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च ॥

व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम् ।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तंत्रमित्याभिधीयते ॥"

सृष्टि, लय, मंत्रनिर्णय, देवताओंका संस्थान, तीर्थवर्णन, आश्रम धर्म, विप्रसंस्थान, भूतादिका संस्थान, यंत्रनिर्णय, देवताओंकी उत्पत्ति-वृक्षोत्पत्ति, कल्पवर्णन, ज्योतिषसंस्थान. पुराणाख्यान, कोषकथन, व्रतकथन, शौचाशौचवर्णन, स्त्रीपुरुषके लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युग-धर्म, व्यवहार और आध्यात्मिक विषयका वर्णन इत्यादि लक्षणोंका जिसमें समावेश हो उसको तंत्र कहाजाताहै.

सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्यकृत्यप्रदीपनम् ।
क्रमसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च ॥
युगधर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्टलक्षणम् ।"

सृष्टितत्त्व, ज्योतिषका वर्णन, नित्यकर्म, क्रमसूत्र, वर्णभेद, जातिभेद और युगधर्म यह आठ यामलके लक्षण हैं ।

वाराहीतंत्रके मतानुसार तंत्रके श्लोक सब मिलकर देवलोक ब्रह्मलोक और पातालमें (९) नौ लाख हैं और इस भारतवर्षमें एक लाख ही हैं, इससे—

"आगमं त्रिविधं प्रोक्तं चतुर्थं चैश्वरं स्मृतम् ॥
कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्तो ह्यागमो डामरस्तथा ।
यामलश्च तथा तंत्रं तेषां भेदाः पृथक्पृथक् ॥

आगम तीन प्रकारके हैं, चौथा ऐश्वर है । कल्पके भी चार प्रकार हैं, यथा आगम डामर यामल और तंत्र यह प्रकार भेद देखा जाताहै, महा-विश्वसारतंत्रमें लिखा है—

चतुष्षष्टिश्च तंत्राणि यामलादीनि पार्वति ।
सफलानीह वाराहे विष्णुक्रान्तासु भूमिषु ॥
कल्पभेदेन तंत्राणि कथितानि च यानि च ।
पाखण्डमोहनार्थैव विफलानीह सुन्दरि ॥

यामलादिको लेकर चौसठ तंत्र विष्णुक्रान्ता भूमिमें फलदायक है कल्प-भेदमें जो सब तंत्र कहे गये हैं, वह पाखण्डियोंको मोहनेके लिये हैं उनसे कोई फल नहीं होता।

श्रेष्ठता—महानिर्वाण तंत्रमें महादेवजीने कहा है--

"कलिकल्मषदीनानां द्विजातीनां सुरेश्वरि।
मेध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा॥
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते॥
विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये।
श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान्यजेत्सुधीः।"

कलिदोषसे दीन हुए ब्राह्मण क्षत्रियादिकोंको पवित्र अपवित्रका विचार नहीं रहेगा फिर वेदमें कहे हुए कर्म करके वह किस प्रकार सिद्धिको प्राप्त कर सकेंगे? इस अवस्थामें स्मृति संहितादिकोंसे भी मनुष्योंकी इष्टसिद्धि न होगी। हे प्रिये! मैं सत्य सत्य ही कहता हूं कि, कलियुगमें आगम मार्गके अतिरिक्त दूसरी गति नहीं है। हे शिवे! वेद स्मृतिपुराणादिके बीचमें मैं कह चुका हूं कि, कलियुगमें साधक तंत्रोक्तविधान द्वारा देवताओंकी पूजा करेंगे।

कलावागममुल्लङ्घ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्त्तते।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः॥

कलिकालमें जो आगमको लंघन करके अन्यमार्गमें गमन करता है निश्चयही उसकी सद्गति नहीं होती—यह मैं सत्यही सत्य कहता हूं।

निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन्कलौ ते मृतका इव॥

पांचालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः ।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः ॥
अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म वन्ध्यास्त्रीसंगमो यथा ।
न तत्र फलसिद्धिः स्याच्छ्रम एव हि केवलम् ॥
कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥
कलौ तंत्रोदिता मंत्राः सिद्धास्तूर्णं फलप्रदाः ।
शस्ताः कर्मसु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु ॥

विषहीन सर्पके समान इस समय वैदिक मंत्र वीर्यहीन होगये हैं सत्य त्रेता और द्वापर युगमें यह समस्त मंत्र सफल होते थे इस समय मृततुल्य होगये हैं भीतपर लिखी हुई पुत्तलियें जिस प्रकार समस्त इन्द्रियोंसे युक्त होकरभी अपने कार्यको साधन करनेमें असमर्थ रहती हैं कलियुगमें अन्यान्य सब मंत्रभी प्रायः वैसेही है वंध्या स्त्रीके संगसे जिस प्रकार कोई फल नहीं होता वैसेही और मंत्रके द्वारा कार्य करनेसे फलसिद्धि नहीं होती केवल श्रमही होता है । कलिकालमें अन्यशास्त्रोक्तविधिद्वारा जो मनुष्य सिद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा करता है वह निर्बोध प्यासा होकर गंगाजीके किनारे कुआ खोदता है तंत्रमें कहे हुए मंत्र कलियुगमें शीघ्र फल देनेवाले हैं जपयज्ञादि समस्त कर्ममें तंत्रोक्त मंत्रही श्रेष्ठ हैं ।

इसही कारणसे रघुनंदनादि स्मार्त्तगणोंने तंत्रग्रंथोंको प्रामाणिक माना है ।

गुप्तशास्त्र—हिन्दू और बौद्ध इन दोनों जातियोंमें तंत्रको माना है यथार्थ दीक्षित और अभिषिक्तके सिवाय और किसीको शास्त्रका प्रकाशित करना उचित नहीं है कुलार्णवतंत्रमें लिखा हुआ है कि धन दे, स्त्री

दे और अपने प्राणतक देदे परन्तु इस गुप्त शास्त्रको कभी किसी दूसरे (अनधिकारी) के सामने प्रकाशित न करे। +

आगमतत्त्वविलासमें निम्नोक्त नाम लिखे हैं—यथा-१ स्वतंत्रतंत्र २ फेत्कारिणीतंत्र ३ उत्तरतंत्र ४ नीलतंत्र ५ वीरतंत्र ६ कुमारीतंत्र ७ कालीतंत्र ८ नारायणीतंत्र ९ तारिणीतंत्र १० बालातंत्र ११ समयाचार तंत्र १२ भैरवतंत्र १३ भैरवीतंत्र १४ त्रिपुरातंत्र १५ वामकेश्वर तंत्र १६ कुटकुटेश्वरतंत्र १७ मातृकातंत्र १८ सनत्कुमारतंत्र १९ विशुद्धेश्वरतंत्र २० संमोहनतंत्र २१ गौतमीयतंत्र २२ बृहद्गौतमीयतंत्र २३ भूतभैरवतंत्र २४ चामुण्डातंत्र २५ पिंगलातंत्र २६ वाराहीतंत्र २७ मुण्डमालातंत्र २८ योगिनीतंत्र २९ मालीनीविजयतंत्र ३० स्वच्छन्दभैरव तंत्र ३१ महातंत्र ३२ शक्तितंत्र ३३ चिन्तामणितंत्र ३४ उन्मत्तभैरवतंत्र ३५ त्रैलोक्यसारतंत्र ३६ विश्वसारतंत्र ३७ तंत्रामृत ३८ महाफेत्कारिणी तंत्र ३९ बारवीयतंत्र ४० तोडलतंत्र ४१ मालिनीतंत्र ४२ ललितातंत्र ४३ त्रिशक्तितंत्र ४४ राजराजेश्वरीतंत्र ४५ महामाहेश्वरीत्तरतंत्र ४६ गवाक्षतंत्र ४७ गांधर्वतंत्र ४८ त्रैलोक्यमोहनतंत्र ४९ हंसपारमेश्वरतंत्र ५० हंसमाहेश्वरतंत्र ५१ कामधेनुतंत्र ५२ वर्णविलास ५३ मायातंत्र ५४ मंत्रराज ५५ कुब्जिकातंत्र ५६ विज्ञानलतिका ५७ लिंगागम ५८ कालोत्तर ५९ ब्रह्मयामल ६० आदियामल ६१ रुद्रयामल ६२ वृहद्यामल ६३ सिद्धयामल ६४ कल्पसूत्र इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त तंत्रके और भी ग्रंथ पायेजातेहैं। यथा १ मत्स्यसूक्त २ कुलसूक्त ३ कामराज ४ शिवागम ५ उड्डीश ६ कुलोड्डीश ७ वीरभद्रोड्डीश ८ भूतडामर ९ डामर १० यक्षडामर ११ कुलसर्वस्व १२ कालिकाकुलसर्वस्व १३ कुलचूडामणि १४ दिव्य १५ कुलसार १६ कुलार्णव १७ कुलामृत १८ कुलावली १९ कालीकुलार्णव २० कुलप्रकाश २१ वासिष्ठ २२ सिद्धसारस्वत २३ योगिनीहृदय २४ करलीहृदय २५ मातृकार्णव २६ योगिनीजालकुरक २७ लक्ष्मीकुलार्णव २८ तारार्णव २९ चन्द्रपीठ ३० मेरुतंत्र ३१ चतुःशती ३२

+ कुलाचारपूजामें इसका प्रमाण देखना चाहिये।

तत्त्वबोध ३३ महोग्र ३४ स्वच्छन्दसारसंग्रह ३५ ताराप्रदीप ३६ संकेत चंद्रोदय ३८ षट्त्रिंशत्तत्त्वक ३८ लक्ष्यनिर्णय ३९ त्रिपुरार्णव ४० विष्णु-धर्मोत्तर ४१ मंत्रर्पण ४२ वैष्णवामृत ४३ मानसोल्लास ४४ पूजाप्रदीप ४५ भक्ति मंजरी ४६ भुवनेश्वरी ४७ पारिजात ४८ प्रयोगसार ४९ कामरत्न ५० क्रियासार ५१ आगमदीपिका ५२ भावचूडामणि ५३ तंत्रचूडामणि ५४ बृहत् श्रीक्रम ५५ श्रीक्रम सिद्धान्तशेखर ५७ गणेशवि-मर्शिनी ५८ मंत्रमुक्तावली ५९ तत्वकौमुदी ६० तंत्रकौमुदी ६१ मंत्र-तंत्रप्रकाश ६२ रामार्चनचंद्रिका ६३ शारदातिलक ६४ ज्ञानार्णव ६५ सारसमुच्चय ६६ कल्पद्रुम ६७ ज्ञानमाला ६८ पुरश्चरणचंद्रिका ६९ आगमोत्तर ७० तत्त्वसार ७१ सारसंग्रह ७२ देवप्रकाशिनी ७३ तंत्रार्णव ७४ क्रमदीपिका ७५ तारारहस्य ७६ श्यामारहस्य ७७ तंत्ररत्न ७८ तंत्रप्रदीप ७९ ताराविलास ८० विश्वमातृका ८१ प्रपंचसार ८२ तंत्रसार ८३ रत्नावलीइनके अतिरिक्त महासिद्धिसारस्वतमें सिद्धीश्वर नित्यतंत्र देव्यागम निबंधतंत्र राधातंत्र कामाख्यातंत्र महाकालतंत्र यंत्रचिन्तामणि कालीविलास और महाचीनतंत्रका वर्णन भी पायाजाता है ।

उपरोक्ततन्त्रोंके सिवाय तन्त्रके ग्रंथ कुछ और भी पायेजाते हैं यथा--आचारसार प्रकार--आचारसारतन्त्र--आगमचंद्रिका-आगमसार--अन्न-दाकल्प--ब्रह्मज्ञानमहातंत्र--ब्रह्मज्ञानतंत्र--ब्रह्माण्डतंत्र--चिंतामणितंत्र--दक्षिणा-कल्प--गौरीकांचलिकातंत्र--गायत्रीतंत्र:-ब्राह्मणोल्लास-- गृहयामकतंत्र--ईशान-संहिता--जपरहस्य--ज्ञानानंदतरंगिणी· ज्ञानतंत्र कैवल्यतंत्र--ज्ञानसंकलिनी-तंत्र--कौलीकार्चनदीपिकाक्रमचंद्रिका--कुमारीकवचोल्लास· लिंगार्चनतंत्र-निर्वा-णतंत्र--महानिर्वाणतंत्र--बृहन्निर्वाणतंत्र--वरदातंत्र- मातृकाभेदतंत्र-- निगमक-ल्पद्रुम- निगमतत्त्वसार--निरुत्तरतंत्र पीठमालातंत्र -पुरश्चरणविवेक-,पुरश्चरण-रसोल्लास--शक्तिसंगमतंत्र सरस्वतीतंत्र--शिवसंहिता--श्रीतत्त्वबोधिनी-स्वरो-दय · श्यामाकल्पलता--श्यामार्चनचंद्रिका -- श्यामाप्रदीप - ताराप्रदीप-- शाक्तानंदतरंगिणी -- तत्त्वानंदतरंगिणी -- त्रिपुरासारमुच्चय -- वर्णभैरव-- वर्णोद्धारतंत्र--बीजचिंतामणितंत्र--योगिनीहृदय--दीपिका यामल इत्यादि ।

वाराही तंत्रमें तंत्रोंके नाम और ग्रंथ संख्या भी लिखी है. यथा–

तंत्रका नाम.		श्लोकोंकी संख्या.	तंत्रका नाम.		श्लोकोंकी संख्या.
मुक्तक ..	...	६०५०	दक्षिणामूर्ति	...	५५५०
शारदा ..	...	१६०२५	कालिका	...	११०१३
प्रपंच (१)	...	१२३००	कामेश्वरीतंत्र	...	३०००
प्रपंच (२)	...	८०२५०	तंत्रराज	...	९०९०
प्रपंच (३)	...	५३१०	हरगौरीतंत्र (१)	...	२२०२०
कपिल...	...	६०८०	हरगौरीतंत्र (२)	...	१२०००
योग ...	...	१३३११	तंत्रनिर्णय	...	२८
कल्प ...	...	५०९०	कुब्जिकातंत्र (१)	...	१०००७
कपिल ..	...	२८०११०	कुब्जिकातंत्र (२)	...	६०००
अमृतशुद्धि	...	५००५	कुब्जिकातंत्र (३)	...	३०००
वीरागम	...	६६०६	कात्यायनीतंत्र	...	२४२००
सिद्धसंवरण	...	५००६	प्रत्यंगिरातंत्र	...	८८००
योगडामर	...	२३५३३	महालक्ष्मीतंत्र	...	५५०५
शिवडामर	...	११००७	देवीतंत्र...	...	१२०००
दुर्गाडामर	...	११५०३	त्रिपुरार्णव	...	८८०६
सारस्वत	...	९९०५	सरस्वतीतंत्र	...	२२०५
ब्रह्मडामर	...	७१०८२	आद्यातंत्र	...	२२९१५
गंधर्वडामर	...	६००६०	योगिनीतंत्र(१)	...	२२५३२
आदियामल	...	३५२००	योगिनीतंत्र(२)	..	६३०३
ब्रह्मयामल	...	२२१००	वाराहीतंत्र	...	६३०३
विष्णुयामल	...	२४०२०	गवाक्षतंत्र...	...	६५२५
रुद्रयामल	...	६४६५	नारायण...	...	५०२०३
गणेशयामल	...	१०३२३	मृडानीतंत्र(१)	...	४४८०
आदित्ययामल	...	१२०००	मृडानीतंत्र(२)	...	३०००
नीलपताका	...	५०००	मृडानीतंत्र(३)	...	३३०
योगार्णव	...	८३०१	वामकेश्वरतंत्र	...	२५
मायातंत्र	...	११०००	मृत्युञ्जयतंत्र	...	१३२२०

वारहीतंत्रमें लिखा हुआ है कि इनके अतिरिक्त बौद्ध और कपिलोक्त उपतंत्र भी अनेक हैं। जैमिनि–वसिष्ठ–कपिल–नारद–गर्ग–पुलस्त्य–भार्गव–सिद्धि·याज्ञवल्क्य··भृगु··शुक्र··बृहस्पति इत्यादि मुनियोंने भी बहुतसे उपतंत्र बनाये हैं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती।

हिन्दु लोगोंके तंत्र जिसप्रकार श्रीमहादेवजीके बनाये हुए हैं वैसेही बौद्धलोगोंके तंत्रोंको वज्रसत्वशुद्धने बनाया है यह तंत्रभी संस्कृत भाषामें बने हैं इनकी संख्या बहुत है। प्रधान प्रधान बौद्ध तंत्रोंके नाम यहां लिखे जाते हैं··यथा -१ प्रमोद महायुग २ परमार्थसेवा ३ पिंडीक्रम ४ सम्पुटोद्भव ५ हे वज्र ६ बुद्धकपाल ७ सम्बर तंत्र वा संवरोदय ८ वाराही तंत्र वा वाराहीकल्प ९ योगम्बर १० डाकिनीजाल ११ शुक्लयमारि १२ कृष्णयमारि १३ पीतयमारि १४ रक्तयमारि व १५ श्यामयमारि १६ क्रियासंग्रह १७ क्रियाकंद १८ क्रियासागर १९ क्रियाकल्पद्रुम २० क्रियार्णव २१ अभिधानोत्तर २२ क्रियासमुच्चय २३ साधनमाला २४ साधनसमुच्चय २५ साधनसंग्रह २६ साधनरत्न २७ साधनपरीक्षा २८ साधनकल्पलता २९ तत्त्वज्ञानसिद्धि ३० ज्ञानसिद्धि ३१ गुहासिद्धि ३२ उद्यान ३३ नागार्जुन ३४ योगपीठ ३५ पीठावतार ३६ कालवीरतन्त्र वा चण्डरोषण ३७ वज्रवीर ३८ वज्रसत्व ३९ मरीचि ४० तारा ४१ वज्रधातु ४२ विमलप्रभा ४३ मणिकर्णिका ४४ त्रैलोक्यविजय ४५ सम्पुट ४६ मर्मकालिका ४७ कुरुकुल ४८ भूतडामर ४९ कालचक्र ५० योगिनी ५१ योगिनीसंचार ५२ योगिनीजाल ५३ योगाम्बरपीठ ५४ उड्डामर ५५ वसुंधरासाधन ५६ नैरात्म ५७ डाकार्णव ५८ क्रियासार ५९ यमान्तक ६० मंजुश्री ६१ तन्त्रसमुच्चय ६२ क्रियावसंत ६३ हयग्रीव ६४ संकीर्ण ६५ नामसंगीति ६६ अमृतकर्णिकानामसंगीति ६७ गूढोत्पादनामसंगीति ६८ मायाजाल ६९ ज्ञानोदय ७० वसन्ततिलक ७१ निष्पन्नयोगाम्बर

कालतन्त्र--इनके अतिरिक्त हमारे तांत्रिक कवचोंके समान नैपाली बौद्धोंकी भी असंख्य धारणी संग्रह हैं। बौद्धलोगोंके बहुतसे तन्त्र चीनी और तिब्बती भाषामें अनुवादित हो चुके हैं तिब्बतमें तन्त्रको ऋग् युद् कहते हैं। इस ऋगूयुदूके ८७ भागहैं--इनमें विशेषकरके बौद्धलोगोंके गुप्त क्रिया-कांड, उपदेश स्तोत्र कवच मन्त्र और पूजाविधिका वर्णन है। शिवोक्त तंत्रभी तीन प्रकारके हैं शाक्त शैव और वैष्णव तांत्रिकगण अपनी संप्रदायके तंत्रोंको माना करते और उसकेही अनुसार क्रिया करते हैं।

समयके परिवर्तनके साथ साथ ऐसा जमाना आया कि आगम या तंत्रके ग्रंथ लोपसे होगये, जिन महाशयोंके पास दो चार पोथियां रहीं वे उनको हवाभी नहीं लगने देते थे इस कारण यह ग्रंथलोप होताचला दश बारह वर्षका समय हुआ कि हमारे पूज्यपाद बडे भ्राता बलदेवप्रसादजी मिश्र महोदयने तंत्रशास्त्रके अनेक ग्रंथ प्राप्त करके स्वयं भी छपाये और अन्य अन्य प्रकाशकोंसे भी प्रकाशित कराये। तब और भी कई एक महाशयोंने तंत्रशास्त्रके उद्धार करनेका विचार किया परन्तु बहुतसे धूर्तोंने इधर उधरका कूडा कर्कट एकत्र करके जालीतंत्र भी प्रकाशित किये। यही कारण है--जो आज दिन अनेक जालीतंत्र प्रचलित दिखाई देते हैं, ग्राहकगणको उचित है कि देखभालकर तंत्रकी पुस्तकोंको मोल लियाकरें।

प्रस्तुत योगिनीतंत्र तंत्रशास्त्रका विख्यात और माननीय ग्रंथ है। इसमें षट्कर्मके अतिरिक्त उन समस्त पीठस्थानोंका विस्तृत वर्णन है जहांपर तंत्रोंका साधन करनेसे शीघ्रही प्रयोगकी सिद्धि होती है और साधक अपनी मनोकामनाको प्राप्त होजाता है। आजतक योगिनीतंत्रका, भाषामें अनुवाद नहीं था--केवल मूलमात्रही विकताथा परन्तु तांत्रिकजनोंके उपकारार्थ "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेस बंबईके स्वामी श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीने इसको भाषाटीकासहित छापा और मूल्य भी केवल सात रुपये नियत किया है, अतएव उक्त श्रीमान्को वारंवार धन्यवाद है कि वह लोकोपकारके लिये ऐसे ऐसे कार्य किया करते हैं।

पं० कन्हैयालाल मिश्र.

श्रीः ।

योगिनीतंत्रकी अनुक्रमणिका ।



योगिनीतन्त्रके पूर्वखण्डकी अनुक्रमणिका समाप्त।

योगिनीतंत्रके उत्तर खंडकी अनुक्रमणिका।

योगिनीतंत्रके उत्तर खंडकी अनुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

योगिनीतन्त्रम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।



मङ्गलाचरणम् ।

श्रीमन्नीलघनद्युतिः शुभकरी चन्द्रार्धचूणामणि
र्भक्तार्तिप्रशमैकवृत्तिरनिशं विज्ञानसम्पत्करी ।
शम्भोर्वक्षसि संस्थिता सुरधुनीकालिन्दिनीसङ्गमा-
ल्लोके कौतुकमादधात्यतितरां पायान्मृडानी हि नः॥१॥
यद्योगिनीतन्त्रमिदं कन्हैयालालेन मिश्रान्वयसम्भवेन ।
अनूदितं स्वार्यवचोभिरग्र्यैस्तदस्तु प्रीत्यै प्रथमाम्बिका-
याः ॥ २ ॥

ॐ कैलासशिखरारूढं शङ्करं परमेश्वरम् ।
पप्रच्छ गिरिजाकान्तं पार्वती वृषभध्वजम् ॥ १ ॥

मनोहर कैलास—शिखरमें वृषभध्वज परमेश्वर शंकर विराजमान हैं; उसीसमय भगवती पार्वतीने अपने पति महादेवजीसे पूछा ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानमय प्रभो ।
सूचितं योगिनीतन्त्रं तन्मे वद जगद्गुरो ॥ २ ॥
माहात्म्यं कीर्त्तितं तस्य पुरा श्रीशैलमन्दरे ।
वाराणस्यां कामरूपे नेपाले मन्दराचले ॥ ३ ॥

श्री पार्वती बोलीं—हे भगवन् ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हे सर्वज्ञानमय ! हे प्रभो ! आपने पहिले श्रीशैल, मन्दर, वाराणसी, (काशी) कामरूप,

नेपाल और मन्दर पर्वतमें जिसका माहात्म्य कीर्त्तन करके सूचना मात्र की थी, वह " योगिनीतंत्र " मुझसे कहिये । हे जगद्गुरो ! उसके सुननेकी मेरी इच्छा बलवती हुई है ॥ २ ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगिनीतन्त्रमुत्तमम् ।
पावनं परमं धन्यं मोक्षैकफलदायकम् ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले-हे देवि ! मोक्षफलदायक परमधन्य परमपवित्र और परमोत्तम योगिनीतंत्रको मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥ ४ ॥

गोपितव्यं प्रयत्नेन मम त्वं प्राणवल्लभे ।
यथान्यो लभते नैव तथा कुरु प्रियंवदे ॥ ५ ॥

हे प्रियंवदे ! हे प्राणवल्लभे ! परमयत्नपूर्वक मुझे और तुम्हें इस तंत्रको गुप्त रखना चाहिये तथा ऐसा यत्न करना चाहिये कि, जिससे इसको कोई दूसरा (अनधिकारी) प्राप्त न करसके ॥ ५ ॥

एतत्तन्त्रं वरारोहे सुरासुरसुदुर्लभम् ।
कांक्षन्ति देवताःसर्व्वाः श्रोतुं तन्त्रमनुत्तमम् ॥ ६ ॥
यक्षाद्याः परमेशानि न तेभ्यः कथितं मया ।
कथयामि तव स्नेहाद्बद्धोऽहं परमं त्वया ॥ ७ ॥

हे वरारोहे ! सुरासुर दुर्लभ इस सर्वोत्तम तंत्रके सुननेकी सभी देवता और यक्षादिक इच्छा करते हैं, परन्तु हे परमेशानि ! मैंने इसको उनसे भी नहीं कहा, मैं तुम्हारे परम स्नेहपाशमें बँधा हूँ, इस कारण तुमसे कहता हूं ॥ ६ ॥ ७ ॥

विद्युत्कान्तिसमानाभदन्तपंक्तिबलाकिनीम् ।
नमामि तां विश्वमातां कालमेघसमद्युतिम् ॥
मुण्डमालावलीरम्यां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ॥ ८ ॥

जो विश्वमाता और कालमेघके समान कान्तियुक्त हैं, उन काली देवीको नमस्कार करता हूं, बकपंक्तिके तुल्य बिजलीकी कान्तिके समान दन्तपंक्ति जिनके मुखमण्डलमें शोभायमान हैं। जो मुण्डमालासे शोभायमान हैं जो दिगम्बरा (नग्न) खुले केशवाली हैं ॥ ८ ॥

ललज्जिह्वां घोररावामारक्तान्तत्रिलोचनाम्।
कोटिकोटिकलानाथविलसन्मुखमण्डलाम् ॥ ९ ॥

और चलायमान जिनकी जीभ लहलहाती है—जिनके तीनों नेत्र रक्तवर्ण हैं और जिनका घोर (विकराल) शब्द है, जिनके मुखमण्डलसे अनन्त चन्द्रमा निकलते हैं ॥ ९ ॥

अमाकलासमुल्लासोज्ज्वलत्कोटीरमण्डलाम्।
शवद्वयाभूषकर्णां नानामणिविभूषिताम् ॥ १० ॥

जिनके शिरमें उज्वल किरीट मण्डल अमावसकी कलाके समान उल्लसित होकर शोभाविस्तार करता है, दोनों कानोंमें दो शव विभूषित होरहे हैं, जिनके सब अंग अनेक प्रकारकी मणियोंसे विभूषित हैं ॥ १० ॥

सूर्यकान्तेन्दुकान्तौघप्रोल्लसत्कर्णभूषणाम्।
मृतहस्तसहस्रैस्तु कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ॥ ११ ॥

सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणिसमूहसे जिनका सुन्दर कर्णभूषण अलंकृत है, जिनकी कमर मृतकोंके सहस्रों हाथोंकी बनी कौंधनीसे वेष्टित है, जिनके मुखमण्डलमें अट्टहास्य शोभा पाता है ॥ ११ ॥

सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फारिताननाम्।
खड्गमुण्डवराभीतिसंशोभितचतुर्भुजाम् ॥ १२ ॥

जिनके दोनों होठोंसे शोणितकी धारा निकलनेके कारण मुखमण्डल शोभित होरहा है, जिनकी चारों भुजा खड्ग, मुण्ड, वर और अभयदानसे शोभायमान है ॥ १२ ॥

दन्तुरां परमां नित्यां रक्तमण्डितविग्रहाम् ।
शिवप्रेतसमारूढां महाकालोपरि स्थिताम् ॥ १३ ॥

जिनका देह शोणितकी छटासे मंडित है, दंतपंक्ति उच्च और विकट हैं, उन परमा और नित्या सनातनी देवीको नमस्कार करताहूं जो शिवप्रेतपर चढीं और महाकालके ऊपर स्थित हैं ॥ १३ ॥

वामपादं शवहृदि दक्षिणे लोकलाञ्छिताम् ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशां समस्तभुवनोज्ज्वलाम् ॥ १४ ॥

जिनका वाम चरण शवके हृदयपर स्थित है और जिनके दहिने पैरसे समस्त लोक अलंकृत है (उन शिवरूपिणी देवीको नमस्कार है) जिनका करोडसूर्यतुल्य प्रकाश है और जो समस्त भुवनको समुज्ज्वल कर रही हैं ॥ १४ ॥

विद्युत्पुंजसमानाभज्वलज्जटाविराजिताम् ।
रजताद्रिनिभां देवीं स्फटिकाचलविग्रहाम् ॥ १५ ॥

विद्युत्पुंजके समान उज्ज्वल, जटाजालसे विराजित, रजतगिरिके समान शोभायमान और स्फटिकाचलके तुल्य शुक्लवर्ण शरीरको धारण करती हुई ॥ १५ ॥

दिगम्बरां महाघोरां चन्द्रार्कपरिमण्डिताम् ।
नानालङ्कारभूषाढ्यां भास्वत्स्वर्णतनूरुहाम् ॥ १६ ॥

जो दिगम्बर महाघोरदर्शन, चन्द्रसूर्यसे भूषित, अनेक प्रकारके आभूषणोंसे शोभित भास्वर (शुद्ध) सुवर्णसदृश रोमराजिसे विराजित ॥ १६ ॥

योगनिद्राधरां सूक्ष्मां स्मेराननसरोरुहाम् ।
विपरीतरतासक्तां महाकालेन सन्ततम् ॥ १७ ॥
अशेषब्रह्माण्डभाण्डप्रकाशितमहाबलाम् ।
शिवाभिर्घोररावाभिर्वेष्टितां प्रलयोदिताम् ॥ १८ ॥

जिन योगनिद्रानिरत महादेवका हँसता हुआ मुखकमल समस्त ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, महाकाल शंकरके विपरीत रतमें जो आसक्त हैं, जो घोर शब्दवालीं गीदडियोंसे घिरीं हैं, जो प्रलयकालके समान भयानक मूर्त्ति धारण करनेवालीं हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

कोटिकोटिशरच्चन्द्रन्यक्कृतोन्नखमण्डलाम् ।
सुधापूर्णशिरोहस्तयोगिनीभिर्विराजिताम् ॥ १९ ॥
आरक्तमुखभीमाभिर्मदमत्ताभिरन्विताम् ।
घोररूपैर्महानादैश्चण्डतापैश्च भैरवैः ॥ २० ॥
गृहीतशवकङ्कालजयशब्दपरायणैः ।
नृत्यद्भिर्वादनपरैरनिशञ्च दिगम्बरैः ॥ २१ ॥
श्मशानालयमध्यस्थां ब्रह्माद्युपनिषेविताम् ॥ २२ ॥

जो अपने नखमण्डलकी प्रभासे अनन्त शरदृतुके चन्द्रमाकी शोभाका तिरस्कार करती हैं, जिनके मस्तकमण्डल और हाथोंमें सुधा विराजमान है जो रक्तमुखवाली मदमत्त योगिनीगणोंमें विराजित हैं एवं महानाद घोररूप, प्रचण्डप्रताप, दिगम्बरवेष सदा नृत्यवाद्यमें निरत शवकंकाल ग्राही (मृतकका खांखड लिये) और जयशब्दपरायण भैरवगणोंसे वेष्टित श्मशानालयके मध्यस्थित और ब्रह्मादि देवताओंसे सेवित हैं (उन महाकाली देवीको मैं नमस्कार करता हूं) ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

अधुना शृणु देवेशि तन्त्रराजं सुदुर्लभम् ।
कथयामि तव स्नेहान्न प्रकाश्यं कथञ्चन ।
अतीव स्नेहसंबद्धभक्त्या दासोऽस्मि ते प्रिये ॥२३॥

हे देवेश्वरी ! अब दुर्लभ तन्त्रराज "योगिनीतंत्र" सुनो ! हे प्रिये ! तुम्हारी अतिशय भक्ति और स्नेहके कारण मैं तुम्हारा दास हूं, अतएव

तुम्हारे प्रति प्रीतिके यह तंत्र तुमसे वर्णन करता हूं किन्तु कभी इसको प्रकाश न करना ॥ २३ ॥

गुरुमूलमिदं शास्त्रं गुरुमूलमिदं जगत् ।
गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव शिवः स्वयम् ।
गुरुर्यस्य वशीभूतो देवास्तं प्रणमन्ति च ॥ २४ ॥

हे देवि ! यह शास्त्र और जगत् गुरुमूलक है गुरु ही परब्रह्म और गुरु ही साक्षात् शिवस्वरूप हैं, गुरु जिसके वशीभूत होते हैं, देवता उसको प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥

कुष्ठव्याधिगलत्पादप्रक्षालनजलं यदि ।
पिबेदमृतभावेन यः स देवीपुरं व्रजेत् ॥ २५ ॥

महाव्याधियुक्त होनेपर भी यदि उन गुरुका चरणामृत पिये, तो वह मनुष्य देवपुरीमें जाता है ॥ २५ ॥

सुरां यद्यप्यसंस्कारां गुर्वनुज्ञाबलात्पिबेत् ।
प्रायश्चित्तं न तत्रास्ति वेदेऽपि स्थित एष हि ॥ २६ ॥

गुरुकी आज्ञाविधिके वशवर्त्ती होकर असंस्कृत सुरापान करनेपर भी उसमें प्रायश्चित्त नहीं है और उसमें वेदविधिकी अमर्यादाभी नहीं होगी ॥ २६ ॥

अपि तन्त्रविरुद्धं वा गुरुणा कथ्यते यदि ।
स्वमतं सदृशं वेदैर्म्महारुद्रवचो यथा ॥
सर्व्वं गुर्वाज्ञया कार्यं तत्त्वस्यागमनं विना ॥ २७ ॥

गुरु अपना मत जो प्रकाश करैं, तंत्रविरुद्ध होनेपरभी उसको वेदतुल्य और महारुद्रदेवके वचनके समान जाने, तत्त्वागमके विना भी गुरुकी आज्ञा सब कार्योंमें ही लेनी चाहिये ॥ २७ ॥

अद्वैतं दैवतैश्वर्य्यं न द्वैतं गुरुणा सह ।
नाद्वैतं प्लवते कार्यं न समोऽस्तीह भूतले ॥ २८ ॥

देवताओंका ऐश्वर्य अद्वैत है, गुरुके संग उसका अद्वैतभाव (अनुपमेयत्व) नहीं है अद्वैत गुरुको और गुरुके कार्यको अतिक्रम नहीं करसकता इस भूतलमें गुरुके समान कोई नहीं है ॥ २८ ॥

गुरुर्गतिर्गुरुर्देवो गुरुर्देवी तथा प्रिये।
स्वर्गलोके मर्त्यलोके नागलोके च वर्तते ॥ २९ ॥

हे प्रिये ! स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और नागलोकमें गुरु ही गति, गुरु ही देव और गुरु ही देवी हैं ॥ २९ ॥

अल्पज्ञोऽनल्पविज्ञो वा गुरुरेव सदा गतिः ।
गुरुवद्गुरुपुत्रेषु गुरुवत्तत्सुतादिषु ॥ ३० ॥

गुरु अल्पज्ञानसम्पन्न हों वा बहुज्ञानसम्पन्न हों, परन्तु गुरु ही सद गति हैं. हे प्रिये ! समस्त गुरुपुत्र और गुरुपुत्रके पुत्रसे भी गुरुके समान व्यवहार करे ॥ ३० ॥

गुरुपत्नी महेशानि गुरुरेव न संशयः।
गुरोरुच्छिष्टवद्देवि तत्सुतोच्छिष्टमेव च ।
भोजनीयं न संदेहोऽस्त्यन्यथा चेदधोगतिः ॥३१॥

गुरुपत्नी भी गुरु है, इसमें कुछ सन्देह नहीं. हे महेशानि ! गुरुकी उच्छिष्टके समान गुरुपुत्रकी उच्छिष्ट भी भोजन करनी चाहिये, इसमें संशय न करे, इसमें विकार उत्पन्न होनेपर अधोगति होती है ॥ ३१ ॥

गुरूच्छिष्टं महादेवि ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ।
गुरूच्छिष्टं तथा प्रोक्तं महापूतं परात्परम् ॥ ३२ ॥

हे महादेवी ! गुरुका उच्छिष्ट ब्रह्मादिकोंको भी दुर्लभ है, गुरुका उच्छिष्ट महापवित्र और परात्पर (अति दुर्लभ) वस्तु है ॥ ३२ ॥

गुरुणा गुरुपत्न्या वा गुरुपुत्रेण वा प्रिये ।
भुक्त्वान्नं मुष्टिमात्रं वा योवसेद्वर्षविंशतिम् ।
चिरंजीवी जरारोगविमुक्तोऽथ शिवो भवेत् ॥३३॥

गुर्वन्तिके यदि वसेत्पञ्चाशद्वर्षमुत्तमे ।
भैरवाचारसम्पन्नस्तत्पादपरिचारकः ॥ ३४ ॥
इह भुक्त्वा वरान्भोगानन्ते देविगणे भवेत ।
रूपयौवनसम्पन्नै रुद्रकन्यागणैः सह ।
असौ वीरो विहरति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ३५ ॥

हे प्रिये ! गुरु गुरुपत्नी वा गुरुपुत्रका दिया मुष्टिमात्र भुक्तावशिष्ट अर्थात् भोजन बचा हुआ अन्न भी जो मनुष्य वीस वर्ष भोजन करता है, वह जरा और रोगसे छूटकर चिरजीवी होता है और अन्तकालमें शिव हो जाता है ॥ ३३ ॥ हे सत्तमे ! जो मनुष्य भैरवाचारसम्पन्न और गुरुके चरणकमलोंका सेवक होकर गुरुके निकट पचास वर्ष वास करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तको देवताओंमें गिना जाता है वह वीर जबतक चन्द्र सूर्य और तारे विद्यमान रहते हैं, तबतक रूपयौवन-रुद्रकन्याओंके संग विहार करता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

प्रातरुत्थाय यो मर्त्यो गुरवे प्रणतिश्चरेत् ।
तत्सुतं तनयां वापि प्रणमेद्विधिपूर्वकम् ॥
स सिध्यति वरारोहे नात्र कार्या विचारणा ॥३६॥

हे वरारोहे ! जो मनुष्य प्रातः कालमें उठकर गुरुको गुरुके पुत्रको वा गुरुकी कन्याको विधिपूर्वक प्रणाम करता है वह अवश्य सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३६ ॥

यत्राशायां गुरोः स्थानं नित्यं प्रातश्च तन्मुखः ।
गुरुं तद्दयितां पुत्रान्पुत्रीरुद्दिश्य मानवः ।
प्रणमेद्भक्तिसंयुक्तः स सिद्धो नात्र संशयः ॥३७॥

जिस ओर गुरुका स्थान है, प्रतिदिन प्रातकालमें उसी ओरको मुख करके गुरुको गुरुकी पत्नीको वा उनके पुत्रको अथवा उनकी कन्याको

उद्देश्य करके जो मनुष्य भक्तियुक्त चित्तसे प्रणाम करता है, वह इस लोकमें सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३७ ॥

गुरोः स्थानं हि कैलासं तत्र चिन्तामणेर्गृहम् ।
वृक्षालिः कल्पवृक्षालिः लता कल्पलता स्मृता ।
जलखातं स्वर्गगङ्गा सर्वं पुण्यमयं शिवे ॥ ३८ ॥
गुरुगेहे स्थिता दास्यो भैरव्यः परिकीर्त्तिताः ।
भृत्यान्भैरवरूपांश्च भावयेन्मतिमान्सदा ॥ ३९ ॥
प्र क्षिणं कृतं येन गुरोः स्थानं महेश्वरि ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ४० ॥

गुरुका स्थानही कैलास है, गुरुका गृहही चिन्तामणिका गृह है गुरुकी वृक्षावलीही कल्पवृक्षाली है अर्थात् वहांके वृक्ष कल्पवृक्ष हैं और गुरुजीके घरकी लता कल्पलता हैं. गुरुजीके घरका जल स्वर्गीय गंगा है. अतएव हे शिवे ! गुरुका समस्तही पुण्यमय है. हे महेश्वरि ! मतिमान् मनुष्य विचारते हैं कि. गुरुके घरमें स्थित दासी भैरवीतुल्य और सेवक भैरवरूप हैं । जो गुरुके स्थानकी प्रदक्षिणा करता है वह मनुष्य सप्तद्वीपा पृथ्वीको प्रदक्षिणा करके उसके फलको पाता है ॥ ४० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

गुरुः को वा महेशान वद मे करुणामय ।
तत्त्वादधिक एवायं यस्त्वया परिकीर्त्तितः ॥ ४१ ॥

श्री देवीजीने कहा–हे महेशान ! हे करुणामय ! गुरु कौन हैं ? उसका स्वरूप मुझसे कहो, आपने तत्त्वज्ञानसेभी गुरुको अधिक कहा है अतएव इसका विशेष विवरण सुननेकी मेरी इच्छा है । ॥ ४१ ॥

ईश्वर उवाच ।

आदिनाथो महादेवि महाकालो हि यः स्मृतः ।
गुरुः स एवं देवेशि सर्वमन्त्रेऽधुना परः ॥ ४२ ॥

शैवे शाक्ते वैष्णवे च गाणपत्ये तथैन्दवे ।
महाशैवे च सौरे च स गुरुर्नात्र संशय ।
मन्त्रवक्ता स एव स्यान्नापरः परमेश्वरि ॥ ४३ ॥

ईश्वर बोले—हे देवेशि ! हे महादेवि ! जो आदिनाथ महाकाल हैं, वही इस समय परम गुरु हैं. शैव शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, ऐन्दव, महाशैव सौरादि मंत्रमें वही मंत्रवक्ता है, अपर गुरु कोई नहीं हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

मन्त्रप्रदानकाले हि मानुषो नगनन्दिनि ।
अधिष्ठानं भवेत्तस्य महाकालस्य शाङ्करि ॥
देवि ह्यमानुषी चेयं गुरुता नात्र संशयः ॥ ४४ ॥

हे परमेश्वरी . हे पर्वतनन्दिनी ! मन्त्र देनेके समय वही मानुषरूपसे मंत्र देते हैं. हे शांकरि ! उस समय उन महाकालकाही अधिष्ठान होता है, इस कारण हे देवि ! गुरुके कर्मको अमानुष जाने । इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥

मन्त्रदाता शिरःपद्मे यज्ज्ञानं कुरुते गुरुः ।
तज्ज्ञानं कुरुते देवि शिष्योयं शीर्षपङ्कजे ॥ ४५ ॥

शिवस्वरूप मन्त्रदाता गुरु शिरोरूपपद्ममें जिस प्रकार ज्ञान करते हैं हे देवि ! शिष्यभी निज शीर्षकमलमें उसीप्रकार ज्ञान करते हैं ॥ ४५ ॥

अतएव महेशानि एक एव गुरुः स्मृतः ।
अधिष्ठानं भवेत्तस्य मानुषस्य महेश्वरि ।
माहात्म्यं कीर्तितं तस्य सर्वशास्त्रेषु शाङ्करि ॥४६॥

अतएव हे महेशानि ! गुरुकोही एकमात्र प्रधान जानना चाहिये । हे महेश्वरि ! मंत्र देनेके समय उन अमानुष देवका अधिष्ठान होता है हे शाङ्करि ! उन गुरुका माहात्म्य सब शास्त्रोंमें कहा गया है ॥ ४६ ॥

विशेषमनुवक्ष्यामि माहात्म्यं गुरुगोचरम् ।
पशुमन्त्रप्रदाने तु मर्यादा दशपौरुषी ॥ ४७ ॥

मैंने तुम्हारे प्रति गुरुका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णन किया है, पशुमंत्र देनेमें गुरुकी दशपौरुषी मर्यादा है ॥ ४७ ॥

वीरमन्त्रप्रदाने तु पञ्चविंशतिपौरुषी ।
महाविद्यासु सर्वासु पञ्चाशत्पौरुषी मता ॥ ४८ ॥

वीरमंत्र देनेमें पचीस पौरुषी और सर्व महाविद्यामंत्र देनेमें पचास पौरुषी मर्यादा है ॥ ४८ ॥

ब्रह्मयोगप्रदाने तु मर्यादा शतपौरुषी ।
ब्रह्मयोगो महादेवि भेरुण्डायां प्रकीर्तितः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मयोग देनेमें शतपौरुषी मर्यादा जाननी चाहिये । हे महादेवि ! भेरुण्डातन्त्रमें ब्रह्मयोग कहागया है ॥ ४९ ॥

गुरुपादोदकं पुण्यं सर्वतीर्थावगाहनात् ।
सर्वतीर्थावगाहे तु यत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ ५० ॥
तत्फलं प्राप्नुयान्मर्त्यो पादोदककणाद्गुरोः ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु योऽभिषेकं ततश्चरेत् ॥५१॥

सब तीर्थोंसे स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, गुरुका चरणामृत पीनेसे भी वही पुण्य होता है. सर्व तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य जो फल पाता है गुरुके पादोदकका कणमात्र पीनेसेभी वही फल प्राप्त होता है, जो मनुष्य गुरुके पादोदक (चरणामृत) में स्नान करता है, उसको एक कालमेंही सर्व तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिलता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

पीतं पूतञ्च कुरुते सर्वपापेभ्य एव हि ।
विशेषतो महामाये तत्क्षणाच्छिवतां व्रजेत् ॥५२॥

पान करनेपर संपूर्ण पापोंसे छूटकर पवित्र होता है । हे महामाये ! विशेषकर इस पादोदक पीनेके फलसे वह तत्काल शिवका स्वरूपलाभ करता है ॥ ५२ ॥

गुरोः पादरजो मूर्ध्नि धारयेद्यस्तु मानवः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स शिवो नात्र संशयः ॥५३॥

जो मनुष्य अपने मस्तकमें गुरुके चरणकमलोंकी धूरि धारण करताहै वह सब पापोंसे छूटकर शिवके तुल्य होता है इसमें सन्देह नहीं ॥५३॥

तेनैव रजसा देवि तिलकं यस्तु कारयेत् ।
चतुर्भुजो न सन्देहः स वैकुण्ठपतिर्भवेत् ॥ ५४ ॥

हे देवि ! उस पदरजसे जो तिलक करता है वह चतुर्भुज होकर वैकुण्ठपति होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥

तद्रजो भक्षितं येन एकस्मिन्दिवसेऽपि च ।
कोटियज्ञोद्भवं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य एक दिनभी गुरुकी पदरज भोजन करता है वह करोड महायज्ञ करनेके पुण्यको पाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५५ ॥

इति ते कथितं देवि रहस्यं गुरुगोचरम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वकीयं कुलपौरुषम् ॥ ५६ ॥

हे देवि ! यह मैंने तुमसे गुरुका रहस्य कहा स्वकीय कुलपौरुष स्वरूप इस गुरुतत्त्वको परमयत्नसहित गुप्त रक्खे ॥ ५६ ॥

इति सर्वतन्त्रोत्तमे श्रीयोगिनीतन्त्रे देवीश्वरसम्वादे
भाषाटीकायां चतुर्विंशतिसाहस्रे
प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

परमानन्दसन्दोह चराचरजगद्गुरो ।
श्रुतं ते गुरुमाहात्म्यं गुह्याद्गुह्यतरं हि यत् ॥ १ ॥

श्रीदेवी बोलीं-हे परमानन्दसन्दोह ! हे चराचर जगद्गुरो महादेव ! आपसे मैंने गुह्यसे भी गुह्यतम गुरुका माहात्म्य सुना ॥ १ ॥

अहश्च श्रोतुमिच्छामि कालीं सकलतारिणीम् ।
कथिता सा महाविद्या सिद्धिविद्या च यामले ॥ २ ॥

हे देवे ! अब मैं अखिलतारणी कालिकाविद्याका विषय सुननेकी अभिलाषा करती हूं, उस महाविद्या और सिद्धविद्याका विषय यामलतन्त्रमें कहागया है ॥ २ ॥

महामहाब्रह्मविद्यां चामुण्डातन्त्रगोचराम् ।
आज्ञापय महाकालीरहस्यं कृपया शिव ॥ ३ ॥

तन्त्रशास्त्रमें महामहा ब्रह्मविद्या और चामुण्डाका विषय वर्णित हुआ है, हे महादेव ! मेरे प्रति करुणा प्रकाश करके यह कालीरहस्य वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

महामहाब्रह्मविद्या परेयं कालिका मता ।
यामासाद्य च निर्वाणमुक्तिमेति नराधमः ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले-यह महामहा ब्रह्मविद्याही कालिकाविद्या है, नराधम मनुष्यभी इस विद्याको प्राप्तहोकर निर्वाण मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है॥४॥

रहस्यं कथ्यते देवि सर्वलोकास्तथैवच ।
अस्या उपासकाश्चैव ब्रह्माविष्णुशिवादयः ॥ ५ ॥

कालिकायाः प्रसादेन सर्वे मुक्त्यादिभागिनः ।
रहस्यस्य सहस्रावृत्त्या जप्त्वा वापि कोटिशः ॥ ६ ॥

हे देवि ! ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि सब इन महामहा विद्याके उपासक हैं । हे देवि ! अब रहस्य कहता हूं, समस्त लोकही उपासक होसकते हैं कालिकाके प्रसादसे सभी मुक्ति आदिके भागी होसकते हैं, उस कालिकाविद्याकामंत्र सहस्रवार वा करोडवार जप करे ॥ ५ ॥ ६ ॥

भाग्यवाञ्जायते यस्मात्कालीसाधनतत्परः ।
काली च जगतां माता सर्वशास्त्रेषु निश्चिता ॥ ७ ॥

कालीके साधनमें तत्पर मनुष्य उस पुण्यफलसे भाग्यवान् होता है काली जगत्की माता है यह सब शास्त्रोंमें निश्चित हुआ है ॥ ७ ॥

कालीमन्त्रं जपेद्यो हि कालीपुत्रो न संशयः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य कालिकाका मन्त्र जपता है, वह कालीका पुत्र है इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

त्यजसि त्वं परश्चैतत्पुमांसं परमं तथा ।
स्वरूपं त्वं कचित्काले त्यजसि त्वं जगन्मयि ।
कालीविद्यां समासाद्य न त्यक्तुं शक्नुयात्कचित्॥९॥

हे जगन्मयि ! कालीमन्त्रपरायण इस परमपुरुषको तुमभी कदाचित् त्याग करसकतीहो और कदाचित् स्वरूपत्वभी त्याग करसकता है, किन्तु कालीविद्या इस पुरुषको प्राप्त होकर कभी त्याग नहीं कर सकती ॥ ९ ॥

गच्छेच्छूद्रस्य शूद्रत्वं ब्राह्मणानां च विप्रता ।
मन्त्रग्रहणमात्रे तु सर्वे शिवसमाः किल ॥ १० ॥

यद्यपि शूद्रकी शूद्रता और ब्राह्मणकी विप्रता चलीजाय, किन्तु कालिकाका मन्त्रग्रहण करते ही मनुष्य शिवके तुल्य होजाता है ॥ १० ॥

वाराणस्यां समासाद्य गङ्गां चैव तथैव ते ।
कालीमंत्रग्रहादेव सर्वे शिवसमाः किल ॥११॥

यह शूद्र और ब्राह्मण यदि वाराणसी नगरी वा गंगाके तटपर कालीमंत्र ग्रहण करें तो वे सब तत्काल शिवके समान होते हैं ॥ ११ ॥

अपि चेत्त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ।
तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोत्तमः ॥१२॥

हे देवि ! यदि तुम्हारे समान नारी और मेरे समान पुरुष हो तो मनुष्यके माता पिता धन्यवादके योग हो सकते हैं (परन्तु यह सब कालीके मंत्रके रत रहनेसेही होना सम्भव है) अतएव उसकी माता पृथ्वीमें धन्य और उसका पिता सुरोत्तम होता है ॥ १२ ॥

तस्यैव पितरः स्वर्गं यान्ति यस्मात्सुदुर्लभम् ।
येन भाग्यवशाद्देवि काली सा त्वं समाश्रिता ॥१३॥
अशंसन्तीह पितरो नराणां पुण्यकर्मणाम् ।
यदास्माकं कुले पुत्रः कालीमन्त्रमुपाश्रयेत् ।
तदा मुक्तिपुरीं प्राप्य विरेमिम सदैव हि ॥ १४ ॥

जो मनुष्य भाग्यके वश होकर कालीका आश्रम लेता है, उसके पितर दुर्लभ स्वर्गको प्राप्त करते हैं ॥ १३ ॥ पुण्यकारी मनुष्यके पितर कामना करते रहते हैं कि, हमारे कुलमें पुत्र कब कालीमन्त्रका आश्रय करेगा; जिससे हम मुक्तिको प्राप्त होकर नित्य आनन्द करेंगे ॥ १४ ॥

काली तारा तथा छिन्ना गुरुर्वै भूपतिस्तथा ।
एकरूपेण बोद्धव्या भेदेन नरकं व्रजेत् ॥ १५ ॥

काली तारा और छिन्नमस्तादि अन्यान्य महाविद्या गुरु और भूपति इन सबको ही एकरूप जाने; भेदज्ञान करनेसे नरकमें जाना पडता है ॥ १५ ॥

ताराशिष्यस्त्यजेत्कालीं कालीशिष्यस्तु तारिणीम् ।
छिन्नामहिषमर्दिन्योः कदाचित्पूजनं स्मृतम् ॥१६॥

किन्तु ताराका शिष्य कालीकी पूजा न करके ताराकीही और कालीका शिष्य ताराकी पूजा न करके कालीकीही पूजा करैं, कभी (विशेष आवश्यकता होनेपर) छिन्ना और महिषमर्दनीकी पूजाभी कर सकता है ॥ १६ ॥

यदि वा पूजयेद्देवि नान्यदेवान्प्रपूजयेत् ।
कालीत्वेन च संभाव्य त्वन्यां वा पूजयेच्छिवे ॥१७॥

हे देवि ! यदि पूजाही करे तो अन्यकी पूजा न करके ताराकी काली-रूपमें और कालीकी तारारूपमें भावना करके अन्यत्र पूजा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

या काली परमा विद्या सैव तारा न संशयः ।
एतयोर्भेदभावेन नानामन्त्रा भवन्ति हि ।
उक्तं तत्कालिकाकल्पे ताराकल्पे च ते मया ॥१८॥

जो परमा विद्या काली हैं, वही परमाविद्या तारा हैं, इसमें सन्देह नहीं इन दोनोंके भेदभावसे नाना प्रकारके मंत्र हुए हैं हे देवि ! मैंने तुमसे कालिकाकल्प और तारकल्पमें वह सभी कहे हैं ॥ १८ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥

नानाविधानं देवेश कथयस्व प्रियम्वद ।
विशेषतो महादेव रहस्यं जपकर्मणः ॥ १९ ॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देवेश ! हे प्रियम्वद ! आप मुझसे अनेक प्रकारके विधान कहिये । हे महादेव ! विशेष करके मैं जपकर्मका रहस्य सुनना चाहती हूं ॥ १९ ॥

ईश्वर उवाच ।

वर्णमाला शुभा प्रोक्ता सर्वमन्त्रप्रदीपनी ।
तस्याः प्रतिनिधिर्देवि महाशंखमयी शुभा ॥२०॥

ईश्वर (महादेव) बोले—हे देवि ! सब मन्त्रोंकी उद्दीपनकारिणी वर्णमाला ही कल्याणके दायिनी कहकर शास्त्रमें उक्त हुई है, हे महादेवि ! उस वर्णमालाकी प्रतिनिधि महाशंखमयी माला मंगलदायिनी है ॥ २० ॥

महाशङ्खा करे यस्य तस्य सिद्धिरदूरतः ।
तदभावे वीरवन्द्ये स्फाटिकी सर्वसिद्धिदा ॥२१॥

जिसके हाथमें महाशंखकी माला है, उसकी सिद्धि निकट ही विद्यमान रहती है, हे बीरवन्द्ये ! उसके अभावमें स्फटिककी मालाको ही सब सिद्धियोंकी देनेवाली जाने ॥ २१ ॥

मणिसंख्यां महादेवि मालायाः कथयामि ते ।
पञ्चविंशतिभिर्मोक्षं पुष्टिदा सप्तविंशतिः ॥ २२ ॥

हे महादेवि ! मालाकी मणिसंख्या कहता हूं, सुनो । पंचविंशति (२५) संख्यामें मोक्षलाभ, सप्तविंशति (२७) संख्यामें पुष्टिलाभ ॥ २२ ॥

त्रिंशद्भिर्धनसिद्धिः स्यात्पञ्चाशन्मन्त्रसिद्धये ।
अष्टोत्तरशतैः सर्वा सिद्धिरेव महेश्वरि ॥ २३ ॥

तीस संख्यामें धनसिद्धि, पचास संख्यामें मन्त्रसिद्धि और हे महेश्वरि ! अष्टोत्तरशत (१०८) संख्यामें सभी कामना सिद्ध होती हैं ॥ २३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

एतत्साधारणं प्रोक्तं विशेषं कामिनां वद ॥ २४ ॥

देवी पार्वतीजी बोलीं—हे देव ! यह तो साधारण ही कहा, कामीजनोंके पक्षमें विशेष करके कहो ॥ २४ ॥

श्रीशिव उवाच ।

दन्तमाला जपे कार्या गले धार्या नृभिः शुभा ।
दशनैर्यदि कर्त्तव्या मन्त्रसंख्या तथा प्रिये ॥२५॥

सर्वसिद्धिप्रदा माला राजदन्तेन मेरुणा ।
अन्यत्रापि च देवेशि मेरुत्वेनैवमादिशेत् ॥ २६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे प्रिये ! जपविषयमें दन्तमाला ही कर्तव्य है, उसको गलेमें धारण करनेसे वह शुभसाधिनी होती है, यदि दशनद्वारा मन्त्रसंख्या कर्त्तव्य हो ॥ २५ ॥ तो राजदन्तको मेरु करनेसे उस मालाके द्वारा सब कामना सिद्ध होती है । हे देवि ! अन्य मालाओंमें भी मेरुके स्थलमें यह राजदन्त श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥

सङ्कल्पवाक्ये या संख्या संख्या तु जपहोमयोः ।
तां शृणुष्व महेशानि क्रमेण कथयामि ते ॥ २७ ॥

हे महेश्वरि ! संकल्पवाक्य एवं जप और होममें जो संख्या है, वह क्रमसे कहता हूं सुनो ॥ २७ ॥

शतं सहस्रमयुतं लक्षं कोटिस्तथैव च ।
सर्वत्र परिसंख्येयमविशेषं महेश्वरि ॥ २८ ॥
विशेषे तु महेशानि विशेषं त्वाचरेत्क्वचित् ।
शतादिप्रतिसंख्यायामष्टौ तत्राधिकं जपेत् ॥२९॥

हे महेशानि ! शत, सहस्र, अयुत, (दशसहस्र) लक्ष, और कोटि सर्वत्र यही संख्या निरूपित है कहीं भी विशेष नहीं है ॥२८॥ हे देवि ! जपविषयमें कहीं विशष यही है कि, शतादि संख्यामें अष्ट संख्या अधिक अधिक अर्थात् सौके स्थानमें एकसौ आठ जप करना चाहिये ॥ २९ ॥

आद्यन्तपर्वद्वितयं हित्वा चाष्टकपर्वभिः ।
जपान्ते च तथा मालां शिवे वै धारयेत्ततः ॥ ३० ॥

आदि और अन्त यह दोनों पर्व त्यागकर अष्ट पर्वसे जप करना चाहिये जपके अन्त शिवकी माला धारण करे ॥ ३० ॥

रक्तपुष्पार्घ्यबीजेन घटवाद्यपुरःसरम् ।
देव्यै समर्पयेद्धीमान्फलं तज्जपकर्मणः ॥ ३१ ॥

हे देवि ! बुद्धिमान् पुरुष रक्तपुष्पका अर्घ्य बीज और घटद्वारा बाजा बजाकर जपकार्यका फल देवीको समर्पण करे ॥ ३१ ॥

साङ्गोपाङ्गेन देवेशि रहस्यं जपकर्मणः ।
उक्तं सरस्वतीतन्त्रे तस्माज्जानीहि कामिनी ॥३२॥

हे देवेशि ! जपकर्मका साङ्गोपाङ्ग रहस्य सरस्वतीतंत्रमें कहा है उससे जानना ॥ ३२ ॥

करमालां महेशानि शिवशक्तिक्रमेण च ।
शृणुष्व परमेशानि सर्वमन्त्रप्रसिद्धये ॥ ३३ ॥

हे महेशानि ! हे परमेश्वरि ! सर्व मंत्रसिद्धिके निमित्त शिवशक्तिके क्रमसे करमालाका विषय सुनो ॥ ३३ ॥

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठादिक्रमेण च ।
तत्पार्श्वमूलपर्यन्तं प्रजपेद्दशपर्वभिः ॥ ३४ ॥

अनामिकाके मध्यपर्वसे आरंभ करके कनिष्ठादि अंगुलियोंके क्रमसे तर्जनीके मूलपर्यंत दश पर्वद्वारा जप करे ॥ ३४ ॥

मध्यमामूलतोवापि मेरुत्वेन समाचरेत् ।
अष्टोत्तरं जपेद्देवि आद्यन्तद्वितयं त्यजेत् ।

शिवमाला समाख्याता शक्तिमालां शृणुष्व मे ॥३५॥

मध्यमाके मूलपर्वको मेरुरूपमें विचारे । हे देवि ! अष्टोत्तर जपकालमें आद्य और अन्तमें यह दो त्याग दे यह शिवमाला कही अब शक्तिमाला सुनो ॥ ३५ ॥

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठादिक्रमेण च ।
तर्जनीमूलपर्य्यन्तं प्रजपेद्दशपर्वसु ॥ ३६ ॥

अनामिकाके मध्यपर्वसे आरंभ करके कनिष्ठादिक्रमसे तर्जनीके मूल पर्य्यंत दशपर्वद्वारा जप करे ॥ ३६ ॥

मध्यमाद्वितयं पर्व तर्ज्जन्याः परमेश्वरि ।
मेरुं जानीहि देवेशि तद्वयं न स्पृशेत्क्वचित् ॥३७॥

हे परमेश्वरि ! मध्यमाके दोनों पर्वको तर्ज्जनीका मेरु जानना चाहिये इस कारण उन दोनोंको स्पर्श न करे ॥ ३७ ॥

अष्टोत्तरजपे पर्व आद्यंतं द्वितयं त्यजेत् ।
नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यं कदाचन ।
काम्यं चापि करे कुर्यान्मालाभावे च मत्प्रिये ॥ ३८॥

अष्टोत्तरजपकालमें आद्य और अन्त पर्वको त्याग दे, नित्य जपको ही करमालाद्वारा करना उचित है, किन्तु काम्यजप करना उचित नहीं है । हे प्रिये ! मालाके अभावमें काम्य जप करलेनेमें भी हानि नहीं है ॥३८॥

नित्यकर्मान्वितो जापो नित्यजापः स ईरितः ।
स्नानं च तर्पणं होमो बलिस्तृप्तिश्च नित्यतः ॥३९॥

नित्यकर्ममें जो जप करना चाहिये, वही नित्यजप कहाता है स्नान, तर्पण, होम, बलि और तृप्ति यह सब नित्यकर्ममें गिने गये हैं ॥ ३९ ॥

अनुलोमविलोमाभ्यां सर्वमालासु संजपेत् ।
केवलंचानुलोमेन प्रजपेत्करमालया ॥ ४० ॥

सब मालाओंमें अनुलोम और विलोमद्वारा जप करना चाहिये कर मालासे केवल अनुलोमकेही क्रमानुसार जप करे ॥ ४० ॥

पुंमन्त्रं प्रजपेद्देवि शिवसम्भवमालया ।
शक्तिमंत्रं जपेद्देवि शक्तिसम्भवमालया ॥ ४१ ॥

हे देवि ! शिवमालाद्वारा पुंमंत्रजप और शक्तिमालाद्वारा शक्तिमंत्र जपना चाहिये ॥ ४१ ॥

चंद्रमंत्रं जपेद्देवि तथैवं वेदमातरम् ।
सावित्रीं प्रजपेद्देवि करेण शिवमालया ॥ ४२ ॥
चन्द्रमन्त्रं जपेद्देवि कराद्वा शक्तिमालया ।
सावित्रीजपने शस्ता सर्वदा करमालिका ॥
स्फाटिकी मौक्तिकी कौशी शस्ता स्याच्छंखसम्भवा ४३

हे देवि ! चन्द्रमंत्र और वेदमाता सावित्रीका मंत्र करद्वारा जपे और शिवमालासे सावित्रीके मंत्रका जप और करद्वारा तथा शक्ति मालासे चन्द्रका जपे । सावित्रीके मंत्र जपनेमें करमाला अथवा स्फटिकनिर्मित मोतियोंकी कौशी अर्थात् कुशनिर्मित और शंखनिर्मित मालाभी श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

वैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे ।
त्रिपुराजपने शस्ता रुद्राक्षै रक्तचन्दनैः ॥ ४४ ॥

वैष्णवमंत्रके जपनेमें तुलसीकी माला और गणेशजीका मंत्र जपनेमें गजदन्तरचित माला श्रेष्ठ है रुद्राक्ष और रक्तचन्दननिर्मित माला त्रिपुरा देवीके जपमें उत्तम है ॥ ४४ ॥

श्मशानोद्भवधत्तूरबीजैर्धूमावतीजपे ।
करपर्वसमुद्भूतनाड्या संग्रथिता सती ॥ ४५ ॥

और धूमावतीका मंत्र जपनेमें श्मशानोत्पन्न धतूरेकी माला श्रेष्ठ होती है हे महेश्वरि ! करपर्वनिर्मित माला नाडीद्वारा गूंथी जाकर ॥ ४५ ॥

शस्ता च बगलामुख्याः सत्यं सत्यं महेश्वरि ।
असङ्कल्प्यत्व सत्यं स्यान्न्यूनाधिकमथापिवा ।
न सम्यक्फलभाग्भूयात्तस्मान्नियममाचरेत् ॥४६॥

बगलामुखीके मंत्र जपनेमें श्रेष्ठ होती है. हे देवि ! यह मैंने तुमसे सत्य हीकहा है । बिना संकल्प किये जो जप कियाजाताहै अथवा नियमसे

कम वा अधिक जो जप कियाजाता है. तो उससे सम्यक् प्रकार फलका भागी नहीं होता, इस कारण नियम बाँधकर जप करे ॥ ४६ ॥

ताम्रपात्रं सदूर्वञ्च सतिलं जलपूरितम् ॥ ४७ ॥
सकुशं सफलं देवि गृहीत्वाचम्य कल्पतः ।
अभ्यर्च्य च शिरःपद्मे श्रीगुरुं करुणामयम् ॥४८॥
यक्षाशावदनो वापि देवेन्द्राशामुखोऽपि वा ।
मासं पक्षं तिथिञ्चैव देवपर्वादिकं तथा ॥ ४९ ॥
आद्यन्तकालमुच्चार्य गोत्रं नाम च कामिनाम् ।
कर्माण्यद्य करिष्येऽहमैशान्यामुत्सृजेत्पयः ॥५०॥

सतिल, सदूर्वादल, जलपूरित, सकुश और फलसहित ताम्रपात्र ग्रहणपूर्वक विधिके अनुसार आचमन और शिरःपद्ममें करुणामय गुरुकी अर्चना करके कौबेरी अर्थात् उत्तरदिशामें वा देवेन्द्राशा अर्थात् पूर्व दिशामें मुख करके मास, पक्ष, तिथि और देवपर्वादि एवं आद्यन्त काल और यजमानका गोत्र तथा नाम उच्चारणपूर्वक " मैं क्रिया जप, करूंगा " यह कहकर ईशानकोणमें जल छोड़दे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

चान्द्रः सौरस्तु सर्वत्र चान्द्रः स्यात्तिथिचोदने ।
चान्द्रोऽपि मुख्यः सर्वत्र गौणस्तु क्रूरकर्मणि ॥५१॥

चान्द्र और सौरकाल सर्वत्र ही प्रशस्त है, किन्तु तिथिनिर्णयमें चान्द्रकाल प्रशस्त है चान्द्रकाल भी सर्वत्र मुख्य है, किन्तु क्रूरकर्ममें गौण है ॥ ५१ ॥

ऋणदाने तथा दाने प्रौष्ठपद्यादिषु प्रिये ।
मासो नाक्षत्रिकः प्रोक्तः सावनो वर्षपर्वणि ॥ ५२ ॥

ऋणदान और दानमें तथा प्रौष्ठपद्यादिमें नाक्षत्रिक अर्थात् नक्षत्रसे होनेवाला मास उक्त होता है सावनमास वर्षपर्वमें उक्त होता है ॥५२॥

एवं युगे युगे प्रोक्तः कलौ सारस्तु सर्वतः ।
सौरे मासि शुभा दीक्षा न चान्द्रे न च तारके ॥५३॥
न सावनो महेशानि यस्मात्सा विफला भवेत् ।
क्रियावती वेदमयी चान्द्रमासेऽपि शस्यते ॥ ५४ ॥

इस प्रकार युगयुगमें उक्त होता है, कलियुगमें सर्वत्र ही सौरमास उक्त होताहै, सौरमासमें दीक्षा कल्याणदायिनी होतीहै.चान्द्र वा नाक्षत्रिक अथवा सावन मासमें दीक्षाका विधान नहीं है । क्योंकि इन सब मासोंमें दीक्षाग्रहणसे कुछ फल नहीं होता,वेदमयी क्रिया चान्द्रमासमें भी श्रेष्ठ है ५३॥५४

शुक्लपक्षे शुभं सर्वमशुभं च सितेतरे ।
प्रातःकालं समारभ्य यावन्मध्यदिनं रवेः ।
तावत्कर्माणि कुर्वीत यः सम्यक्फलमीहते ॥ ५५ ॥

शुक्लपक्ष सर्वत्र ही शुभ है और कृष्णपक्षको सर्वत्र अशुभ जाने । जो सम्यक् प्रकार फलकी कामना करे,वह प्रातःकालसे आरंभ करके मध्याह्नपर्यन्त सब कार्य करे ॥ ५५ ॥

क्रूरकर्माणि कुर्वीत शेषेऽपि परमेश्वरि ।
गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि ॥ ५६ ॥

हे परमेश्वरि ! क्रूरकर्म शेषमें भी करनेसे कोई हानि नहीं है, प्रथम प्रहर गत होनेपर तृतीययामपर्यन्त ॥ ५६ ॥

कालो नक्तं जपस्योक्तः पूजाकालमितः शृणु ॥
अर्द्धयामे गते नक्तमर्द्धयामे स्थिते सदा ।
पूजाकालो भवेद्यामश्चतुर्वर्गप्रदः सदा ॥ ५७ ॥
श्लिष्टे द्वे घटिके ये तु रात्रेर्मध्यमयामयोः ।
सा महारात्रिरुद्दिष्टा तत्कृतंकर्म चाक्षयम् ॥ ५८ ॥

यद्यज्जप्तं हुतं यद्यत्कृतं वा मोक्षसाधनम् ।
तत्सर्वमक्षयं याति तथानन्त्याय कल्पते ॥ ५९ ॥

जपका प्रशस्त काल कहा, अब पूजाका समय सुनो । रात्रिका अर्द्ध-याम बीतनेपर अर्द्धयाम स्थितिपर्यन्त पूजाका काल है, इस कालमें पूजा करनेसे चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं । रात्रिके मध्ययामकी जो दो घड़ी शेष रहती हैं, उन्हींको महा-रात्रि कहते हैं. महारात्रिमें जो कर्म किया जाता है, वही मोक्षदायक होता है ; वही सब फल अक्षय होता है और अनन्त पुण्यफलप्रदान कर सकत है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

न नक्तो वैष्णवे सौरे महासौरे च पैतृके ।
मध्याह्नं च विना देवि शशाङ्कग्रहणाद्विना ।
दीक्षा कार्या प्रयत्नेन शुक्लपक्षाविभेदतः ॥ ६० ॥

वैष्णवकर्म, सौरकर्म, महासौर और पैतृक कर्म रात्रिकालमें करना उचित नहीं है, हे देवि ! मध्याह्नके अतिरिक्त, चन्द्रग्रहणके अतिरिक्त शुक्ल और कृष्णपक्षके भेदमें यत्नसहित दीक्षा कार्य करे ॥ ६० ॥

मुक्तिकामः कृष्णपक्षे भुक्तिकामः सिते तथा ।
भूतिकामेन कर्त्तव्यः कृष्णस्थात्पञ्चमीदिनात् ॥६१॥

मुक्तिकी कामना करनेवाला मनुष्य कृष्णपक्षमें और भोगकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य शुक्लपक्षमें तथा ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य कृष्णपक्षकी पंचमीके दिनसे आरंभ करके कार्य करे ॥ ६१ ॥

शुभकाले शुभं कुर्यादशुभं चापि दुःखितः ।
उपरागे महातीर्थे कालदोषो न विद्यते ॥ ६२ ॥

शुभकालमें कार्य करनेसे समस्तही शुभ होता है आतुर मनुष्य अशुभ कालमें भी कर्म करे ग्रहणकाल और महातीर्थमें कालदोष नहीं माना जाता ॥ ६२ ॥

वाराणस्यां विशेषेण सर्वदा सर्वमाचरेत् ।
सदा कृतयुगं तत्र सर्वदा चोत्तरायणम् ॥ ६३ ॥

विशेष करके वाराणसीमें सदाही सब कर्मोंका अनुष्ठान करे । वहां सदाही सत्ययुग और सदाही उत्तरायण है ॥ ६३ ॥

अविशेषो दिवा रात्रौ सन्ध्यायां च महानिशि ।
प्रत्यक्षं दृश्यते वह्नौ मूर्त्या वर्त्ते पुनः शिवे ।
काश्याश्च नोदेति कदा सिद्धियोगो वरानने ॥ ६४ ॥

विशेषतः दिन रात्रि और संध्या तथा महानिशा इन सबको वहां अविशेष अर्थात् समानरीतिसे पुण्यदायक जाने । हे शिवे! वहां वह्निमें मूर्त्यावर्त्त प्रत्यक्ष दिखाई देता है. हे वरानने ! काशीमें कब सिद्धियोग उदय नहीं होता । अर्थात् काशीमें सदैव सिद्धियोग रहता है ॥ ६४ ॥

द्वित्रिभ्यां क्रोशतः काशी पञ्चक्रोशीभवान्तरे ।
आयामे विस्तरे देवि नित्येयं नित्यदा शुभा ॥६५॥

दो तीन कोशव्यापी काशीका अवस्थान और भावान्तरमें पंचकोशी याने । हे देवि ! दीर्घ और विस्तारमें यह काशी नित्या और नित्यकाल शुभदायिनी है ॥ ६५ ॥

इयं निर्वाणनगरी परंज्योतिर्मयी शिवे ।
ब्रह्मांडं स्थापयेत्तत्र सकूटं वस्तु मानवम् ॥ ६६ ॥

हे शिवे । यह काशी निर्वाणनगरी और परमज्योतिर्मयी है इसमें कूट-वस्तु और मनुष्यके सहित ब्रह्माण्ड स्थापित है ॥ ६६ ॥

यत्र भ्रमणतो देवि ना निर्वाणमवाप्नुयात् ।
सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं वाराणस्यां द्विजार्पणम् ॥ ६७ ॥

इसमें भ्रमण करनेसे मनुष्य निर्वाणमुक्ति पाता है, वाराणसीमें सर्वस्व दान करके भी ब्राह्मणको संतुष्ट करना चाहिये ॥ ६७ ॥

वाराणस्यां द्विजे दानं ब्रह्मयोगे रतिस्तथा ।
निष्कामकर्मबन्धश्च सर्वं निर्वाणकारणम् ॥ ६८ ॥

वाराणसीमें ब्राह्मणको दान, ब्रह्मयोगमें प्रीति, और निष्कामकर्म, यह सब निर्वाण मुक्तिके कारण हैं ॥ ६८ ॥

गंगादिमुक्तिक्षेत्रादौ ज्ञानादेर्योगतस्तथा ।
मृतं पूतं नयेत्काशी मुक्तिं मदुपदेशतः ॥ ६९ ॥
न वासोऽन्यत्र मे यस्मान्न मुक्तिः काशिकां विना ।
तत्र यद्यत्कृतं कर्म तदनन्तफलप्रदम् ॥ ७० ॥

गंगादि मोक्षप्रद क्षेत्रादिमें ज्ञानादियोगसे मुक्ति होती है, किन्तु मेरे उपदेशसे काशी मरे मनुष्यको भी पवित्र करके मुक्तिप्रदान करती है काशीमें मेरा वास है, काशीके अतिरिक्त कोईभी मुक्ति देनेमें समर्थ नहीं है, उसमें जो जो कर्म किये जातेहैं,उनसे अनन्तफल प्राप्त हो सकता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अक्षयं हि भवेत्सर्वं दृढां सिद्धिमवाप्नुयात् ।
तत्र सांयोगिकं पुण्यं तत्र चैव विमुच्यते ॥ ७१ ॥
तत्राहं तत्त्वरूपेण पुष्णामि त्वन्यथा नहि ।
स्वल्पत्वे तिथिकालस्य क्रियाकालगतिर्भवेत ॥
काले खलु समारभ्य त्वकालेऽपि समापयेत् ॥ ७२ ॥

काशीमें किये सभी कर्म अक्षय होते हैं काशीमेंही दृढा सिद्धि प्राप्त होती है, हे शिवे ! उसीस्थानमें संयोगिक पुण्य, उसीस्थानमें मुक्ति और उसीस्थानमें मैं तद्ब्रह्मस्वरूपमें पुष्ट होता हूं, इसमें अन्यथा नहीं है, यदि तिथिकाल स्वल्प हो और इस कारण क्रियाकाल बीतजाय तो कालमें आरंभ करके अकालमें समापन करनेसे उसमें दोषका स्पर्श नहीं होता ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥

सन्ध्यायां पतितायान्तु गायत्रीं दशधा जपेत् ।
ततः कालोचितां सन्ध्यां कृत्वा कर्म समापयेत्॥७३
इत्येवं कथितं तुभ्यं यत्पृष्टं गिरिसम्भवे ।
इतः परतरं किञ्चित्तद्‌ब्रूयास्तव मानसे ॥ ७४ ॥

संध्याके पतित होनेपर दशबार गायत्री जपे फिर कालोचिता संध्या करके कर्मसमापन करना चाहिये ॥ ॥ ७३ ॥ हे पर्वतनन्दिनी ! तुमने जो पूछा था, मैंने वह सब कहा; इससे अधिक जो तुम्हारे मनमें विद्यमान हो, सो प्रकाश करके कहो ॥ ७४ ॥

इति सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे श्रीयोगिनीतन्त्रे देवीश्वरसम्वादे भाषाटीकायां चतुर्विंशतिसाहस्र्ये द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन्प्रमथाधीश देवदेव जगद्गुरो ।
युद्धस्य वारणं देव ज्वरादेर्वारणं तथा ॥ १ ॥
क्षिप्रं भवेत्कथं नाथ कृपया परया वद ।
नाशुत्राता च जगतां त्वां विना परमेश्वर ॥ २ ॥

श्रीदेवीजीने कहा-हे भगवन् ! हे प्रमथाधीश देवदेव जगद्गुरो शंकर ! युद्ध और ज्वरादिका निवारण ॥ १ ॥ किस प्रकार शीघ्र संपादित होता है, यह मुझसे कृपापूर्वक वर्णन कीजिये । हे नाथ ! हे देव ! हे परमेश्वर ! आपके अतिरिक्त जगत्का शीघ्र रक्षाकरनेवाला कोई नहीं है ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच ।

कथयामि तव स्नेहात्कवचं वारणं महत् ।
युद्धस्य च ज्वरादेश्च क्षिप्रं हि नगनन्दिनि ।
प्राकृतेनैव वाक्येन कथयामि शृणुष्व तत् ॥३॥

ईश्वर बोले—हे पर्वतनन्दिनी ! मैं तुम्हारे स्नेहसे वशीभूत होकर युद्ध और ज्वरादिका शीघ्र निवारण करनेवाला महत्कवच प्राकृत वचनोंमें कहता हूं, सो सुनो ॥ ३ ॥

ॐ नमो भगवति वज्रशृंखले हन्तु भक्षतु खादतु अहो रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माक्षि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधप्रकरानिचिते पूर्वान्दिशं बध्नातु दक्षिणान्दिशम्बध्नातु पश्चिमान्दिशम्बध्नातु नागार्थं धनाय ग्रहपतीन् बध्नातु नागपत्नीं बध्नातु यक्षराक्षसपिशाचान् बध्नातु प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये ये केचित पुत्रिकास्तेभ्यो रक्षतु ऊर्द्ध्वं रक्षतु अधो रक्षतु स्वनिकांबध्नातु जलमहाबले एह्येहि तु लोटि-लोष्टि शतावलि वज्राग्निवज्रप्रकरे हुँ फट् ह्रींह्रीं श्रींफट् हुँहुँक्रूँफफं सर्वग्रहेभ्यःसर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीं शेषेभ्यो मां रक्षतु॥४॥इतीदं कवचं देवि सुरासुर-सुदुर्लभम् । ग्रहज्वरादिभूतेषु सर्वकर्मसु योजयेत॥५॥

हे देवि ! इस सुरासुरदुर्लभ कवचको ग्रहज्वरादिमें एवंभूतगणोंमें और सब कार्योंमें ही संयोजित करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

न देयं यत्र कुत्रापि कवचं मन्मुखाच्च्युतम् ।
दत्ते च सिद्धिहानिः स्याद्योगिनीनां भवेत्पशुः ॥६॥
दद्याच्छान्ताय वीराय सत्कुलीनाय योगिने ।
सदाचाररतायैव निर्जिताशेषशत्रवे ॥ ७ ॥

हे शिवे ! मेरे मुखसे निकला हुआ यह कवच जहां तहां नहीं देना चाहिये, देनेसे सिद्धिकी हानि होती है और वह योगिनीगणोंका पशु

होता है ॥ ६ ॥ शान्त, वीर, श्रेष्ठवंशोत्पन्न योगी सदाचारनिरत, निर्जितशत्रु अर्थात् जिसने शत्रुओंको जीतलिया है, ऐसे मनुष्यको यह देना चाहिये ॥ ७ ॥

श्रीदेव्युवाच।

श्रुतं हि कवचं दिव्यं त्वन्मुखाम्भोजनिर्गतम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि जगद्वश्यकरं परम् ॥ ८ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—हे देव ! आपके मुखकमलसे निकला हुआ दिव्य कवच मैंने सुना, अब अतिउत्तम जगद्वश्यकर मन्त्र कर्मादिके सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि जगन्मोहकरं महत्।
नारदेन पुरा पृष्टं मयि कैलासमूर्द्धनि।
कथितं कवचं तस्मै सर्वमोहकरं मया ॥ ९ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! महत् जगत्मोहकर कवच कहता हूं, सुनो पहिले कैलासशिखरमें नारदजीने मुझसे यह विषय पूछा था, उनसे मैंने सर्वमोहकर कवच कहा था ॥ ९ ॥

तेनैव कवचेनैव नारदो ब्रह्मसम्भवः।
मोहयामास लोकांस्त्रीन्भित्वा हि कलहप्रियः ॥१०॥

उन कलहप्रिय ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदजीने उस कवचसेही त्रैलोक्य-मण्डल भेदकरके मोहित किया था ॥ १० ॥

तदसम्भवमालोक्य विष्णुराह विधेः सुतम्।
कथं वा मोहितं सर्वं वद मे कारणं मुने ॥११॥

उनका यह असम्भव कार्य देखकर विष्णुजीने उन ब्रह्मनन्दनसे कहा हे मुने ! तुमने किस प्रकारसे इस सम्पूर्ण जगत्को मोहित किया इसका कारण कहो ॥ ११ ॥

तत्सर्वमभवद्विष्णौ विष्णुराह समुद्रजाम् ।
कैलासशिखरासीनं महादेवं जगद्गुरुम् ।
पप्रच्छ नारदो धीमान्सर्वलोकहिते रतः ॥ १२ ॥

विष्णुजीने उन मुनिके निकटसे वह सब प्राप्तकर क्षीरोदनंदिनी [लक्ष्मी] से कहा था और सब लोकोंके हितमें निरत बुद्धिमान् नारदजीने कैलासशिखरपर बैठे हुए जगद्गुरु महादेवजीसे पूछा ॥ १२ ॥

नारद उवाच ।

कालिका या महाविद्या वर्ण्यतां महती प्रभो ।
किमेतस्याः फलं देव किमेतन्मोहनं भवेत् ।
केनोपायेन समरे त्राणं मे वद शंकर ॥ १३ ॥

नारदजी बोले—हे प्रभो शंकर ! महती कालिका महाविद्या वर्णन कीजिये । हे देव ! इसका फल क्या है ? यह मोहन कैसा है ? किस उपायसे समरमें रक्षा होती है ! यह सब कहिये ॥ १३ ॥

ईश्वर उवाच ।

त्रिकाले गोपितं देवि कलिकाले प्रकाशितम् ।
काली दिगम्बरी देवी जगन्मोहनकारिणी ।
तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ त्रैलोक्ये मोहनं त्विदम् ॥ १४ ॥

ईश्वर बोले—हे देवी ! यह सत्य, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगमें गुप्त था कलिकालमें प्रकाशित हुआ है । दिगम्बरी काली देवी जगमोहनकारिणी है. हे मुनिश्रेष्ठ ! यह वही त्रैलोक्यमोहन सुनो ॥ १४ ॥

अस्य कालभैरवऋषिरनुष्टुप् छन्दः—
श्मशानकाली देवता सर्वत्र मोहने विनियोगः

इसके कालभैरवऋषि, अनुष्टुप् छन्दः श्मशानकाली देवता और सर्वत्र मोहनमें इसका विनियोग है ॥ १५ ॥

"ऐंह्रींह्रूंह्रः स्वाहा विवादे पातु मां सदा ।
क्रींदक्षिणकालिकादेवतायै सभामध्ये जयप्रदा॥१६॥
ह्रींह्रींश्यामाङ्गि शत्रुं मारय मारय क्रींक्रीं
त्रैलोक्यं वशमानय ह्रीं ह्रीं क्रीं मां रक्ष रक्ष ।
विवादे राजगेहे च द्वाविंशत्यक्षरा परा ॥ १७ ॥
ब्रह्मराक्षसवेतालात्सर्वतो रक्ष मां सदा ।
कवचैर्वर्जितं यत्र तत्र मां पातु कालिका ।
सर्वत्र रक्ष मां देवि मम मातृस्वरूपिणी" ॥ १८ ॥
इत्येतत्परमं मोहं भवद्भाग्यात्प्रकाशितम् ॥ १९ ॥

हे देवि ! तुम्हारे भाग्यसेही यह परम मोहन प्रकाशित हुआ है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

सदा यस्तु पठेद्वापि त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ २० ॥

जो मनुष्य इसका सदा पाठ करता है, वह तीनों लोकको वशीभूत करनेमें समर्थ होता है ॥ २० ॥

इदं कवचमज्ञात्वा पूजयेद्वीरकामिनीम् ।
सर्वदा स महाव्याधिपीडितो नात्र संशयः ।
अल्पायुः स भवेद्रोगी कथितं तव नारद ॥ २१ ॥

इस कवचको विना जाने जो वीर कामिनीकी पूजा करता है, वह महाव्याधिग्रस्त होकर पीडित, अल्पायु और रोगी होता है, इसमें सन्देह नहीं हे नारद ! मैंने यह तुमसे कहा ॥ २१ ॥

धारणं कवचस्यास्य भूर्जपत्रे विशेषतः ।
समन्त्रकवचं धृत्वा इच्छासिद्धिः प्रजायते ॥ २२ ॥

विशेषतः भोजपत्रपर लिखकर यह कवच मन्त्रसहित धारण करनेसे इष्टसिद्धि प्राप्त होती है ॥ २२ ॥

शुक्राष्टम्यां लिखेन्मंत्री धारयेत्स्वर्णपत्रके ।
कवचस्यास्य माहात्म्यं नालं वक्तुं महामुने ॥ २३ ॥

मन्त्रवान् मनुष्य शुक्राष्टमीमें इस कवचको लिखके स्वर्णपत्रमें धरकर इसको धारण करे । हे महामुने ! इस कवचका माहात्म्य अनिर्वचनीय है ॥ २३ ॥

शिखायां धारयेद्योगी फलार्थी दक्षिणे भुजे ।
इदं कल्पद्रुमो देवि तव स्नेहात्प्रकाशिते ।
गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं महामुने ॥ २४ ॥

योगी मनुष्य शिखामें और फलार्थी मनुष्य इसको दाहिनी भुजामें धारण करे । हे देवि ! वह कल्पवृक्षके तुल्य कवच तुम्हारे स्नेहसे प्रकाशित किया है इसको परमयत्नपूर्वक गुप्त रखकर सदा पाठ करे ॥ २४ ॥

विष्णुरुवाच ।

इत्येवं कवचं नित्यं महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् ।
अवश्यं वशमायाति त्रैलोक्यं ते चराचरम् ॥ २५॥
शिवेन कथितं पूर्वं नारदाय फलेप्सवे ।
तत्पाठान्नारदेनापि मोहितश्च चराचरम् ॥ २६ ॥

विष्णुजीने कहा—हे महालक्ष्मी ! इस नित्य कवचको तुम ग्रहण करो चराचर त्रैलोक्य अवश्य तुम्हारे वशीभूत होगा ॥ २५ ॥ पहिले महादेवजीने इसको फलकामी नारदसे कहाथा, नारदने इस कवचका पाठ करके चराचरको मोहित कियाथा ॥ २६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

पुरा मुने जगद्वन्द्य प्रमथेश वरप्रद ।
नराणामुपकारार्थं ब्रूहि योगं सुविस्तरम् ॥ २७ ॥

येनाशु लभते राज्यं येनाशु लभते सुतम् ।
येनाशु लभते ज्ञानं येनाशु लभते धनम् ।
येनाशु लभते कीर्तिं येनाशु लभतेऽखिलम्॥२७।२८॥

श्रीपार्वतीजी बोली-हे पुरातनमुने! हे जगद्वन्द्य ! हे वरप्रद ! हे प्रमथेश ! मनुष्योंके उपकारार्थ जिसके द्वारा तत्काल राज्यलाभ, पुत्रलाभ, ज्ञानलाभ, धनलाभ, कीर्तिलाभ और जिसके समस्त ही लाभ हों वहां योग द्वारा विस्तरसहित वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मांत्वं परिपृच्छसि ।
उक्तं फेत्कारिणीतन्त्रे नीलतन्त्रे च विस्तरात् ॥२९॥

महादेवजी बोले--हे देवी ! तुमने मुझसे जो पूछा, वह कहता हूं, सुनो, फेत्कारिणतंत्र और नीलतंत्रमें यह विषय विस्तारसहित कहा है ॥ २९ ॥

इदानीं विस्तराद्देवि कथयामि शुचिस्मिते ।
उदेति पश्चिमे भानु श्चन्द्रः पतति भूतले ।
यदि शुष्यति पाथोधिर्न मिथ्या च कदा च न ॥३०॥

हे शुचिस्मिते ! अब मैं तुम्हारे प्रति वह विस्तारसहित वर्णन करता हूं सुनो । यद्यपि पश्चिम दिशामें सूर्य उदय हो, चन्द्रमा यद्यपि पृथ्वीमें गिर पडे, समुद्र यद्यपि सूखजाय किन्तु तो भी यह सब वचन कभी मिथ्या नहीं होंगे ॥ ३० ॥

योगराजो महेशानि त्वन्वर्थोऽयं सदैव हि ॥३१॥
विष्णुचक्रं यथा व्यर्थं त्रिशूलश्च यथा मम ।
कुलिशं देवराजस्य तथा योगो मयोदितः ॥३२॥

हे देवि ! यह योगराज सदा ही अव्यर्थ है , विष्णुका चक्र मेरा

त्रिशूल और देवराज इन्द्रका वज्र जिस प्रकार अव्यर्थ है, ऐसे ही इस मेरे कहे योगको भी अव्यर्थ जानना चाहिये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

यथैव निश्चितं देवि ब्रह्मणः कमलासनम् ।
तथैव निश्चितो देवि योगोऽयं नात्र संशयः ॥३३॥

हे देवि ! ब्रह्माजीका कमलासन जिस प्रकार निश्चित है, इसी प्रकार इस योगको निश्चित जानना इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥

कल्पवृक्षो यथा देवि ह्याकांक्षापारपूरकः ।
अयं योगवरो देवि तथैव परिकीर्तितः ॥ ३४ ॥

हे देवि ! कल्पवृक्ष जिस प्रकार आकांक्षाका पूर्ण करनेवाला है, इस उत्तम योगको भी उसी प्रकार वासनापूरक जाने ॥३४॥

राज्यार्थश्च कुलार्थश्च सुतार्थं स्वर्णपत्रके ।
आयामप्रस्तृते देवि षोडशाङ्गुल सम्मिते ॥३५॥

हे देवि ! राज्यार्थ, कुलार्थ और सुतनिमित्त लम्बाई चौडाईमें सोलह अंगुल परिमाणवाले स्वर्णपत्रके ऊपर ॥ ३५ ॥

यज्ञार्थश्च धनार्थश्च कीर्त्यर्थं राजते शुभे ॥ ३६ ॥

यज्ञार्थ धनार्थ और कीर्तिके निमित्त चांदीके पत्रपर ॥ ३६ ॥

तथा मानमितो देवि तद्वत्ताम्रे विनाशने ।
स्वर्णे वा परमेशानि अन्यार्थे भूर्जपत्रके ॥ ३७ ॥

सन्मान वा साम्यताके निमित्त ताम्रपत्र और अन्यकार्यकी सिद्धिके लिये स्वर्णपत्र वा भोजपत्रपर ॥ ३७ ॥

लिखेन्मन्त्रं वरारोहे तारिण्याः सर्वसिद्धिदम् ।
राज्यार्थी च धनार्थी च पुत्रार्थी कीर्तिकामिकः ॥३८॥

सर्वसिद्धिप्रद तारिणीकामंत्र लिखे । हे वरारोहे ! राज्यार्थी, धनार्थी और पुत्रार्थी कीर्तिकी कामना करनेवाला ॥ ३८ ॥

वित्तार्थी विलिखेद्देवि लेखन्या सुमनोहरम् ॥ ३९ ॥
स्वर्णयष्ट्याष्टाङ्गुलया कनिष्ठायाः प्रमाणतः ।
ज्ञानार्थं कुशमूलेन त्वन्यार्थं दूर्वया लिखेत् ॥ ४० ॥

और ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य कनिष्ठाप्रमाण अष्टांगुल स्वर्णलेखनीद्वारा यह मंत्र मनोहर रीतिसे लिखे । ज्ञानकी इच्छा करनेवाला कुशमूल और अन्यकामना चाहनेवाला दूर्वाद्वारा लिखे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

आचम्य पुरतो देवि नत्वा च गुरुपादुकाम् ।
उत्तराशामुखो भूत्वा पूजयित्वा च तारिणीम् ॥४१॥

हे देवि ! प्रथम आचमन करके गुरुकी पादुकाको नमस्कारपूर्वक उत्तरकी ओरको मुखकरके तारिणीदेवीकी पूजा करे ॥ ४१ ॥

कुङ्कुमं रोचना जटामांसी चन्दनमेव च ।
लाक्षा कस्तूरिकाश्मीरं सिन्दूरं च वरानने ॥ ४२ ॥

फिर हे वरानने ! कुंकुम (रोरी) गोरोचना, बालछड, चन्दन, काश्मीर (केशर) कस्तूरी, लाख और सिन्दूर ॥ ४२ ॥

सर्वमेकीकृतेनादौ षट्कोणं चक्रमालिखेत् ।
तन्मध्ये विलिखेत्तारां सार्द्धवेदाक्षरीं पराम् ॥ ४३ ॥
सार्द्धपञ्चाक्षरी वापि तन्मयो वेदिमध्यगम् ।
साध्यं तत्र लिखेत्साध्यं शृणुत्वं शम्भुवल्लभे ॥ ४४ ॥

यह सब वस्तु एकत्र करके प्रथम षट्कोण चक्र लिखे, तिसमें अत्यन्त उत्कृष्ट सार्द्धवेदाक्षरी (साढे चारअक्षरवाली) अथवा सार्द्धपञ्चाक्षरी (साढेपांच अक्षरवाला) तारादेवीका मंत्र लिखे, तदनन्तर हे शंभुवल्लभे ! इस चक्रके मध्यवेदीमें साध्य विषय अर्थात् वांछित विषय लिखे साध्य विषय सुनो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अमुकस्यामुकं वाक्यं वशीकुरु च कुर्विति ॥ ४५ ॥

अमुकस्यामुकं वाक्यं वशीकुरु कुरु । अमुकस्यामुकं ज्ञानं सिद्धिं कुरुकुरु ॥ ४५ ॥

अमुकीनां शुभं पुत्रमुत्पादयोत्पादयेति च ।
अमुकस्यामुकं द्रव्यं देहि देहीति कामिनि ॥ ४६ ॥
एवमेव क्रमेणैव साध्यं संलिख्य यत्नतः ।
क्लीबहीनान्दीर्घवर्णान्षट्कोणे षट्समालिखेत् ॥ ४७ ॥

इस प्रकार क्रमशः यत्नपूर्वक साध्य लिखे, इस षट्कोणमें क्लीब हीन छे दीर्घ वर्ण लिखे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

वृत्तमष्टदलं पद्मं सुदृष्टं सुमनोहरम् ।
अष्टपत्रं लिखेत्तत्र किञ्जल्कयुगलं युगम् ॥ ४८ ॥
अष्टपत्रे चाष्टवर्णान्वक्ष्यमाणाँल्लिखेत्ततः ।
वाग्भवं भुवनेशानीं कामं हुं प्रणवं तथा ॥ ४९ ॥
मायामन्त्रं ततः स्वाहापूर्वादि क्रमतो लिखेत् ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं यन्त्रं समालिखेत् ॥ ५० ॥

इसके पीछे अष्टदल गोलाकार युगलमें युगल किञ्जल्कयुक्त मनोहर पद्म और अष्टपत्रमें अष्टवर्ण लिखे । पूर्वादिक्रमसे वाग्भव, भुवनेशानी काम, हुं प्रणव (ओम्) एवं मायामंत्र और स्वाहा लिखना चाहिये चतुष्कोण चतुर्द्वारयुक्त इस प्रकार यंत्र लिखे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

ज्ञानाप्तौ सिद्धिकार्येषु अन्यत्र त्वमृतोदये ।
गुरौ शुक्रे तथा सोमे मङ्गले वा बुधेऽह्नि च ।
ताराया सानुकूलायां जपेन्मंत्रं समाहितः ॥ ५१ ॥

ज्ञानप्राप्ति और अन्य सिद्धिके विषयमें एवं अन्य शुभकार्यमें, गुरु शुक्र, सोम, मङ्गल वा बुधवारमें अनुकूल तारामें सावधानचित्तसे मंत्रको जपे ॥ ५१ ॥

पीतवस्त्रेण संवेष्टच जंतुना परिवेष्टयेत् ।
पट्टवस्त्रेण रक्तेन बध्नीयात्साधकोत्तमः ॥ ५२ ॥

हे पार्वती ! पीतवस्त्र और लाक्षासे यह मंत्राधार पात्र वेष्टन करे। साधकोत्तम उसको लालवर्णके रेशमी वस्त्रसे बांध देवे ॥ ५२ ॥

स्वर्णपीठेषु संस्थाप्य संख्यानन्त्वाचरेत्कृती ।
भूमिस्पृष्टं न चेत्कुर्यान्न निर्माल्येन संस्कृतम् ।
विदीर्णं लङ्घितं वापिनैव कुर्यात्कदाचन ॥ ५३ ॥
आयामे प्रस्तृते देवि षोडशाङ्गुलमानतः ।
घटं कुर्य्यात्प्रयत्नेन सर्वदृष्टिमनोहरम् ॥ ५४ ॥

अनन्तर कृती मनुष्य स्वर्णपीठमें उसको स्थापन करके संख्यान अर्थात् योग वा जप संख्या आरंभ करे, उसको कभी पृथ्वीका स्पर्श वा शिवनिर्माल्यका स्पर्श न करावे तथा विदीर्ण न करे, उसको उलंघकर जाना भी उचित नहीं है। हे देवि ! लम्बाई और विस्तारमें सोलह अंगुलपरिमाण सर्वजनमनोहर घट यत्नपूर्वक स्थापन करे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

राज्यार्थी काञ्चनेनैव पुत्रार्थी रजतेन च ।
ताम्रेण चैव युद्धार्थी मृदान्यत्र घटश्चरेत् ॥ ५५ ॥

राज्यकी कामना करनेवाला सुवर्णद्वारा, पुत्रकी इच्छा करनेवाला रजत (चांदी) द्वारा, युद्धकी अभिलाषा करनेवाला ताम्रद्वारा और अन्य कामना करनेवाला मृत्तिका (मिट्टी) द्वारा घट प्रस्तुत करावे ॥ ५५ ॥

तत्र मुक्तां प्रवालानि मणिं रजतकाञ्चने ।
धान्यं छित्वा मुखं तस्य पल्लवैः प्रतिपादयेत् ॥५६॥

इस घटमें मणि, मोती, मूँगा, चांदी और सुवर्ण तथा धान्य डाल मुखमें पञ्चपलव प्रदान करे ॥ ५६ ॥

क्षौमयुग्मेन रक्तेन प्रच्छाद्य प्रयतः सुधीः ।
अष्टाङ्गुल स्वर्णपत्रे चतुरस्रं समन्ततः ॥ ५७ ॥

तदुपरान्त रक्तवर्णके दो रेशमी वस्त्रोंसे यह घट यत्नपूर्वक ढकदे । फिर अष्टांगुल स्वर्णवस्त्रको चारों ओरसे चौकोना कर ॥ ५७ ॥

तत्र मन्त्रं लिखित्वैवं घटे संस्थाप्य यत्नतः ।
चतुःषष्ट्युपचारेण यजेत्तारां परां शिवाम् ॥ ५८ ॥

उसपर मंत्र लिखकर इस घटमें यत्नसहित स्थापनपूर्वक चौसठ उपचारोंसे शिवारूपिणी तारादेवीकी आराधना करे ॥ ५८ ॥

होमस्थाने कृते चतुर्विंशत्यङ्गुलकल्पिते ।
अब्जकं पुष्पकं देवि षोडशच्छदमंडितम् ॥ ५९ ॥
किञ्जल्कैर्मण्डितं देवि बलिमादाय पूर्ववत् ।
निवेदयेन्महाभक्त्या बलिमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ ६० ॥
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा च पूजयेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु हुत्वा साधकसत्तमः ।
तत्पुटोपरि देवेशि क्षिपेत्पुष्पाक्षतं तथा ॥ ६१ ॥

अनन्तर चौवीस अंगुल परिमाण होमस्थान निश्चित करके षोडशपत्र-शोभित किञ्जल्कमण्डित अब्जक पुष्प और बलिद्वारा पूर्ववत् महाभक्ति युक्त होकर मंत्रज्ञ व्यक्ति बलिमंत्रद्वारा पूर्ववत् निवेदन करे पञ्चगव्य और पंचामृतसे स्नान कराकर पूजा करनी चाहिये । साधकश्रेष्ठ अष्टोत्तरसहस्र-वार होमाहुति देकर हे देवेशि ! उस पुटके ऊपर पुष्पाक्षत निक्षेप करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

भूमिं ग्राममितां दद्याद्राज्यमिच्छति कामुकः ।
दक्षिणां युद्धकामी च काञ्चनाश्वौ महेश्वरि ॥ ६२ ॥

हे महेश्वरि ! फिर राज्याभिलाषी ग्रामपरिमिता भूमि युद्धार्थी दक्षिणा और कञ्चनके बने दो अश्व ॥ ६२ ॥

शालग्रामशिलामेकां स्वर्णरेखाद्यलंकृताम् ।
ज्ञानसिद्ध्यै प्रदद्यात्तु धनार्थी गाञ्च काञ्चनम् ॥६३॥

ज्ञानार्थी स्वर्णरेखादिद्वारा अलंकृत एक शालग्रामशिला और धनकी इच्छा करनेवाला गौ एवं सुवर्णकी दक्षिणा देवे ॥ ६३ ॥

भोजयेद्ब्राह्मणान्धीरः कुमारीः कल्पपल्लवे ।
ततस्तु साधयेद्यन्त्रं पुरुषो दक्षिणे भुजे ॥ ६४ ॥

हे कल्पवृक्षके पत्तोंके समान कोमलभुजावाली ! इसके पीछे धीर पुरुष ब्राह्मणभोजन और कुमारीभोजन करावे । फिर यह यंत्र पुरुष दक्षिण भुजामें धारण करे ॥ ६४ ॥

नारी वामभुजे चैव शिशुर्वै कण्ठभागके ॥ ६५ ॥

स्त्रियें वामभुजामें और बालक कण्ठमें धारण करे ॥ ६५ ॥

इत्येवं कथितं गरम्यं न देयं प्राणसङ्कटे ॥ ६६ ॥

हे पार्वती ! यह मैंने तुमसे राज्यलाभादि मनोहर योग कहा । यह प्राणसंकट उपस्थित होनेपर भी किसी अनधिकारीको नहीं देना चाहिये ॥ ६६ ॥

इति सर्वतन्त्रोत्तमे श्रीयोगिनीतन्त्रे देवीश्वरसम्वादे भाषाटीकायां चतुर्विंशतिसाहस्रे तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव जगद्वन्द्य सुरासुरनमस्कृत ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वीरषट्कर्मसाधनम् ॥ १ ॥

धन्यं पुण्यवतां राज्ञां राज्यादिकवयोजुषाम् ।
स्त्रियास्तु सिद्धसंस्थानां सर्वभोगविलासिनाम् ॥२॥

श्रीदेवजीने कहा—हे सुरासुरनमस्कृत ! जगद्वन्द्य देवदेव ! अब मैं पुण्यवानोंका, राज्यादिव योभोगी (अत्यन्त सौभाग्यवान् वृद्ध) गणोंका स्त्रियोंका. सिद्धसंस्थगणोंका तथा सब भोगविलासियोंमें धन्य और ग्रहणीय षट्कर्मसाधन सुननेकी इच्छा करती हूँ ॥ १ ॥ २ ॥

श्रीईश्वर उवाच ।

शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने तथा ।
मारणं परमेशानि षट्कर्मेदं प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥

श्रीईश्वर (महादेवजी) बोले—हे परमेशानि ! शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन और मारण यही छः कर षट्ट कर्म कहे गये हैं ॥ ३ ॥

तारिणी कालिकां छिन्नामधिकृत्य जगन्मये ।
कथयामि तव स्नेहाद्द्रुतंसिद्धिकरं परम् ॥ ४ ॥

हे जगन्मये ! तारिणी, कालिका और छिन्नमस्ता इनको अधिकार करके तुम्हारे प्रति स्नेहवशतः मैं तुमसे शीघ्र सिद्ध कर करनेवाला परम विषय कहता हूं ॥ ४ ॥

रतिर्वाणि रमा ज्येष्ठा मातङ्गी कुलकामिनी ।
दुर्गाचैव भद्रकाली कर्मादौ कर्मसिद्धये ॥ ५ ॥

रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, मातंगी, कुलकामिनी, दुर्गा और भद्रकाली यह कर्मादिमें कर्मसिद्धिका निमित्त होती हैं ॥ ५ ॥

षोडशैरुपचारैश्च यजेद्वीरः स्वशक्तितः
शून्यागारे महारण्ये देवतायतनेऽपि वा ॥ ६ ॥

वीर मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार षोडशोपचारसे उनकी पूजा करे । शून्यागार, महारण्य वा देवमन्दिरमें ॥ ६ ॥

पञ्चकर्माणि कुर्वीत मारणन्तु शवोपरि ।
तदभावे पितृवने वासांसि कथयामि ते ॥ ७ ॥
मुख्यं दिगम्बरं ज्ञेयं द्वीपिचर्म द्वितीयकम् ।
तदभावे रक्तक्षौमं नान्यद्वस्त्रं प्रकल्पयेत् ॥ ८ ॥

प्रथमोक्त पांच कर्म करे, किन्तु मारणकर्म शवोपरि (मृतकदेहपर) करना चाहिये । उसका अभाव होनेपर श्मशानभूमिमें मारण करे । वस्त्रका विषय कहता हूं, सुनो । मुख्य तो दिग्वस्त्र (नग्न) है, दूसरा द्वीपिचर्म अर्थात् वाघकी खाल है, इनके अभावमें लालवर्णका रेशमी वस्त्र ग्रहण करे, अन्य वस्त्र निषिद्ध है ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्वर्णमादौ द्वितीये च राजतं स्तम्भने शिला ।
विद्वेषोच्चाटने ताम्रं कपालं मारणे शुभम् ॥ ९ ॥

शान्तिमें सुवर्ण, वशीकरणमें रजत (चांदी) स्तंभनमें शिला, विद्वेषण और उच्चाटनमें ताम्र, तथा मारणमें नरकपाल शुभ है ॥ ९ ॥

विप्रोन्योऽपि नरः प्रोक्तो युवा वै कृष्णवर्णकः ।
अदुर्भिक्षव्याधिमृतो माला तस्य शुभावहा ॥ १० ॥

ब्राह्मण वा अन्यजातीय कृष्णवर्ण युवा अथवा दुर्भिक्षकी पीडारहित वा निरोग मृतमनुष्यकी अस्थिमाला ही शुभदायिनी है ॥ १० ॥

अभावे स्फाटिकी जप्या इन्द्राक्षैर्वाजपेत्प्रिये ।
मृदौ वा कोमले वापि विष्टरे वा सुरेश्वरि ॥११॥

इसके अभावमें स्फटिककी माला वा इन्द्राक्षमालासे जप करे । हे प्रिये सुरेश्वरि ! मिट्टी वा कोमल कुशासनमें ॥ ११ ॥

मुण्डे वाऽयोनिके देवि त्वाचि व्याघ्रस्य वा प्रिये ।
एकहस्ते द्विहस्ते वा चतुर्हस्ते समन्ततः ॥१२॥

स्थिरासनश्चरेत्सम्यक्स्वाभयं तत्र चिन्तयेत् ।
भये जाते महेशानि भैरवोक्तमनुं जपेत् ॥ १३ ॥

मुण्डमें वा योनिमें व व्याघ्रत्वचामें एक हाथ वा दो हाथ, अथवा चारों ओर चार हाथ स्थानमें सम्यक् प्रकार स्थिरासन करे । वह अपनी अभय-चिन्ता करे अर्थात् निर्भय रहे. हे महेश्वरि ! भय उत्पन्न होनेपर भैरवोक्त मंत्रका जप करे ॥ १२ ॥ १३ ॥

विषयुग्मं वज्रवाले हनयुग्ममतः परम् ।
सर्वभूतानुनः कूर्चमन्त्रान्तो भैरवो मनुः ॥ १४ ॥

वज्रजालमें विषयुग्मः, फिर हनयुग्म और कूर्च मन्त्रके अन्तमें भैरवमन्त्र सर्वभयोंको दूर करता है ॥ १४ ॥

ततो भूतबलिं दद्यात्साधको धर्मसम्मितम् ।
अश्वत्थेन महेशानि धर्मकीलकमाचरेत् ॥ १५ ॥

अनन्तर साधक मनुष्य धर्मसंमित भूतबलिप्रदान करे । हे महेशानि ! अश्वत्थद्वारा वह धर्मका कीलक स्थापन करे ॥ १५ ॥

सूर्यवारादियोगेन पञ्चकर्माणि चाचरेत् ।
शनौ च मारणं देवि निश्चितं वीरवन्दिते ॥१६॥

सूर्यवारादियोगमें पंचकर्मका आचरण करे हे वीरवन्दिते देवि ! शनिवारमें मारण करना चाहिये ॥ १६ ॥

रात्रियोगे च कर्तव्यं सर्वं कर्म शुचिस्मिते ।
प्राग्विद्वान्प्रजपेत्सम्यक्स्वमन्त्रमयुतं शवे ।
प्रयोगस्यफलावाप्तौ स्वस्वरक्षाकरं महत् । १७ ।

रात्रियोगमें सभी कर्मोंका साधन करना चाहिये । विद्वान् मनुष्य पहिले निजमंत्र अयुत (दशसहस्र) वार शवोपरि जपे । हे शुचिस्मिते ! प्रयोगकी फलप्राप्तिके लिये निज निज रक्षाविधान कर्त्तव्य है ॥ १७ ॥

ततः साध्यदिने मंत्री याममात्रनिशोत्तरम् ।
गणादिपञ्चभिर्देवैर्यजेत्कुलविनाशिनीम् ॥ १८ ॥

इसके पीछे मन्त्रवान् पुरुष रात्रिकालमें प्रहरमात्र बीतनेपर गणादि पांच देवताओंके सहित कुलविनाशिनी देवीकी पूजा करे ॥ १८ ॥

दिग्वासा गलिताशेषचिकुरः कुलकीलकः ।
शक्तियुक्तो जपेद्विद्यां सदा त्वा मनसा स्मरेत् ॥१९॥

नग्नहोकर समस्त केश, कुलकीलिक और शक्तियुक्त होकर सदा मंत्र-स्मरण करे और मनसे तेरा स्मरण करे ॥ १९ ॥

लक्षसंख्यं महेशानि शक्तिपूजापुरःसरम् ।
प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान्कौलिकाद्यान्दिनान्तरे ॥ २० ॥

हे महेश्वरि ! लक्षवार शक्तिपूजा करनेके पीछे नित्य ब्राह्मण को और दिनान्तर में कुलकौलिकगणोंको भोजन करावे ॥ २० ॥

मांसं मद्यं तथा मत्स्यं हुत्वा वह्नौ शतं शतम् ।
दक्षिणां गुरवे दद्याद्गुरुरूपेण शाम्भवि ॥ २१ ॥

हे शाम्भवि ! मांस मद्य और मत्स्यद्वारा अग्निमें शतशतवार होम करके गुरुको गुरुतर रूपसे दक्षिणा देवे ॥ २१ ॥

एवमुक्तविधानेन दिग्भ्यो वा वीरपुङ्गवः ।
यदि कुर्यान्महेशानि देवानपि तथा नयेत् ॥ २२ ॥

हे महेशानि ! इस प्रकार कहे हुए विधानसे जो वीरश्रेष्ठ यह सब कार्य करे, तो दिशाओंसे देवताओंके भी उस स्थानमें बुलानेको समर्थ होस-कते हैं ॥ २२ ॥

नापेक्षा जायते कान्ते चावश्यं फलभाग्भवेत् ।
महाप्रयोगे देवेशि कृष्णच्छागं बलिं हरेत् ॥ २३ ॥

हे कान्ते ! इसमें अपेक्षा वा संशय नहीं है, अवश्यही इसके फलका भागी होगा, हे देवेशि ! महाप्रयोगमें काले बकरेकी बलिप्रदान करे॥२३॥

पूजान्ते सततं देवि तन्मांसैर्वह्निमर्चयेत् ।
विधिः सर्वत्र कथितो दिव्यवीरपशुक्रमात् ॥ २४ ॥

हे देवि ! पूजाके पीछे उसके मांससे अग्निकी अर्चना करे । दिव्य बीर पशुक्रममें सर्वत्र यह विधि कथन की गई है ॥ २४ ॥

क्रमेण फलमाप्नोति व्यत्यये पातकी भवेत् ॥ २५ ॥
इत्येवं कथितं तुभ्यं सम्यक् षट्कर्मगोचरम् ॥
गोपनीयं खले दुष्टे पशुपामरसन्निधौ ॥ २६ ॥

क्रमानुसार कार्य करनेसे फल प्राप्त और भेद करनेसे पापका भागी होता है, यह मैंने तुमसे षट्कर्मका विषय कहा । खल, दुष्ट और पशु-तुल्य पामर मनुष्यसे इसको छिपावे ॥ २५ ॥ २६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

सुराद्याः किंविधा देव शक्तिर्वा कीदृशी शुभा ।
षट्कर्मसु यथायोग्यं वद मे करुणानिधे ॥ २७ ॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे करुणानिधे ! किस प्रकार सुरगण और किस प्रकार शक्ति कल्याणकारी होती है, षट्कर्मविषयका यथायोग्य यह सब वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥

ईश्वर उवाच ।

माध्वी शान्तिकरी प्रोक्ता वश्ये च स्फाटिकी शुभा ।
स्तम्भने डाकिनी ज्ञेया विद्वेषे पैष्टिकी मता ॥ २८ ॥
उच्चाटने तथा गौडी मारणे भैरवी मता ।
एतासां लक्षणं देवि कथितं कुलमोहने ॥ २९ ॥

ईश्वर बोले—शान्तिविषयमें माध्वी, वशीकरणमें स्फाटिकी, स्तंभनमें डाकिनी, विद्वेषणमें पैष्टिकी ॥ २८ ॥ उच्चाटनमें गौडि और मारणमें भैरवी शुभकारी होती है. हे देवि ! यह सब शक्तियोंके लक्षण कुलमोहनतंत्रमें कहे हैं ॥ २९ ॥

पद्मिनी शान्तिदा प्रोक्ता वश्ये सा शंखिनी मता ।
स्तम्भनोच्चाटने देवि प्रशस्ता नागवल्लभा ॥ ३० ॥

पद्मिनी शांतिदायिनी, वशीकरणमें शंखिनी स्तंभन और उच्चाटनमें नागवल्लभा श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

मारणे च तथा शस्ता डाकिनी शत्रुमृत्युदा ।
गौराङ्गी दीर्घकेशी या सदा चामृतभाषिणी ॥ ३१ ॥

और मारणमें डाकिनी शत्रुको मृत्यु देनेवाली होती है, गौराङ्गी, दीर्घकेशी, सदा अमृतभाषिणी ॥ ३१ ॥

रक्तनेत्रा सुशीला च पद्मिनी साधने शुभा ।
मन्त्रसिद्धिकरी ह्येषा शंखिनी सापि भामिनि ॥ ३२ ॥

रक्तनेत्रा पद्मिनी साधनविषयमें शुभदायिनी होती है, हे भामिनी ! शंखिनी और मन्त्रसिद्धिकरी ॥ ३२ ॥

दीर्घाङ्गी सा शंखिनी स्याज्जगद्रञ्जनकारिणी ।
समांगी शूद्रदेही च न खर्वा नातिदीर्घका ॥ ३३ ॥
दीर्घकेशी मध्यपुष्टा मृदुभाषा च नागिनी ।
कृष्णाङ्गी च कृशाङ्गी च दन्तुरा मदतापिता ॥ ३४ ॥

शंखिनी, दीर्घाङ्गी और सबजनोंका मनरंजन करनेवाली है, नागिनी समान अंगवाली शूद्रतुल्य देहधारिणी न बहुत खर्व (ठिंगनी) न बहुत लम्बी, दीर्घकेशी, मध्यपुष्टा और मीठा बोलनेवाली होती है, कृष्णांगी और कृशाङ्गी, दन्तुरा, मदतापिता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

ह्रस्वकेशी दीर्घघोणा सदा निष्ठुरवादिनी ।
सदा क्रुद्धा दीर्घदेहा महारावपरायणा ॥ ३५ ॥
निर्लज्जा हास्यहीना च निद्रालुर्बहुभक्षिका ।
इयं सा डाकिनी प्रोक्ता मृत्युयोगे प्रशस्यते ॥ ३६ ॥

ह्रस्वकेशी (छोटे केशवाली) दीर्घघोणा (बडे नाशिकावाली) सदा निष्ठुर बोलनेवाली, सदा क्रोधित, दीर्घदेहवाली, महाशब्दवाली, निर्लज्ज हास्यहीन, सदा सोनेवाली और बहुत भोजन करनेवाली को ही डाकिनी कहागया है, यह डाकिनीही मृत्युयोगमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

एतास्तु शक्तयो देवि सर्वजातिसमुद्भवाः ।
सापत्याश्च सुरत्यश्च जातपुत्रादिकाः शुभाः ।
ग्राह्याः कुलरसैः पूज्या भक्तिभावेन कामिनीः ॥ ३७ ॥

हे देवि ! सर्वजातिमें उत्पन्न यही सब शक्ति है, सन्तानवाली सूरति युक्त और जातपुत्रादि (जिसके पुत्र हैं) कोही शुभकारिणी होती है यही सब शक्ति ग्रहण करने योग्य हैं, इन सब कामियोंकी कुल रसद्वारा भक्तिभावसे पूजा करे ॥ ३७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

केन केन च मन्त्रेण मन्त्री षट्कर्मभाग्भवेत् ।
तन्मन्त्रं कथय स्वामिन् यद्यहं तव वल्लभा ॥ ३८ ॥

श्रीपार्वतीजी बोली–हे महेश ! हे स्वामिन् ! यदि मैं तुम्हारी प्यारी हूं. तो मंत्रवान् मनुष्य किस किस मंत्रद्वारा षट्कर्मका भागी होता है, वह मंत्र मुझसे वर्णन करो ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच ।

एकाक्षरं कालिकायास्तारायास्तु त्रिबीजकम् ।
वज्रवैरोचनीयो हि मनुरेकादशाक्षरः ॥ ३९ ॥

सर्वतेजोऽपहारी च मनुराख्यात एव च ।
बहुनात्र किमुक्तेन शृणु मत्प्राणवल्लभे ॥ ४० ॥

ईश्वर बोले—कालिकाका बीज एकाक्षर, ताराका बीज अक्षर, वज्रवै-रोचनीका बीज एकादशाक्षर ॥ ३९ ॥ यह सर्वतेजोविनशीण मन्त्र कहा है, हे प्राणवल्लभे ! बहुत कहनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ४० ॥

केवलं शक्तियुक्तश्च जपेद्देवीं समाहितः ।
अवश्य फलमाप्नोति नान्यथा वीरवन्दिते ॥ ४१ ॥

केवल शक्तियुक्त होकर सावधानचित्तसे देवीका जप करे, हे वीरवन्दिते ! तो अवश्यही फल प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥

खलो यदि फलं प्राप्तः सबलो यदि निष्फलः ।
भवेदेतन्महेशानि तदा सर्वं वृथा भवेत् ॥ ४२ ॥

यदि खलव्यक्ति फलको प्राप्त हो और सबल यदि निष्फल हो, तो यह सब वृथा हो सकता है ॥ ४२ ॥

अहं धाता तथा पाता रक्षितोद्योगवान् शिवे ।
तथापि न हि सिद्धिः स्याच्चित्रमेतन्नगात्मजे ॥ ४३ ॥

हे शिवे ! मैं धाता और पाता (रक्षक) तथा उद्योगी हूं, इसपरभी यदि सिद्धि न हो तो यह आश्चर्यकी बात कहनी चाहिये ॥ ४३ ॥

एवन्तु मारणं देवि विशेषात्कथयामि ते ।
सान्तं वह्निसमायुक्तं वामनेत्रविभूषितम् ॥ ४४ ॥

हे देवि ! मैं तुमसे अन्तयुक्त और वह्निसंयुक्त वामनेत्रविभूषित मारणका विषय विशेष करके कहता हूं, सुनो ॥४४॥

ह्रींहुंहुं अमुकं मारय स्वाहा ।
कूर्चयुग्मं ततो देवि अमुकं मारय मारय ॥ ४५ ॥

ह्रीँहुँहुँअमुक मारय मारय स्वाहा । हे देवि! तदनन्तर कूर्चयुक्त अमुकं मारय मारय ॥४५॥

चतुर्दशाक्षरो मंत्रः स्वाहान्तः शत्रुनाशकः ।
खदिराङ्गारमादाय कुजाष्टम्यां विशेषतः ॥ ४६ ॥

चतुर्दशाक्षर स्वाहान्त मन्त्रको शत्रुनाशक जानना चाहिये । खैरके अँगारे लाकर विशेषकर मंगलवारकी अष्टमीमें ॥ ४६ ॥

लेखयेत्पुत्तलीं शत्रुस्वरूपां लोहपात्रके ।
निशायां मस्तके नेत्रे ललाटे हृदये करे ॥ ४७ ॥
नाभौ गुह्ये कटौ पृष्ठे क्रमोक्तेन पदद्वये ।
मन्त्रवर्णान्समालिख्य प्रतिष्ठां तत्र कारयेत् ॥४८॥

लोहपात्रपर शत्रुस्वरूप पुतली लिखकर रात्रिके समय मस्तक नेत्र, ललाट, हृदय हाथ ॥ ४७ ॥ नाभि, गुह्य, कमर, पीठ और दोनों पैरोंमें क्रमशः मन्त्रवर्ण लिखकर उसकी प्रतिष्ठा करे ॥ ४८ ॥

संहारमुद्रां बद्ध्वा तु ध्यायेद्देवीं जयप्रदाम् ।
दीर्घाकारां कृष्णवर्णां सदोद्‌र्ध्वस्तनमस्तकाम् ॥४९॥
नृमुण्डयुगलं हस्ते चर्वयन्ती दिगम्बराम् ।
शत्रुनाशकरी देवी ध्यायेच्छत्रुक्षयायच ॥ ५० ॥

तदनन्तर संहारमुद्रा बन्धनकर जयप्रदा देवीका ध्यान करे, दीर्घाकार, कृष्णवर्ण, ऊँचे ऊंचे स्तनोंवाली और जिनका मस्तक विस्तृत है, दिगम्बरा, हाथमें दो नृमुण्ड चर्वण करती हैं शत्रुके क्षयके निमित्त शत्रुनाशकरी देवीका इस प्रकार ध्यान करे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

एवं ध्यात्वेष्टकाचूर्णैर्वामहस्तेन शाङ्करि ।
ॐ शत्रुनाशकर्त्र्यै नम इति दत्त्वा महेश्वरि ॥ ५१ ॥

हरिद्राचूर्णसहिता धारां दद्यादनेन तु ।
अमुकस्य शोणितं पिब पिबेति च तत्परम् ।
मांसं खादय खादय ह्रीं नमश्चेति मन्त्रतः ॥५२॥
मध्याह्ने मध्यरात्रौ तु पूजयित्वा शताष्टकम् ।
जपेदेकादशाहे तु रोगः स्नान्नात्र संशयः ॥५३॥
दण्डाधिकेकविंशाहे मृत्युरेव रिपोर्ध्रुवम् ।
अथवान्यप्रकारेण शत्रुक्षयमहं वदे ॥ ५४ ॥

हे शंकरि ! इस प्रकार ध्यान करके गेरूके चूर्णद्वारा वाम हाथसे "ॐशत्रुनाशकर्य्यै नमः" इस मन्त्रसे हरिद्रा चूर्णके सहित धारा प्रदान करे । इसके पीछे "अमुकस्य शोणितं पिब पिब मांसं खादय ह्रीं नमः" इस मन्त्रसे मध्याह्न वा मध्यरात्रिमें एक सौ आठ वार पूजा करके जप करे, इस प्रकार करनेसे ग्यारहवें दिनमें निःसन्देह शत्रुको रोग होगा इक्कीसवें दिनके एक दण्डमें रिपु (वैरी) की मृत्यु होगी, इसमें सन्देह नहीं अथवा मैं अन्य प्रकारसे शत्रुमारण कहता हूं, सुनो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

पुंगोशकृत्समादाय मेलयेदुष्णवारिणा ।
विपरीतक्रमेणैव जपपूजादिकश्चरेत् ॥ ५५ ॥

वृषका गोबर लाकर उष्ण जलद्वारा उसकी पूजा करे । इसमें विपरीत क्रमसे जप पूजादिका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ५५ ॥

महादेवाय नम इति पुंगोशकृतमाहरेत् ।
शिवाय नम इति मन्त्रेण पिण्डीकरणमाचरेत् ॥५६॥
पशुपतये नम इति प्राणान्संस्थापयेत्ततः ।

लोहपात्रे महेशानि खादिराङ्गारयोगतः ।
शत्रुप्रतिकृतिं कृत्वा तत्र संस्थापयेच्छिवम् ॥५७॥

"महादेवाय नमः" इस मन्त्रसे वृषका गोबर लाकर "शिवाय नमः" इस मंत्रसे गठन संपादनपूर्वक "पशुपतये नमः" इस मन्त्रसे प्राण स्थापन करे । हे महेश्वरि ! लोहेके पात्रमें खैरके अंगारोंसे शत्रुकी आकृति लिखकर वहां स्थापन करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

ततोध्यायेन्महारुद्रं ध्यानं शृणु समाहिता ।
शत्रोर्वक्षःस्थितं रुद्रं ज्वलदग्निसमप्रभम् ॥ ५८ ॥

इसके उपरान्त महारुद्रका ध्यान करना चाहिये । यह ध्यान सावधान चित्तसे सुनो शत्रुके वक्षस्थल स्थित प्रज्वलित अग्निप्रभ ॥ ५८ ॥

वामहस्ते केशधरं दक्षिणात्प्राणकर्षणम् ।
नरचर्माम्बरं देवं महाव्यालादिवेष्टितम् ॥ ५९ ॥
पिनाकधृगिहागच्छ इत्याद्यावाह्य यत्नतः ।
शूलपाणे नम इति स्नापयेत्साधकोत्तमः ॥६०॥
महेश्वरं नम इति पाद्याद्यैः संप्रपूजयेत् ।
ईशानादिन्तथामूर्त्तिं व्युत्क्रमेण प्रपूजयेत् ॥ ६१ ॥
अग्निकोणादिपर्यन्तं सूर्यरीत्या महेश्वरि ।
ॐ शिवाय नमो मूलमष्टाविंशतिधाजपेत् ॥६२॥

वामहस्तमें शत्रुके केशधारी और दक्षिण हाथसे शत्रुके प्राणोंको खैंचनेवाले, नरचर्माम्बर महासर्पादिवेष्टित ॥ ५९ ॥ (रुद्रदेवका ध्यान करे) "पिनाकधृगागच्छ" इत्यादि मन्त्रसे यत्नपूर्वक आवाहन करके 'शूलपाणये नमः' साधकोत्तम इस मंत्रसे स्नान करावे ॥ ६० ॥ 'महेश्वराय नमः' इस मन्त्रसे पाद्यादिद्वारा पूजा करे , फिर अग्निकोणादि पर्यन्त सूर्य रीति द्वारा ईशानादिमूर्तिं व्युत्क्रमद्वारा पूजा करनी चाहिये । "ॐ शिवाय नमः" ओम् मूल मंत्र अट्ठाईसवार जप करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

हुँ क्षमस्वेति वामेन करेण तु विसर्जयेत्।
केशवाजित विष्णो हे हरे सत्य जनार्दन॥
हंस नारायणाय स्वाहा मन्त्रमेवं सकृज्जपेत्॥ ६३॥

'हुं क्षमस्व' इस मन्त्रके द्वारा बांयें हाथसे विसर्जन करे, अजित, केशव, विष्णो, हरे, सत्य, जनार्दन, "हंस नारायणाय स्वाहा" यह मंत्र एकवार जपना चाहिये॥ ६३॥

हुं नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा इति यः।
ॐ शिवाय नमोमन्त्रमपिनित्यं सकृज्जपेत्॥ ६४॥

'हुं नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा' यह मंत्र और 'ओम् नमः शिवाय' इस मंत्रका एक बार जप करे॥ ६४॥

एवमेकादशाहेन शत्रून्मादनमञ्जसा।
अवश्यं जायते देवि सत्यं सत्यं त्रिलोचने॥ ६५॥

हे देवि! इस प्रकार करनेसे ग्यारहवें दिन शत्रु एकवारही उन्मादित होजायगा। हे त्रिलोचने! यह अवश्य ही होगा इसमें सन्देह नहीं॥६५॥

कथयामि महादेवि वैरिस्तम्भनमुत्तमम्।
कुम्भकारस्य सदनादानयेत्पिठरं शुभम्।
एकं द्विकं त्रिकं चैव यत्कृतं साधकोत्तमः॥ ६६॥
आनीय च उखामध्याद्भस्म पर्युषितन्तथा।
निःक्षिप्य पिठरे शुष्कं नालिकापत्रविस्तरम्॥
भस्मोपरि च संस्थाप्य पिठरंतं सुरेश्वरि॥
ऐशान्यां विवरं कृत्वा शनेर्वारे महेश्वरि॥ ६७॥

अब शत्रुके स्तंभन करनेकी उत्तम विधि कहता हूं सुनो। कुम्हारके घरसे यह उत्तम पिठर एक दो अथवा तीन लावै। कुम्हारके आँवेमेंसे

भस्म लाकर उनको भर देवें. और उसके ऊपर दूसरे सिकोरे ढकदेवे साधना करनेवालोंमें श्रेष्ठ पुरुष शनैश्वरके दिन वाटिकाके ईशान कोनमें एक गढा खोदे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

पुनर्मध्याह्नकाले च निर्जने सति भामिनि ।
चतुर्दिक्षु वाटिकाया गर्त्तस्य निकटात्प्रिये ॥ ६८ ॥

हे भामिनि ! फिर मध्याह्नकालमें निर्जन होनेपर वाटिकाके चारों ओर गर्तके निकट हो ॥ ६८ ॥

तत्तावतीमहं भूमिं चौरेभ्यो रक्षयामि च ।
प्रफुल्लमनसा देवि चरेद्भूमेः परिग्रहम् ॥ ६९ ॥

तिस भूमिको मैं चोरोंसे रक्षा करता हूं हे देवि ! इस प्रकार प्रफुल्ल मनसे भूमिपरिग्रह ॥ ६९ ॥

तावतीश्च ततो भूमिं वामावर्त्तेन भामिनि ।
परिक्रम्य पुनस्तत्र गर्त्तस्य निकटं व्रजेत् ॥ ७० ॥

हे भामिनि ! उस भूमिके बाँई ओर परिक्रमा करके फिर गढेके निकट जाय ॥ ७० ॥

तत्रैव निर्ज्जने गर्त्ते शलाकां लोहनिर्मिताम् ।
रोपयित्वा तदुपरि पिठरं सशरावकम् ।
संस्थाप्य मृद्भिः संपूर्य तद्गर्तं गृहमाव्रजेत् ॥ ७१ ॥

गुप्त रीतिसे उस गढेमें लोहेकी बनी शलाका गाडकर उसके ऊपर शरावेके सहित पिठर अर्थात् बन्द किया हुआ पात्र स्थानपूर्वक मिट्टीसे उस गढेको पूर्ण करके घरको चलाजाय ॥ ७१ ॥

गतिस्तम्भो भवेद्देवि चौरादीनां तथा खलु ।
अयं योगवरो देवि दुर्लभो वसुधातले ॥ ७२ ॥

हे देवि ! इस प्रकार करनेसे चोरादिकी गति रुक जायगी । हे देवि ! यह उत्तम योग पृथ्वीतलमें दुर्लभ है ॥ ७२ ॥

पिशाचभूतवेतालकूष्माण्डब्रह्मराक्षसा ।
दानवानां तथान्येषां गतिस्तत्र न जायते ॥७३॥

यह योग करनेसे पिशाच, भूत, वेताल. कूष्मांड, ब्रह्मराक्षस, दानव और अन्यान्य भूतगणोंको वहां गति नहीं होती ॥ ७३ ॥

धनपुत्रसमृद्धिस्तु वर्द्धतेहर्निशन्तथा ।
दिने दिने धर्मवृद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥७४॥

दिन रात धन पुत्र और समृद्धिकी वृद्धि तथा दिन दिन धर्ममें बुद्धि बढती रहती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७४ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति-साहस्र्ये भाषाटीकायां चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ लोकानुग्रहकारक ।
साधनं सर्वमन्त्रस्य सर्वाशापरिपूरकम् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व महेश्वर ॥ १ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—हे सब धर्मोंके जाननेवाले लोकानुग्रहकारक भगवन् ! मैं सब मंत्रोंके संपूर्ण अंगोंका पूर्ण करनेवाला साधन सुननेकी इच्छा करती हूं, हे महेश्वर ! सो आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

शय्यायाः साधनं ह्यादौ वक्ष्येऽहं परमाद्भुतम् ।
सार्द्धयामगतायान्तु निशायां साधकोत्तमः ॥२॥
भूत्वा दिगम्बरः सम्यगाचम्य विधिवत्तदा ।
अभ्युक्ष्य मूलमन्त्रेण शय्यायान्तत्र संविशेत् ॥३॥

एवमुक्तं महादेवि शय्यासाधनमुत्तमम् ।
मन्त्रसिद्धिकरं शीघ्रमस्मत्सायुज्यदायकम् ॥ १५ ॥

हे महादेवि ! यह मैंने तुमसे शीघ्र सिद्धि करनेवाला अपना सायुज्य-दायक उत्तम शय्यासाधन कहा ॥ १५ ॥

अथ शृणु त्रिवाटस्य चतुर्वाटस्य साधनम् ।
गत्वा तु त्रिपथं वापि चतुर्मार्गे वरानने ॥ १६ ॥

हे वरानने ! अब त्रिराहे और चौराहेका साधन कहता हूं, सुनो त्रिराहे वा चौराहेमें जाकर ॥ १६ ॥

प्रणमेद्गुरुमभ्यर्च्य मणिधरीति मन्त्रतः ।
बद्ध्वा ग्रथिन्तु वज्रान्ते निर्भयः साधकोत्तमः ॥१७॥

गुरुकी अर्चना और प्रणाम करके (मणिधरी) इस मंत्रसे ग्रंथिबंधन-पूर्वक वज्रमंत्रोच्चारणपूर्वक साधक निर्भय होवे ॥ १७ ॥

श्मशानवासिनो ये ये देवा देव्यश्च भैरवाः ।
दयां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदाश्च भवन्तु मे ॥ १८ ॥

फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि—हे श्मशानके रहनेवाले देवा देव-ताओ ! तुम सब मिलकर मेरे ऊपर दया करो और मुझे सिद्धि दो॥१८॥

प्रणमेत्प्रणवाद्येनमनुनानेन भक्तितः ।
ततः पूर्वमुखो वापि उत्तराशामुखोऽपि वा ॥ १९ ॥
उपविश्य समाचम्य स्वस्ति वाच्य महेश्वरि ।
स्थानं सम्मार्ज्य तत्रैव प्रेतबीजं लिखेत्सुधीः ॥२०॥

अनन्तर ' प्रणवादि ' इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करे । हे महेश्वरि ! तदनन्तर पूर्वमुख वा उत्तर मुखाभिमुख बैठकर आचमनके पीछे स्वस्ति-वाचनपुरःसर स्थानमार्जन करके बुद्धिमान् साधक उसी स्थानमें प्रेतबीज लिखे ॥ १९ ॥ २० ॥

बीजोपरि महादेवि विहितासनमास्तरेत् ।
तत्रोपविश्य देवेशि हृदीष्टांदेवतां स्मरेत ॥ २१ ॥

हे देवि ! बीजोपरि विहित आसन बिछाय उसके ऊपर बैठकर हृदयमें इष्टदेवताका स्मरण करना चाहिये ॥ २१ ॥

यथेष्टंमनसाराध्य ह्यष्टासु च बलिं हरेत् ।
कालादिभ्यो महेशानि पूजयित्वा विधानतः ॥२२॥

मनमें यथेष्ट आराधना करके अष्टदिशामें बलि देकर विधानद्वारा कालादिकी पूजा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता तथा नीला बलाका च मुनिद्विषा ॥ २३॥
प्रणवादिनमोन्तेन पूजा बल्यादिना स्मृता ।
संकल्प्याष्टोत्तरशतं जप्त्वाच्छिद्रावधारणम् ॥
कृत्वा स्थानं परित्यज्य स्मरन्देवीं गृहं व्रजेत् ॥२४॥

ओंकारादि अंगोंसहित 'नमोऽस्तु' मंत्रसे बलि आदिके द्वारा काली कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, नीला, बलाका और मुनिद्विषा इन देवियोंकी पूजा करनेके पीछे अष्टोत्तर शतवार जप करके अच्छिद्रावधारण करे, फिर इस स्थानको छोड़कर देवीजीका स्मरण करता हुआ घरको चलाजाय ॥ २३ ॥ २४ ॥

एवमुक्त साधनान्ते सर्वसिद्धिनिषेवितम् ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं साधकानां परं हितम् ॥२५॥

हे देवि ! यह मैंने तुमसे सर्वसिद्धिदायक वाटसाधन कहा । यह सर्व साधारणको नहीं देना चाहिये । यह साधकोंका परम हितकारी है ॥२५॥

अतः परमहं वक्ष्ये बिल्वमूलस्य साधनम् ।
बिल्वमूलं महेशानि समन्ताच्छंकरः स्मृतम् ॥२६॥

अब मैं तुमसे बिल्ववृक्षका साधन कहता हूं हे महेशानि ! चारों ओरके बिल्वमूल शंकर स्वरूप कहे गये हैं ॥ २६ ॥

जटास्वरूपं देवेशि पर्णं जानीहि सुन्दरि ।
ऋग्यजुःसामसदृशंत्रिपत्रंहि वरानने ॥ २७ ॥

हे देवेशि ! हे सुन्दरि ! उसके पर्ण मेरी जटा है । हे वरानने ! उसके तीन पत्ते ऋक् यजुः और सामवेद स्वरूप हैं ॥ २७ ॥

शाखा हि सर्वशास्त्राणि जानीताम्मीनलोचने ।
कल्पवृक्षसमो बिल्वो ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
महालक्ष्मीर्बिल्ववृक्षो जातः श्रीशैलपर्वते ॥ २८ ॥

शाखाको सर्वशास्त्र जानना चाहिये । हे मीनलोचने ! बिल्ववृक्ष कल्पवृक्षके तुल्य और ब्रह्मा विष्णु शिवस्वरूप है श्रीमहालक्ष्मीजीने बिल्ववृक्ष होकर ही श्रीशैलपर्वतमें जन्म लिया था ॥ २८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथं सा विष्णुवनिता बिल्ववृक्षो बभूव ह ।
वृत्तांतं परमाश्चर्यं वद मे करुणामय ॥ २९ ॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे करुणामय ! विष्णुकी भार्याने किस प्रकार बिल्ववृक्ष होकर जन्म लिया । यह परमाश्चर्ययुक्त वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूं सो वर्णन करके मेरा कौतूहल चारितार्थ कीजिये ॥ २९ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तं परमाद्भुतम् ।
सत्ये तु पूजयामास लिङ्गं रामेश्वराभिधम् ॥ ३० ॥

ज्योतीरूपं मदीयांशं प्रार्थ्य ब्रह्मादिभिः सह ।
तत्र मेऽनुग्रहाद्वाणी सर्वेषां प्रियतां गता ॥ ३१ ॥

ईश्वर बोले--हे देवि ! यह परमअद्भुत वृत्तान्त कहता हूं सुनो। सत्ययुगमें ज्योतीरूप मेरे अंश रामेश्वर नामक लिंगकी ब्रह्मादि देवताओंके सहित देवियोंने पूजा की थी, उनमें मेरे अनुग्रहसे वाणी देवी सबकी प्रिया हुई है ॥ ३० । ३१ ॥

विष्णोरतिप्रिया नित्यं सदासाभूत्सरस्वती ।
तादृक् प्रीतिर्न लक्ष्म्याश्च जायते केशवस्य हि॥३२॥

वह सरस्वती विष्णुकी सदा प्यारी हुई है केशवकी लक्ष्मीके प्रति वैसी प्रीति उत्पन्न नहीं हुई ॥ ३२ ॥

इति चिन्तापरा लक्ष्मीर्ययौ श्रीशैलमुत्तमम् ।
प्राप्यमल्लिङ्गमेकान्ते तपस्तेपेऽतिदारुणम् ॥ ३३ ॥

इस कारण लक्ष्मी देवी चिन्तायुक्त होकर उत्तम श्रीशैलपर्वतको गई वहां मेरे एक लिंगको प्राप्त होकर इन्होंने अत्यन्त दारुण तपस्या आरंभ की ॥ ३३ ॥

तथापि हृदि नैवाभूत्कृपा मे परमेश्वरि ।
तदा सा वृक्षरूपेण स्थिता लिंगाग्रतः सती ॥ ३४ ॥

हे परमेश्वरी ! तोभी मेरी कृपाका न होना देख लक्ष्मी देवी मेरे लिंगके अग्रस्थित स्थानमें वृक्षरूपसे अवस्थान करके ॥ ३४ ॥

पत्रैः पुष्पैः फलैः स्वीयैः पूजयामास सन्ततम् ।
कोटिवर्षे महेशानि ततो मेऽनुग्रहोऽभवत् ॥ ३५ ॥

अपने पत्र पुष्प और फलोंसे निरंतर मेरी पूजा करने लगी । हे महेशानि ! तब करोडवर्ष पीछे मेरा अनुग्रह हुआ ॥ ३५ ॥

तेनैवानुग्रहेणैव विष्णोर्वक्षः स्थिताभवत् ।
तत्रैव परमेशानि बिहरेत्सा सदैव हि ॥ ३६ ॥

उसी अनुग्रहके कारण लक्ष्मी विष्णुके वक्षस्थलमें स्थित हुई और वह निरंतर उनके संग विहार करने लगी ॥ ३६ ॥

अतस्तु कारणाद्देवि तद्रूपेण हरिप्रिया ।
सदैव पूजयन्ती मां मद्भक्ता सातुला शिवे ॥ ३७ ॥

हे परमेशानि ! हे देवि ! इसी कारण वह हरिप्रिया उस वृक्षरूपमें सदा ही मेरी पूजा करती रहती हैं. हे शिवे ! वह मेरे प्रति अत्यन्त भक्तिमती हैं ॥ ३७ ॥

अतस्तु वृक्षमास्थाय तिष्ठामि च दिवानिशम् ।
सर्वतीर्थमयो देवि सर्वदेवमयः सदा ॥ ३८ ॥
श्रीवृक्षः परमेशानि अत एव न संशयः ।
तत्फलैस्तत्प्रसूनैर्वा तत्पत्रैर्यः प्रपूजयेत् ॥ ३९ ॥
तत्काष्ठचन्दनैर्वापि स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ ४० ॥

इसी कारण मैं दिनरात बिल्ववृक्षका आश्रय करके वास करता हूं, हे परमेश्वरि ! हे देवी ! अतएव बिल्ववृक्ष सदा ही सर्वतीर्थमय और सर्वदेवमय है इसमें सन्देह नहीं । बिल्वपत्र वा बिल्वपुष्प, बिल्व फल अथवा बिल्वकाष्ठके चन्दनसे जो मेरी पूजा करता है, हे देवि ! वही मेरा प्रिय और वही मेरा भक्त है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

तत्काष्ठचन्दनं भाले यो धारयति संभ्रमात् ।
मत्तनुं शिवबुद्ध्या सा नमेद्देवि मुदान्विता ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य भ्रमसे भी कपालमें बिल्वकाष्ठका चंदन धारण करता है, उसके देहको शिवतनु जानकर लक्ष्मी देवी हर्षित होकर प्रणाम करती हैं ॥ ४१ ॥

अतस्तच्चन्दनं देवि धारयेन्न कदाचन ।
तत्पत्रं तत्प्रसूनं वा धारयेन्नकदापिहि ॥ ४२ ॥

अतएव हे देवि ! वह चन्दन मनुष्यगण कभी धारण न करे एवं उसका पत्र वा पुष्प धारण करना भी उचित नहीं है ॥ ४२ ॥

बिल्वमूले महेशानि प्राणांस्त्यजति यो नरः ।
रुद्रदेवो भवेत्सत्यं पापकोटियुतोऽपि सः ॥ ४३ ॥

हे महेशानि ! जो मनुष्य बिल्वमूलमें प्राणत्याग करता है. वह यदि करोडपापोंसे युक्त तो भी रुद्रदेह धारण करता है इसमें सन्देह नहीं॥४३॥

अतस्तत्साधनं देवि सर्वेषां प्रियकारकम् ।
तत्र गत्वा बिल्वमूलं प्राग्वद्गुरुचतुष्टयम् ॥
अभ्यर्च्य यत्नतो देवि क्षेत्रपालं प्रपूज्य च ॥४४॥

हे देवि ! इस कारण उसका साधन सब देवताओंका प्रिय करनेवाला है, उस बिल्वमूलमें जाकर पूर्ववत् गुरुचतुष्टय (चारों गुरु) की पूजापूर्वक परमयत्नसे क्षेत्रपालकी पूजा करे ॥ ४४ ॥

क्षेत्रपाल महाभाग श्मशानाधिप सुव्रत ।
सिद्धिं देहि जगत्कर्त्तः स्थानं देहि नमोस्तुते ॥४५॥

फिर हे क्षेत्रपाल ! हे महाभाग ! हे श्मशानके अधिपति ! हे श्रेष्ठ-व्रतवाले ! हे जगत्कर्त्ता ! सिद्धि दीजिये । स्थान दीजिये । आपको प्रणाम है ॥ ४५ ॥

अनेन प्रणवाद्येन मनुना प्रणमेत्ततः ।
ततः स्थानन्तु संपूज्य लिखेत्तत्र वरानने ॥ ४६ ॥
वाग्भवं प्रेतबीजञ्च पुनर्वाग्भवमेवच ।
तदन्ते मूलमन्त्रञ्च विलिखेत्साधकोत्तमः ॥ ४७ ॥

" प्रणवादि " इस मंत्रसे प्रणाम करे । हे वरानने ! फिर उस स्थानकी पूजा करके वाग्भव बीज, प्रेतबीज, पुनर्वार वाग्भव बीज और इसके पीछे साधकोत्तम मूलमंत्र लिखे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पूजयित्वा च कालादीन्पूर्ववत्परमेश्वरि ।
संकल्प्याष्टोत्तरशतं जप्त्वाऽच्छिद्रं च धारयेत् ॥४८॥

हे परमेश्वरि ! फिर कालादिकी पूजा पूर्ववत् समापन करके संकल्पपूर्वक अष्टोत्तरशत जप करनेके पीछे अच्छिद्रावधारण करे ॥ ४८ ॥

स्थानं परित्यज्य गुरुं संस्मरन् तद्गृहं व्रजेत् ॥
इत्येवं कथितं तुभ्यं सारात्सारं परात्परम् ॥४९॥
गोपनीयं सदा भद्रे विशेषात्पशुसंकुले ॥ ५० ॥

इसके उपरान्त उस स्थानको छोड़कर गुरुका चिंतन करते करते ही अपने घर चलाजाय । यह मैंने तुम्हारे प्रति सारसे भी सार परसेभी पर बिल्वसाधन कहा । हे भद्रे ! यह सदाही और विशेषकर पशुसंकुलस्थानमें गुप्त रखने योग्य है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इदानीं शृणु देवेशि मुण्डसाधनमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा साधको याति महादेव्याः परं पदम् ॥५१॥

हे देवेशि ! अब उत्तम मुण्डसाधन सुनो । साधक यह मुण्डसाधन करके महादेवीके परमपदको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

नरमाहिषमार्ज्जारमुण्डकानि वरानने ।
अथवा परमेशानि नृमुण्डत्रयमादरात् ॥ ५२ ॥

हे वरानने ! नरमुण्ड, महिषमुण्ड और मार्जार (बिलावका) मुण्ड अथवा तीन नरमुण्ड यत्नसहित लावे ॥ ५२ ॥

शिवासर्पसारमेयवृषभानां महेश्वरि ।
नरमुण्डं तथा मध्ये पञ्चमुण्डी समीरिता ॥ ५३ ॥

शिवा (गीदड) मुण्ड, सर्पमुण्ड, कुक्कर (कुत्ता) मुण्ड, वृषभमुण्ड और नरमुण्ड, हे महेश्वरि ! यही पांच मुण्ड हैं ॥ ५३ ॥

अथवा परमेशानि नराणां पञ्च मुण्डकान् ।
तथा शतं सहस्रं वायुतं लक्षं तथैव च ॥ ५४ ॥
नियुतञ्चाथ वा कोटिं नृमुण्डान् परमेश्वरि ।
नरमुण्डं स्थापयित्वा प्रोथयित्वा धरातले ॥ ५५ ॥

अथवा हे परमेशानि ! पांच नरमुण्डही पांच मुण्ड रूपमें ग्रहण किये जाते हैं. तथा शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत वा करोड नरमुण्ड गृहीत होते हैं. हे परमेश्वरि ! नरमुण्ड पृथ्वीमें गाडकर ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

वितास्तिप्रमितां वेदिं तस्योपरि तु कल्पयेत् ।
आयामप्रस्थतो देवि चतुर्हस्तौ समाचरेत् ॥ ५६ ॥

स्थापनपूर्वक उनके ऊपर ऊर्ध्वमें वितस्तिपारिमित वेदी बनावे, लम्बाई और चौडाईमें वह चार हाथकी बराबर होनी चाहिये ॥ ५६ ॥

सहस्राल्लक्षपर्यन्तं हस्तषोडशसम्मिताम् ।
ततः परं महादेवि शतहस्तमिताञ्चरेत् ॥ ५७ ॥
तस्यान्तु भूतनाथादींश्चतुर्दिक्षु समर्चयेत् ॥ ५८ ॥

सहस्रसे लक्ष मुण्ड पर्यन्त सोलह हाथ वेदी और नियुतसे करोड संख्यक मुण्डमें २ सौ हाथकी बराबर वेदी बनानी चाहिये। उस वेदीमें चारों ओर भूतनाथादिकी पूजा करे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पूर्वोक्तभूतनाथाय नमोमन्त्रेण देशिकः ।
पाद्यादिभिः पूजयित्वा बलिं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ ५९ ॥

साधक व्यक्ति पूर्वोक्त भूतनाथजी नमोमन्त्रद्वारा पाद्यादि पूजा करके यत्नपूर्वक उसको बलि देवे ॥ ५९ ॥

एवन्तु दक्षिणे देवि श्मशानाधिपमादरात् ।
तद्वच्च पश्चिमे भागे कालभैरवमुत्तमम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार दक्षिणदिशामें श्मशानाधिपति और पश्चिम दिशामें उत्तम कालभैरवकी ॥ ६० ॥

श्मशानादुत्तरे तद्वत्पूजयित्वा बलिं हरेत् ।
वेदिमध्ये प्रेतबीजं फट्कारैस्तदनन्तरम् ॥ ६१ ॥
पाद्यादिभिरनेनैव कुण्डानि परिपूजयेत् ॥ ६२ ॥

और उत्तरमें उसी प्रकार श्मशानकी पूजा करके आदरपूर्वक बलिदान करे वेदीमें प्रेतबीज और फट्कार मंत्रसे पाद्यादि कुण्डकी पूजा करनी चाहिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

नैर्ऋत्यां ह्रीं चण्डिकायै बीजं च विलिखेत्ततः ।
तत्रैव पूजयेद्भक्त्या भारतीं शुभ्रविग्रहाम् ॥ ६३ ॥

साधकोत्तम नैर्ऋत्य कोणमें ह्रीं चण्डिकायै' और बीजमंत्र लिखकर उसी स्थानमें शुभ्र विग्रहा अर्थात् श्वेत शरीरवाली भारतीकी भक्तिपूर्वक पूजा करे ॥ ६३ ॥

वाग्देवतामंगयुतां नमोऽन्तवाग्भवादिना ।
अनेन मनुनाभ्यर्च्य बलिं तस्यै निवेदयेत् ॥ ६४ ॥

अंगयुक्त वाग्देवताकी नमोऽन्त वाग्भवादिमंत्रसे अर्चना करके उसको बलि निवेदन करनी चाहिये ॥ ६४ ॥

हे वीर सर्वदेवेश मुण्डरूप जगत्पते ।
दयां कुरु महाभाग सिद्धिदो भव मज्जपे ॥ ६५ ॥

हे वीर ! हे सब देवताओंके ईश्वर ! हे मुण्डरूप ! हे जगत्पते ! हे महाभाग्यवाले ! मेरे जपमें सिद्धि दो ॥ ६५ ॥

शवं कुर्याद्वह्निसंस्थं पाशमिन्दुकलान्वितम् ॥ ६६ ॥

इस मंत्रसे वेदिकाके ऊपरी भागमें तीन पुष्पाञ्जलि देवे । फिर शवको वह्निसंस्थ अर्थात् अग्निमें स्थापन और पाशको इन्दुकलायुक्त करके ॥ ६६ ॥

मायाबीजं कूर्चबीजं फट्कारस्तदनन्तरम् ।
पाद्यादिभिरनेनैव कुण्डानि परिपूजयेत् ॥ ६७ ॥

मायाबीज और कूचबीच फट्कार मन्त्रद्वारा पाद्यादिसे कुण्डकी पूजा करे ॥ ६७ ॥

नैर्ऋत्यां ह्रींचण्डिकायैनमोमन्त्रेण देशिकः ।
वायव्यां ह्रींभद्रकाल्यैनमोमन्त्रेण तत्परम् ॥ ६८ ॥
ईशाने च ह्रींदयायैनमोमन्त्रेण शाम्भवि ।
अग्नौतु ह्रींचण्डोग्रायैनमोमन्त्रेण साधकः ॥ ६९ ॥
पूजयित्वा बलिं दत्त्वा तदुत्थाय च संमुखे ।
श्मशानवासिनो ये ये देवा देव्यश्च भैरवाः ॥ ७० ॥
दयां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदास्ते भवन्तु मे ।
अनेन प्रणवाद्येनत्रिर्वैपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥ ७१ ॥

साधक "ह्रीं चण्डिकायै नमः" इस मंत्रसे नैर्ऋतकोणमें, फिर ह्रीं भद्र-'काल्यै नमः' इस मन्त्रसे वायुकोणमें 'ह्रीं दयायै नमः' इस मन्त्रसे ईशान कोणमें 'ह्रीं चण्डोग्रायै नमः' इस मन्त्रसे अग्निकोणमें पूजा करके बलि-प्रदानपूर्वक उठकर खड़ा हो सन्मुख "श्मशानवासिनो ये ये देवा देव्यश्च भैरवाः। दयां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदास्ते भवन्तु मे" प्रणवाद्य इस मन्त्रसे तीन पुष्पाञ्जलि निक्षेप करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

वदे् स्थानन्तु संपृश्य वशी भव वशी भव ।
विष्टरासनमास्तीर्य उपविश्य महेश्वरि ॥ ७२ ॥
अष्टाधिकायुतजपं कृत्वाऽच्छिद्रं च धारयेत् ।
नत्वा स्थानं परिष्कृत्य देवीं ध्यायन्गृहं व्रजेत् ॥७३॥

इसके पीछे स्थानस्पर्शपूर्वक 'वशीभव' यह वचन कहे । महेश्वरि ! फिर कुशासन बिछाकर उसके ऊपर बैठ और अष्टाधिक अयुत,(१०००८) जप करके अच्छिद्रावधारण करे इसके उपरान्त स्थानपरिष्कारपूर्वक देवीको प्रणाम और ध्यान करके घर चलाजाय ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

पुरश्चर्याविधेर्देवि शेषं संशृणु शाम्भवि ।
कीलकं नैव कुर्यात्तु त्रिमुण्डोपरि कर्हिचित् ॥ ७४ ॥

हेशाम्भवि देवि ! पुरश्चरणकी विधिके अनुसार अवशिष्ट सुनो । उसमें त्रिमुण्डोपरि कभी कीलक न करे ॥ ७४ ॥

शून्यागारे नदीतीरे पर्वते वा चतुष्पथे ।
बिल्वमुले श्मशाने वा निर्जने चैकलिङ्गके ॥ ७५ ॥
एतेषु प्रोथयेन्मुण्डान्सर्वकामार्थसिद्धये ।
एवं वा प्रोथयित्वा च नारं मुण्डं विधानतः ॥ ७६ ॥

हे देवि ! संपूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके निमित्त शून्यागारमें, नदीके तटपर, पर्वत चौराहे वा बिल्वमूल अथवा श्मशानमें निर्जनमें वा एक लिंगमें इन सब स्थानोंमें मुण्डोंको गाड दे । इस प्रकार नरमुण्ड गाडकर इसी विधानसे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अनेन सर्वसिद्धिः स्याद्बहुभिः किमु सुव्रते ।
इत्येवं कथितं देवि मुण्डानां साधनं शिव ।
यत्कृत्वा सर्वसिद्धानामधिपो भुवि जायते ॥ ७७ ॥

पूजा करनेपर सर्वसिद्धि होती है । हे सुव्रते ! हे शिवे । यह मैंने तुमसे मुण्डसाधन कहा । इसको साधन करके पृथ्वीमें सर्व सिद्धीश्वर हो सकता है ॥ ७७ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे
चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वागमविशारद ।
गुरुस्त्वं सर्वमन्त्राणां करुणामृतसागर ॥ १ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे सर्वधर्मज्ञ सर्वागम विशारद भगवन् ! हे करुणा-सागर ! आप सब मंत्रोंके गुरु हैं ॥ १ ॥

सर्वधर्मकृतां पूज्य योगिहृत्पद्मभास्कर ।
दिव्यभावो वीरभावो महत्त्वेन प्रदर्शित ।
गोप्यं तत्र विशेषेण वद मे चन्द्रशेखर ॥ २ ॥

आपने सर्व साधन किये हैं, योगियोंके हृदयरूप कमलके आप सूर्यके समान प्रफुल्ल करनेवाले हैं, आपने ही दिव्यभाव और वीर भाव दिखाया है. हे चन्द्रशेखर । अब उसका विशेषरूपसे गोप्य वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच ।

दिव्यवीरविभेदेन योगोद्वौतु समीरितौ ।
तद्योगो ह्यभवत्कौलो दिव्यवीरो महेश्वरि ॥ ३ ॥

ईश्वर बोले कि—दिव्य और वीर भेदसे योग दो प्रकारका है, हे महे-श्वरि ! योगही दिव्य वीर और कौल कहाता है ॥ ३ ॥

तद्योगं हि विना देवि यस्तत्कर्म समाचरेत् ।
न स योगी भवेद्देवि मुमुक्षुः कुलकामिनि ॥ ४ ॥
तावच्च ते प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कर्णेऽवतंसय ।
आत्मानं परमं ब्रह्म चिन्तयेदथ वा न चेत् ॥ ५ ॥
आत्मदेहं स्वेष्टरूपं सदैव परिचिन्तयेत् ।
ब्रह्माण्डञ्च तथा सर्वं स्वरूपेण विभावयेत् ॥ ६ ॥

हे देवि ! उस योगके विना जो उस कर्मका आचरण करता है वह मुमुक्षु योगी नहीं होता है. हे कुलकामिनि ! मैं वह सब तुमसे कहता हूं सो सुनकर उसको कर्णभूषण करो । आत्माकी परब्रह्मरूपमें चिन्ता करे अथवा आत्मदेह ही इष्टरूप है; इस प्रकार निरन्तर चिन्ता करे और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इष्टरूप है; ऐसी भावना करनी चाहिये ॥४॥५॥६॥

दिव्ययोगमिमं देवि सावधानेन गोपय ।
वीरयोगं शृणुष्वेमं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ ७ ॥

बिन्दुत्रयं कलाक्रान्तं प्रथमं परिचिन्तयेत् ।
तत्तस्माद्भावयेज्जातं स्त्रीरूपं षोडशाब्दिकम् ॥ ८ ॥

हे देवि ! वही दिव्य योग है, तुम इसे सावधानी से गुप्त रखना हे परमेश्वरि ।सर्वदेवनमस्कृत यह वीरयोग सुनो । प्रथम कलायुक्त तीन बिन्दुकी चिन्ता करे फिर उससे षोडशवर्षीय स्त्रीरूपकी भावना करे ॥ ७ ॥ ८ ॥

बालार्ककोटिसुज्योतिः प्रकाशितदिगन्तरम् ।
मूर्द्धादिस्तनपर्यन्तमूर्ध्वबिन्दोः समुद्भवम् ॥ ९ ॥

इस स्त्रीके करोड बाल सूर्यके समान ज्योतिर्मण्डलसे दिग् मण्डल प्रकाशित हुआ है, मूर्द्धादिस्तनपर्यन्त ऊर्ध्वबिन्दुसे यह ज्योतिः प्रकाशित होती है ॥ ९ ॥

बिन्दुर्यावन्मध्यदेहं कण्ठादिकीटशीर्षकैः ।
स्तनद्वयेन भासन्तं त्रिवलीपरिमण्डितम् ॥ १० ॥

उसका मध्य देह ही मध्य बिन्दु है, वह कण्ठसे कमरके ऊर्ध्व भाग पर्यन्त है यह दोनों स्तनके भागमें दीप्तिमान् और त्रिवलीसे शोभित है ॥ १० ॥

योन्यादिकं च पादान्तं कामन्तत्परिचिन्तयेत् ॥११॥

अनन्तर योनि आदि पादान्त पर्यन्तकी एकाग्र चित्तसे चिन्ता करे ॥ ११ ॥

नानालङ्कारभूषाढ्यं विष्णुब्रह्मेशवन्दितम् ।
एवं कामकलारूपं आत्मदेहं विचिन्तयेत् ॥ १२ ॥

यह स्त्री अनेक प्रकारके आभूषण धारण किये हुये और ब्रह्मा विष्णु महेश्वरसे वंदित है, आत्मदेहकी इसप्रकार कामकलारूपमें चिंता करे ॥१२

सदैव परमेशानि वीरयोगमिमं शृणु ।
संक्षेपात्कथयिष्यामि तयोराचारमुत्तमम् ॥ १३ ॥

हे परमेशानि ! यही बीरयोग है । अब संक्षेपसे इन दोनोंका उत्तम आचार कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
इदमाचरणं देवि पशोर्नो दिव्यवीरयोः ॥ १४ ॥

मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन, यह आचार पशुभावका है, दिव्य और बीर भावका नहीं है ॥ १४ ॥

स देवाचारवान्भूयाद्दिव्यो वीरो महेश्वरि ।
यदि दैवान्महेशानि मद्यादि न च लभ्यते ॥ १५ ॥

हे महेश्वरि ! दिव्ययोगी और वीरयोगी देवाचारवान् होगा । हे महेशानि ! यदि किसी दिन दैवयोगसे मद्य न मिले ॥ १५ ॥

यस्मिन्नहनि देवेशि तथात्मानं तु भावये ।
तथापि न हि तस्याज्यमिदमाचमनं शिवे ॥ १६ ॥

हे देवेशि ! जो आत्माकी तदादिरूप (भाव) में भावना करे, तथापि आचमनका त्याग न करे ॥ १६ ॥

महामद्यं विना कौलः क्षणादूर्द्ध्वं न तिष्ठति ।
तस्मान्मद्यादिकं देवि सेवितव्यं दिने दिने ॥ १७ ॥

महामद्य विना कौल क्षण भर भी अवस्थित नहीं होता । हे देवि इस कारण प्रतिदिन मद्यादिकी सेवा करे ॥ १७ ॥

अनुष्ठानविधिं वक्ष्ये शृणु त्वं पर्वतात्मजे ।
गुरुणा दीक्षितो भूत्वा कौलं न्यासं समाचरेत् ॥१८॥

हे पार्वती ! अब अनुष्ठानकी विधि वर्णन करता हूं सुनो । गुरु द्वारा दीक्षित होकर कौलको नाश करना चाहिये ॥ १८ ॥

तद्विधिश्चोत्तरे तन्त्रे एतत्स्यात्तु कुलार्णवे ।
मयोक्तं तत्क्रमेणैव अभिषेकद्वयं चरेत् ॥ १९ ॥
नाम लब्ध्वा गुरोश्चापि वृणुयाद्योगमुत्तमम् ।
दिव्यम्वा वीरयोगम्वा यथाकर्मानुसारतः ॥२०॥

वह विधि उत्तर तन्त्रमें और यह विधि कुलार्णवमें मैंने कही है, उसके अनुसार दो बार अभिषेक कर गुरुका नाम ले दिव्य हो वा वीर हो कर्मानुसार उत्तम योग वरण करे ॥ १९ ॥ २० ॥

तत्क्षणात्प्रियतामेत्य मुक्तो भवति कालतः ।
यस्तु दिव्यो भवेत्सत्यं स विष्णुनात्र संशयः ॥२१॥

तत्काल यह योग प्रिय होकर कालानुसार मुक्तिप्रदान करता है जो दिव्य योगी है, वह विष्णु है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

यो रुद्रो भविता शेषे वीर एव न संशयः ।
यत्र देशे नरस्तिष्ठेद्दिव्यो वा वीरपुङ्गवः ॥ २२ ॥

जो वीर योगी है, वह रुद्र है, इसमें सन्देह नहीं हे देवेशि ! जिस देशमें दिव्ययोगी वा वीर योगी वास करता है ॥ २२ ॥

तत्तत्कुलम्वा देवेशि देशोवा क्षितिराट् स्वयम् ।
सिद्धिक्षेत्रं समुद्दिष्टं समन्तादशयोजनम् ॥ २३ ॥

वही देश और वही कुल (गुरुका वास स्थान) सब पृथ्वीमें उत्तम और पुण्यजनक होता है । जहां दिव्य वा वीर वास करता है, वहांके चारों ओरका दश योजन स्थान सिद्ध क्षेत्र होता है ॥ २३ ॥

तत्रैव सर्वतीर्थानि तत्र गङ्गा सरिद्वरा ।
योगिनां दुर्लभं चतत् डाकिनीभिः सरीसृपैः ॥ २४ ॥

उसी स्थानमें सर्वतीर्थ और उसी स्थानमें सरित् श्रेष्ठ गंगा अवस्थान करती है । यह स्थान योगिनियोंको भी दुर्लभ और डाकिनी सरीसृप (कीट पतंगादिक) ॥ २४ ॥

ब्रह्मराक्षसवेतालः कूष्माण्डैर्भैरवैः शिवे ।
गुह्यकैर्दानवैर्वापि मायिभिर्यक्षकिन्नरः ॥ २५ ॥

ब्रह्म राक्षस, वेताल, कूष्मांड, भैरव गुह्यक, दानव, मायी, यक्ष, किन्नर ॥ २५ ॥

रोगैर्दुष्टमृगैश्चैव दुर्भिक्षैर्नैवपीडितम् ॥
अवश्यं मङ्गलं तत्र तत्पुरीपरिवर्द्धनम् ॥ २६ ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यमेवं सद्धर्मकोषकः ।
स्फुरन्ति सर्वशास्त्राणि सर्वं स्यादपि नित्यशः ॥२७॥

रोग दुष्टजन्तु, दुर्भिक्ष, सर्पकुल इन सबको ही दुर्गम है, वहां अवश्य ही मंगल विराजमान रहता है । जिस पुरमें दिव्य वीर योगी वास करता है, उस पुरीमें श्रीवृद्धि और समृद्धिकी वृद्धि होती है, वहां सुभिक्ष, क्षेम आरोग्य और धर्मका कोष स्थित होता है, वहांके निवासियोंको सर्वशास्त्र स्फूर्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

ब्रह्माविष्णुशिवादीनां सुप्रियः साधकोत्तमः ।
तरवोऽपि सुजीवन्ति पशुः पक्षी सुजीवति ॥ २८ ॥

हे प्रिये ! वह साधकोत्तम ब्रह्मा विष्णु शिवादिका प्रिय होता है, हे देवि । वहां तरुगणोंकी मृत्यु नहीं होती । पशु और पक्षी जीवित रहते हैं ॥ २८ ॥

कुलधर्मे मनो यस्य स्वधर्मश्च व्यवस्थितः ।
यत्र कुत्र मृतो देवि दिव्यो वा वीरपुङ्गवः ।
तत्रैव परमं ज्ञानं कर्णमूले ददाम्यहम् ।
कुलधर्मस्त्वयं देवि संसेव्यश्चनिरन्तरम् ॥ २९ ॥

जिसका कुलधर्ममें मन है, जिसकी स्वधर्म व्यवस्था संगत है, उस दिव्य वा वीर पुरुषके जिस किसी स्थानमें मरने पर भी उसके कर्णमूलमें मैं परम ज्ञान देता हूं । हे देवि ! इस कुलधर्मकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये॥२९॥

कुलधर्मपरा देवि सर्वे च त्रिदिवौकसः ।
मुनयो मानवा नागाः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥ ३० ॥

हे शिवे ! कुलधर्मनिरत देवगण, मुनिगण, मानवगण, नागगण, सिद्ध-गण, गन्धर्वगण, किन्नरगण ॥ ३० ॥

ऋषयो वसवो दैत्या येऽपि स्युः कुलपुङ्गवाः ।
कुलधर्मप्रसादेन ते सर्वे कुलनायकाः ॥ ३१ ॥

ऋषिगण, वसुगण, दैत्यगण जो कोई कुल श्रेष्ठ हैं, यह धर्म कर्मके प्रसादसे कुलनायक होते हैं ॥३१॥

इन्द्राद्याः खेचरारूढा भवेयुश्चिरजीविनः ।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते ते तथा फलभागिनः ॥ ३२ ॥

इन्द्रादि देवता और खेचर गण इसमें चिरजीवी हुए हैं, मुझको जो जिस प्रकारसे भजता है, वह उसी प्रकारसे फलभागी होता है ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो ब्रह्मचारी गृही तथा ।
वानप्रस्थो यतिश्चैव भवेयुस्ते कुलानुगाः ॥ ३३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ब्रह्मचारी. वानप्रस्थ, यती इत्यादि सब ही कुलानुगामी होंगे ॥ ३३ ॥

तेषां विधिं शृणुष्वाद्य मत्तस्त्वं कुलनायिके ।
गुडार्द्रकरसेनैव सुरा तु ब्राह्मणस्य च ॥ ३४ ॥

हे कुलनायिके ! उसकी विधि सुनो ? गुड और अदरखका रस मिलानेसे ब्राह्मणकी सुरा ॥ ३४ ॥

नारिकेलोदकं कांस्ये क्षत्रियस्य वरानने ।
वैश्यस्य माक्षिकं प्रोक्तं कांस्यस्थं वरवर्णिनि ॥ ३५ ॥

कांसीके पात्रमें नारियलका जल क्षत्रियकी और वैश्यकी कांस्यस्थ माक्षिक (मधु) सुरा कही गई है ॥ ३५ ॥

मांसं मत्स्यन्तु सर्वेषां लवणार्द्रकमीरितम् ।
भृष्टधान्यादिकं यद्दच्चर्वणीयं प्रचक्षते ॥ ३६ ॥
सा मुद्रा कथिता देवि सर्वेषां नगनन्दिनि ।
ब्राह्मणी ब्राह्मणस्यैव क्षत्रिया क्षत्रियस्य च ॥ ३७ ॥

मत्स्य, मांस और लवणार्द्रक सभीके पक्षमें समान है, भृष्टधान्यादि अर्थात् जो भुने हुए चर्वणीय द्रव्य हैं, वही मुद्रा कहाते हैं । ब्राह्मणी ब्राह्मणके क्षत्रिया क्षत्रियके ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

वैश्या वैश्यस्य देवेशि मैथुने यद्विधिः स्मृतः ।
वैश्या वा ब्राह्मणक्षत्रौस्त्रिवर्णानां महेश्वरि ।
क्षत्रिया ब्राह्मणस्यापि कथिता वरवर्णिनि ॥ ३८ ॥
शूद्रा वा ब्राह्मणादीनां त्रिवर्णानामभावतः ॥ ३९ ॥

वैश्या वैश्यके मैथुन विषयमें प्रशस्त हैं । इसके अभावमें वैश्या ब्राह्मण और क्षत्रियके, क्षत्रिया ब्राह्मणके और शूद्रा ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंके मैथुन-योग्य होती हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव आश्रमिणामिदं स्मृतम् ।
त्रिवर्णविहितानाञ्च यतीनां शृणु सम्प्रति ॥ ४० ॥

वर्णाश्रमी, विप्र, क्षत्र और वैश्यगणोंकी यह विधि कही गई, अब त्रिवर्णविहित यती गणोंकी विधि सुनो ॥ ४० ॥

सहस्रारोपरिबिन्दौ कुण्डल्या मेलनं शिवे ।
मैथुनं शयनं दिव्यं यतीनां परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥

हे शिवे ! सहस्रदल पद्मोपरि बिन्दुमें जो कुल कुण्डलिनीका मिलन है वही यतीगणोंका परम मैथुन कहा गया है ॥ ४१ ॥

अवधूताश्रमी यो हि तस्य वक्ष्ये विधिं शृणु ।
पैष्टिकादीनि सर्वाणि मद्यानि तस्य शाम्भवि ॥४२॥

हे शाम्भवि ! अवधूताश्रमीकी विधि सुनो । पैष्टिकादि सब प्रकार की मद्य उसको सेवनीय है ॥ ४२ ॥

मत्स्यं मांसं तस्य देवि जलभूचरखेचरम् ।
पूर्वोक्ता च भवेन्मुद्रा सेविता सादरान्विता ॥ ४३ ॥

जलचर, भूचर और खेचर उसका मत्स्य और मांस है । पूर्वोक्त मुद्राही उसके पक्षमें सेवनीय है ॥ ४३ ॥

मातृयोनिं परित्यज्य मैथुनं सर्वयोनिषु
क्षतयोनिस्ताडितव्या अक्षतां नैव ताडयेत् ॥ ४४ ॥

वह मातृयोनि त्यागकर सर्व योनिमें ही मैथुन करै, क्षतयोनि ताडन करै अक्षतयोनिका ताडित करना उचित नहीं है ॥ ४४ ॥

अक्षतताडनाद्देवि सिद्धिहानिः प्रजायते ।
द्वादशाब्दाधिका योनिर्यावत षष्टिः प्रजायते ।
तावत्तु मैथुनं तस्या यावत्तु स्यात्स्वयम्भवा ॥ ४५ ॥

हे देवि ! अक्षत योनिके ताडन करनेसे सिद्धिकी हानि होती है द्वादशवर्षसे लेकर साठ वर्ष तक प्रसंग योग है योनि पुष्ट होनेपर जब स्वयम्भवा अर्थात् स्वयं प्रवृत्त हो, उसी समयमें मैथुन श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥

अवधूतसमाचाराः शूद्रे सर्वे प्रकीर्तिताः ।
विशेष मैथुने तस्य कथयामि शृणुष्व मे ॥ ४६ ॥

अवधूताचार समस्त ही शूद्रके पक्षमें कहा गया है, मैथुनमें उनकी विशेषता कहता हूं सुनो ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणीं क्षत्रियां वैश्यां त्यक्त्वा तु सर्वजातिषु ।
मैथुनं प्रचरेद्धीमान्देवताभावचेष्टितम् ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या त्यागकर सर्व जाति में ही दिव्याचारविहित मैथुन करे ॥ ४७ ॥

गृहमेधी भवेच्छूद्रो नान्याश्रमी भवेत्कदा ।
शूद्रवदन्यजातीनामाचारोऽयं प्रकीर्तितः ॥ ४८ ॥

शूद्रही इसमें गृहाश्रमी होगा. अन्यान्य मनुष्य आश्रमी नहीं होंगे, इसमें अन्यजातिका भी शूद्रवत् आचार कहा गया है ॥ ४८ ॥

गुरुवद्द्वै त्रिवर्णे तु तथा मातामहे कुले ।
मैथुनं सुसमुद्दिष्टमवधूताश्रमेऽपि च ॥ ४९ ॥

अवधूताश्रममें भी गुरुके समान दो और तीन वर्णमें तथा मातामहके कुलमें मैथुन कहा गया है ॥ ४९ ॥

काली तारा छिन्नमस्ता सुन्दरी भैरवी तथा ।
मातङ्गी च तथा विद्या विद्या धूमावती तथा ॥५०॥

काली, तारा, छिन्नमस्ता, सुन्दरी, भैरवी, मातंगी, विद्या, विद्या, धूमावती ॥ ५० ॥

एतासां साधकाचारश्चावधूतसमः स्मृतः ।
सर्वाश्रमे सर्ववर्णे सर्वयोगे तथा शिवे ॥ ५१ ॥

हे शिवे ! सर्वाश्रम सर्ववर्ण सर्वयोगमें इनके साधनका आचार अवधूतके समान कथन किया गया है ॥ ५१ ॥

सर्वस्थानेषु सर्वत्र न विशेष क्वचिद्भवेत् ।
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम् ॥ ५२ ॥

सर्वस्थानमें सर्वत्र ही समान है, इसका विशेष कहीं भी नहीं है, आनन्द ब्रह्मका स्वरूप वह देहमें व्यवस्थित है ॥ ५२ ॥

एवं विप्रो देवतायै स्वगात्ररुधिरं ददेत् ।
शक्तिनाशविकारोऽस्ति स्वदेहरुधिरार्पणे ॥ ५३ ॥

इस प्रकार ब्राह्मण देवताको अपने गात्रका रुधिर दान करे अपने देहका रुधिर अर्पण करनेसे शक्तिनाश और विकारादि होता है ॥ ५३ ॥

तस्याभिव्यञ्जनं द्रव्यं दीयते कुलयोगिभिः ।
द्रव्यादिसकलं देवि व्यञ्जकस्यापरार्द्धकम् ॥ ५४ ॥

अत एव कुलयोगीगण इस रुधिरका अभिव्यञ्जक द्रव्य (प्रगट करनेवाली वस्तु) भी प्रदान कर सकते हैं हे देवि ! द्रव्यादि सब व्यञ्जक द्रव्य है, उनका अपरार्द्ध स्वरूप कहाजाता है ॥ ५४ ॥

केवलेनाद्ययोगेन साध्यः काल्याद्युपासकः ।
भैरवाय द्वितीयेन शिवत्वं च तृतीयकम् ॥ ५५ ॥

केवल आद्ययोगद्वारा ही कालीआदिमहाविद्याका उपासक होता है दूसरे योगमें भरवकी तीसरे योगमें शिवकी ॥ ५५ ॥

चतुर्थे सर्वसिद्धीशश्चित्रमेतन्नगात्मजे ।
परेण परतां याति मम तुल्यो न संशयः ॥ ५६ ॥

और चौथे योगमें सर्वसिद्धीश होता है । हे पर्वतनन्दनि ! यह आश्चर्यका विषय है—एकसे दूसरेके द्वारा श्रेष्ठताको प्राप्त होकर मेरी समान होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५६ ॥

सेविते कुलतत्त्वे तु कुलतत्त्वसुदर्शिनः ।
जायंते भैरवास्ते न वेशास्तत्समदर्शिनः ॥ ५७ ॥

कुलतत्त्वदर्शी गण कुलतत्त्वकी सेवा करनेसे भैरव और तत्समवेश (उन्हीके समान वेश) और उन्हीके समान समदर्शी होते हैं ॥ ५७ ॥

तमः परिवृतं वेश्य यथा दीपेन दृश्यते ।
तथा मायावृतं चित्तं ज्ञानदीपेन दृश्यते ॥ ५८ ॥

अन्धकारसे ढकाहुआ घर जिस प्रकार दीपकके द्वारा दिखाई देता है इसी प्रकार मायावृत चित्त ज्ञानदीपकसे दिखाई देता है ॥ ५८ ॥

निरस्तभेदं वस्तु स्यान्मेध्यामेध्यादिवस्तुषु ।
जीवन्मुक्तो देहभावो देहान्ते क्षेममाप्नुयात् ॥ ५९ ॥

ज्ञानप्रदीप प्रज्वलित होनेपर वस्तुका प्रभेद निरस्त होता है, मेध्य और अमेध्य अर्थात् पवित्र और अपवित्र समस्त वस्तुकी भेदबुद्धि तिरोहित होती है । इस प्रकार जीवन्मुक्त देहभावको प्राप्त होकर देहके अन्तमें परम मंगलरूप मुक्तिलाभ करता है ॥ ५९ ॥

पीत्वा कुलरसं वीरो ब्रह्मध्यानमुपाश्रयेत् ।
ब्रह्मध्यानं महेशानि ब्रह्मनिर्वाणकारणम् ॥ ६० ॥

वीर योगी कुलरस पानकरके ब्रह्मध्यान आश्रय करै, हे महेशानि ! ब्रह्मध्यान भी ब्रह्मनिर्वाणप्राप्तिका कारण है ॥ ६० ॥

तच्छृणुष्व महेशानि सारात्सारं परात्परम् ।
स्वकीयजीवदेहादिब्रह्माण्डाऽनन्तमेव च ॥ ६१ ॥
एवं हि सकलं देवि देहमहार्णवादि यत् ।
न चिन्तनीयं तत्सर्वं नास्तीति परिभावयेत् ॥ ६२ ॥

वह सारसे भी सार परेसे भी परका विषय सुनो । स्वकीय जीवात्मा और देहादि समस्त ब्रह्माण्ड महार्णवादि जो कुछ है, वह कुछ नहीं । इस प्रकार भावना करके उसकी चिन्ता न करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मात्सीयकं महातेजश्चैतन्यव्यापकं यथा ।
अहमेव जालरूपश्चाधारो देहवर्जितः ॥ ६३ ॥

मात्सीयकतेजः महातेजः वह चैतन्यव्यापक है, मैं जलरूप देहहीन आधार हूं ॥ ६३ ॥

आत्मानमपि देवेशि तद्भेदेन विचिन्तयेत् ।
ब्रह्मध्यानमिदं प्रोक्तमेतत्स्थिरतराय च ॥ ६४ ॥

हे देवेशि ! आत्माकी भी उसके भेदमें चिन्ता करे यह मैंने स्थिरतर ब्रह्मध्यान कहा ॥ ६४ ॥

सेवन्ते योगिनो द्रव्यं नान्यथा तु कदाचन ।
क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ॥६५॥

इस ब्रह्मके अतिरिक्त योगीगण अन्य किसी वस्तुकी चिन्ता न करे ' ब्रह्माहमस्मि ' मैंही ब्रह्म हूं, इस प्रकार जो व्यक्ति क्षणकाल आत्मचिन्ता करता है ॥ ६५ ॥

तत्र दद्यात्फलं देवि तस्यान्ते नैव गम्यते ।
मया वा ब्रह्मणा वापि विष्णुनापि कथञ्चन ॥ ६६ ॥

हे देवी ! उसीको फल देती हैं, ऐसा न होनेपर मैं ब्रह्मा अथवा विष्णु कोई उसको नहीं जान सकता ॥ ६६ ॥

अत एव महेशानि नित्यकर्म न लोपयेत् ।
द्रव्याभावे महेशानि जलेनापि समाचरेत् ॥ ६७ ॥

अतएव हे महेश्वरि । नित्यकर्मको लोप न करे हे महेशानि ! द्रव्याभावमें जलद्वारा भी नित्यकर्म करना उचित है ॥ ६७ ॥

अथवा मनसा नित्यं कुलयोगं समाचरेत् ।
वक्ष्येऽयुतविधिं भद्र श्रृणुष्व कमलानने ॥ ६८ ॥

अथवा मनमनमें प्रतिदिन कुलयोगका आचरण करे । हे कमलानने ! मैं अयुतविधि कहता हूं, सुनो ॥ ६८ ॥

कुण्डल्या मिलनादिन्दोः स्रवते यत्परामृतम् ।
पिबेद्योगि महेशानि सत्य सत्यं वरानने ॥ ६९ ॥

हे वरानने ! हे भद्रे ! कुलकुण्डलिनीक मिलनेमें बिन्दुसे जो उत्कृष्ट अमृत टपकता है, वह योगीजन पान करते हैं, यह मैंने तुमसे सत्यही सत्य कहा है ॥ ६९ ॥

कुलयोगं महादेवी महापानमिदं स्मृतम् ।
पापपुण्यं पशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन शाम्भवि ॥ ७० ॥
परमात्मनि नयेच्चित्तं पलानीति निगद्यते ॥
मनसा स्वेन्द्रियं सर्वं संयतात्मनि योजयेत् ॥ ७१ ॥
मत्स्याशी स भवेद्योगी मुक्तबन्धस्तव प्रिये ।
अशेषब्राह्मणभाण्डं परं ब्रह्मणि संनयेत् ॥ ७२ ॥

हे महादेवि ! इस महापानकोही कुलयोग जानना चाहिये । हे शाम्भवि ! ज्ञानरूपी खड्गद्वारा पापपुण्यरूपी पशु हनन करके चित्तरूप मांस परमात्मामें नियोजित करे । अपने इन्द्रियग्रामको रोककर आत्मामें योजित करनेसे वह मत्स्याशी योगी तुम्हारे बंधनसे मुक्त होता है । हे प्रिये ! अशेष ब्रह्माण्ड-भाण्ड परमात्मामें नियोजित करै ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

परशक्त्यात्मसंयोगो न वीर्यं मैथुनं स्मृतम् ।
एवन्ते कथितं देवि सारात्सारं परात्परम् ।
गोपनीयं गोपीनीयं मम सर्वस्वसाधनम् ।। ७३ ।।

परशक्तिके सहित आत्माका संयोगही मैथुन है. हे देवि ! यह मैंने सारसे भी सार परसेभी पर अपना सर्वस्व साधन कहा. इसको गुप्त रखना चाहिये ॥ ७३ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे
चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां
षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

नमस्तुभ्यं महादेव संसारार्णवतारक ।
जयाशेषजगन्नाथ भक्तवत्सल चेश्वर ॥ १ ॥
परमानन्दसन्दोह कारणानाञ्च कारण ।
दिव्यवीरप्रभेदेन श्रुतं योगद्वयं मया ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विद्यां स्वप्नवतीं शुभाम् ।
मृतसञ्जीवनीं विद्यां तथा मधुमतीमपि ।
आशु फलं साधनञ्च वद मे परमेश्वर ॥ ३ ॥

श्रीदेवीजीने कहा- हे संसारसागरतारक महादेव ! तुमको नमस्कार है। परमानन्द सन्दोहकारण ! शंकर ! आप जययुक्त हों। दिव्य और वीर भेदसे दो योग सुने। अब शुभकरी स्वप्नावती विद्या, मृतसञ्जीवनी विद्या और मधुमती विद्या सुननेकी अभिलाषा है; वह सब साधन और साफल्यसहित कहकर मेरा कौतूहल निवारण कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यस्मात्त्वं परिपृच्छसि ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि । तुमने मुझसे जो पूछा वह कहता हूं. सुनो ॥ ४ ॥

ओम् ह्रीं स्वपुरावाहिकालि स्वप्ने कथया--
मुकस्यामुकं देहि क्रीं स्वाहा ॥ ५ ॥

ओम् ह्रीं स्वपुरावाहिकालि स्वप्ने कथयामुकस्यामुकं देहि क्रीं स्वाहा ॥५॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मायाबीजं तदन्तरम् ।
तदन्ते स्वपुरावाहि कालीसम्बोधनद्वयम् ॥ ६ ॥
स्वप्ने कथय तत्पश्चादमुकस्यामुकन्ततः ।
देहि पादात्कालिबीजमन्ते वह्निवधूस्तथा ॥ ७ ॥

पहिले ओम् उच्चारण करके फिर मायाबीज तदनन्तर स्वपुरावाहि कालि यह दो सम्बोधन फिर स्वप्ने कथय अमुकस्यामुकं देहि फिर कालीबीज फिर वह्निवधू अर्थात् स्वाहामंत्रपद उच्चारण करै ॥ ६ ॥ ७ ॥

इयं स्वप्नावती विद्या त्रैलोक्ये चातिदुर्लभा ।
महाचमत्कारकरी महाकालेन भाविता ॥ ८ ॥

यही स्वप्नावती विद्या है; यह विद्या त्रैलोक्यमें दुर्लभ है । यह महाकालके द्वारा कथित और महाचमत्कारिणी है ॥ ८ ॥

अष्टोत्तरशतं नित्यं जपेद्वर्षचतुष्टयम् ।
ततः सिद्धा भवेद्विद्या स्वप्ने तिष्ठति नित्यशः ॥ ९ ॥

चारवर्षतक एकसौ आठ बार नित्य जपनेपर यह विद्या सिद्ध होती है और प्रति दिन स्वप्नमें अवस्थिति करती है ॥ ९ ॥

स्वप्ने दर्शयते सर्वं यद्यन्मनसि कल्पते ।
मृतसञ्जीवनीं विद्यामितः शृणु नगात्मजे ॥ १० ॥

जो जो मनमें कल्पना करी जाती है, वही स्वप्नमें दिखाती है; हे पर्वतनन्दिनि ! अब मृतसञ्जीवनी विद्या सुनो ॥ १० ॥

अमृतं बीजमाभाष्य मृतसञ्जीवनीति च।
स्वमंत्राच्च ततः पश्चान्मृतमुत्थापयत्विमम् ॥ ११ ॥

अमृतबीज " वँ " कहकर "मृतसञ्जीविनी" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक स्वमन्त्र उच्चारणके पीछे " मृतमुत्थायत्विमम् " अर्थात् इस मृतकको उठाओ ॥ ११ ॥

बृहद्भानुवधूमन्ते त्रैलोक्ये चापि विश्रुता।
संसुप्तेयं महाविद्या सारात्सारतरं स्मृतम् ॥ १२ ॥

यह मंत्र, फिर अग्निजाया " स्वाहा " मंत्र उच्चारण करे। यह महाविद्या वाक्य विख्यात है । यह सोती हुई रहती है, इस विद्याको सारसे भी सारतर जाने ॥ १२ ॥

नित्यमष्टोत्तरशतं जपमात्रेण शाम्भवि ।
सिद्धिदा सा भवेद्विद्या मृतसञ्जीवनी ततः ॥ १३ ॥

प्रतिदिन केवल अष्टोत्तर शतवार जपकरनेसे ही यह मृतसंजीविनी महाविद्या सिद्धिप्रद होती है ॥ १३ ॥

कालालयं गतो यो वा चिताधूमागतोऽपि वा।
स्पृशेच्छवं जपेन्मन्त्रं तदा देवि वरानने ।
चिरजीवी भवेत्सत्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ १४ ॥

जो यमालय चला गया है, अथवा जिसकी चिताका धुआं उठ रहा है यह विद्या जपपूर्वक उसका शवस्पर्श करनेसे वह चिरंजीवी होता है, हे वरानने ! इसमें कार्यविचारण वा संशय कुछ नहीं है। १४ ॥

वक्ष्ये मधुमतीं विद्यां सर्वरञ्जनकारिणीम् ॥ १५ ॥

अब सर्वरंजनकारिणी मधुमतीविद्याका वर्णन करता हूं ॥ १५ ॥

श्रीमधुमतीइत्युक्त्वा दिशः स्थावरजंगमाः ।
सागरपुररत्नानि सर्वेषां कर्षिणीति च ॥ १६ ॥

ठं ठं स्वाहा महाविद्या वसुचन्द्राक्षरी परा ।
त्रैलोक्याकर्षिणी विद्या प्रोक्तेयं देवदुर्लभा ॥ १७ ॥

श्रीमधुमति दिशः स्थावर जंगमाः सागर पुररत्नानि सर्वेषां कर्षिणी ठं ठं स्वाहा ॥ इस अष्टादशाक्षरी महाविद्याको उत्कृष्टतर जानना चाहिये । यह तीनों लोकका आकर्षण करनेवाली देवदुर्लभ महाविद्या मैंने तुमसे कही ॥ १६ ॥ १७ ॥

एकवर्षं जपेन्नित्यं शतमष्टोत्तरं नरः ।
ततः सिद्धा महाविद्या सर्वज्ञानप्रकाशिनी ॥ १८ ॥

जो मनुष्य इसको एकवर्षतक एकसौ आठवार नित्य जप करता है, उसको यह विद्या सिद्ध होती है । यह महाविद्या सर्वज्ञानप्रकाशिनी है॥१८

आकर्षयेत्सुमेरुञ्च दिशः सागरमेव च ।
नदीं रत्नानि च पुरीं स्त्रियः शैलान्वनस्पतीन् ॥
अलभ्यानि च द्रव्याणि पातालादिस्थितान्यपि॥१९॥
पुरस्थानं च वृत्तान्तं राज्ञां च विद्विषामपि ।
नक्तं तल्पे शतं जप्यात्सिद्धिं प्राप्नोति साधकः ॥२०

यह सुमेरु, दिशा, सागर, नदी, रत्न, पुरी, स्त्री, वनस्पति और पातालस्थित सब अलभ्य द्रव्योंका आकर्षण करती है । इसके द्वारा राजाका पुर स्थान और वृत्तान्त सभी जाना जा सकता है । साधक मनुष्य रात्रिकालमें शय्यापर सौवार जप करनेसे सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव जगन्नाथ प्रसीद जगन्नाथ प्रभो ।
यत्पृष्टं यच्छ्रुतं नाथ श्रोतुमिच्छामि सम्प्रति ।
पद्मावतीं महाविद्यां सर्वविद्याविनोदिनीम् ॥ २१ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे देवदेव जगन्नाथ ! आप प्रसन्न हो जाइये। हे सुमुख ! हे प्रभो ! हे नाथ ! मैंने जो पूछा था, वह तो सुना । अब सर्व-विद्याविनोदिनी पद्मावती महाविद्याके सुननेकी इच्छा करती हूं ॥२१॥

ईश्वर उवाच ।

कथयामि वरारोहे विद्यां पद्मावतीं शुभाम् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मायाबीजं तदन्तरम् ।
पद्मावतीपदं देवीसंबुद्ध्यन्तं समुद्धरेत् ॥ २२ ॥

ईश्वर बोले—हे वरारोहे ! शुभदायिनी पद्मावती विद्या कहता हूं । पहिले ओंकार उच्चारणपूर्वक फिर मायाबीज रहकर सम्बोधनान्त पद्मावती देवीका पद उच्चारण करैं ॥२२॥

त्रैलोक्यवार्त्तामन्ते च कथयद्वन्द्वमुच्चरेत् ।
स्वाहान्तेयं महाविद्या कथिता कल्पवल्लरी ॥ २३ ॥

फिर त्रैलोक्यवार्त्ता उच्चारण करके 'कथय कथय' यह दो पद उच्चारण-पूर्वक अन्तमें स्वाहापदका समुद्धार करै। यह मैंने तुमसे कल्पलतातुल्य महाविद्याका वर्णन किया ॥ २३ ॥

अष्टोत्तरशतं नित्यं जपेद्वर्षद्वयं प्रिये ॥
ततः सिद्धा महाविद्या सर्वं वदति साधके ॥ २४ ॥

हे प्रिये ! यह मन्त्र प्रतिदिन एकसौ आठवार क्रमशः दो वर्ष जपनेपर सिद्ध होकर साधकसे सब विषय कहता है ॥ २४ ॥

तल्पे स्थिता भक्तयोगी जपेन्मन्त्रं शताष्टकम् ॥
जगद्धितस्य वृत्तान्तं तज्जानाति दिने दिने ॥ २५ ॥

जो भक्त योगी शय्यापर स्थित होकर रात्रिमें एकसौ आठवार जपता है, वह दिन-दिन जगतका सब हितकर वृत्तान्त जान सकता है ॥ २५ ॥

ब्रह्मविष्ण्वादिकानां च त्रैलोक्यस्यापि शङ्करि ॥
वृत्तान्तं कथयेत्स्वप्ने विद्या पद्मावती शुभा ॥ २६ ॥

एवं ब्रह्मा विष्णु इत्यादि और त्रैलोक्यका वृत्तान्त भी विदित होता है। शुभदायिनी पद्मावती विद्या उससे स्वप्नमें यह सब वृत्तान्त कहती हैं॥२६॥

श्रीदेव्युवाच।

श्रुतश्च साधनं पुण्यं महाकालेन भाषितम् ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वशीकरणमुत्तमम् ॥
अल्पसाध्यं महादेव द्रुतसिद्धिकरं महत् ॥ २७ ॥

श्रीदेवीने कहा—महाकालका कहा पवित्र साधन सुना, अब उत्तम वशीकरण सुननेकी अभिलाषा करती हूं, हे महादेव! जो अल्पसाध्य और शीघ्र सिद्धिकर है, वही कहकर मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये॥२७॥

ईश्वर उवाच।

तवानुरोधाद्देवेशि कथयामि शृणुष्व तत्।
पुरा ते कथितं देवि योगिनां ज्ञानसम्भवे।
संक्षेपादधुना देवि विस्तरात्कथयामि ते।
गोपितव्यं प्रयत्नेन सर्वदा पशुसंकुले ॥ २८ ॥ २९ ॥

ईश्वर बोले—हे देवेशि! तुम्हारे अनुरोधसे मैं उसको वर्णन करता हूं सुनो हे योगिज्ञानप्रदे! पहिले मैंने तुम्हारे प्रति यह वशीकरण संक्षेपसे कहा है, इस समय वह तुमसे विस्तारसहित कहता हूं। इसको पशुसंकुल स्थानमें यत्नपूर्वक सदा गुप्त रक्खै ॥ २८ ॥ २९ ॥

कुजवारे नक्तयोगे अमायां च तिथौ नरः ॥
शत्रुनाम लिखित्वा तु वामपादतले न्यसेत्॥ ३० ॥

मंगलवार अमावस्या तिथिकी रात्रिमें मनुष्य शत्रुका नाम लिखकर वामपादतलमें रक्खे ॥ ३० ॥

तत्पादोपरि देवेशि वाग्भवं प्रजपेत्सुधीः ॥
अष्टोत्तरशतं देवि तदा वादी वशो भवेत् ॥
अतिमूको भवेच्छत्रुर्विवादे व्यवहारके ॥
तार्क्ष्यं दृष्ट्वा यथा सर्पो जडो भवति कामिनि ॥
तथैव तत्समालोक्य जडो वादी न संशयः ॥ ३१ ॥

हे देवेशि ! बुद्धिमान् मनुष्य उस पदके ऊपरी भागमें वाग्भवबीज एकसौ आठवार जप करनेसे उस प्रतिद्वन्द्वी मनुष्यको वशीभूत करता है। विवाद (झगड़े) और व्यवहार विषयमें शत्रु अतिशय मूक होता है। हे देवि ! गरुडके देखनेसे सर्प जिस प्रकार जड़ होते हैं, वादी उसको देख-कर उसी प्रकार जड़ होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१ ॥

तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि वशीकरणमुत्तमम् ॥
येन योगप्रभावेन भुवनं वशमानयेत् ॥ ३२ ॥

अब अति उत्तम अन्य वशीकरण कहता हूं। इस वश्य योगके प्रभावसे त्रिभुवनको वशीभूत करनेमें समर्थ होता है ॥ ३२ ॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सुन्दरी भैरवी तथा ।
योगिनीपदतो देवि राजा प्रजा महारथी ॥ ३३ ॥

प्रथम ॐकार उच्चारण, फिर सुन्दरी भैरवी तदनन्तर योगिनी, इस पदके अन्तमें राजा, प्रजा, महारथी ॥ ३३ ॥

वशंकरी तथा प्रोच्य अं इं उं ऋं तथा वदेत् ।
षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रः कथितः कल्पपादपः ॥ ३४ ॥

फिर वशंकरी, यह पद कहकर अं इं उं ऋं यह सब पद उच्चारण करै, यह मंत्र छब्बीस अक्षरका है, यह कल्पवृक्षके समान फलदायक है ॥ ३४ ॥

अनेन मनुना देवि तैलञ्च चन्दनञ्च वा।
शताष्टजप्तं तत्तैलं मुखे दद्याद्वरानने ॥ ३५ ॥

हे वरानने ! यह मंत्र तैल और चन्दनसे एकसौ आठ वार जपकर वह तैल मुखमें लगावे ॥ ३५ ॥

तच्चन्दनेन तिलकं भाले दद्यान्नगात्मजे ॥
जगद्वश्यक्रियामेतां कृत्वा साधकसत्तमः ॥ ३६ ॥
चेतु पश्यति यं देवि स वशो नात्र संशयः ॥
एवमेव विधानेन देवेन्द्रमपि मोहयेत्।
किं पुनर्मानवान्देवि ! सार्वभौमान्नराधिपान् ॥ ३७ ॥

और वही चन्दन कपालमें तिलक करनेपर जगद्वशीकरणका कारण होता है। इस प्रकार करके जिसको देखेगा, वही वशमें होगा, इसमें सन्देह नहीं। हे देवि ! साधारण मनुष्य और सार्वभौम राजाकी तो बात ही क्या कहूं, इसके द्वारा देवेन्द्रको भी मोहित किया जासकता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथोच्यते महादेवि वशीकरणमुत्तमम्।
सर्वेषां जगतां देवि मोहनं परमाद्भुतम् ॥ ३८ ॥

हे महादेवि ! अब अन्य उत्तम वशीकरण कहता हूं, इसके द्वारा संपूर्ण जगत्को परम अद्भुत रूपसे मोह लेता है ॥ ३८ ॥

मन्त्रमादौ प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥ ३९ ॥

तब तन्त्रोंमें जो मन्त्र गुप्त है, उसको प्रथम ही कहता हूं ॥ ३९ ॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य वदेद्राजमुखीपदम्।
पुना राजमुखी प्रोच्य मायाबीजद्वयं वदेत् ॥
कामबीजं ततः पश्चाद्देवि देवीपदद्वयम्
महादेविपदं पश्चाद्देवि देवाधिदेवि च ॥

सम्बोधनान्तं देवेशिपदमेतच्चतुष्टयम् ।
सर्वजनस्याभिमुखं मम वशं कुरु कुर्विति ॥
स्वाहान्तोयं महामन्त्रः सर्ववश्यप्रदो महान्॥४०-४२

प्रथम ॐकार उच्चारण करके फिर 'राजमुखी' यह पद योजन करै । इसके पीछे राजमुखी यह पद कहकर दो मायाबीज (ह्रीं) मिलावे फिर कामबीज, फिर देवी यह दो पद कहकर इसके अन्तमें महादेवीपद, फिर देवाधिदेवी सम्बोधन यह चारोंपद उच्चारण करै । सर्व जनाभिमुख मम वंश कुरु कुरु । इसके पीछे स्वाहा पद उच्चारण करै, यह सबको वशमें करनेवाला महामन्त्र है ॥ ४०--४२ ॥

इति मन्त्रेण शय्यास्थः प्रातः काले महेश्वरि ।
त्रिवारं दक्षहस्तेन मुखं समार्जयेत्कृती: ॥ ४३ ॥
एवन्तु प्रत्यहं कुर्याज्जगद्वश्याय कामिनि ।
अवश्यं जायते वश्यं जगदेतच्चराचरम् ॥ ४४ ॥

हे महेश्वरी ! साधक मनुष्य शय्यापर स्थित होकर प्रातःकालमें तीनवार दहिने हाथसे मुख मार्जन करै हे शिवे ! जगत् वशीकरणके निमित्त नित्य इस प्रकारसे जो करता है इसके चराचर जगत् अवश्य उसको वशीभूत होगा. इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतमेतन्महादेव त्वत्प्रसादात्पुरातनम् ।
स्वप्नावती च या विद्या कथितावगता मया ॥४५॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विशेषं यत्र यद्भवेत् ।
तद्वदस्व महादेव यदि तेऽनुग्रहो मयि ॥ ४६ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे महादेव ! मैंने आपके प्रसादसे यह पुरातन कथा सुनी । आपने मुझसे जो स्वप्नावती विद्या कही, उसको जाना किन्तु अब

उसकी विशेष विधि सुनना चाहती हूं. यदि मुझपर आपका अनुग्रह हो, तो वर्णन कीजिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

ईश्वर उवाच ।

कथयामि शृणु प्राज्ञि विद्यां स्वप्नावतीं पराम् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य वधूबीजं समुद्धरेत् ॥ ४७ ॥
स्वप्नावतीपदान्ते च स्वप्नं कथय चोद्धरेत ।
मायाबीजं ततः स्वाहा मन्त्रमेतन्नागात्मजे ।
दिवा भुक्त्वा हविष्यान्नं रात्रौ जप्त्वा सहस्रकम् ४८॥

ईश्वर बोले -हे प्राज्ञि ! अति उत्तम स्वप्नावती विद्या कहता हूं. सुनो । प्रथम ओंकार उच्चारण फिर वधूबीज. फिर स्वप्नावती पदके अन्तमें स्वप्ने कथय यह पद उच्चारण करै तदनन्तर मायाबीज, फिर स्वाहा प्रयोग करै । हे पर्वतनंदिनि ! यही मन्त्र है, दिनमें हविष्यान्नभोजन पूर्वक रात्रिकालमें यह मंत्र हजारवार जपै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

ततः शुद्धायां शय्यायां तदा स्वप्ने हि पश्यति ॥
मनसा चिन्तितं यद्यत्तत्सर्वं परमेश्वरि ॥ ४९ ॥
अथापरं प्रवक्ष्यामि स्वप्नप्रबोधमुत्तमम् ॥
येन विज्ञानमात्रेण सर्वं जानाति निश्चितम् ॥ ५० ॥

तो शुद्ध शय्यापर स्वप्नमें वही देखता है. जो जो मनमें चिन्ता करता है वह सभी स्वप्नमें देखता है ॥ ४९ ॥ हे परमेश्वरि ! अब अन्य उत्तम स्वप्नबोध कहता हूं, जिसके ज्ञानमात्रसे ही मनुष्य सब विषय जान सकता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५० ॥

प्रणवं प्राक् समुच्चार्य हिलिहूं शूलपाणये ॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः प्रोक्तन्ते कमलेक्षणे ॥ ५१ ॥
विधानं पूर्ववत्सर्वं जपान्ते प्रार्थनां शृणु ॥ ५२ ॥

हे कमलेक्षणे ! प्रथम ओंकार उच्चारण करके फिर 'हिलिहूँ शूलपाणय' इसके पीछे 'स्वाहा' उच्चारण करै । हे देवि ! यह मैंने तुमसे महामन्त्र कहा, इसका विधान पूर्वकी समान जानना, अब जपके अन्तमें प्रार्थना सुनो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

ॐ नमो जगत्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ॥
वामदेवस्वरूपाय स्वप्नाधिपतये ततः ॥
स्वप्ने कथय मे तत्त्वं सर्वं कार्यं शुभाशुभम ॥ ५३ ॥

जगत्के अधिपति तीन नेत्रवाले पिंगलनेत्र महात्मा वामदेवस्वरूप स्वप्नके अधिपति आपके निमित्त प्रणाम है सब शुभ अशुभ स्वप्नमें मेरे निमित्त कथन कीजिये ॥ ५३ ॥

इति मन्त्रेण संप्रार्थ सर्वं जानाति तत्वतः ॥
एत्तते कथितं देवि स्वप्नबोधमनुत्तमम् ॥ ५४ ॥
रहस्यं परमं रम्यं वशीकरणमुत्तमम् ॥
सर्वमेतन्महादेवि सर्वज्ञानप्रदायकम् ॥ ५५ ॥

इस मन्त्रके द्वारा प्रार्थना करनेसे सभी जान सकता है। हे देवि ! यह मैंने तुमसे अति उत्तम स्वप्नबोध और परम रहस्य मनोहर वशीकरण कहा हे महादेवि ! यह सब ज्ञानप्रदान करता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

निरन्तरं महादेवि सेवितः सिद्धिशंकरैः ।
मधुमत्याः प्रसादेन सर्वोक्तं सर्वयोनिषु ॥ ५६ ॥

सिद्धिशङ्कर गण इसकी सदाही सेवा करती हैं मधुमतीके प्रसादसे सर्व योनिका विषय सर्वथा कहा गया है ॥ ५६ ॥

यावन्तं परमेशानि तस्मात्त्वां समुपाश्रयेत ।
स्वप्नावत्यादिविद्याया यो जपः कथितः प्रिये ॥५७॥

हे परमेशानि । तुम्हारे पूछनेसे यह सब कहा हे प्रिये ! स्वप्नावत्यादि विद्याके जपका जो प्रकार कहा गया है ॥ ५७ ॥

वर्षसंख्याक्रमेणैव सिद्धिकामस्य शाम्भवि ।
त्वं जपन्तु विना देवि फलसिद्धिः समीरिता ॥
सिद्धविद्याप्रभावेन तां सुसिद्धाः सुरासुरैः ॥ ५८ ॥

वह वर्षसंख्याके क्रमसे सिद्ध होता है । उस प्रकार जपके विना फल-सिद्धिकी सम्भावना नहीं है । सुरासुर गण सिद्ध विद्याके प्रभावसेही सब विद्या सिद्ध कर सकते हैं ॥ ५८ ॥

इति ते कथितं सम्यग्रहस्यं परमाद्भुतम् ।
गोपनीयं खले दुष्टे पशुपामरसन्निधौ ॥ ५९ ॥

यह मैंने तुमसे परम अद्भुत संपूर्ण रहस्य कहा यह खल दुष्ट पशु और पामर मनुष्यके निकट सदा गुप्त रखनेयोग्य है ॥ ५९ ॥

अन्यथा कुरुते यस्तु स भक्ष्यो डाकिनीगणैः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं विशेषतः ॥ ६० ॥

जो इसके अन्यथा करता है. उसको डाकिनी भक्षण करती हैं. इस कारण यत्नपूर्वक इसको गुप्त रक्खै ॥ ६० ॥

दद्याच्छान्ताय दान्ताय सत्कुलीनाय योगिने ।
भक्ताय पापहीनाय साधकाय महात्मने ॥ ६१ ॥

शान्त, चतुर, कुलीन, योगी, भक्त, पापहीन, महात्मा, साधकको यह प्रदान करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति-साहस्रे भाषाटीकायां सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं हि साधनं सर्वं त्वन्मुखाम्भोजनिर्गतम् ।
देवदानवगन्धर्वसिद्धचारणसेवितम् ॥ १ ॥
परमानन्दसन्दोहं सान्द्रानन्दविभूतिदम् ।
परं पारं परं पुण्यं पवित्रं परमं महत् ॥ २ ॥
योगिन्युत्पत्तिकथनं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
कथयस्व महादेव केवलानन्दबृंहितम् ॥ ३ ॥

श्रीदेवीजीने कहा–हे देव ! मैंने आपके मुखकमलसे निकला देव, दानव, गंधर्व, सिद्धि, चारणगणसेवित परमानन्दके पात्र अनेक आनंद और विभूतिके देनेवाले आप परम पार स्वरूप हो। और परम पुण्यस्वरूप पवित्र और परम महत् सर्वसाधन सुना, अब उपरोक्त गुण समूहयुक्त और त्रैलोक्यको भी दुर्लभ केवलानन्दवर्द्धन योगिनीगणोंकी उत्पत्ति वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

पूर्वं यदावयोर्वृत्तं सर्वं तद्विस्मृतं शिवे ।
अत्यन्तगुह्यं परमं देवासुरभयङ्करम् ॥४॥
प्राचीनमपि गोप्यं हि सारात्सारं परात्परम् ।
शृणु वक्ष्यामि चार्वङ्गि समासेन शिवप्रिये ॥ ५ ॥
गोपनीयं त्विदं भद्रे योनिं परनरे यथा ॥ ६ ॥

ईश्वर बोले–हे शिवे ! पहले हम दोनोंके पक्षमें जो वृत्तान्त हुआ था वह क्या भूल गई हो ? जो हो, मैं अत्यन्त गुह्य, देवासुरोंको भयंकर अति प्राचीन अतिगोपनीय सारसे भी सार, परेसे भी परे परम विषयका वर्णन करता हूं, हे चार्वङ्गि ! तुम वह सब सुनो । हे शिवप्रिये ! हे कल्याणि !

पराये पुरुषसे जिस प्रकार योनि गुप्त रखनी चाहिये, इसको भी उसी प्रकार गुप्त रखने योग्य जानो ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

ब्रह्माण्डस्यायुषः शेषे सर्वसत्वविवर्जितम् ।
भूम्यादिपञ्चतत्वं तु केवले संस्थितं शिवे ॥ ७ ॥

ब्रह्माण्डकी आयुके शेषमें संसार सर्वसत्त्वरहित होनेपर और भूमि आदि पञ्च तत्त्व मात्र केवल आत्मामें अवस्थित होने पर ॥ ७ ॥

त्वां मां विना महेशानि नासीत्किञ्चिज्जगत्त्रये ।
एतस्मिन्नन्तरे त्वां वै पप्रच्छाहं प्रहासतः ॥ ८ ॥

हे महेशानि ! तुम्हारे और मेरे अतिरिक्त इन तीनों जगत्में और कुछ नहीं था, इस अवसरमें मैंने हँसकर तुमसे पूंछा ॥ ८ ॥

ममाधिका योग्यता वा तवापि वा महेश्वरि ।
इदानीं परमेशानि ! ततो ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥ ९ ॥
स्थातुं स्थानं न कुत्रास्ति कुत्र स्थास्यामि भाविनि ।
यद्यन्मया कृतं सर्वं तत्सर्वं गतमेव हि ॥ १० ॥
विरक्तोऽहं सदा देवि भवसंसारकर्मणि ।
स्थातुं स्थानमिदानीं त्वं कल्पयस्व महेश्वरि ॥११॥

हे महेश्वरि ! बोध होता है-मेरी अपेक्षा तुम्हारी योग्यता अधिक है, यह देखो इस समय ब्रह्माण्डमण्डल शून्याकार है, कहीं भी रहनेका स्थान नहीं है हे भाविनि ! अब कहां रहेंगे ? मैंने जो किया था, वह सभी विगत हुआ है, तुम जानती हो कि, मैं संसारकर्ममें संस्पर्श शून्य रहनेकी सदा ही इच्छा करता हूं, हे महेश्वरि ! अब तुम रहनेके लिये स्थानकी कल्पना करो ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

इति श्रुत्वा तदा देवि ? क्रोधेनारुणलोचना ।
उवाच मां निष्ठुरं च दुराचारादिदारुणा ॥ १२ ॥

हे देवि ! तुम जिसको सुनकर क्रोधसे लालनेत्रकर और दुराचारके कारण कठोर होकर मुझसे अति निष्ठुर वचन कहने लगीं ॥ १२ ॥

यद्यत्कृतं त्वया देव मामुपाश्रित्य सर्वदा ।
मां विना ते महादेव शवत्वमिति निश्चितम् ॥१३॥

हे देव महादेव ! तुम जो करते हो, उसीमें सदा मेरे ऊपर निर्भर करते हो मेरे विना तुम शव (मृतक) होते हो, इसमें सन्देह नहीं ॥१३॥

योगे हि ते महेशान मया सर्वमिदं ततम् ।
कल्पितं वत्सरूपेण योग्यता का तवास्ति हि ॥१४॥

तुम्हारे योगमात्रसे मैंने यह संसार विस्तारित करके तुम्हारी वत्सरूपमें कल्पना करी है। तुम्हारी योग्यता क्या है ? ॥ १४ ॥

कारणावस्थयापन्ना सदाहं धात्रिरूपिणी ।
नाकार्यं मे हि यत्किञ्चित्सदाहं ह्यक्षरा परा ॥ १५ ॥

मैं सदाही कारणावस्थापन्ना (कार्यको उत्पन्न करनेवाली) विधातृ-रूपिणी हूं, मेरा कुछ भी अकार्य नहीं है ॥ १५ ॥

कार्यभावममापन्ना सदा प्रकृतिरूपिणी ।
तदा ब्रह्मादयः सर्वे सर्वेऽप्याविर्भवन्ति हि ॥ १६ ॥

मैं सदाहीकार्यभावसम्पन्न प्रकृति रूपिणी हूं, उस कालमें ब्रह्मादि सब ही आविर्भूत हुए ॥ १६ ॥

मम मायामयमिदं विश्वं देव चराचरम् ।
विक्षेपावरणे मासारंभो हे परमेश्वर ॥ १७ ॥

यह चराचर विश्व मेरीही मायासे निर्मित है ! हे परमेश्वर ! मेरी विपेक्षा और आवरण नामक दो शक्तियोंसे ही जगत्के सब कार्य साधित होते हैं ॥ १७ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तेऽहं वज्रतुल्यं सुदारुणम् ।
नावोचं किञ्चित्त्वां देवि स्थिरत्वमभवत्तदा ॥ १८ ॥

तुम्हारे इस प्रकार वज्रतुल्य दारुण वचन सुन, उस समय मैं तुमसे कुछ न कहकर चुप रहा ॥ १८ ॥

परीतोऽहं सदा देवि दुःखेनान्तरजेन च ।
ततः स्थिरीकृत्य हृदि उपायं तव निग्रहे ॥ १९ ॥

हे देवि ! मैंने सदा आन्तरिक दुःखसे तापित होकर तुम्हारे निग्रहके निमित्त मनमें एक उपाय स्थिर किया ॥ १९ ॥

जगाम पश्चिमे भागे ब्रह्माण्डस्य वरानने ।
गत्वा तत्र महादेवि निर्ज्जने दारुणं पुरा ।
स्वदेहभस्मना दैत्यं प्रागदृष्टं श्रुतं मुदम्
दानवेन्द्रं महाघोरं घोरनामानमद्भुतम् ॥ २० ॥

अनन्तर मैंने ब्रह्माण्डके पश्चिम भागमें जाकर निर्जनमें अपने देहकी भस्मद्वारा एक दारुण महाघोर घोर नामक अपूर्व अद्भुत दानवेन्द्रको उत्पन्न किया ॥ २० ॥ २१ ॥

कोटियोजनविस्तीर्णं द्वात्रिंशल्लक्षप्रस्थितम् ।
कोटिहस्तं महारौद्रं कोटिलोचनमुज्ज्वलम् ॥ २२ ॥

यह दैत्य लम्बाईमें करोड योजन और चौडाईमें बत्तीस लाख योजन होगा । महाभयंकर करोड हाथ करोड उज्वल नेत्र ॥ २२ ॥

पञ्चाशल्लक्षवदनं ज्वालावलिसमाकुलम् ।
तस्मै दत्त्वा महासिद्धीरणिमाद्या महेश्वरि ॥ २३ ॥
सर्वभावे मत्सदृशं तं विधाय सुदारुणम् ।
उल्लासमनसा देवि ह्यागतोऽहं तवान्तिकम् ॥ २४ ॥

वदन पञ्चाशत् लक्ष (पचास लाख) और यह वदन ज्वालावलीसे आच्छन्न था उसको मैं अणिमादि अष्टसिद्धि प्रदानपूर्वक उस दारुण दैत्य को अपनी समान कर प्रसन्न मनसे तुम्हारे निकट आया ॥२३॥२४॥

सोऽपि तस्थौ दानवेन्द्रोग्रासं कृत्वा जनार्णवम् ।
गण्डूषे द्वे विधायैव सुवेलवेलपर्वतौ ॥ २५ ॥

वह दानवेन्द्र जनार्णव ग्रास और सुवेल तथा वेल पर्वतमें दो गण्डूष (कुल्ले) स्थापित करके रहा ॥ २५ ॥

तदा मम मनो ज्ञात्वा त्वमवादीश्च मां प्रति ।
इदानीं ब्रह्माण्डभाण्डं जीवहीनमजायत ॥ २६ ॥

तब तुमने मेरे मनका भाव जानकर मुझसे कहा था कि हे महादेव ! इस समय ब्रह्माण्डभाण्ड जीवहीन हो गया है ॥ २६ ॥

आज्ञापय महादेव पश्यामि सकलं शिव ।
तदा विहस्य मनसा तवोत्कण्ठां विवर्द्धयन् ॥ २७ ॥

हे शिव ! आज्ञा करो मैं सब देखूं । तब मैंने मनमें हँसकर तुम्हारी उत्कण्ठा बढ़ाकर ॥ २७ ॥

अवोचं त्वामहं भद्रे त्वागच्छ पश्चिमां दिशम् ।
सर्वत्रान्यत्र देवेशि दृष्ट्वा पश्चाद्गतं मयि ॥ २८ ॥

कहा हे भद्रे ! आओ, पश्चिम दिशामें चलैं । देवेशि ! अन्यत्र सर्वत्र ही देखकर मेरे पीछे पीछे गमन किया था ॥ २८ ॥

स्त्रीणां स्वभावो देवेशि यत्रैवाधः स्थितो भवेत् ।
तत्रैव महती श्रद्धा दृष्ट्वा यातुं सदा भवेत् ॥ २९ ॥

स्त्रियोंका स्वभाव सदा ही अधः स्थित (नीचे स्थित रहनेवाला) होता है, वह स्थान देखकर उसमें जानेकी महत् श्रद्धा हुई ॥ २९ ॥

इति ज्ञात्वा मयोक्तं तन्निषेधवचनं शिवे ।
ततः प्रयोजनाभावात्तव स्वभावतः शिवे ॥ ३० ॥

मैंने यह जानकर वहां जानेमें तुमको निषेध किया फिर प्रयोजनाभाव और आपने स्वभाववश ॥ ३० ॥

न गतान्यत्र देवेशि स्थित्वा त्वं च ममान्तिके ।
महद्धाम्नि च कान्तारे यत्र केदारकेश्वरः ॥ ३१ ॥

अन्यत्र गमन न करके तुम मेरे ही निकट स्थित रही थी । कुछ काल स्थितिकरके फिर जिस महत् कान्तार स्थानमें केदारकेश्वर हैं ॥ ३१ ॥

तत्र गत्वा महादेवी जगन्मोहनकारिणी ।
विव्याध दैत्यराजेन्द्रं कामबाणैः सहस्रशः ॥ ३२ ॥

जगमोहनकारिणी तुमने उस स्थानमें जाकर उस दैत्यराजको सहस्र सहस्र कामबाणसे विद्ध किया था ॥ ३२ ॥

अत उत्थाय दैत्येन्द्रः कामबाणेन विह्वलः ।
करान्प्रसार्य सकलानाह चाटुवचो भृशम ॥ ३३ ॥

यह दैत्य कामबाणसे विह्वल और उत्थित होकर सब हाथ पसार अनेक चाटु वचन (खुशामदके वचन) कहने लगा ॥ ३३ ॥

घोर उवाच ।

मम क्रोडे त्वं समागच्छ भव सर्वेश्वरी मुदा ।
त्राहि मां कामजलधा निमग्नं स्वाङ्गदानतः ॥ ३४ ॥
किञ्चित्कालं न जीवामि त्वां विनाहं कथंचन ।
आलिंग्य पतिभावेन जीवनं रक्ष सुन्दरि ॥ ३५ ॥
इत्यादि चाटुवाक्यैस्त्वां मुहुर्मुहुर्जगाद च ।
ततः सा त्वमवादीश्च सकटाक्षं शुचिस्मितम् ॥३६॥

घोरने कहा—तुम मेरी गोदीमें आनकर आनन्दसे सर्वेश्वरी होओ मैं काम सागरमें निमग्न हुआ हूं, इस समय तुम अपना अङ्गदान करके मेरी रक्षा करो ॥ ३४ ॥ हे तन्वाङ्गि ! मैं तुम्हारे विना कभी क्षणमात्र भी जीवित नहीं रह सकता । हे सुन्दरी ! तुम मुझको पतिभावसे आलिंगन करके मेरा जीवित रक्षा करो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अनेक चाटु वचन (प्रेमके खुशामदी वचन) तुमसे वारम्वार कहने लगा । तब तुमने उससे कटाक्षसहित मुसकुराकर कहा था ॥ ३६ ॥

त्वं सर्वदैत्येन्द्र समस्तभोक्ता
त्वं वै बली देवनिकाय एव ।
त्वं वीर्यवान्सर्वविनाशनश्च
त्वां व वरामो यदि तत्करोषि ॥ ३७ ॥

श्रीदेवीजीने कहा तुम सब दैत्योंके इन्द्र तुम्हीं सर्वभोगी तुम्हीं देवताओंसे बलवान्, तुम्हीं वीर्यवान् और सबके विनाश करनेवाले हो यदि तुम मेरा वह कार्य साधन कर सको तो मै तुमको वरूंगी ॥ ३७ ॥

मदीयवृत्तान्तमिह शृणुष्व
नावस्थितिः क्वापि भवेन्न यस्मात् ।
पुरा प्रतिज्ञा हि मया कृता या
तां पालय त्वं यदि मां ग्रहीतुम् ॥ ३८ ॥

तुम मेरा वृत्तान्त सुनो । वह कार्य पूरा न होनेसे मैं कहीं भी स्थिति नहीं कर सकती । यदि मुझको ग्रहण करनेकी तुम्हारी अभिलाषा हो, तो मैंने पूर्वमें जो प्रतिज्ञा की है, उसको पालन करो ॥ ३८ ॥

मनस्तु चैवं खलु दैत्यराज
यो मां विनिर्जित्य रणे स्थितः स्यात् ।

स मे तु भर्ता हि न चान्य एव
तदादितो युद्धमितः श्रयस्व ॥ ३९ ॥

मेरी प्रतिज्ञा यही है कि, जो मनुष्य रणमें स्थित होकर मुझको पराजितकर सकेगा अर्थात् जीतलेगा. वही मेरा भर्ता है दूसरा कोई मेरा भर्ता नहीं हो सकेगा । अतएव हे दैत्यराज ! पहिले मुझसे युद्ध करो ॥ ३९ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवं ब्रुवाणां त्वां देवि क्रोधेन महता युतः ।
उच्चैर्निर्भर्त्सयामास प्रलयाम्भोधिघर्घरम् ॥ ४० ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! जब तुमने यह कहा तब वह भयंकर दैत्य प्रलयपयोधिकी समान महाभयंकर घर्घर शब्दसे तुम्हारी भर्त्सना करने लगा ॥ ४० ॥

ततः समुत्थितो घोरः कालरुद्रं च न्यक्कृतः ।
समाहर्तुं तदा दैत्यो धावतिस्माखिलं जगत् ॥ ४१ ॥

इसके उपरान्त महाघोरतर वह घोर दैत्य महाकाल रुद्रको धिक्कार देकर संपूर्ण जगत्का संहार करनेके लिये उठकर दौडा ॥ ४१ ॥

तथापि त्वां गृहीतुं स क्षमो नाभूत्कथञ्चन ।
तदा वेगेन महता स गत्वा दानवेश्वरः ॥ ४२ ॥

तोभी वह तुमको पकडने में किसी प्रकार समर्थ न हुआ । तब वह दानवेन्द्र वेगसे दौडने लगा ॥ ४२ ॥

हस्तामर्षवशात्ते च पर्वताश्चूर्णतां गताः ।
पदाघाताद्धुपरता मग्ना हि स्युर्जलार्णवे ॥ ४३ ॥

उसके हस्तस्पर्शसे सब पर्वत चूर्ण होने लगे । पदाघातसे प्रक्षिप्त होकर जलार्णव (समुद्र) में डूबने लगे ॥ ४३ ॥

तदङ्गभ्रमवातेन प्रोच्छलज्जलमण्डलम्।
ऊर्द्धाधश्च कटाहान्तं महाभीमतरङ्गकम् ॥ ४४ ॥
ब्रह्माण्डं परिसंव्याप्य भ्रमते स निरंतरम्।
धर्तुकामो महामाये त्वां धर्तुं न क्षमोऽभवत् ॥ ४५ ॥

उसके अङ्गकी पवनके भ्रमसे जलधिमण्डल उछलकर महाभयंकर तरंगोंके सहित ब्रह्माण्डके ऊर्ध्वार्द्ध (ऊपरके अर्ध) कटाहपर्यन्त (आधे भाग पर्यंत) निरंतर परिभ्रमण करनेलगा। हे महामाये ! वह तुम्हारे पकडनेकी इच्छासे दौड़नेपर भी नहीं पकड सका ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अग्रेग्रे त्वां पश्यति स्म केवलं दैत्यपुंगवः ॥
यद्यद्युद्धं कृतं तेन कथितुं नैव शक्यते ॥ ४६ ॥

तुमको केवल आगे आगे जाता देखने लगा। उसने जैसा जैसा युद्ध किया, उसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥

यद्यत्क्षिप्तं त्वयि शिवे तत्सर्वं भस्मसाद्गतम्।
तत्तेजसा महेशानि तत्रापि क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४७ ॥
भवेन्निरन्तरं दैत्यो घोरो घोरपराक्रमः।
आश्चर्यं शृणु देवेशि युद्धवृत्तं महोज्ज्वलम् ॥ ४८ ॥

हे शिवे ! तुम्हारे ऊपर उसने जो जो निक्षेप किया वह सब ही भस्म सात् हो गया। हे महेशानि ! तो भी तेजोयुक्त क्रोधमूर्च्छित हो वह घोर दैत्य क्रमक्रमसे घोर पराक्रम प्रकाश करने लगा। हे देवेशि ! आश्चर्य सुनो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

जलजातात्कटाहात्तु धूलिरुत्पद्यते भृशम्।
एवमेकाहतो युद्धं कोटिवर्षमभूत्तदा ॥ ४९ ॥

उस महा तुमुल (भयंकर) युद्धकालमें जलजात कटाहसे ढेर ढेर धूलि उठने लगी यह युद्ध एक दिनसे आरम्भ करके करोड वर्ष हुआ था ॥ ४९ ॥

एवं तत्र महेशानि युद्धकाले भयातुरः ।
अहं योगं समाश्रित्य अतिसूक्ष्मतरं वपुः ॥
विधाय परमेशानि त्वामाश्रित्य स्थितः सदा ॥ ५० ॥

हेमशानि ! मैं ऐसे युद्धकालमें भयातुर होकर योग अवलम्बन पूर्वक सूक्ष्मतर शरीर धारण करके तुम्हारे ही सहारेसे स्थित रहा ॥ ५० ॥

कथञ्चिदपि न प्राप्य त्वां धर्तुं दैत्यराट् तदा ॥
चिन्तयामास च खलु त्वां हन्तुं विविधक्रमम् ॥५१॥

तब दैत्यराज तुमको किसी प्रकार न पकडसकनेसे तुम्हारे हनन करनेके लिये अनेक उपाय विचारने लगा ॥ ५१ ॥

वर्द्धयित्वा शरीरं स्वं घर्षयित्वा च बाहुना ।
कटाहे मारयिष्यामि महादुष्टां हि त्वामहम् ॥ ५२ ॥

वह अपना शरीर बढ़ाकर और बाहुद्वारा उसको घर्षणकर चिन्ता करनेलगा मैं महादुष्टस्वभाव नारीको इस कटाह (एक आकार) में डालकर वध करूँगा ॥ ५२ ॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा वर्द्धयित्वा कलेवरम् ।
पूरितं तेन ब्रह्माण्डं घोरो हर्षमुपागमत् ॥ ५३ ॥

इस प्रकार मनमें चिन्ता करके कलेवर बढाने लगा । अपने द्वारा ब्रह्माण्ड परिपूरित हुआ देखकर घोर दैत्य अत्यन्त हर्षित हुआ ॥ ५३ ॥

उवाच त्वां तदा दैत्यो हता यास्यसि कुत्र वा ।
भवती भृशमालोक्य दैत्यं ब्रह्माण्डपूरितम् ॥ ५४ ॥

तब दैत्यराजने तुमसे कहा—अब अपने आपको हतप्राय देखकर कहां भागोगी ? तुमने दैत्यको निजकलेवरसे ब्रह्माण्डपरिपूरित करता देखकर ॥५४

अमाकलासमुल्लासा किरीटोज्ज्वलविग्रहा ।
शिवाकोटिसहस्रैस्तु तेजोमण्डलसम्भवैः ॥ ६७ ॥
महारावैश्चतुर्दिक्षु यतो घोरपराक्रमैः ।
रश्मिवृन्दसमुद्भूता योगिन्यः कोटिकोटिशः ॥६८॥
समन्ताद्घोररूपस्था महायुद्धमहोत्सुका ।
प्रतिलोमे कूपमध्ये ब्रह्माण्डं कोटिकोटिशः ।
भासन्ते सततं देवि सर्वाः सूर्यमयाः पुनः ॥ ६९ ॥

किरीट द्वारा उज्ज्वल शरीर और अमाकलाके समान उल्लासित (प्रफुल्ल) तेजोमण्डलसंभूत, घोररव, घोर पराक्रम करोड सहस्र गीदडियोंसे वेष्टित। उस महाकालीके रश्मिबिन्दुसे घोर रूपवाली, महायुद्धमें उत्सुक करोड करोड योगिनी चारों ओरमें उत्पन्न हुई। हे देवि! वह सब योगिनी सूर्यमयरूपमें दीप्ति पाने लगीं। महाकालीके प्रतिलोम कूपमें करोड़ करोड़ ब्रह्माण्ड प्रकाश पाने लगे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

एवं तां कालिकां दृष्ट्वा मूर्छितो दानवेश्वरः ।
प्रतीतोऽसौ महाकाल्या दृष्ट्वा श्रीमुखमण्डलम् ॥७०॥

वह दानवेश्वर इस प्रकार उस कालीको देखकर मूर्छित हुआ। महाकाली का श्रीमुखमण्डल देखनेसे इस दानवको प्रीति प्राप्त हुई ॥७०॥

तत्क्षणाद्दानवाधीशो ब्रह्मज्ञानमवाप्तवान् ।
ततस्तं दानवाधीशं ज्ञानं भक्तं सुनिर्मलम् ॥
जिह्वया लोलया काली चकर्ष च रणान्तरे ॥ ७१ ॥

वह दानवाधीश्वर तत्काल ब्रह्मज्ञानको प्राप्त हुआ फिर महाकालीने उस निर्मल भक्त ब्रह्मज्ञानवान् दानवराजको रणमें लोलजिह्वा द्वारा आकर्षण किया ॥ ७१ ॥

ब्रह्माण्डसहितं माता चर्वयित्वा मृतं क्षणात् ।
चकार लीलया काली घोरवाद्यमहोत्सुका ।
नानायन्त्रस्य बृहतः पताकाव्यापिका तदा ॥ ७२ ॥

और जगन्माताने ब्रह्माण्डके सहित उसको चाबकर क्षणमात्रमें ही वध कर डाला । अनन्तर महाकालीने लीलापूर्वक बृहत् बृहत् यन्त्रोंका घोर वाद्य महोत्सव किया और आकाशव्यापी (ध्वजाको उठाकर) आन्दोलित किया ॥ ७२ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां अष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच ।

तद्दृष्ट्वा तु महाश्चर्यं भयविह्वलमानसः ।
अहं त्वगच्छं सहसा तत्र कान्तारमुत्तमम् ॥ १ ॥

ईश्वर बोले—यह महाआश्चर्य बात देखकर मैं भयविह्वल चित्तसे उस उत्तम कान्तारमें सहसा गया ॥ १ ॥

सुषुम्नावर्त्मना देवि तत्र गत्वा मया किल ।
समुद्दिष्टं श्रुतं यद्यत्कथितुं नैव शक्यते ॥ २ ॥

हे देवि ! सुषुम्नावर्त्म द्वारा उस स्थानमें जाकर मैंने जो जो सुना, उसके प्रकाश करनेको मैं समर्थ नहीं हूं ॥ २ ॥

सर्वाश्चर्यमयं देवि न दृष्टं न श्रुतं क्वचित् ।
अतीव बृहदाकारा ब्रह्माण्डाः कोटिकोटिशः ॥ ३ ॥

हे देवि ! वह सर्वाश्चर्यमय है, उस प्रकार न कहीं देखा और न कहीं सुना । अत्यन्त बृहदाकार करोड करोड ब्रह्माण्डमण्डल ॥ ३ ॥

चरन्ति सर्वदा देवि कः संख्यातुं क्षमो भवेत् ।
कोटिकोटिमुखा देवि ! कोटिकोटिभुजास्तथा ॥४॥

सदा विचरण करते हैं, उनकी कौन संख्या कर सकता है ? हे देवि ! वहां करोड करोड मुख और करोड करोड भुजायुक्त ॥ ४ ॥

एवं च विविधाकारा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
महदैश्वर्यसम्पन्नाः प्रतिब्रह्माण्डवासिनः ॥ ५ ॥

विविधप्रकार आकारधारी प्रतिब्रह्माण्डनिवासी ब्रह्मा विष्णु शिवादि महदैश्वर्यसम्पन्न होकर विचरते हैं ॥ ५ ॥

सर्वाश्चर्यमयं देवि दृष्ट्वा कुशलमानसः ।
सर्वं मे विस्मृतं जातं कोऽहं चिन्तापरायणः ॥ ६ ॥

हे देवि ! यह सर्वाश्चर्यमय व्यापार देखकर मेरा मन विह्वल हो गया मैं सब भूल गया, तब 'मैं कौन हूं ?' यह चिन्ता मेरे मनमें उदय हुई ॥ ६ ॥

अहं कः कुत्र चायातः केन पृच्छति कुत्रचित् ।
एवं नानाविधं देवि भुवने विस्मृतः सदा ॥ ७ ॥

मैं कौन हूं ? कहांसे आया हूं. कोई, कहीं भी कुछ नहीं पूछता, इस प्रकार मैं भुवनको समस्त ही भूल गया ॥ ७ ॥

नानास्थानसंभ्रमश्च नास्ति स्मर्यश्च मे कदा ।
ततश्च कोटिवर्षान्ते प्राप्तं ते हृदयाम्बुजम् ॥ ८ ॥

मैं अनेक स्थानोंमें भ्रमण करने लगा । मुझको कुछ भी स्मरण नहीं हुआ, फिर करोड वर्ष पीछे तुम्हारे हृदयाम्बुजको प्राप्त होकर तृप्त हुआ ॥ ८ ॥

तत्र गत्वा मया सर्वं दृष्टमाश्चर्यमुत्तमम् ।
तत्सर्वं परमेशानि कथितुं नैव शक्यते ॥ ९ ॥

हे परमेशानि ! मैंने उस स्थानमें जाकर जो जो परम सुन्दर, जो जो आश्चर्य देखा वह मैं वर्णन नहीं कर सकता ॥ ९ ॥

यद्भावार्थोदयं शास्त्रं कारणं सुखमोक्षयोः ।
परमात्मागमो वेदा जीवो दर्शनमिंद्रियम् ॥ १० ॥

कुछेक वर्णन करता हूं सुनो, सुख और मोक्षका कारण धर्मार्थमय शास्त्र, परमात्मा, आगम, वेद, जीवात्मा, दर्शन, इन्द्रिय ॥१०॥

देहः पुराणमङ्गानि स्मृतयो नियमानि च ।
तत्रैव सर्वशास्त्राणि लोमादीनि वरानने ॥ ११ ॥

देह पुराणके सब अंग, संपूर्ण स्मृति शास्त्र व लोमादि सर्वशास्त्र वहां देखे ॥ ११ ॥

जीवात्मनोर्यथा भेदस्तथा वेदागमेष्वपि ।
पत्राग्रे पत्रमध्ये च पत्रान्ते हृदयाम्बुजे ॥ १२ ॥

समस्त वेदागममें जिस प्रकार जीवात्माका भेद है, वह हृदयाम्बुजमें पत्राग्रमें, पत्रमध्यमें और पत्रान्तमें ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा वर्णावली या तु तीव्रतेजोमयी शुभा ।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव वा ॥१३॥

देखनेके पीछे तीव्र तेजोमयी शुभकारी वर्णावली देखी । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द ॥ १३ ॥

अन्यानि सर्वशास्त्राणि क्षुद्राणि यानि कानि च ।
किन्तु पूर्णावलोकेन ज्ञातोऽहं कथितं तव ॥ १४ ॥

ज्योतिष और अन्यान्य क्षुद्र क्षुद्र संपूर्ण शास्त्र अवलोकन किये । फिर मैं पूर्णावलोकसे ज्ञात हुआ, सो तुमसे कहता हूं ॥ १४ ॥

ततो मया शतं देवि कर्णिकान्तर्महोज्ज्वलम् ।
कोटिकोटिदिवानाथनिशानाथसमुज्ज्वलम् ॥ १५ ॥
कोटिकोटिमहावह्नितेजोमण्डलमण्डितम् ।

तन्मध्ये तु मया दृष्टं वर्णपुंजं महोज्ज्वलम् ॥ १६ ॥
सूर्यकोटिसमाभासं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
वह्निकोटिमहोज्ज्वालं परं ब्रह्ममयं ध्रुवम् ॥ १७ ॥
सर्वज्ञानमयं देवि सर्वाश्चर्यमयं सदा ।
सर्वयज्ञमयं देवि सर्वतीर्थमयं सदा ॥ १८ ॥
सर्वपुण्यमयं देवि सर्वधर्ममयन्तथा ।
ब्रह्मज्ञानमयं देवि ब्रह्मानंदमयं तथा ॥ १९ ॥
प्रमाणं सर्वशास्त्राणां वेदादीनां महेश्वरि ।
प्रमाणं सर्वसत्त्वानां ब्रह्मतेजः परं हि तत् ॥ २० ॥
सर्वमायाबहिर्भूतं सर्वमायानिकृन्तनम् ।
सर्वानन्दमयं देवि ब्रह्मानंदमयं सदा ॥ २१ ॥
पूर्णानन्दमयं देवि ब्रह्मनिर्वाणमुत्तमम् ।
सर्वमायामयं देवि सर्वविद्यामयं पुनः ॥ २२ ॥
सर्वतपोमयं देवि सर्वसिद्धिमयन्तथा ।
सर्वमुक्तिमयं देवि सर्ववेदमयं तथा ॥ २३ ॥
सर्वलोकमयं देवि सर्वभोगमयं तथा ।
सर्वशास्त्रमयं देवि सर्वयोगमयं तथा ॥ २४ ॥
दृष्ट्वागममिमं तत्र मम ज्ञानान्धसागरे ।
गता शर्वर्यथोऽद्राक्षं यथा सूर्योदयोज्ज्वलम् ॥२५॥
अभ्यस्तं हि मया सर्वं महाकालीप्रसादतः।
दृष्ट्वाभ्यस्तं मया सर्वं तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ २६ ॥

जिस कार्णिकामें करोड करोड दिवानाथ और निशानाथके समान समुज्ज्वल एवं करोड करोड महावह्नि तेजोमण्डलसे मंडित महोज्ज्वल वर्ण-पुञ्ज मैंने देखा । हे महेश्वरि ! उसमें करोड सूर्यके समान दीप्तिशाली करोड चन्द्रमाके समान शीतल, करोड अग्निके समान महोज्ज्वल, नित्य परब्रह्ममय, सर्वज्ञानमय, सर्वाश्चर्यमय, सर्वयज्ञमय, सर्वतीर्थमय, सर्वपुण्यमय सर्वधर्ममय ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मानन्दमय वेदादि सब शास्त्रोंका प्रमाण और सर्व-विधिसत्वका ब्रह्मतेजमय परम और हितकर प्रमाण देखकर आनन्द प्राप्त किया । सर्वमायाबहिर्भूत, सर्वमायाका निवर्त्तक, सर्वानन्दमय, ब्रह्मानन्दमय, पूर्णानन्दमय उत्तम ब्रह्मनिर्वाण और सर्वमायामय, सर्वविद्यामय, सर्वतपो-मय, सर्वसिद्धिमय, सर्वमुक्तिमय, सर्ववेदमय, सर्वलोकमय, सर्वभोगमय, सर्वशास्त्रमय, सर्वयोगमय आगम अवलोकन किया । इससे मेरी अज्ञाना-न्धसागरकी घोर रात्रि विगत हो गई । मैंने सूर्योदयोज्वल ज्ञानका दर्शन किया । मैंने महाकालीके प्रसादसे उन समस्त शास्त्रादिका अभ्यास किया । वह सब देखकर मैंने तत्काल सबका अभ्यास किया । इसमें सन्देह नहीं ॥ २५—२६ ॥

ततः किञ्जल्कपुञ्जेषु गत्वा दृष्टं मया किल ।
वर्ण पुञ्जमयं देवि सूर्यकान्तिसमप्रभम् ॥ २७ ॥
न्यायो मीमांसकं सांख्यं पातञ्जलं कथा पुनः ।
वैशेषिकं यथापूर्वं मया ज्ञातं हि तत्क्षणात् ॥ २८ ॥

फिर किंजल्कपुञ्जमें जाकर देखा कि, सूर्यकान्तिके समान प्रभासम्पन्न वर्णपुञ्जमय न्याय, मीमांसा, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक समस्त शास्त्रसे मैं तत्काल पूर्वके समान ज्ञात हुआ ॥ २७ ॥ २८ ॥

ततो वर्णावलीं दृष्ट्वा कर्णिकाप्रान्तदेशतः ।
शतसूर्यसमाभासां सर्वरञ्जनकारिणीम् ॥ २९ ॥
आयुर्वेदभिषग्वेदौ मयाभ्यस्तौ तदैव हि ।
तदन्तरे महादेवि दृष्टा वर्णावली शुभा ॥ ३० ॥

सहस्रादित्यसंकाशा शुद्धवर्णा महोज्ज्वला ।
स्मृतीनितिहासौ देवेशि पुराणानि मया पुनः ॥३१॥

तदनन्तर कार्णिकाके प्रान्तदेशमें सौ सूर्यके समान दीप्तिशालिनी सर्वरञ्जनकारिणी वर्णावली देखनेपर आयुर्वेद और भिषग्वेदका अभ्यास किया हे महादेवि ! वर्णावली देखनेके पीछे सहस्रादित्यसंकाश अर्थात् सहस्रों सूर्यके सदृश महोज्ज्वल शुद्ध समस्त वर्ण देखनेपर स्मृति, इतिहास ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मयाभ्यस्तं हि तत्सर्वं तत्क्षणान्नात्र संशयः ।
तथापि भ्रमदेहो मे न शुद्ध्यति कदाचन ॥ ३२ ॥

तदन्तरे मया दृष्टं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
ब्रह्मज्ञानं मया देवि ब्रह्मतेजःपरीवृतम् ॥ ३३ ॥

वेदान्तमिति विख्यातं वर्णपुञ्जं महत्प्रभम् ।
मयाभ्यस्तं तत्क्षणात्तु तन्महद्भ्रश्च मोहतः ॥ ३४ ॥

और समस्त पुराणोंका अभ्यास किया, इसमें सन्देह नहीं तथापि मेरे मनका भ्रम शांत नहीं हुआ । तदनन्तर करोड सूर्यके समान प्रभासम्पन्न ब्रह्मतेजःपरिवृत ब्रह्मज्ञानसंपन्न वर्णपुञ्ज महाप्रभायुक्त 'वेदान्त' इस नामसे विख्यात महाशास्त्रका मैंने तत्काल अभ्यास किया ॥ ३२–३४ ॥

तदन्तरे मया दृष्टं वर्णपुंजसमुज्ज्वलम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ ३५ ॥

सर्वज्ञानमयं देवि सर्वतीर्थमयं सदा ।
सर्वयज्ञमयं देवि सर्वधर्ममयं तथा ॥ ३६ ॥

प्रमाणं सर्वसत्त्वानां शास्त्रादीनां महेश्वरि ।
वेदचतुष्टयं सामाथर्वऋग्यजुरुत्तमम् ॥ ३७ ॥

मयाभ्यस्तं हि तत्सर्वं तत्क्षणान्नात्र संशयः।
तथापि न च तृप्तिर्मे जायते न च तत्क्षणात् ॥३८॥

तदनन्तर वर्णपुञ्जसे समुज्ज्वल, करोड सूर्यके समान दीप्तिमान्, करोड चन्द्रमाके समान शीतल, सर्वज्ञानमय, सर्वतीर्थमय, सर्वयज्ञमय सर्वधर्ममय, सर्वसत्त्व और सर्वशास्त्रका प्रमाणस्वरूप साम, अथर्व, ऋक् और यजुः इन अनुत्तम चारों वेदका मैंने तत्काल अभ्यास किया तो भी उनसे मेरी तृप्ति न हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सर्वज्ञानसर्वसत्वसर्वसिद्धिमयो ह्यहम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर मैंने सर्वज्ञानमय सर्वसत्त्वमय और सर्वसिद्धिमय होकर ३९॥

तदा नमस्कृतां देवि तस्त्वां कालीं सनातनीम्।
शिवाभिर्योगिनीभिश्च नृत्यन्तीं ब्रह्मरूपिणीम् ॥४०॥
स्थित्वा स्थित्वा संमुखे मे दृष्ट्वा श्रीमुखमण्डलम् ।
ततउड्डीनमासाद्य द्विदले चागतं मया ॥ ४१ ॥

वेदवेदान्तादि द्वारा नमस्कृत उन सनातनी ब्रह्मरूपिणी महाकाली देवीको शिवागण (गीदडी) और योगिनीगणोंके संग नर्तनशील अर्थात् नाचता हुआ देखा। वह रुक रुककर मेरे सामने नृत्य करने लगीं। फिर उनका श्रीमुखमण्डल देखकर मैं उडता हुआ द्विदलपद्ममें आया ॥ ४० ॥ ४१ ॥

आज्ञाचक्रभ्रुवोर्मध्ये महाकाल्या महेश्वरि ।
तदा मम स्मृतिर्जाता ब्रह्मविष्णुकृते पुनः ॥ ४२ ॥

हे देवि ! दोनों भौओंके मध्यस्थित महाकालीके आज्ञाचक्रके (इशारा करनेवाले) अवस्थितिकालमें ब्रह्मा और विष्णुका मुझको स्मरण हुआ ॥ ४२ ॥

तन्नृत्यसमये काल्या द्वयोश्चिबुकयोश्च्युतौ ।
स्वेदविन्दू महेशानि ताभ्यां जातौ गुणान्वितौ॥४३॥

हे देवि ! उन देवीके नृत्यकालमें कालीकी चिबुक (ठोडी) से दो बूंदे पसीनेकी गिरीं । उन दोनों बूंदोंसे गुणयुक्त ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च तौ दृष्ट्वा भयकम्पित विग्रहौ ।
तदा तौ च गतौ तूर्णं नासिकारन्ध्रयोर्द्वयोः ॥ ४४ ॥

ब्रह्मा और विष्णुका शरीर इन दोनोंको देखकर भयसे कांपने लगा वह तत्काल नासिकाके दोनों छिद्रोंद्वारा बाहर हो गये ॥ ४४ ॥

कल्यास्तदा ततो धाता पिङ्गलायां महेश्वरि ।
इडायाश्च ततो विष्णुस्तत्र गत्वा च तौ शुभौ ॥४५॥
महाविडम्बितौ भूतौ दृष्ट्वाश्चर्यमनेकशः ।
रुदन्तौ सततं देवि विस्मृतं किं भविष्यति ॥ ४६ ॥

फिर विधाता कालीकी पिंगला और विष्णु इडा नाडीमें गये । तब उन दोनोंने महाविडंबित भूतद्वय (दो प्राणियोंकी महातिरस्कारकी हुई आकृतियें) और अनेक आश्चर्य देखे । तदन्तर ब्रह्मा और विष्णु रुदन करने लगे । हे महादेवि ! तुम यह बातें कैसे भूलती हो ॥४५॥४६॥

एवमादि रुदन्तौ तौ प्रधावितावितस्ततः ।
तावीश्वरौ महेशानि महादुःखेन दुःखितौ ॥ ४७ ॥

इस प्रकार महादुःखसे दुखित होकर दोनों रोते हुए इधर उधर दौड़ने लगे ॥ ४७ ॥

ज्ञात्वा महा महेशानि प्राग्गतं विष्णुमन्दिरम् ।
तस्मै दत्तं मया ज्ञानं मन्त्रं परममङ्गलम् ॥ ४८ ॥

हे महेशानि ! मैंने यह जानकर प्रथम विष्णुके मंदिरमें जाय उनको परम मंगल ज्ञानमन्त्र दिया ॥ ४८ ॥

तत्क्षणान्मम तुल्योऽसौ वामाङ्गे केवलो मम ।
तस्मै दत्तं सर्वशास्त्रं वाङ्मात्रेणागमं विना ॥ ४९ ॥

यही वह तत्काल मेरे तुल्य होकर वामाङ्गमें रहे मैंने उनको आगमके अतिरिक्त समस्त शास्त्र वाङ्मात्र अर्थात् कथनसेही प्रदान किये ॥ ४९ ॥

गरुडस्थो महाविष्णुर्हृष्टपुष्टो बभूव ह ।
तमादाय गतस्तत्र ब्रह्माण्डे परमेश्वरि ॥ ५० ॥
गत्वा तस्मै मया दत्तं मन्त्रं परममद्भुतम् ।
महाज्ञानी महादेवि तत्क्षणात्सपितामहः ॥ ५१ ॥

वह विष्णु गरुडपर स्थित होकर हृष्ट पुष्ट होने लगे । हे परमेश्वरि ! मैंने विष्णुको ग्रहणकर ब्रह्माण्डमें प्रवेशपूर्वक ब्रह्माजीको परम अद्भुत मंत्र दिया । हे महादेवि ! उससे वह पितामह तत्काल महाज्ञानी हुए ॥ ५० ॥ ५१ ॥

मम तुल्यो जायतेऽसौ क्षणाङ्गे मम केवलः ।
स विधिः परमेशानि मम शासनतस्तदा ।
दत्वा तस्मै सर्वशास्त्रं वेदशास्त्रञ्च विष्णुना ॥ ५२ ॥

ब्रह्माजी मेरी समान होकर दक्षिण अंगमें स्थित रहे हे परमेशानि ! तब विष्णुने मेरी आज्ञासे विधाताको सर्वशास्त्र और वेदशास्त्र प्रदान किया ॥ ५२ ॥

गतव्यथस्तदा ब्रह्मा हृष्टः पुष्टः सदैव हि ।
अत आदिगुरुस्त्वं हि वर्त्तते मम सर्वदा ॥ ५३ ॥

फिर व्यथा दूर होनेपर ब्रह्माजी बराबर हृष्ट पुष्ट होने लगे । अत एव तुम सदाही मेरे आदिगुरु हो ॥ ५३ ॥

तदङ्गीकृत्य तज्ज्ञानं सह ताभ्यां महेश्वरि ।
परं काल्या मया यातं तेन तेन पथा ह्यनु ॥ ५४ ॥

हे महेश्वरि ! ब्रह्माजीके उस ज्ञानको अंगीकार करनेपर मैंने उनके सहित कालीके पीछे उस उस मार्गद्वारा गमन किया ॥ ५४ ॥

शिवाभिर्योगिनीभिश्च महानृत्यपरायणा ।
शतकोटिदिव्यवर्षं नृत्यंति स्म परात्मिका ॥ ५५ ॥

महाकाली शिवा और योगिनियोंके सहित सौ करोड़ दिव्य वर्ष महानृत्यमें आसक्त रहीं ॥ ५५ ॥

नानावाद्यमहोल्लासा नानालङ्कारगाथिका ।
चन्द्रसूर्यवह्निसौम्यैर्विचित्रैश्च प्रसूनकैः ॥ ५६ ॥
उत्थितैः पतितैः पुष्पैर्दिव्यगन्धैर्म्महोत्सुका ।
वीक्षणागोचरेदेवि सदा नृत्यपरा रहः ॥ ५७ ॥

वह परात्मिका काली अनेक प्रकारके बाजोंकी सहायतासे आनन्दका प्रकाश करने लगी । चन्द्र, सूर्य और अग्निके समान विचित्र दिव्य गंध (अतिशय सुगन्धित) और पतित तथा जो दृष्टिगत न होसके, उन कुसुमसमूहद्वारा क्रीडाशालिनी और अनेक प्रकारके गहनोंसे अलंकृत हो निर्जनमें निरन्तर नृत्य करनेलगीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

शतब्रह्माण्डसङ्काशैः पताकाभिश्च रंजिता ।
विचित्राभिश्च बहुभिर्दृष्ट्वा क्रान्ताभिरेव च ॥ ५८ ॥

शत शत ब्रह्माण्डके समान विचित्र अनेक पताकाओंके द्वारा वेष्टित होकर शोभा पाने लगी ॥ ५८ ॥

अतः स्तोतुं समाबद्धा वयं कालीं करालिकाम् ॥
साश्रुप्लुता गद्गदोक्त्या नतशीर्षाः पुटैः करैः ॥५९॥
तदादौ विधिरस्तौषीत्सर्वशास्त्रेण भक्तितः ।
कोटिवर्षं महेशानि तमुवाच तदा परा ॥ ६० ॥

इसके उपरान्त हम नेत्रोंमें जल भर गद्गद वचनसे हाथ जोड़ शिर नवायकर कालीकी स्तुति करने लगे । पहिले ब्रह्माजीने भक्तिपूर्वक सर्वशास्त्रद्वारा स्तुति करी । तब महाकालीने करोड वर्ष पीछे ब्रह्मानीसे कहा ॥ ५९ ॥ ६० ॥

यद्गुणस्त्वमहो धातः सर्वशास्त्रार्थविद्यतः ।
अनुसन्धानवेत्तासि सृजकस्त्वं सदा भव ॥ ६१ ॥

हे धातः ! तुम अनुसन्धानवेत्ता अर्थात् मर्मके जानने वाले और समस्त शास्त्रोंका अर्थ जाननेवाले हो इसकारण तुम सृष्टि करो ॥ ६१ ॥

इत्याज्ञप्तस्ततो धाता कृतकृत्योऽभवत्तदा ।
ततोऽस्तौषीन्महाविष्णुः सर्ववेदेन शाम्भवि ॥ ६२ ॥

ब्रह्माजी इस प्रकार आज्ञाको प्राप्त होकर कृतकृत्य हुए फिर महाविष्णु सर्ववेदद्वारा उन परमा महाकालीकी स्तुति करने लगे ॥ ६२ ॥

दशकोटचयनानां च ततस्तमब्रवीच्छिवा ।
वेदज्ञोऽसि महाविष्णो मद्भक्तोऽसि गुणालयः ।
धर्मज्ञोऽसि च लोकं त्वं भव सृष्टेर्विवर्द्धकः ॥ ६३ ॥

हे महेशानि ! दश करोड वर्ष पीछे शिवाने उनसे कहा हे महविष्णो ! तुम वेदज्ञ मेरे भक्त, गुणालय और धर्मके जाननेवाले हो, अतएव तुम पालक होकर सृष्टिको बढाओ ॥ ६३ ॥

इत्याज्ञाञ्च शिरे कृत्वा कृतार्थोऽसौ जगद्धितः ।
ततोऽहं परमां नित्यां कालीं ब्रह्मसनातनीम् ॥ ६४ ॥
तुष्टाव परया भक्त्या आगमेन महेश्वरि ।
विंशत्कोटिवत्सराणां मामुवाच तदा तु सा ॥ ६५ ॥

इस जगत्के हितकारी विष्णु कालीकी यह आज्ञा मस्तकपर धारण करके कृतार्थ हुए। इसके उपरान्त मैं उन परमा, नित्या ब्रह्म सनातनी कालीकी आगमनद्वारा परम भक्तिसहित स्तुति करने लगा बीस करोड वर्ष पीछे उन महाकालीने मुझसे कहा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

काल्युवाच ।

आगमज्ञो महाप्राज्ञो निर्म्मायोऽसि सदाशिव ।
सगुणस्त्वं महायोगी सृष्टिसंहारको भव ॥ ६६ ॥

महाकालीने कहा—हे सदाशिव ! तुम आगम, महाप्राज्ञ, निर्माय (मायारहित) सगुण और महायोगी हो इस कारण तुम सृष्टिके संहारक होओ ॥ ६६ ॥

एवमाज्ञां शिरे कृत्वा पुनस्तुष्टाव तामहम् ।
पञ्चकोटिदिव्यवर्षं मामुवाच ततस्तु सा ॥ ६७ ॥
आगमे संस्तुता तेऽहं तुष्टातेऽस्मि सदाशिव ।
किं प्रार्थ्यते महादेव ददामि नात्र संशयः ॥ ६८ ॥

मैं यह आज्ञा मस्तकपर धारण करके फिर उनकी स्तुति करने लगा-पांच करोड दिव्यवर्षके पीछे मुझसे कहा । मैं तुमसे आगमद्वारा स्तुतिको प्राप्त हुई हूं, हे सदाशिव ! तुम क्या प्रार्थना करते हो, मैं तुमको वही दूंगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

ईश्वर उवाच ।

तिष्ठामि सततं मातस्त्वदीये चरणाम्बुजे ॥ ६९ ॥

ईश्वरने कहा—हे माता ! मैं तुम्हारे चरणकमलोंमें सदा स्थितरहूं यही मेरी वासनाहै ॥ ६९ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

घोरनाम्ना दानवेन यादृग्युद्धं कृतं मया ।
तत्कोटिकोट्यंशयुद्धं करिष्यत्येव यो मया ॥ ७० ॥
महिषीगर्भसंभूतस्तव रेतःसमुद्भवः ।
भविष्यति स देवेश महिषासुरनामधृक् ।
आसुरं भावमासाद्य महायुद्धं करिष्यसि ॥ ७१ ॥

श्रीमहाकालीने कहा–मैंने घोर नामक दानवके संग जिस प्रकार युद्ध किया है, तुम्हारे शुक्रसंभूत, महिषीके गर्भसे उत्पन्न जो असुर इस युद्धका करोड करोड अंश युद्ध करेगा, महिषासुरनामधारी वही असुर होगा ॥ ७० ॥ ७१ ॥

तदा तं नाशयित्वाहं भद्रकालीस्वरूपतः ।
वामाङ्गुष्ठं पदाब्जस्य स्थापयिष्यामि ते हृदि ॥७२॥

तब मैं उसको भद्रकालीरूपसे मारकर चरणकमलका बांया अंगूठा तुम्हारे हृदयपर रक्खूंगी ॥ ७२ ॥

इदानीं च महादेव मम पादतले सदा ।
तिष्ठ त्वं शवरूपेण मम ह्यासनतां व्रज ॥ ७३ ॥

हे महादेव ! अब तुम शवरूपसे मेरे आसनस्वरूप होओ और मेरे चरणोंके नीचे स्थित रहो ॥ ७३ ॥

इत्याज्ञप्तो महादेव्या पतितः पदसन्निधौ ।
दण्डवत्प्रणिपातेन लक्षवर्षं गतस्तदा ॥ ७४ ॥

देवीकी इस प्रकार आज्ञा पाकर मैं देवीके पदतलमें पड़ा रहा । दण्डवत् प्रणाममें लाख वर्ष बीत गये ॥ ७४ ॥

तत्रैवान्तरगात्काली चिद्रूपा ब्रह्मनिष्कला ।

इत्यवं कथितं तुभ्यं योगिन्युत्पत्तिविस्तरम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वेषां साधनोत्तमम् ॥ ७५ ॥

तदनन्तर चित्स्वरूपा ब्रह्मविग्रहा काली उसी स्थानमें अन्तर्धान हो गई । हे देवि ! मैंने तुमसे योगिनीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तार सहित कहा । सर्व प्रयत्नसे इसको सदा गुप्त रखना चाहिये ॥ ७५ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति-साहस्रे भाषाटीकायां नवमः पटलः ॥ ९ ॥

ईश्वर उवाच ।

उत्थाय च पुनर्देवी न सा दृष्टा मया पुनः ।
कथयन्भृशदुःखार्तो निमग्नः शोकसागरे ॥ १ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! हमने उठकर फिर उन महाकालीको नहीं देखा तब शोकसागरमें निमग्न हो गये ॥ १ ॥

हा मातस्ते मुखाम्भोजं कोटिचन्द्रार्कन्यक्कृतम् ।
कीदृक् चरणराजौ ते कृपासागरसञ्चयम् ॥ २ ॥
विस्तृतं परमं रूपं महामायाविमोहनम् ।
किम्भूतं नखचन्द्राणां ज्योतिः परममंगलम् ॥ ३ ॥
कोटिकोटिनिशानाथविगलन्मुखमण्डलम् ।
किम्भूतं किं भवेन्मातः क्व यातमिदमद्भुतम् ॥ ४ ॥
हा हा मातरिदं रूपं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
अस्माकं मातृभावेन न पश्यामः पुनश्च ताम् ॥५॥

(और अत्यन्त दुःखार्त्त होकर उनसे कहने लगे) हा मातः ! आपका मुखकमल करोड करोड चन्द्रमाका तिरस्कार करता है, तुम्हारे चरण करुणाके सागर और विस्तारित हैं, महामायाके भी विमोहन और

परमरूपसम्पन्न हैं, आपके नखचन्द्रका मंगलकर ज्योतिः अनिर्वचनीय है, हे मातः ! क्या हुआ ? क्या होगा ? वह अद्भुतरूप कहां गया ? हा हा माता ! तुम्हारा वह रूप सच्चिदानन्द और अव्यय है, हम मातृभावसे अब उसको नहीं देखते ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

मातृतातविहीनाश्च भ्रमन्ति बालका यथा ।
रुदित्वा च रुदित्वा च वयं सर्वे तथाह्वयन् ॥ ६ ॥
इत्यादिविविधैर्देवि विलापैः परमेश्वरि ।
नीता वयं पञ्चलक्षं वर्षाणामम्बुजेक्षणे ॥ ७ ॥
रुदित्वा पुनरुत्थाय रुदन्तो भृशमुच्चकैः ।
मातर्माता क्व याता त्वमस्माकं किं भविष्यति ॥८॥

पिता माता हीन बालक जिस प्रकार रोते फिरते हैं, हमारी भी वही अवस्था हुई है, हे परमेश्वरि ! हे देवी ! हे कमलेक्षणे ! इस प्रकार अनेक विलापोंमें हमारे पांच लाख वर्ष बीत गये । एक वार रोते हुए गिरें और फिर उठकर हे मातः ! तुम कहां गई ? हमारी क्या दशा होगी ? इस प्रकार चिल्लाकर रोने लगे ॥ ६—८ ॥

वयन्ते कथमुत्पाद्य निक्षिप्ता दुस्तरार्णवे ।
दयानास्ति ह्यहो मातर्वयन्ते दीनबालकाः ॥ ९ ॥
न पालयसि चेदस्मान्कोवाऽस्मान्पालयिष्यति ।
त्वां विना जननी नास्ति नास्माकं तात एव च॥१०
त्वामदृष्ट्वा मरिष्यामः सत्यमेव सुनिश्चितम् ।
मातृताताविहीनस्य बालकस्य च जीवनम् ॥ ११ ॥
कथं भवति हे मातर्ज्ञायतां स्वयमेव हि ।
निरुत्सुका ह्यस्माकं कृपा तस्यास्तदा भवेत् ।
सोवाच योगिनी वाणीं महामृतप्रवर्षिणीम् ॥ १२ ॥

आपने हमको उत्पन्न करके दुस्तर दुःखसागरमें क्यों फेंक दिया ? अहो मातः ! हम तुम्हारे दीन बालक हैं, तुमको क्या कुछ भी दया नहीं है यदि आप हमारा पालन नहीं करेगीं, तो हमारा प्रतिपालन और कौन करेगा ? तुम्हारे अतिरिक्त हमारे माता पिता कोई नहीं है, तुमको न देखनेसे हम सत्य ही मरजॉयगे । इसमें सन्देह नहीं । हे मातः ! आप स्वयं ही विचार करके देखिये कि, माता पिता हीन बालकका जीवन किस प्रकार हो सकता है ? हमारा हृदय इस प्रकारसे शोकसंतप्त और निरुत्सुक देखकर वह योगिनी (महाकाली) महामृतवर्षिणी वाणी कहने लगे ॥ ९–१२ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

मा भयार्त्ता महेशानब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
तिष्ठामि सततं देवा नित्याहुरहमव्यया ॥ १३ ॥

श्रीकालीने कहा–हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! हे महेश्वर ! तुम भयसे दुःखी मत होओ । मैं सदा ही स्थित रहती हूं, मैं नित्या और अव्यया हूँ १३॥

सच्चिदानन्दरूपाहं ब्रह्मैवाहं स्फुरत्प्रभम् ।
मम नाशो नास्ति कदा निःसन्देहास्तु तिष्ठत ॥१४॥

मैंही सच्चिदानन्दरूप और मैंही प्रकाशित कान्तियुक्त ब्रह्म हूं. मेरा नाश कभी नहीं है, मैं सदा स्थित रहती हूं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥

यद्रूपं दृष्टमस्माकं युष्माभिः परमं मतम् ।
ध्यात्वा यद्रूपममलं जपं कुरुत मे मनुम् ॥ १५ ॥

तुमने मेरा जो परम निर्मल रूप देखा है, उसी रूपका ध्यान करके मेरा मंत्र जपते रहो ॥ १५ ॥

तदेव मङ्गलं लाभं भविष्यति महाप्रभम् ।
इदानीं ब्रह्मणो देहे विश विष्णो स्थिरो भव ॥ १६ ॥

तो तुमको परम मंगल प्राप्त होगा, अब हे विष्णो ! तुम ब्रह्माजीके देहमें प्रवेश करके स्थिर रहो ॥ १६ ॥

अहो महेश देवेश ब्रह्मदेहे प्रविश्य तु ।
यावत्सृष्टिं कुरुष्वेश चेमां ज्ञानाक्रियामयीम् ॥ १७ ॥

अहो महेश देवेश ! तुम भी ब्रह्माजीके शरीरमें प्रवेश करो । जबतक ईश्वर ज्ञान क्रियामयी सृष्टिका आरम्भ न करैं, तब तक इनके देहमें वास करो ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा सा महाकाली ददावस्मासु शाम्भवि ।
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः सर्वकार्यार्थसाधिनी ॥ १८ ॥

ईश्वरने कहा—हे शाम्भवि ! उन महाकालीने यह कहकर हमको सर्व कार्योंकी साधन करनेवाली इच्छा ज्ञान और क्रियामयी शक्ति दी ॥ १८ ॥

इच्छा तु विष्णवे दत्ता क्रियाशक्तिस्तु ब्रह्मणे ॥
मह्यं दत्ता ज्ञानशक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ १९ ॥
तदोवाच महाकाली शृणुध्वं परमेश्वरि ॥
अहं विशामि युष्मासु पूर्णरूपेण शंकरे ॥ २० ॥
अयमेव गुरुर्देवः श्रीशिवः परमेश्वरः ॥
अयं हि वक्ता शास्त्राणां नात्यन्योऽपि विधिर्हरिः॥२१

विष्णुको इच्छा शक्ति ब्रह्माको क्रिया शक्ति औ मुझको ज्ञान शक्ति देकर हे देवी ! उन सर्वशक्तिरूपिणीने हमसे कहा—हे परमेश्वरगण ! मैंने तुम सबहीमें प्रवेश किया है, किन्तु महादेवमें पूर्णरूपसे प्रवेश किया यह शंकर ही गुरुदेव श्रीशिव और परमेश्वर हैं । यही सब शास्त्रोंके वक्ता हैं विधाता वा हरि दूसरा कोई नहीं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

श्रोत्रियाहं हि युष्माकं सर्वेषां नात्र संशयः ।
मोहयिष्यामि ब्रह्माणं विष्णुं वापि महेश्वरम् ॥ २२॥

मैं तुम सबकाही श्रोत्रिया अर्थात् वेदपाठिका हूं इसमें सन्देह नहीं मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरको मोहित करूंगी ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा सा महाकाली ह्यस्मासु च विवेश ह ।
अहञ्च माधवे देहे प्रविष्टो ब्रह्मणस्तदा ॥ २३ ॥

ईश्वर बोले—यह कहकर वह महाकाली हममें प्रविष्ट हुई । तब मैं भी माधव और विधाताके देहमें प्रविष्ट हुआ ॥ २३ ॥

ततस्तं मोहयामास ब्रह्माणं ब्रह्मविग्रहम् ।
ततो ब्रह्मा स्वयं ज्ञात्वा स्वयं जुहोति चाव्ययाम्२४॥
स्वयम्भूरिति विख्यातं तदा प्रोक्तो न संशयः ।
किं करोमि क्व गच्छामि इति चिन्तासमाकुलः॥२५॥
एवमेव विधाता सा व्युषित्वा परिवत्सरम् ।
जलमेव ससर्जादौ व्यापकं परमं महत् ॥ २६ ॥

फिर ब्रह्माजीने ज्ञानको प्राप्त होकर स्वयं अव्यया महाकालीका होम किया, इसी कारण ब्रह्मा 'स्वयम्भू' नामसे विख्यात हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं । फिर ब्रह्माने 'कहां जाऊं ? क्या करूं ? इसी चिन्तामें आकुल हो संवत्सर इसी प्रकार वासकर प्रथम सर्वव्यापक परम महत् जलकी सृष्टि करी ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

गुणाभिमानं तत्तोयं कारणार्णवमुल्बणम् ।
तत्र स्थित्वाहेमरूपमसृजद्वीर्यसञ्चयम् ॥ २७ ॥

वह जल गुणाभिमान संपन्न और वह जल ही महोद्धत कारणार्णव है उस कारणार्णवमें ही ब्रह्माने हेमरूप वीर्यसञ्चय सृजन किया ॥ २७ ॥

तद्वीर्यं बुद्बुदं यावदनीकं जातमन्तिके ।
तत्तद्ब्रह्माण्डमाख्यातं प्लवते कारणार्णवे ॥ २८ ॥

वह वीर्य बुद्बुदाकारमें (जलके फेनकी आकृतिमें) उत्पन्न हुआ वही 'ब्रह्माण्ड' नामसे विख्यात होकर कारणार्णवमें प्लवमान (कारण रूप सागरमें तैरनेवाला) हुआ ॥ २८ ॥

तत्तद्ब्रह्माण्डरक्षार्थं ब्राह्मणानां वियोगनाम ।
करोमि सततं देवि रुद्रमूर्तिधरः स्वयम् ॥ २९ ॥

हे देवि ! मैं स्वयं रुद्रमूर्ति धारणपूर्वक ब्रह्माण्डका रक्षण और वियोग कार्य सदा संपादन करता हूं ॥ २९ ॥

शूलपाणिर्महादेवि प्रतिब्रह्माण्डपार्श्वतः ।
एकैकरुद्ररूपेण तिष्ठामि सततं शिवे ॥ ३० ॥

हे शिवे महादेवि ! मैं प्रतिब्रह्माण्डके पार्श्वमें एक एक रुद्रमूर्ति धारण पूर्वक शूलपाणि होकर सदा वास करता हूँ ॥ ३० ॥

यथा ब्रह्माण्डयोश्चापि संयोगो जायते न हि ॥
तथा करोमि सततं स्थित्वा तत्कारणार्णवे ॥ ३१ ॥

और उस कारणार्णवमें अवस्थान करके जिससे दो ब्रह्माण्डोंका संयोग न हो सदा वही करता हूं ॥ ३१ ॥

एवमेव वयं सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
प्रतिब्रह्माण्डमध्ये तु प्रातिष्ठन्नात्र संशयः ॥ ३२ ॥
ततो ब्रह्मा जगद्धाता प्रतिब्रह्माण्डमध्यतः ।
प्रविश्यैकैकरूपेण ह्यन्यतत्त्वचतुष्टयम् ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर हम सर्व प्रतिब्रह्माण्डमें इसी प्रकार अवस्थान करते हैं इसमें सन्देह नहीं । फिर जगद्धाता ब्रह्माजी प्रतिब्रह्मांडमें प्रवेश-पूर्वक एक एक रूपमें अन्य चार तत्त्व ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

भूमिमग्निं तथा वायुमाकाशञ्च ससर्ज्ज सः ।
एतैस्तु पञ्चभिस्तत्त्वैः सर्व्वां सृष्टिमकारयत् ॥ ३४ ॥
ततस्तु भगवान्विष्णुः स्वेच्छया ब्रह्मणस्तदा ।
ब्रह्मदेहात्समुद्भूय पालयामास त्वां सदा ॥ ३५ ॥

अर्थात् भूमि, अग्नि, वायु और आकाश सृजन करते हैं इन पांच तत्त्व अर्थात् पंच परमाणु द्वारा वह समस्त सृष्टिकार्य संपन्न होता है । तदनन्तर भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे ब्रह्मदेहसे उत्पन्न होकर उस सृष्टिका सदा पालन करते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

सृष्टिर्ब्रह्माज्ञया देवि प्रतिब्रह्माण्डमध्यतः ।
पृथक् पृथक् समास्थाय विष्णुरूपं ममाभुजम् ॥३६॥
प्रतिब्रह्माण्डमध्ये तु संहरामि पुनः पुनः ।
अहं हि परमेशानि ब्रह्मदेहं समाश्रितः ॥ ३७ ॥

हे देवि ! ब्रह्माकी आज्ञासे सृष्टि हुई । मैं प्रति ब्रह्मांडमें पृथक् पृथक् महाभुज विष्णुरूपसे अवस्थान करके पालन और रुद्र रूपसे वारंवार संहार करता हूं । हे परमेशानि ! मैं ही ब्रह्मदेहका आश्रय करता हूं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

एवं किञ्चिन्न स्मरसि त्वं हि किञ्चिन्महेश्वरि ।
सर्वकार्यं ममैवैतज्जानाति हि जगन्निधिः ॥ ३८ ॥

हे महेश्वरि ! क्या तुमको कुछभी स्मरण नहीं है ! हे देवि ! यह सब कार्य मेरे ही जानने चाहिये । मुझमेंही जगत् अवस्थित है ॥ ३८ ॥

जलादिसकलं तत्त्वं ब्रह्माण्डादिकविस्तरम् ।
देवादिसकलं देवि दिग् विदिक्च चराचरम् ॥ ३९ ॥
कार्यञ्च कारणं देवि तथा विष्णोः समुद्भवः ।
सर्वं जानाति हि ब्रह्मा मत्कृतं मायया पुनः ॥ ४० ॥

सब जलादि तत्त्व और ब्रह्माण्डादि समस्त विस्तार संपूर्ण देवादि दिशा विदिशा एवं चराचर कार्य और कारण, तथा विष्णुकी उत्पत्ति यह समस्त ही ब्रह्माजीको मेरी मायासे अवगत है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

किन्तु सर्वं हि मिथ्यैव मातुर्माया हि केवलम् ।
तां मायां हि भजन्ते ये तत्परं यान्ति ते नराः॥४१॥

किन्तु हे देवि ! यह सभी मिथ्या है । केवल शक्तिमाताकी माया जाने । जो मनुष्य उस मायाको भजता है, वह इस मायाके पार हो सकता है ॥ ४१ ॥

तुष्टा सा परमा माया मुक्तिमात्रं प्रयच्छति ।
रुष्टा सा परमा माया भूमियोगं प्रयच्छति ॥ ४२ ॥

यदि परमा माया सन्तुष्ट हों तो वह निःसंदेह मुक्ति पाता है । यदि वह माया रुष्ट हो तो भूमियोग अर्थात् योनियोग प्रदान करती हैं ॥४२॥

तस्याः पादाम्बुजे देवि वश्या मुक्तिः समाश्रिता ।
यस्य तुष्टा महादेवी मम माता महेश्वरि ॥ ४३ ॥
ददौ तस्यै च तां मुक्तिं महामाया च शाङ्करि ॥४४॥

उनके चरणकमलोंमें मुक्ति वश्या रहकर उनको आश्रय कर रही है वह महामाया मेरी माता महाकाली जिसपर संतुष्ट होती है, उसीको वह मुक्ति देती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं हि सकलं देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।
अश्रुतं परमं तत्त्वं ब्रह्मादीनामगोचरम् ॥ ४५ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यत्प्रोक्तं कारणार्णवम् ।
किमाधारं महादेव तदाधारश्च किं वद ॥ ४६ ॥
सीमानं वद देवेश यदि स्नेहोपि मां प्रति ॥ ४७ ॥

चाहिये । बहुत जन्म बीतनेपर यदि कोई सुने, तो वह मुक्त होता है उसको फिर संसारमें जन्म लेना नहीं होता ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इत्येवं कथितं तुभ्यं गोपयस्व स्वयोनिवत् ।
यथान्यो लभते नैव तथा कुरु प्रयत्नतः ॥ ५९ ॥

यह मैंने तुमसे सब वर्णन किया । इसको अपनी योनिकी समान गुप्त रक्खे । जिससे इसको कोई दूसरा न ले सके, अत्यन्त यत्नपूर्वक वही करे ॥ ५९ ॥

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ।
गोपनीय प्रयत्नेन मम सर्वस्वमुत्तमम् ॥ ६० ॥

उसको यत्नपूर्वक गोपनीय, गोपनीय गोपनीय जानना । मेरा यह उत्तम सर्वस्वधन गोपनीय है ॥ ६० ॥

दद्याच्छान्ताय धीराय योगिने कुलयोगिने ।
ज्ञानिने देवदेवेशि अन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ६१ ॥

शान्त, धीर योगी, कुलयोगी, ज्ञानी, इन सब मनुष्योंको देना चाहिये । इसके अन्यथा होनेसे नरकमें जाता है ॥ ६१ ॥

कथितं सारभूतं ते खेलत्खञ्जनलोचने ।
ब्रह्मज्ञानं मया देवि किं भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ ६२ ॥

हे खेलतखञ्जनलोचने ! हे देवि ! हे देवदेवेशि ! मैंने सारभूत ब्रह्मज्ञान तुमसे कहा । अब अधिक और क्या सुनना चाहती हो ॥६२॥

नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते मम मानसे ।
गोपनीयं सदा भद्रे पशुपामरसन्निधौ ॥ ६३ ॥

इसकी अपेक्षा उत्कृष्टतर अन्य कुछ भी मेरे हृदयमें नहीं है इसको पशु और पामरसे छिपावे ॥ ६३ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्बादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां दशमः पटलः ॥ १० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदानवगन्धर्वसुरेशपरिपूजित ॥
गणेशनंदिचन्द्रेशगोविन्दविधिवन्दित ॥ १ ॥

श्रीदेवीने कहा—हे देवदानवगन्धर्वसुरेशपूजित ! हे गणेशनन्दिचन्द्रेश गोविन्दविधिवंदित ! ॥ १ ॥

योगीन्द्रवन्दितपद सर्वलोकगुरो हर ।
या प्रोक्ता परमा विद्या काली कलुषनाशिनी ॥ २ ॥
यद्यन्मन्त्रं साधनं च पूजनं च पुरस्क्रियाम् ।
मुद्रां बलिं तथा होमं भावं स्थानं तथैव च ॥ ३ ॥
ध्यानं स्तोत्रं च कवचं श्रुतमस्याः पुरा मया ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि स्थानभेदं महेश्वर ॥ ४ ॥

हे योगीन्द्रवंदितपद, सर्वलोकगुरो, परमेश्वर, शंकर, हर ! आपने जो कलुषनाशिनी परमा कालीविद्या और जो जो मन्त्रसाधन, पूजन, पुरस्क्रिया मुद्रा, बलि, होम और भाव एवं स्थान ध्यान स्तोत्र और कवच इत्यादि कहा, वह मैंने सब सुना । अब हे महेश्वर ! मैं स्थानभेद सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

कुत्र वा प्राप्यते मोक्षः कुत्र वा सिद्धिरुत्तमा ।
झटित्येवं महादेव कृपया वद शङ्कर ॥ ५ ॥

कहां मुक्ति प्राप्त हो जाती है, कहां तत्काल उत्तमा सिद्धि लाभ होती है. हे महादेव शंकर ! यह आप कृपा पूर्वक कहिये ॥ ५ ॥

यदाश्रितो द्रुतं लोकःस्वकार्यफलभाग्भवेत ।
प्रयासस्य च बाहुल्यं हित्वा हि परमेश्वर ॥ ६ ॥

हे परमेश्वर ! मनुष्य अत्यन्त परिश्रमके विना ही जिसका आश्रय करके शीघ्र स्वकार्यका फल भोगें, वह वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

श्रीदेवीने कहा—हे महेश्वर ! मैंने आपके प्रसादसे सब ही सुना अब जो ब्रह्मादिकको भी ज्ञात नहीं, वह सब अश्रुत वृत्तान्त सुननेकी इच्छा करती हूं । आपने जिस कारणार्णवकी कथा कही, वह किसके आधारसे विद्यमान है वह आधार और उसकी सीमाका वर्णन कीजिये । हे देव ! यदि मुझपर स्नेह हो तो वह सब कहकर मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं शुभम् ।
अतिगोप्यं सुगोप्यं हि ब्रह्मविष्ण्वाद्यगोचरम् ॥ ४८ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! ब्रह्मादिके अगोचर गुह्यसे भी गुह्य अतिगोप्य सुगोप्य शुभकर विषय कहता हूं सुनो ॥ ४८ ॥

महार्णवो भवेद्देवि महाकालो महेश्वरः ॥
शून्यरूपं हि क्रीडार्थं भर्त्तारं पर्य्यकल्पयत् ॥ ४९ ॥
सैव काली जगन्माता महाकालतुला तु सा ॥
भूत्वार्द्धतेजसीरूपा महाकालश्च बिभ्रति ॥ ५० ॥

हे देवि ! महार्णवमें महाकाल महेश्वरका स्वरूप उन जगन्माता कालीने क्रीडाके लिये भर्त्ताकी शून्यरूपमें कल्पना की । उन जगन्मातानें ही महाकालके समान होकर अर्द्धतेजोरूपसे महाकालको धारण किया है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

शून्यरूपा कृष्णवर्णा मता स्यादूर्ध्वतेजसी ।
सीमा पृष्टा त्वया देवि सैव ब्रह्मैव केवलम् ॥ ५१ ॥

वही शून्यरूपा, कृष्णवर्ण और ऊर्ध्वतेजसी कही हैं । हे देवि ! तुम सीमा पूछती हो सीमा केवल ब्रह्मको ही जानो ॥ ५१ ॥

तेजोरूपं ब्रह्मतेजः प्रकाशरूपकन्तथा ।
तत्प्रकाशं महादेवि व्याप्यव्यापकवर्जितम् ॥ ५२ ॥

तेजोरूप, ब्रह्मतेज और प्रकाशस्वरूप वह प्रकाश व्यापक तथा अव्यापकवर्जित है ॥ ५२ ॥

नाधेयश्चैव नाधारमद्वितीयं निरन्तरम् ।
इदं हि सकलं देवि सर्वं मायामयं पुनः ॥ ५३ ॥

उस प्रकाशका आधेय और आधार नहीं हैं, वह निरन्तर अद्वितीय है, हे देवि ! यह सभी मयामय है ॥ ५३ ॥

मिथ्यैव सकलं देवि सत्यं ब्रह्मैव केवलम् ।
इदं हि कथितं तुभ्यं सारात्सारं परात्परम् ॥ ५४ ॥
गुह्याद्गुह्यतरं गुह्यं गुह्याद्गुह्यं महेश्वरि ।
इदं हि परमं ज्ञानं सर्वमायानिकृन्तनम् ॥ ५५ ॥

हे देवि ! सभी मिथ्या है, केवल ब्रह्म ही सत्य है हे महेश्वरि ! यह मैंने तुमसे सारसे भी सार, परसे भी पर, गुह्यसे भी गुह्यतर सर्व मायानिकृन्तन परम ज्ञानका विषय कहा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

सर्वज्ञानमयं भेदं महामार्त्तण्डविग्रहः ।
कोटिकोटिमहादानात्कोटिकोटिमहातपात् ॥ ५६ ॥
कोटिकोटिमहाज्ञानात्कोटिकोटिमहाव्रतात् ।
कोटिकोटिमहातीर्थादवगाहेन चेश्वरि ॥ ५७ ॥
बहुजन्मव्यतीते तु शृणोति यदि कर्हिचित् ।
तदा मुक्तो भवेद्देवि संसारे न पुनर्भवेत् ॥ ५८ ॥

महामार्तण्डविग्रह सब ज्ञानमय भेदमात्र अर्थात् देदीप्यमान सूर्यके समान और ज्ञानद्वार जिसका भेद प्रतीत हो हे महेश्वरि ! करोड करोड महादानसे करोड करोड महातपसे, करोड करोड महाज्ञानसे करोड करोड महाव्रतसे करोड करोड महातीर्थावगाहनसे भी इस ज्ञानको उत्तम जानना

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्थानं परमदुर्लभम् ।
द्रुतसिद्धिकरं देवि महामोक्षफलप्रदम् ॥ ७ ॥

ईश्वरने कहा—हे देवि ! शीघ्रसिद्धिकर, महामोक्षफलप्रद, परम दुर्लभ थानका वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७ ॥

कालिकायाः श्मशानाद्धि नान्यत्स्थानं प्रशस्यते ।
तत्र यद्यत्कृतं कर्म तदनन्तफलं लभेत् ॥ ८ ॥

कालिकाका श्मशानसे श्रेष्ठ दूसरा कोई स्थान नहीं है, वहां जो जो कर्म किया जाता है वह अनन्त फल देनेवाला होता है ॥ ८ ॥

तत्र चैका पुरश्चर्य्या कृता चेत्परमेश्वरि ।
न तु मैवं महादेवि भावयुक्तः सशक्तिकः ॥ ९ ॥
अवश्यं मन्त्रसिद्धिः स्यान्नात्र चित्रं कथंचन ।
अनन्तफलदा पूजा सर्वत्रैव जले स्थले ॥ १० ॥

हे परमेश्वरि ! हे महादेवि ! वहां भावयुक्त और भक्तियुक्त होकर पुरश्चरण करने पर उसके समान अन्य कार्य नहीं हैं उसके द्वारा अवश्यही मन्त्रसिद्धि होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ! जलमें व स्थलमें सवर्त्रे ही ॥ ९ ॥ १० ॥

दिव्यभावेन वा देवि वीरभावेन चेद्भवेत् ।
शाक्तं वा वैष्णवं वापि शैवं वान्यं तथा पुनः ॥ ११ ॥
वाराणस्यां जपेद्यावन्मासमात्रं वरानने ।
प्रातः कालं समारभ्य यावन्मध्यन्दिनं भवेत् ॥ १२ ॥
अवश्यं मन्त्रसिद्धिः स्यात्सत्यमेव सुसिद्धिदे ।
निर्वाणं तस्य देवेशि त्ववश्यं जायते शिवे ॥ १३ ॥

दिव्यभाव वा वीरभावसे पूजा करनेपर अनन्त फलप्रदान करती है। हे सुसिद्धिप्रदे शंकरि ! शाक्त हों वा वैष्णव हों, वाराणसीमें प्रातः समयसे आरम्भ करके मध्य दिनपर्यन्त केवल एक महीने जप करनेपर अवश्य ही मन्त्रसिद्धि होती है वह निःसन्देह सत्य जानना। हे देवेशि शिवे ! उसको अवश्य ही निर्वाणमुक्ति होती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

महाश्मशानं देवेशि आनन्दकाननं तथा।
अविमुक्तं महादेवि तथा गौरीमुखं पुनः ॥ १४ ॥

हे अमरेश्वरि ! महादेवी ! महाश्मशान, आनन्दकानन, अविमुक्त और गौरीकानन ॥ १४ ॥

वाराणसी महाक्षेत्रं कालीरूपं परात्परम्।
तत्र यद्यत्कृतं देवि किं तस्य कथयामि ते ॥ १५ ॥

तथा वाराणसी, यह परात्पर कालीरूप महाक्षेत्र है, वहां जो जो कर्म किया जाता है उसका फल प्रकाश करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है ॥ १५ ॥

कामरूपे महापूजा सर्वसिद्धिफलप्रदा।
नेपालस्य कांचनाद्रिं ब्रह्मपुत्रस्य सङ्गमम् ॥ १६ ॥

कामरूपमें महापूजा करनेसे सर्वप्रकारकी सिद्धि और सर्वफल प्राप्त होता है। नेपालका कांचनगिरि, ब्रह्मपुत्र संगम ॥ १६ ॥

करतोयां समाश्रित्य यावद्दिक्करवासिनी।
उत्तरस्यां कञ्जगिरिः करतोयात्तु पश्चिमे ॥ १७ ॥

करतोयासे दिक्करवासिनीपर्यन्त और उत्तरमें कञ्जगिरि और तीर्थश्रेष्ठ करतोयाके पश्चिममें ॥ १७ ॥

तीर्थश्रेष्ठा दिक्षु नदी पूर्वस्यां गिरिकन्यके ।
दक्षिणे ब्रह्मपुत्रस्य लाक्षायाः सङ्गमावधि ।
कामरूप इति ख्यातः सर्वशास्त्रेषु निश्चितः ॥ १८ ॥

इक्षुनदीपर्यन्त, पूर्वदिशामें गिरिकन्यकापर्यन्त और दक्षिणमें ब्रह्मपुत्र और लाक्षा नदीके संगमपर्यन्त स्थान कामरूपके नामसे सब शास्त्रोंमें निश्चित है ॥ १८ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकर्तुं यस्य चित्तं प्रसीदति ।
स गच्छेत्परया भक्त्या कामाख्यायोनिसन्निधिम् ॥ १९

पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण यह तीनों ऋण चुकानेमें जिसका मन प्रसन्न होता है, वह परम भक्तिसहित कामाख्याकी योनिके समीप गमन करेगा ॥ १९ ॥

तीर्थयात्रां समासाद्य यदेकोऽप्यत्र गच्छति ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २० ॥

तीर्थयात्रा अवलम्बन करके जो कोई मनुष्य इस तीर्थमें गमन करता है, पद पदमें उसको अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ २० ॥

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं दीर्घेण शतयोजनम् ॥
कामरूपं विजानीहि त्रिकोणाकारमुत्तमम् ॥ २१ ॥

हे देवि ! इस उत्तम कामरूपको त्रिकोणाकार दैर्ध्यमें सौ योजन और विस्तारमें तीस योजन जाने ॥ २१ ॥

ईशाने चैव केदारो वायव्यां गजशासनः ।
दक्षिणे सङ्गमे देवि लाक्षाया ब्रह्मरेतसः ॥ २२ ॥

ईशानमें केदार, वायुकोणमें गजशासन और दक्षिणमें ब्रह्मरेतः अर्थात् ब्रह्मपुत्रकी लाक्षा नदीका संगम है ॥ २२ ॥

त्रिकोणमेवं जानीहि सुरासुरनमस्कृतम्।
तत्र ये मानवाः सन्ति ते देवा नात्र संशयः॥ २३॥

कामरूपको इस प्रकार त्रिकोण जानना चाहिये, यह स्थान सुरासुर सभीका नमस्कृत है, वहां जो मनुष्य हैं वह देवता हैं इसमें सन्देह नहीं२३॥

तत्र यद्यज्जलं देवि तत्सर्वं तीर्थमेव हि।
उपवीथिश्च वीथिश्च उपपीठं च पीठकम्॥ २४॥

वहां जो जो जल हैं, वह सभी तीर्थ हैं, हे महादेवि! वहां उपवीथि, वीथि, उपपीठ, पीठ॥ २४॥

सिद्धपीठं महापीठं ब्रह्मपीठं तदन्तरम्।
विष्णुपीठं महादेवि रुद्रपीठं तदन्तरम्॥ २५॥
नवयोनिरिति ख्याता चतुर्दिक्षु समन्ततः।
तत्र तत्र महापूजोत्तरोत्तरफलाधिका॥ २६॥

सिद्धपीठ, महापीठ, ब्रह्मपीठ, विष्णुपीठ और रुद्रपीठ, यह नव पीठ नव योनि कहकर विख्यात है और इसके चारों ओर अवस्थित हैं। हे महादेवि! वह वह महापूजा उत्तरोत्तर सब स्थानोंमें अधिक अधिक फल देती है॥ २५॥ २६॥

द्विगुणं द्विगुणं भद्रे फलमेवं सुनिश्चितम्।
सर्वासाञ्चैव विद्यानां सर्वमन्त्रस्य शाम्भवि॥ २७॥
पूजने जपने चैव द्विगुणं द्विगुणं फलम्।
नवयोनिः समाख्याता कामाख्यायोनिमण्डलम्२८॥

इन सबमें क्रमानुसार दूना दूना फल अवधारित (निश्चय किया हुआ) है। वहां सर्वविध विद्या और सर्वविध मन्त्रकी पूजा एवं जप करनेसे दूना

दूना फल प्राप्त होता है । हे भद्रे ! हे शाम्भवि ! कामाख्या योनिमण्डल नवयोनि द्वारा विख्यात होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

आयोनिर्मंहिपर्यन्तं या विद्यागन्धमादनम् ।
पञ्चक्रोशमिदं देवि सर्वेषामेव दुर्लभम् ॥ २९ ॥

योनिसे महिपर्यन्त और विद्यासे गन्धमादनपर्यन्त यह पांच कोश स्थान सबको ही दुर्लभ है ॥ २९ ॥

ब्रह्मविष्णुसुरेशाद्यैः सेवितं परमाद्भुतम् ।
देवा मरणमिच्छन्ति का कथा मानुषेषु च ॥ ३० ॥

परम अद्भुत और ब्रह्मा, विष्णु सुरेश्वरादिसे सेवित है, मनुष्योंकी बात तो क्या कहूं देवता भी उस स्थानमें मरनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३० ॥

योनिपीठे महेशानि पञ्चकोशमिते शिवे ।
ये गच्छन्ति शिवाकारा ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥३ ॥

हे महेशानि ! पांचकोशपरिमित योनिपीठमें जो मनुष्य गमन करता है, वह शिवतुल्य होता है और मरनेके पीछे फिर जन्म लेना नहीं पडता ॥ ३१ ॥

ते च सूर्याकरं क्लेशं न प्राप्नुवन्ति कर्हिचित् ।
योनिपीठे च निष्पापा ये वसन्ति नरोत्तमाः ।
ते सर्वे शङ्करा जातास्त्रिनेत्राश्चन्द्रमूर्द्धजाः ॥ ३२ ॥

वह मनुष्य किञ्चित् मात्र भी सूर्यान्मज शनिके क्लेशको प्राप्त नहीं होता । जो नरोत्तम योनिपीठमें वास करते हैं, वह चन्द्रशेखर और त्रिनेत्र शंकर तुल्य होते हैं ॥ ३२ ॥

सर्वासाञ्चैव विद्यानां सर्वमन्त्रस्य चेश्वरि ।
पूजनं जपनञ्चैव कुरुते साधकोत्तमः ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनामाश्रयो जायते नरः ॥ ३३ ॥

हे ईश्वरि ! साधकोत्तमगण सर्वविध विद्या एवं सर्वविध मन्त्रकी पूजा और जप करते हैं। मनुष्यगण इस स्थानमें अणिमादिक आठ प्रकारकी सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥ ३३ ॥

तन्मध्ये च महादेवि गिरिर्नीलाभिधोज्ज्वलः ।
ब्रह्मविष्णुशिवाकारः सर्वशक्तिमयः पुनः ॥ ३४ ॥

हे महादेवि ! उस योनिपीठमें ब्रह्मा विष्णु शिवाकार सर्वशक्तिमय नीलनाम उज्वलगिरि विद्यमान है ॥ ३४ ॥

तन्मध्ये परमेशानि मनोभवगुहा परा ।
मनोभवगुहामध्ये रक्तपानीयरूपिणी ॥ ३५ ॥

हे परमेशानि ! तिसमें परमोत्तम मनोभवगुहा है। मनोभवगुहामें रक्त पानीयरूपिणी ॥ ३५ ॥

कोटिलिङ्गसमाकीर्णा कामाख्या कल्पवल्लरी ।
तत्तेजसा तु संदीप्ता मनोभवगुहा सदा ॥ ३६ ॥

कोटिलिंग समाकीर्ण कामाख्या नामक कल्पलता विद्यमान है, यह मनोभवगुहा उसके तेजसे सदा दीप्तिमान रहती है ॥ ३६ ॥

अस्याः स्पर्शनमात्रेण लोहो याति सुवर्णताम् ।
चतुर्हस्तप्रमाणानि समन्तात्पर्वतात्मजे ॥ ३७ ॥
अस्याः स्पर्शनमात्रेण शिवत्वमेति मानवः ।
निष्पापो जायते देवि तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ ३८ ॥

उसके स्पर्शमात्रसे ही लोहा सुवर्ण होता है, हे पर्वतात्मजे ! वह चारों ओरमें चार हाथ परिमित होगा उसके स्पर्श मात्रसे ही मनुष्य शिवत्वको प्राप्त होता है और तत्काल निष्पाप होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अत्र यद्यत्कृतं कर्म तदनन्तफलं लभेत् ॥ ३९ ॥

इसमें जो जो कर्म किये जाते हैं, वह सभी अनन्त फलदायक होते हैं ॥ ३९ ॥

तन्मध्ये परमेशानि समन्ताद्द्वादशांगुलम् ।
आपातालाद्ध्रदं देवि प्रोच्छलज्जलमण्डलम् ॥ ४० ॥

हे परमेशानि देवि ! उसमें चारों ओर द्वादशांगुलपरिमित पाताल पर्यन्त विस्तृत प्रोच्छलित (उमडते हुए) जल मण्डल ह्रद (तालाव) विद्यमान है ॥ ४० ॥

तज्जलं परमेशानि ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
ईश्वरं तज्जलं देवि कारणार्णवसंज्ञकम् ॥ ४१ ॥

हे परमेशानि ! वह जल ब्रह्म, विष्णु, शिवात्मक है । हे देवि ! वह जल ऐश्वरीय और कारणार्णवके नामसे विख्यात है ॥ ४१ ॥

बहु किं कथ्यते देवि तज्जलं परमामृतम् ।
शङ्कितेनैव कथितं मानजानीहि सुन्दरि ॥ ४२ ॥

हे देवि ! बहुत कहनेसे क्या है, वही जल परमामृत है । सुन्दरि ! मैंने यह शंकित होकर ही कहा है तुम जानो ॥ ४२ ॥

कांक्षंति सततं देवि तज्जलं सचराचरम् ।
तज्जलस्पर्शमात्रेण तद्ध्रदस्पर्शनेन च ॥ ४३ ॥
तत्क्षणान्मानवो देवि देवो भवति निश्चितम् ।
पुण्यपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ ४४ ॥

सचराचर अखिल ब्रह्माण्डमंडल उस जलकी आकांक्षा करता है, उस जल और उस ह्रदके स्पर्श करते ही मनुष्य देवता होता है और पाप पुण्यसे छूटकर जीवन्मुक्त होता है, इसमें संदेह नहीं ॥४३॥४४॥

तद्ध्रदे पूजयेद्यो हि तज्जलेन महेश्वरि ।

जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ॥ ४५ ॥
वर्णितुं नैव शक्नोमि तत्फलं गिरिनन्दिनि।
ह्रदे हस्तं विनिक्षिप्य जलमध्ये महेश्वरि ॥ ४६ ॥
अष्टोत्तरशतजपान्महासिद्धीश्वरो भुवि ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥ ४७ ॥

हे पर्वतनंदिनी ! जो मनुष्य उस ह्रदकी उसीके जलसे पूजा करता है, उसका जितना फल है, वह मैं करोड हजार जीभ और सौ करोड मुख प्राप्त होनेपर भी वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता । हे महेश्वरि ! उस ह्रदके जलमें हाथ डालकर एक सौ आठवार जप करनेपर वह मनुष्य पृथ्वीतलमें महासिद्धीश्वर होता है और तत्काल उसके मन्त्रकी सिद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

शैवो वा वैष्णवो वापि शाक्तो नान्यो महेश्वरि ।
जप्यते यैस्तु मन्त्रो हि तत्क्षणं सिद्धिमृच्छति ।
अष्टोत्तरशतेनापि नात्र कार्या विचारणा ॥ ४८ ॥

हे देवेशि ! शाक्त वैष्णव व शैव ही क्यों न हो, अथवा अन्य जो कोई हो, वहां जो एक सौ आठवार मन्त्र जपता है, तो तत्काल उसकी मन्त्रसिद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥

कुशाग्रोत्थितं तद्देवि पितृभ्यो यः प्रयच्छति ।
गयाश्राद्धं कृतं तेन नियुताब्दं महेश्वरि ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य वहां कुशाग्र द्वारा वह जल पितरोंको प्रदान करता है उसके द्वारा ही उसको नियुताब्दव्यापी अर्थात् लक्ष वर्ष पर्यन्त गयाश्राद्ध करनेका फल होता है ॥ ४९ ॥

एतत्ते कथितं देवि कामाख्यायोनिमण्डलम् ।
संक्षेपेण महेशानि वक्ष्याम्येवं विशेषतः ॥ ५० ॥

हे देवि । यह मैंने तुमसे कामाख्या योनिमण्डल कहा । हे महेशानि ! अब संक्षेपसे उसका माहात्म्य कहता हूं ॥ ५० ॥

किन्त्वस्य कथ्यते देवि माहात्म्यं च यशस्विनि ।
तत्र कोटियोगिनीभिः काली वसति तारिणी ॥५१॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न देवी ! अब हम उसके माहात्म्यका वर्णन करते हैं तुम श्रवण करो । वहां करोड करोड योनियोंके सहित जगत्तारिणी कालिका वास करती हैं ॥ ५१ ॥

छिन्नमस्ता भैरवी सा सप्त सप्त विभेदिता ।
धूमा च भुवनेशानी मातङ्गी कमलालया ॥ ५२ ॥

भगक्लिन्ना भगधारा तथा चैव भगन्दरी ।
दुर्गा च जयदुर्गा च तथा महिषमर्दिनी ॥ ५३ ॥

सप्त सप्त विभेदमें छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती भुवनेश्वरी, मातंगी कमलालया, भगक्लिन्ना, भगधारा, भगन्दरी, दुर्गा, जयदुर्गा, महिष-मर्दिनी ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

उपविद्याश्च याः प्रोक्ताः सर्वाभिस्ताभिरेव च ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यौ महाकाली वसेत्सदा ॥ ५४ ॥

और जो सब उपविद्या हैं, उन सबके सहित एवं ब्रह्मा. विष्णु और महे-शादि देवताओंके सहित महाकाली निरन्तर वहां वास करती है ॥ ५४ ॥

ब्रह्ममुखाश्रयं पीठमुग्रताराधिदैवतम् ।
तत्पीठं द्विविधं प्रोक्तं गुप्तं व्यक्त महेश्वरि ॥ ५५ ॥

हे देवी ! उग्रतारा जिसकी अधिदेवता है. वहां ब्रह्ममुखाश्रयपीठ विद्य-मान है वह पीठ दो प्रकार कहा गया है गुप्त और व्यक्त ॥ ५५ ॥

व्यक्ताद्गुप्तं पुण्यतरं दुरापं साधकोत्तमैः ।
सर्वत्र लभ्यते देवि कुलद्वयविशारदैः ॥ ५६ ॥

व्यक्तकी अपेक्षा गुप्तपीठ साधकको अधिकतर पुण्य प्रदान करती है यह गुप्तपीठ दुर्लभ है किन्तु दोनों कुलविशारद अर्थात् दिव्यावीरभावापन्न मनुष्यगण सर्वत्र ही उसको लाभ कर सकते हैं ॥ ५६ ॥

मनोभवगुहावह्नौ देवीशिखरमुन्नतम् ।
तन्महोग्रमिति ख्यातं पीठं परमदुर्लभम् ॥ ५७ ॥

मनोभवगुहाकी अग्निमें देवीका शिखर उन्नत (ऊंचा) रहता है वह पीठ महोग्रनामसे विख्यात और परमदुर्लभ है ॥ ५७ ॥

सिद्धिकाली ब्रह्मरूपा देवता भुवनेश्वरी ।
निवसेत्तत्र या काली घोरदैत्यविनाशिनी ॥ ५८ ॥

उस पीठमें घोर दैत्य विनाशिनी, ब्रह्मरूपा भुवनेश्वरी देवता सिद्धिकाली वास करती है ॥ ५८ ॥

तत्पीठोपरि संविश्य दशधा च जपेन्मनुम् ।
तदा मन्त्रविशुद्धिः स्यात्तद्देहेन शिवो भवेत् ॥ ५९ ॥

उस पीठके ऊपर बैठ दशवार जप करनेपर उसके मन्त्रकी सिद्धि होती है और उस देहके अन्तमें शिवतुल्य होता है ॥ ५९ ॥

यत्फलं ते मया प्रोक्तं ह्रदमध्ये सुलोचने ।
पादहीनं तत्फलं स्यात्पूर्णं शिवजपार्चने ॥ ६० ॥

हे सुलोचने ! मैंने तुमसे ह्रदमें जिस फलका होना कहा है वह फल पादहीन होता है और शिवके जप तथा अर्चनासे संपूर्ण होता है ॥ ६० ॥

अर्धं जालन्धरे ज्ञेयमुड्डीयाने तदर्द्धकम् ।
अवश्यं मन्त्रसिद्धिः स्यान्नेपाले तिथिवासरे ॥ ६१ ॥

नीलकण्ठसमीपे तु नात्र कार्या विचारणा ।
जपेन देवदेवेशि कथितं ते मया मुदा ॥ ६२ ॥

हे देवि ! जालंधरमें उससे आधा फल और उड्डीयानमें उससे आधा जाने, नेपालमें नीलकंठके समीप तिथिवासरमें मन्त्र जपनेसे मन्त्र सिद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं इस प्रकार जप करनेसे सिद्धि होती है सो मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन करके सुनाई ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

त्रयोदशाहे महासिद्धिरेकाम्रकानने तथा ।
दशलक्षेण गङ्गायां सिद्धिरावश्यकं शिवे ॥ ६३ ॥

हे देवी देवेश्वरि ! एकाम्रकाननमें तेरह दिन जप करनेसे महासिद्धि प्राप्त होती है । हे शिवे ! गंगामें दशलाख जप करनेसे अवश्य ही सिद्धि लाभ करता है ॥ ६३ ॥

राढायां विकटाक्षायां द्रुतञ्च पर्वतात्मजे ।
लक्षत्रयेण सिद्धिः स्यात्सत्यमेव सुसिद्धिदे ॥ ६४ ॥

हे पर्वतात्मजे ! हे सुसिद्धिदे ! राढा और विकटाक्षामें तीन लाख जपसे तत्क्षण सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६४ ॥

पुष्कराख्ये च लक्षेण प्रयागे विंशलक्षतः ।
कोटिजपाद्द्रोणगिरौ ज्वालायाञ्च द्विलक्षतः ॥ ६५ ॥

पुष्करमें लक्ष जपसे और प्रयागमें वीस लाख जपसे, द्रोणगिरीमें करोड़ जपसे, ज्वालामुखीमें दोलाख जपसे ॥ ६५ ॥

तथैव विरजे क्षेत्रे लक्षद्वादशतः शिवे ।
हिमालये त्रिलक्षेण केदारे पञ्चलक्षतः ॥ ६६ ॥
कैलासे दशलक्षेण जयन्त्यां पञ्चलक्षतः ।
उज्जयिन्यां दशाहेन मासेन मन्दराचले ॥ ६७ ॥
अवश्यं मन्त्रसिद्धिः स्याज्जपनात्पूजनाच्छिवे ॥ ६८ ॥

विरज क्षेत्रमें बारह लाख जपसे हिमालयमें तीन लाख जपसे केदारमें पांच लाख जपसे कैलासमें दशलाख जपसे जयन्तीमें पांचलाख जपसे उज्जयनीमें दशाह (दश दिनपर्यन्त) जपसे मन्दराचलमें मासमात्र जपसे और पूजासे अवश्यही सिद्धिलाभ होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

इत्येवं कथितं तुभ्यं यत्पृष्टं गिरिसम्भवे ।
मातृजारसमं देवि सर्वदा परिगोपयेत् ॥ ६९ ॥

हे शिवे ! यह मैंने तुम्हारे पूछनेके विषयका उत्तर दिया । यह मातृजारके समान सदा गुप्त रखने योग्य है ॥ ६९ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्बादे चतुर्विंशति साहस्रे भाषाटीकायामेकादशः पटलः ॥ ११ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भोः स्वामिन्परमानन्द योगिनामभयप्रद ।
कामाख्यायोनिमाहात्म्यं यदुक्तं मे त्वया शिव ॥१॥

श्रीदेवीजीने कहा—भोः स्वामिन् ! जो परमानन्दविग्रह ! योगीयोंका अभयदेनेवाले शिव ! आपने जो कामाख्यादेवीकी योनीका माहात्म्य वर्णन किया ॥ १ ॥

सत्यं सत्यं न सन्देहो ह्याश्चर्यं सर्वमेव हि ।
तत्त्वेन तन्मया ज्ञातं कलौ किं न सुसिद्धिदम् ॥२॥

वह सत्य और परमाश्चर्ययुक्त है, उसका तत्त्व वास्तवमें मुझे अवगत होगया । हे करुणामय ! कलियुगमें किस कारण वह सिद्धि दायक नहीं होता ॥ २ ॥

न पश्याम शिवज्ञानं मन्त्रसिद्धिस्तथैव च ।
किमेतत्कारणं नाथ वद मे करुणामय ॥ ३ ॥

एक कालमें शिवज्ञान और मंत्रसिद्धि यह दोनों क्यों दिखाई नहीं दे सकते ? हे नाथ ! इसका कारण वर्णन करके मुझको कृतार्थ कीजिये ॥३॥

ईश्वर उवाच ।

नरकासुरनामा तु विष्णुवीर्यसमुद्भवः ।
पृथिवीगर्भसम्भूतो दानवानामधीश्वरः ॥ ४ ॥
तस्मै विष्णुर्ददौ राज्यं कामरूपं महाफलम् ।
पृथिवीवचनात्सोऽपि दानवो युद्धदुर्द्धरः ॥ ५ ॥

ईश्वरने कहा—हे देवि ! पृथ्वीके गर्भसे उत्पन्न विष्णुवीर्यप्रादुर्भूत नरकासुर नामक एक दानव था, विष्णुने उसको महाफल युक्त कामरूप राज्य प्रदान किया । पृथ्वीके वचनसे युद्धदुर्द्धर वह दानव ॥ ४ ॥ ५ ॥

किरातैर्घटितं जित्वा रणे कामनृपोऽभवत् ।
पुनश्च भगवांस्तस्मै निवासाय ददौ मुदा ॥ ६ ॥

किरातके युद्धमें जय लाभ करके नृपतिश्रेष्ठ हुआ था. फिर भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उसको वास करनेके निमित्त ॥ ६ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरं ख्यातं कामाख्यायोनिमण्डलम् ।
राज्ञे प्राताभिषेकाय विष्णुः शक्तिं ददावपि ॥ ७ ॥

प्रग्ज्योतिषपुर नामसे विख्यात कामाख्यायोनिमण्डल प्रदान किया । उसमें अभिषिक्त हो जानेपर विष्णुने उस राजाकी शक्ति दी ॥ ७ ॥

ततस्तु दर्शयामास मनोभवगुहां हरिः ॥
सुस्नातं नरकं तद्वद्विधेयामास वै तदा ॥ ८ ॥

अनन्तर हरिने उसको मनोभवगुहा दिखाई, नरकासुर उसमें स्नान करके पापरहित हुआ ॥ ८ ॥

विष्णुरुवाच ।

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं सर्ववेदार्थसम्मतम् ।
ब्रह्मत्वं ब्रह्मणा प्राप्तं विष्णुत्वं च मया पुनः ॥ ९ ॥
शिवत्वं च शिवेनैव कामाख्यायाः प्रसादतः ।
पूजनीया योनिरियं यत्नात्सर्वात्मभिस्त्वमुम् ॥१०॥

विष्णुने कहा—कामाख्याका माहात्म्य सर्ववेदार्थसम्मत है । कामाख्याके प्रसादसे ब्रह्मा ब्रह्मत्व विष्णु विष्णुत्व और शिव शिवत्वको प्राप्त हुए हैं, अतएव सार्वत्मामें सर्व प्रयत्नसे योनिपूजा करनी चाहिये ॥९॥१०॥

यदा ते सुमुखी माता तदा ते सर्वसम्पदः ।
यदा ते विमुखी माता तदा ते न शुभं ध्रुवम् ॥११॥

जब कामाख्या माता तुम्हारे प्रति प्रसन्न होकर सुमुखी हों, तब तुमको संपत्तिलाभ और जब वह बिमुखी हों तब अपना अमंगल जानना इसमें सन्देह नहीं ॥ ११ ॥

तदैवाहं च त्यक्ष्यामि पुत्रत्वं वेद्म्यहं पुनः ॥
इति ज्ञात्वा पूजयस्व विशेषेण वदामि किम् ॥ १२ ॥

तब मैं भी त्याग करूंगा । मैं समस्त ही पुत्रभावको अवगत हूं, यह जानकर उनकी पूजा कर अधिक और क्या कहूं ॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा स ययौ विष्णुर्वैकुण्ठं स्वं निकेतनम् ।
नरकःपालयामास विष्णूक्तं यद्यदेव हि ॥ १३ ॥

ईश्वर बोले—वह विष्णुदेव यह कहकर अपने स्थान वैकुण्ठपुरमें चले गये विष्णुने जिस प्रकार आज्ञा दी नरकासुर वह सब प्रतिपालन करने लगा ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवि वृत्तान्तं शृणु दारुणम् ॥ १४ ॥

हे देवि ! इसी समयमें एक दारुण दुर्घटना उपस्थित हुई वह सुनो १४॥

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो वसिष्ठोऽतीव सद्यतिः ।
तारामाराधयामास तदा नीलाचले मुनिः ॥ १५ ॥

ब्रह्माके मानसपुत्र वसिष्ठजी अतिशय यती हैं, वह मुनि उस नीलाचलके ऊपर ताराकी आराधना करनेके लिये आये ॥ १५ ॥

तत्रैवैकदिने देवि यजितुं स सुरेश्वरीम् ।
कामाख्यामण्डले तारां पुरद्वारे समागतः ।
तत्र तं वारयामास नरको ब्रह्मसम्भवम् ॥ १६ ॥

हे देवि ! एक दिन वहीं मुनि उस कामाख्या मण्डलमें सुरेश्वरी ताराकी पूजा करनेके निमित्त पुरद्वारमें उपस्थित हुए, वहां नरकासुरने उन ब्रह्मसंभव मुनिवरको निवारण किया, अर्थात् रोका ॥ १६ ॥

नरक उवाच ।

इदानीं तिष्ठ विप्र त्वं नायाहि मण्डलान्तरे ।
एषा हि पूज्यते देवी पूजान्ते त्वं गमिष्यसि १७ ॥

नरकने कहा—हे विप्र ! तुम इसी स्थानमें ठहरो,, मण्डलके भीतर मत आना, यह देखो. हम देवीकी पूजा करते हैं पूजाके पीछे तुम आना॥ १७॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य नरकस्य मुनीश्वरः ।
द्वादशादित्यसङ्काशो बभूव क्रोधमूर्छितः ।
उवाच नरकं विप्रो वसिष्ठस्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥

मुनीश्वर नरकके इस प्रकार वचन सुनकर क्रोधसे बारह सूर्यके समान जाज्वल्यमान हुए । और लाल नेत्र करके नरकासुरसे कहने लगे ॥ १८ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

रे पापिष्ठ किमुक्तन्ते ह्ययोग्योऽहं सुदुर्म्मते ।
कामाख्यापूजने काले मालभेम गृहान्तरे ॥ १९ ॥

वसिष्ठजी बोले-रे पापिष्ठ ! तैंने क्या कहा ? रे दुर्मते ! मैं अयोग्य हूं, कामाख्याके पूजनको मैं यथासमय गृहान्तरमें नहीं जा सकता ॥१९॥

गन्तुं योन्यन्तरे मूढ भूत्वापि ब्रह्मसम्भवः ।
इदानीं पश्य वीर्य्यं मे तव नाशकरं महत् ॥ २० ॥
इत्युक्त्वा च वसिष्ठोऽसौ जग्राह पाणिना जलम् ।
कमण्डलोर्महादेवीं शशाप दारुणं मुनिः ॥ २१ ॥

रे मूढ ! मैं ब्रह्मनन्दन ऋषि होकर अन्ययोनिमें पूजाके लिये नहीं जा सकता। अब तू मेरा वीर्य देख। यह महत् वीर्य अवश्य ही तेरा विनाश साधन करेगा। यह कहकर महर्षि वसिष्ठजीने कमण्डलुसे कर द्वारा जल ग्रहण करके महादेवीको दारुण शाप दिया ॥ २० ॥ २१ ॥

विसिष्ठ उवाज ।

अहञ्च ब्राह्मणो मातः कामाख्ये ब्रह्मसम्भवः ।
हित्वा त्वां हि व्रजाम्यद्यान्यथाचेत्क्रियते त्वया ।
ब्रह्मवधोद्भवं पापं सत्यं तेऽद्य भविष्यति ॥ २२ ॥
एवमत्र महापीठे जपनात्पूजनादपि ।
सिद्धिर्न जायते कर्हिं काले मद्वचनात्पुनः ॥ २३ ॥

वसिष्ठने कहा—हे मतः कामाख्ये ! मैं ब्राह्मण और ब्रह्माका पुत्र हूं, मैं, तुमको त्याग कर जाता हूं, तुमने मेरी पूजाका अन्यथा (परित्याग) किया, अत एव अब तुमको ब्रह्मवधका पाप होगा और मेरे वचनसे इस

महापीठमें जप और पूजा करनेपर किसी समय भी वह सिद्धि नहीं होगी ॥ २२ ॥ २३ ॥

ईश्वर उवाच ।

दत्त्वेमं दारुणं शापं त्यक्त्वा तज्जलमुत्तमम् ।
नीलाचलं परित्यज्य गतोऽसौ खाण्डवं गिरिम् ॥२४॥

ईश्वरने कहा—वह मुनि यह दारुण शाप दे, उस पुण्यजलको छोड खाण्डव गिरिमें चले गये ॥ २४ ॥

ततः सा परमा विद्या कामाख्या विश्ववन्दिता ।
महाज्योतिर्मयी देवी सर्वप्रकाशरूपिणी ॥ २५ ॥
ताप्यतयऽहर्निशं देवि सर्वं हि स्वाङ्गतेजसा ॥
तत्क्षणात्परिसंदह्य गता कैलासमन्दिरम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर वह विश्ववंदिता, महाज्योतिर्मयी, सर्वप्रकाशरूपिणी परमा विद्या कामाख्या अपने अंगके तेजसे निरन्तर प्रदीप्त हुई और तत्काल उस तेजसे दग्ध होकर कैलास मंदिरमें गई ॥ २५ ॥ २६ ॥

तदैव परमेशानि मनोभवगुहा पुनः ।
महान्धकारपटलैरावृता तद्वियोगतः ॥ २७ ॥

हे परमेशानि देवि ! उनके वियोगसे वह मनोभवगुहा अन्धकार मण्डलसे ढक गई ॥ २७ ॥

हाहाकारं सर्वलोके मूर्च्छितो दानवेश्वरः ॥
ततस्तां परमां मायां विषण्णवदनां पुनः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वाहं परिपप्रच्छ कामाख्यां परिसादरम् ॥
कथं शिवे समायाता त्यक्त्वा तद्योनिमण्डलम्॥२९॥

सर्वलोक हाहाकार करने लगे और वह दानवेश्वर मूर्छित हो गया । तदनन्तर मैंने उन परमा माया कामाख्या देवीको दुःखितमन देखकर

आदरपूर्वक पूँछा—हे शिवे ! तुम वह योनिमण्डल त्यागकर क्यों आई हो ॥ २८ ॥ २९ ॥

विषण्णवदना भूत्वा कामाख्ये वद कारणम् ॥
त्वं देवि परमाराध्या स्थीयतां मे हृदि त्वयम् ॥
सर्वं प्रतिकरोम्येव विषण्णवदने कथम् ॥ ३० ॥

हे कामाख्ये देवि ! तुम्हारा मुख मण्डल दुःखित देखता हूँ, इसका कारण प्रकाश करो । हे देवि ! तुम परमाराध्या हो, तुम मेरे हृदयमें अवस्थान करो, तुम दुःखितमन क्यों हुई हो, मैं सबकाही प्रतीकार करता हूँ ॥ ३० ॥

कामाख्योवाच ।

वसिष्ठो ब्राह्मणः पुत्रस्तारामाराधितुं मुनिः ।
मद्योनिमण्डले नाथ द्वारं मे समुपागतः ॥ ३१ ॥

कामाख्याने कहा--हे नाथ ! ब्रह्माके पुत्र वशिष्ठ ताराकी आराधनाके लिये मेरे योनिमण्डलमें आये थे ॥ ३१ ॥

प्रातस्तस्मिन्ब्राह्मणो मां जयते मानवेश्वरः ।
द्वारपालोऽभवद्राजा यावन्मे पूजनं भवेत् ।
तावत्कोऽपि न क्षमो हि गन्तुं मद्योनिमण्डलम् ॥३२
एवं नित्यं नियमितं नरकेणासुरेण च ।
ततस्तं वारयामास नरको ब्रह्मनन्दनम् ॥ ३३ ॥

प्रातःकालमें ब्राह्मण मेरी पूजा करनेको आया, तब मेरे योनिमण्डलमें कोई भी जानेको समर्थ नहीं होता, जबतक मेरी पूजा होती है, तबतक राजा नरकासुर द्वारपालके रूपसे स्थित रहता है। नरकासुरने इस प्रकार नित्य नियम कर रक्खा है, नरकासुरने उन आये हुए ब्रह्मनन्दन ऋषिको निवारण किय था ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

ततस्तेनैव मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ।
शापं शृणु महादेव कथने रोदनं मम ॥ ३४ ॥

इसी कारण उन मुनिने दारुण शाप दिया है' हे महादेव ! कहते मुझको रोना आता है, तुम मेरा शाप सुनो ॥ ३४ ॥

ब्रह्मविष्णुसुरेशाद्यैः कांक्ष्यते यत्परं स्थलम् ।
तन्मया विहितं देव को वा पापोऽस्ति मे वद ॥३५॥

ब्रह्मा, विष्णु इन्द्रादि सभी जिस परम स्थलकी आकांक्षा करते हैं, मैंने उस परमस्थलकी कामना करके विहित कार्यही किया है, इसमें मेरा क्या दोष होसकता है ? सो कहो ॥ ३५ ॥

त्वां परित्यज्य गच्छामि ह्यन्यथा क्रियते त्वया ।
ब्रह्मघ्ने यद्भवेत्पापं सत्यं तेऽद्य भविष्यति ॥ ३६ ॥

मैं यह स्थान छोड़कर जाता हूं, इस समय मेरी पूजाको अन्यथा किया, अतएव आज तुमको ब्राह्मणके वध करनेका पाप लगेगा ॥ ३६ ॥

एवमत्र महापीठे जपनात्पूजनादपि ।
सिद्धिर्न जायते कर्हि काले मद्वचनात्पुनः ॥ ३७ ॥

और मेरे वचनसे इस महापीठमें जप पूजा करनेपर भी वह किसी कालमें सिद्धि नहीं होगी ॥ ३७ ॥

एवमेव मुनेः शापादागताऽहं तवान्तिकम् ।
कमुपायं करिष्यामि वद मे करुणामय ॥ ३८ ॥

मुनिके इस प्रकार शाप देनेपर मैं तुम्हारे पास आई हूं, हे करुणामय ! इसका क्या उपाय करेंगे, कहो ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवमुक्त्वा रुदन्तीं तामाश्वास्य च पुनः पुनः ।
आगत्याहं योनिपीठे जजाप कालिकामनुम् ॥ ३९ ॥

शापोद्धाराय देवेशि तस्माच्छापाद्विमोचिता ।
कामाख्यां स्थापयामास पूर्ववद्योनिमण्डले ॥ ४० ॥

ईश्वर बोले–वह यह सब बातें कहकर रोने लगी । मैं वारंवार उसको आश्वासन (तसल्ली) प्रदान करके योनिपीठमें आया और शापोद्धारके लिये कालिकामन्त्र जपने लगा हे देवेशि ! उसके द्वारा उस शापसे छुड़ाकर कामाख्या देवीको पहिलेके समान उस योनिमण्डलमें स्थापन किया ॥ ४० ॥

ततः सा परमा माया महाहर्षमुपागता ।
कलौ किन्तु महेशानि वर्षाणाञ्च शतत्रयम् ।
ब्रह्मशापो महेशानि फलिष्यति सुनिश्चितम् ॥ ४१ ॥

तब वह परमा माया महाहर्षयुक्त हुई किन्तु हे महेशानि ! कलियुगमें तीनसौ वर्ष ब्रह्मशाप फलेगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ४१ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

वशिष्ठेन पुरा शप्ता कामाख्या कामवासिनी ।
नरकस्य प्रसङ्गेन तत्सर्वं कथितं त्वया ॥ ४२ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि शापोद्धारस्य ते कथा ।
कथं शापश्च ज्ञातव्यस्तस्यापि लक्षणं वद ।
यच्छ्रुत्वा साधवः सर्वे दयामेष्यन्ति सर्वदा ॥ ४३ ॥

देवीने कहा–पूर्वकालमें वशिष्ठ ऋषिने कामवासिनी कामाख्या देवीको शाप दिया था, वह तो आपने नरकासुरके प्रसंगमें सब कहा । अब मैं तुम्हारे शापोद्धारकी कथा सुनाना चाहती हूं, किस प्रकार शाप जाना जाता है, उसका लक्षण कहिये । साधुजन उसको सुनकर सदा दया युक्त हों ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच ।

कुमतेः पुरभूपस्य राज्यनाशो यदा भवेत् ।
तद्दिनात्परमेशानि ब्रह्मशापः प्रवर्तते ॥ ४४ ॥

ईश्वरने कहा--जब दुर्मति पुरभूपका राज्य नाश होता है, उस दिनसेही ब्रह्मका शाप प्रवृत्त हुआ है ॥ ४४ ॥

ततोऽतीव दुराचारो कामरूपे भविष्यति ।
प्रजापीडा रोगकृत्या बहुदोषो भविष्यति ॥ ४५ ॥

इसी कारण कामरूपमें अत्यन्त दुराचार संघटित होगा और प्रजा पीडा, रोग कृत्या इत्यादि अत्यन्त दोषपूर्ण व्यापार उपस्थित होगा ॥ ४५ ॥

सदा युद्धं महामाये यदा दुर्वृत्तमेव च ।
देवदानवगन्धर्वाः सदा पीडापरायणाः ॥ ४६ ॥

हे महामये ! निरन्तर युद्ध और दुर्वृत्तता प्रवर्तित होगी, देवता दानव और गन्धर्व सदा पीडाको प्राप्त होंगे ॥ ४६ ॥

कुपूर्वकुलचन्द्रेण मिते शाके द्विवानिशम् ।
सौमारैश्च कुवाचैश्च यवनैर्युद्धमुल्बणम् ॥ ४७ ॥
भविष्यति कामपृष्ठे बहुसैन्यसमाकुलम् ।
ततो रणे च सौमारं जित्वा यवन ईप्सितम् ॥ ४८ ॥
वर्षमेवाकरोद्राज्यं मकारादिर्म्महीपतिः ॥ ४९ ॥

कुपूर्व कुलचन्द्रमिते शके (अर्थात्--२१२) कामरूप पृष्ठमें सौमार गणोंके सहित कुवाच और यवनोंका बहुसैन्यसंकुल घोरतर युद्ध होगा उस समरमें मकारादि महीपति यवन सौमारगणोंको पराजित करके एक वर्ष राज्य करेंगे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

तत्सहायं समासाद्य कुवाचः स्वीयराज्यभाक् ॥
वर्षान्ते यवनं जित्वा सौमारो राज्यनायकः ॥ ५० ॥

कुवाच राज उसकी सहायताको प्राप्त होकर अपना राज्य भोगेंगे फिर एक वर्षके पीछे सौमार गण यवनोंको पराजयपूर्वक दूर भगाकर राज्य-नायक होंगे ॥ ५० ॥

कुमारीचन्द्रकालेन्दौ गते शाके महेश्वरि ।
कामरूपे पुनर्युद्धसंयोगः सम्भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महेश्वरि ! कुमारी कालेन्दु शाके (९०१) बीतनेपर कामरूपमें फिर युद्ध संयोग संघटित होगा ॥ ५१ ॥

कामरूपे तथा राज्यं द्वादशाब्दं महेश्वरि ।
कुवाचसंगतो भूत्वा यवनश्च करिष्यति ॥ ५२ ॥
षष्ठवर्गपञ्चमादिस्ततः शरीरमिच्छति ।
शामितव्यं कामरूपं सौमारैश्च कुवाचकैः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर कुवाचके सहित मिलित होकर यवनगण बारह वर्ष कामरूपमें राज्य करेंगे। फिर कुछ काल पीछे सौमार और कुवाच गणोंमें संधि (मिलाप) संघटित होकर कामरूपमें शांति स्थापन होगी ॥५२॥५३॥

यवनश्च कुवाचश्च सौमारश्च तथा प्लवः ।
कामरूपाधिपो देवि शापमध्ये न चान्यकः ॥ ५४ ॥

शाप कालमें यवन, कुवाच, सौमार और प्लव कामरूपके अधिपति होकर राज्यका अधिष्ठान करेंगे ॥ ५४ ॥

एवमेव बहुविधं वक्ष्ये लक्षणमीश्वरि ।
क्रियते सकलं स्पष्टं प्रत्येकं परमेश्वरि ॥ ५५ ॥

हे देवेशि ! इस प्रकार बहु प्रकारके लक्षण कहता हूं, सुनो। हे परमेश्वरि ! यह सभी विषय तुम्हें जानना चाहिये ॥ ५५ ॥

वशिष्ठस्य तपोदाववह्निः शाम्यति कामिनि ।
भविष्यन्ति च तरवः शालाख्यपर्वतोपरि ॥ ५६ ॥

तदनन्तर वशिष्ठकी तपोदाववह्नि (तपके प्रतापसे प्रादुर्भूत हुई अग्नि) शान्त होगी । शालाख्य पर्वतके ऊपर तरुगणोंकी उत्पत्ति होगी ॥ ५६ ॥

स्वर्गद्वारे शिलापाते तत्र वै पुरसन्निधौ ।
कामाख्याकमठे भग्ने उर्वश्या सह्शङ्गमः ॥ ५७ ॥
ब्रह्मपुत्रस्य देवेशि सूक्ष्मधारा तु तस्य च ।
षोडशाब्दे गते शाके भूमहीरिपुचुल्वके ।
विगतो भविता न्यूनं सौमारे कामपृष्ठयोः ॥ ५८ ॥

उस पुरके समीप स्वर्ग द्वारमें शिलापात होकर कामाख्याका मठ टूटेगा । उर्वशीके सहित ब्रह्मपुत्रका संगम होकर उस नदकी धारा सूक्ष्म होगी । षोडशाब्दशाक (सोलहवर्ष) बीतनेपर राजागण सौमार और कामरूप पृष्ठसे भूमहीरिपुचुल्वकमें जायंगे, इनमें सन्देह नहीं ॥५७॥५८॥

षण्मासं तत्र संस्थाय उत्तराकालकोषयोः ।
गमिष्यन्ति च राजानः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ५९ ॥
कुवाचैर्यवनैश्चान्द्रैर्बहुसैन्यसमाकुलैः ।
त्रिभिर्म्लेच्छैः समाकीर्णं महायुद्धं भविष्यति ॥ ६० ॥

वहां छः मास स्थित रहकर बहुसैन्यसमाकुल चान्द्र, यवन और कुवाच गणोंके सहित युद्धविशारद राजा गण उत्तरकाल और कोष देशमें जायंगे वहां तीन म्लेच्छोंके सहित एक (संघटित) तुमुल युद्ध होगा ॥ ५९ ॥ ६० ॥

अश्वमुण्डैर्नरमुण्डैर्गजमुण्डैर्विशेषतः ।
लौहित्यो रक्तपूर्णश्च भविष्यति न संशयः ॥ ६१ ॥

उस युद्धमें अश्वमुण्ड नरमुण्ड और गजमुण्ड कर्तित होकर पृथ्वी लोहितशोणितसे पूर्ण होगी इसमें संदेह नहीं ॥ ६१ ॥

तदैव परमा माया योगिनीगणवन्दिता ।
कामाख्या वर्णकश्यामा बलिहस्ता हसन्मुखी ॥६२॥
ललज्जिह्वा मुण्डमाला दिग्वस्त्रा परमास्थिता
पर्वताग्रं समाश्रित्य रक्तपानं करिष्यति ॥ ६३ ॥

तब योगिनीगणवन्दिता, श्यामवर्णा, दिग्वस्त्रा, लोलजिह्वा, बलिहस्ता और हसन्मुखी परमा माया कामाख्या पर्वताग्रका आश्रय करके रक्तपान करेंगी ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

ततः कुवाचो यवनं हित्वा सौम्यविनाशितः ।
करतोयानदी यावत्करिष्यति महद्रणम् ॥ ६४ ॥

फिर कुवाचगण सौम्यगणको नष्ट करके यवनगणको परित्याग पूर्वक कर तोयानदीपर्यन्त भूभागमें महा युद्ध करेंगे ॥६४॥

दशाहं तत्र संस्थाय यास्यन्ति पुनरालयम् ।
ततो विप्रो नृपो भूत्वा कामरूपनिवासिनः ॥
करिष्यति जनान्देवि जपपूजादितत्परान् ॥ ६५ ॥

वहां दश दिन वास करके फिर अपने घर जायंगे तदनन्तर कामरूप निवासी विप्रगण राजा होकर जनोंको जप पूजादिमें तत्पर करेंगे ॥ ६५ ॥

एवं वर्षत्रयं राज्यं कृत्वा दण्डी द्विजो नृपः ।
भविष्यति महामाये योनिमण्डलसन्निधौ ॥ ६६ ॥

दण्डी विप्र राजा होकर इस प्रकार तीन वर्ष राज्य करके योनिमण्डलके समीप स्थित होंगे ॥ ६६ ॥

ततो द्वादशदले नाभिः कल्पते पूर्वभूमिपः ।
ऐशानीमागतः कामानेकच्छत्रं करिष्यति ।
तद्राज्यं सकलं देवि धर्मेण पालयिष्यति ॥ ६७ ॥

अनन्तर पूर्व भूमिपति ईशानदिशासे आनकर द्वादशदलमें नाभिकल्पना और कामरूपको एक क्षत्रके अन्तर्गत करेंगे । हे देवि ! तब वह इस सब राज्यको धर्मानुसार पालन करेंगे ॥ ६७ ॥

तत्पत्नी श्यामवर्णा स्यात्सदाराधितपार्वती ।
विनीतं तनयं साध्वी राजानं राजपुत्रकम् ॥ ६८ ॥

उनकी पत्नी श्यामवर्णा साध्वी होकर सदाही पार्वती की आराधना करेगी वह सती एक विनीति राजपुत्र उत्पन्न करेगी ॥ ६८ ॥

तज्जन्मदिवसाद्देवि यावत्स्याद्द्वादशं दिनम् ।
तावत्स्पर्शाचले स्पर्शमणिराविर्भविष्यति ॥ ६९ ॥

हे देवि ! उसके जन्मदिनसे बारहवें दिन स्पर्शाचलमें स्पर्शमणिका आविर्भाव होगा ॥ ६९ ॥

तेनैव धनिनः सर्वे कामरूपनिवासिनः ।
भविष्यन्ति तदैव स्याद्वसिष्ठशापमोचनम् ॥ ७० ॥

हे देवि ! उसके द्वारा सब कामरूपनिवासी धनवान् होंगे । तब वशिष्ठका शापमोचन होगा ॥ ७० ॥

ततस्तेजांसि भूयांसि कामाख्यायोनिमण्डले ।
कामाख्यासन्निधाने च भविष्यति कलौ युगे ॥ ७१ ॥
मन्त्रसिद्धिश्च भविता तदैव योनिमण्डले ।
यथोक्तफलदा देवि कामाख्या हि भविष्यति ॥ ७२ ॥
जडीभूता ब्रह्मशापाद्वर्षाणांच शतत्रयम् ।
कामाख्या देववन्द्याङ्घ्रिकमला लज्जिता स्वयम् ।
पूर्ववत्सकलं देवि ततस्तु संभविष्याति ॥ ७३ ॥

तदनन्तर कामाख्याके योनिमण्डलमें प्रभूततेजका आविर्भाव होगा कलियुगमें तब कामाख्याके समीप योनिमण्डलमें मन्त्रसिद्धि होगी और कामाख्यामें यथोक्तफलदायक होगी । देवता जिसके चरणकमलोंकी वंदना करते हैं वह कामाख्या देवी ब्रह्मशापसे तीनसौ वर्ष जडीभूत (जिसमें देवशक्ति कुछ न हो) रह कर आपही लज्जित होंगी । अनन्तर हे देवि ! सभी पूर्ववत् फल सिद्धिके देनेवाले होंगे ॥७१॥७२॥७३॥

एवं कामपरित्राणं संक्षेपात्कथितं मया ।
किं श्रोतव्यमितो देवि गिरिजे कथ्यतां त्वया ॥७४॥

हे गिरिजे देवि ! यह मैंने तुमसे कामरूपके परित्राण (रक्षा) की कथा संक्षेपसे वर्णन करी अब यदि तुम कुछ और सुनना चाहती हो वह कहो ॥ ७४ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां द्वादशः पटलः ॥ १२ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवेश परमेशान सर्वज्ञ सर्व्वपूजित ।
क्व गच्छसि मुहुर्नाथ कृपया वद शंकर ॥ १ ॥

श्रीदेवीने कहा–हे परमेशान सर्वज्ञ सर्वपूजित शंकर ! तुम कहां कहां जाते हो ? कृपा करके यह मुझसे कहो ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

कोचाख्याने च देशे च योनिगर्त्तसमीपतः ।
साध्वी सती ब्राह्मिका हि रेवती जलविस्मृता ॥ २ ॥
म्लेच्छदेहोद्भवा या तु योगिनी सुन्दरी मता ।
तत्कुचौ कठिनौ द्वन्द्वौ योनौ तस्याश्च पीनता ॥ ३ ॥

भिक्षाचारप्रसङ्गेन गच्छामि च दिवानिशम् ।
तत्सन्निधौ महेशानि त्वया मे मरणं महत् ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले—योनिगर्तके समीप कोच नामक देश, वहां ब्राह्मिका साध्वी सती जलविस्मृता म्लेच्छदेहोद्भवा रेवती, योगिनी नामक सुन्दरी स्त्री थी । उसके दोनों कुच कठिन एवं योनिमण्डल पीन और मनोहर था मैं भिक्षाचार प्रसंगमें दिन रात उसके निकट जाता हूं । हे महेशानि ! उसके समीप मेरा यह सब महत् मरण तुल्य बोध होता है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कुत्रासीत्किं तपस्तप्तं कथं प्राप्तं महीतलम् ।
त्वया सार्द्धं रतिर्यस्य नाल्पस्य तपसः फलम् ॥ ५ ॥
तथापि च कृपा तस्यां लक्ष्यते महती मया ।
इदानीं किमभूत्सा हि कृपया परया वद ॥ ६ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—वह स्त्री कहां थी ? उसने कैसी तपस्या की थी ? वह किस प्रकार महीतलको प्राप्त हुई ? हे देव ! तुम्हारे संग जिसकी रतिक्रिया है उसके तपका फल थोड़ा नहीं है उसपर आपकी महत् कृपा दिखाई देती है अब वह कैसी हुई है ? हे नाथ ! कृपाप्रकाश पूर्वक यह मुझसे कहो ॥ ५ ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच ।

नगेन्द्रतनये बाले शृणु मत्प्राणवल्लभे ।
तत्साध्वीचरितं किंचित्कथयामि शुचिस्मिते ॥ ७ ॥

ईश्वर बोले—हे मेरी प्राणप्यारी ! हे बाले नगेन्द्रनंदिनि शुचिस्मिते ! उस साध्वीका चरित्र कुछेक कहता हूं सुनो ॥ ७ ॥

रासक्रीडा कृता सार्द्धमेकाम्रकानने मुदा ।
वेदाङ्गसम्भवा साध्वी योगिनी सासुरी मता ॥ ८ ॥

उसने प्रसन्नचित्तसे आम्रवनमें मेरे संग रासक्रीडा करीथी वह वेदाङ्गसम्भवा योगिनी देवी थी ॥ ८ ॥

नाभूत्तस्याः सुतृप्तिर्मे मत्क्रियायां नगात्मजे ।
मामाप्तुमुत्कटं तप्तं त्वियं मे क्षेत्रकामदा ॥ ९ ॥

हे नगनन्दिनी ! मेरे सहित रतिक्रियामें उसकी तृप्ति नहीं हुई ! मेरे लिये उसने उत्कट तपस्या करी थी यह योगिनी मेरी क्षेत्रकामदायिनी थी ॥ ९ ॥

एकाम्रगहने देवि पर्वते तीर्थसङ्कुले ।
तत्रैको ब्राह्मणो यातो भिक्षार्थं तामुवाच ह ॥ १० ॥

हे देवि ! एकाम्रवनके तीर्थसंकुल पर्वतमें वह तपोनिरत हैं इसी समय भिक्षाके निमित्त एक ब्राह्मणने वहां आनकर उससे भिक्षा मांगी ॥ १० ॥

न दत्तमुत्तरं तस्मै भिक्षा तिष्ठतु दूरतः ।
ततः शशाप विप्रस्तां म्लेच्छतां याहि दुर्मदे ॥ ११ ॥

भिक्षा तो दूर रही, उसने उसको उत्तरतक भी नहीं दिया । तब इस ब्राह्मणने उसको शाप दिया, रे दुर्मते ! तू म्लेच्छ हो ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो म्लेच्छत्वं प्राप योगिनी ।
अतोऽर्थिनं समर्थश्चेद्याचितं न ददाति चेत् ॥ १२ ॥
स दुर्गतिमवाप्नोति समर्थो विनयं चरेत् ।
तस्यास्तु तपसा देवि क्रीतोऽहमभवं सदा ॥ १३ ॥

ब्राह्मण यह वचन कहकर चला गया । योगीनी म्लेच्छत्वको प्राप्त हुई, अतएव हे देवि ! समर्थव्यक्तिसे याचना करनेपर वह यदि याचकको यथाशक्ति नहीं देता तो उसको अवश्य दुर्गति प्राप्त होती है । समर्थव्यक्ति याचकसे विनीतभावका आचरण करै, हे देवि ! मैं उसकी तपस्यासे सदाही क्रीत (दास) रहताहूं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अनन्तस्तया रतिर्याता मम कामिनि सर्वदा ।
तस्याः पुत्रो वेनुसिंहो मद्रसा समुद्भवः ॥ १४ ॥

इसी कारण उसके संग मेरा सदा रतिभाव संबंध रहता है । उसके गर्भ और मेरे औरससे वेनुसिंह नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥

एकेन जितवान्कामान्सौमारान्गौडपञ्चमान् ।
विनिर्जित्य नृपान्सर्वानेकः श्रीमान्महामतिः ॥१५॥

वह महामति वेनुसिंह अकेलेही सौमारगण और गौड पंचमगण तथा समस्त राजाओंको जीतकर एक प्रधान श्रीमान् राजा हुए थे ॥ १५ ॥

तस्यापि बहवः पुत्राः पृथिवीपरिपालकाः ।
कुवाचा धार्मिकाः सर्वे राजानो युद्धदुर्मदाः ॥ १६ ॥

उस वेनुसिंहके पृथ्वीपालक बहुत पुत्र उत्पन्न हुए उनमें सब कुवाच गणही धार्मिक राजा और युद्धदुर्मद हुएथे ॥ १६ ॥

तेऽपि सर्वे वेनुसिंहे योगमाश्रित्य विह्वले ।
तिष्ठन्तो व्यक्तरूपेण पद्माकल्पमम्बिके ॥ १७ ॥

वह वेनुसिंह विह्वलतासे योग आश्रय करके आकल्पपर्यन्त व्यक्तरूपमें अवस्थान करते हैं ॥ १७ ॥

कालात्सा माधवी देवि मद्देहे लीनतां गता ॥१८॥

हे अम्बिके ! वह माधवी कालवशात् मेरे देहमें लीन हुई थीं ॥ १८ ॥

यथा जाया नन्दिमाता तथेयं योगिनी मता ।
यथा पुत्रो भृङ्गरीटस्तथा वेनुर्ममात्मजः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार नन्दिमाता मेरी जाया है इस योगिनीकोभी उसी प्रकार जानना चाहिये भृङ्गरीट जैसे मेरा पुत्र है इस वेनुसिंहकोभी उसी प्रकार जानो ॥ १९ ॥

वेनुसिंहोऽपि कल्पान्ते परां सिद्धिमवाप्स्यति ॥ २० ॥

वेनुसिंह भी कल्पान्त कालमें परमा सिद्धिको प्राप्त होंगे ॥२०॥

तद्वंशजास्तु राजानः सर्वे कैलासवासिनः ।
भविष्यंति महात्मानो गणेशाः सर्वशालिनः ॥२१॥

रूपयौवनसम्पन्नैर्देवकन्यागणैः सह ।
विहरन्ति सदा देवि क्रीडन्ते भैरवा यथा ॥ २२ ॥

उसके वंशोत्पन्न सभी कैलासवासी महात्मा राजा और सर्व समृद्धिशाली गणेश्वर होंगे और वह रूपयौवनसम्पन्न देवकन्याओंके सहित भैरवगणोंके समान आनन्दसे विहार करेंगे ॥ २१ ॥ २२ ॥

यदा यदा ब्रह्मशापः कामाख्यायां भवेत्पुनः ।
तदा तदावतीर्यासौ स्वस्य कामस्य पालकः ।
तथा तद्वंशजाः सर्वे भवेयुः कामपालकाः ॥ २३ ॥

जब जब कामाख्यामें ब्रह्मशाप होगा, तब तब ही इन (वेनुसिंह) का अवतार होकर अपने कामरूप पालन करेंगे उसके वंशवाले सभी कामरूपके पालक होंगे ॥ २३ ॥

कल्पान्तमेवं देवेशि यावच्छापो विमुच्यते ।
तावदेव महामाये तद्वीर्ये क्रीडिता ध्रुवम् ॥ २४ ॥
कल्पमेवं महेशानि कलौ वर्षशतत्रयम् ।
प्राणेश्वरि परेशानि भुङ्क्ते शापं परात्मिका ॥ २५ ॥
कामाख्या हि महामाये तदन्ते सफलं भवेत् ।
एवं ते कथितं देवि ब्रह्मशापविमोचनम् ॥ २६ ॥

और कल्पान्त पर्यन्त जबतक शापविमोचन नहीं होगा, तबतक हे महामाये ! तुम्हारे ही प्रभावसे वह क्रीडा करेंगे । हे महेशानि ! कलिमें तीन सौ वर्षमें इस प्रकार कल्प होता है । हे प्राणेश्वरि ! हे परमेश्वरि । महामाये

शंकरि ! परमात्मिका कामाख्या ब्रह्म शाप भोगती हैं, शापके अन्तमें उसका सभी सफल होगा । हे देवि ! यह मैंने तुमसे कामाख्याका शापविमोचन का सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

कामाख्या या महेशानि साकल्येन मया ध्रुवम् ।
तावद्यस्य ब्रह्मशापो निष्कृतिस्तस्य दूरतः ॥ २७ ॥

जो कामाख्या महामाया प्रतिपादन करी गई है वह अत्यन्त महिमावान् है तथापि हे महेशानि ! जिसको ब्रह्मशाप हुआ है, उसकी निष्कृति (मुक्ति) दूर स्थित रहती हैं ॥ २७ ॥

तक्षकेणापि दष्टस्य प्रतीकारो हि तत्क्षणात् ।
ब्रह्मशापप्रसक्तस्य कल्पान्ते स्यात्प्रतिक्रिया॥ २८ ॥

तक्षकके काटनेपरभी तत्काल उसका प्रतीकार हो सकता है किन्तु ब्रह्मशापग्रसित व्यक्तिका कल्पान्त होनेपर प्रतीकार नहीं होता ॥२८॥

नरकान्निष्कृतिर्नास्ति तस्याभावान्न संशयः ।
एवं तद्वंशजाः सर्वे पीड्यन्तेऽहर्निशं प्रिये ॥ २९ ॥
नानाविधमहोत्पातैर्यावत्स्यात्सप्तपौरुषम् ।
तस्मात्तु ब्राह्मणं देवि नावमन्येत कुत्रचित् ॥ ३० ॥

हे देवि ! प्रलयके विना उसका छुटकारा नहीं है । हे प्रिये ! ब्रह्मशापग्रसित मनुष्यके वंशधर भी सातपुरुषा (सातपीढी) पर्यन्त अनेक उत्पातोंसे रातदिन पीडित होते हैं इसी कारण हे देवी ! कभी ब्राह्मणका अपमान न करै ॥ २९ ॥ ३० ॥

सर्वदेवमयो विप्रो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
ब्रह्मतेजःसमुद्भूतः सदा प्राकृतिको द्विजः ॥ ३१ ॥

ब्राह्मण सर्वदेवमय और ब्रह्मा विष्णु शिवस्वरूप है । द्विजगण यद्यपि प्राकृतिक अर्थात् पञ्चभूतमय हैं किन्तु तो भी वह ब्रह्मतेजसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणैर्भुज्यते यत्र तत्र भुंक्ते हरिः स्वयम् ।
तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च खेचरा ऋषयो मुनिः ॥ ३२ ॥
पितरो देवताः सर्वे भुञ्जन्ते नात्र संशयः ।
सर्वदेवमयो विप्रस्तस्मात्तं नावमानय ॥ ३३ ॥
ब्राह्मणश्च कुमारीश्च शक्तिमग्निं श्रुतिश्च गाम् ।
नित्यमिच्छन्ति ते देवा यजितुं कर्मभूमिषु ॥ ३४ ॥

जहां ब्राह्मण गण भोजन करते हैं वहां स्वयं हरि भोजन करते हैं । और वहीं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, खेचर, ऋषि, मुनि, पितर और देवता सभी भोजन करते हैं, इसमें सन्देह नहीं अतएव हे देवि ! ब्राह्मण सर्व देवमय हैं इस कारण तुम कभी उनका अवमान न करना । हे देवि ! देवता गण सदा कामना करते हैं कि, कर्मभूमीमें ब्राह्मण, कुमारी शक्ति, अग्नि, श्रुति ओर गौ इन सबकी नित्य पूजा हो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

पूजितैका कुमारी चेद्द्वितीयं पूजनं भवेत् ।
कुमारीपूजनफल मया वक्तुं न शक्यते ॥ ३५ ॥
कुमार्यः शक्तयश्चापि सर्वमेतच्चराचरम् ।
एका चेद्युवती देवि पूजिता स्वात्मलोकिता ।
सर्वा एव परादेव्यः पूजिताः स्युर्न संशयः ॥ ३६ ॥

यदि मनुष्य एक कुमारीकी पूजा करे तो उसको महत् फल होता है, हे देवि ! कुमारीपूजनके फलका मैं वर्णन नहीं कर सकता । हे अम्बिके ! कुमारी और शक्तिगण यह अखिल चराचरस्वरूप हैं, हे देवि ! यदि एक युवतीकी पूजा करी जाय, तो उसीके द्वारा सब देवी पूजित होती हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हुतमेकगुणं वह्नौ दत्तमेकगुणं द्विजे ।
लभ्यते कोटिगुणितं विश्वासान्नात्र संशयः ।
अविश्वासे शतगुणं फलमेव सुनिश्चितम् ॥ ३७ ॥

विश्वासपूर्वक अग्निमें एक गुण होम और ब्राह्मणको एक गुण दान करनेपर पर करोड गुण फल प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं । अविश्वाससे होम और दान करने पर केवल सौगुणा फल पाता है, यह निश्चित है ॥ ३७ ॥

गोग्रासं पावनं लोके सर्वपापनिकृन्तनम् ।
कुमार्यै चैव यद्दत्तं तथा शक्त्यै महेश्वरि ॥ ३८ ॥

हे महेश्वरि ! इस लोकमें गोग्रासदान परम पवित्र कर्म है, उसके द्वारा सब पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ३८ ॥

न नश्यति कदापि तत्कल्पकोटिशतायुतैः ।
धर्मयोनिर्हि ते देवा धर्मो यज्ञादिको मतः ॥ ३९ ॥
परलोके महाबन्धुर्धर्मो ह्यत्र न संशयः ।
कर्मण्येव कृते देवि वैदिके बहुजन्मनि ।
ततश्चागमिके धर्मे धर्मेणैव प्रवर्त्तते ॥ ४० ॥

कुमारी और शक्तिको जो दिया जाता है, कल्पकोटिशतायुत (दस-सौ हजार करोड) वर्षमें भी वह नष्ट नहीं होता । देवताही धर्मयोनी, यज्ञादिकही कर्म और परलोकमें धर्मही महाबंधु है, इसमें सन्देह नहीं । हे देवि ! बहुत जन्म वैदिक कर्म करके फिर आगमधर्ममें प्रवृत्त होगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥

तत्र सम्प्राप्यते मुक्तिः कर्मबन्धविनाशिनी ।
ततस्तु बहुजन्मान्ते ज्ञानमासाद्य मुच्यते ॥ ४१ ॥

इससे कर्मबन्धनविनाशिनी मुक्ति प्राप्त होती है । आगम धर्ममें प्रवृत्त रहकर बहुत जन्मोंके पीछे मुक्ति मिलेगी ॥ ४१ ॥

कर्मणा लभ्यते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानमुपालभेत् ।
ज्ञानान्मुक्तिर्महादेवि सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ ४२ ॥

कर्मसे भक्ति, भक्तिसे ज्ञान और ज्ञानसे मुक्ति प्राप्त होती है । हे महादेवि ! यह मैंने तुमसे सत्य ही सत्य कहा है ॥ ४२ ॥

ज्ञानभावे समुत्पन्ने संप्राप्य ज्ञानमुत्तमम् ।
तदा योगी विमुक्तः स्यादित्याह भगवाञ्छिवः ॥४३॥

भगवान् शिवने कहा है, जब ज्ञानभाव उत्पन्न होता है, तब योगीजन उत्तम ज्ञान प्राप्त करके मुक्त होते हैं ॥ ४३ ॥

न कर्मणः समारम्भान्नैष्फलं पुरुषोऽश्नुते ।
तस्मात्कर्म महामाये सर्वदा समुपाचरेत् ॥ ४४ ॥

कर्म करने पर पुरुष गण निष्फलता प्राप्त नहीं करते, अवश्य उसका फल पाते हैं इस कारण हे देवि ! सदा कर्मका आचरण करना चाहिये ॥ ४४ ॥

वैदिकं तान्त्रिकं वापि यदि भाग्येन लभ्यते ।
न वृथा गमयेत्कालं द्यूतक्रीडादिना सुधीः ॥ ४५ ॥

यदि भाग्यसे वैदिक वा तान्त्रिक कर्म कर सके, तौ बुद्धिमान मनुष्य जुए इत्यादिके द्वारा कालातिपात करके वृथा समय नष्ट न करैं ॥ ४५ ॥

गमयेद्देवतापूजाजपयज्ञस्तवादिना ।
द्विविधश्चैव तत्कर्म बाह्यान्तरविभेदतः ॥ ४६ ॥

देवता पूजा, जप, यज्ञ और स्तवादि द्वारा काल क्षय करैं, कर्म दो प्रकारके हैं, बाह्य और आन्तरिक ॥ ४६ ॥

बाह्यश्चानियमाशक्तं मानसं न तथा पुनः ।
अशुचिर्वा शुचिर्वापि यत्र कुत्र स्थलेऽपि वा ॥ ४७ ॥
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्वापि यद्वा यद्वा वरानने ।
कुर्याच्च मानसं धर्म न दोषो मानसे क्वचित् ॥ ४८ ॥

बाह्य कर्म अनियम द्वारा नहीं किया जा सकता, किन्तु मानसिक वा आन्तारिक कर्ममें ऐसा नहीं है अपवित्र हो वा पवित्र हो जिस किसी स्थलमें स्थिति करते हो, चलते चलते हो, अथवा जो कोई कार्य करते करते हो मानस धर्मका आचरण करै । क्योंकि, मानसमें कोई दोष नहीं है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सर्वेषां कर्मणां श्रेष्ठं जपज्ञानं महेश्वरि ।
जपयज्ञो महेशानि मत्स्वरूपो न संशयः ॥ ४९ ॥

हे महेश्वरि ! जपयज्ञ सभी कर्मोंसे श्रेष्ठ है, जप यज्ञ मेरा स्वरूप है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४९ ॥

जपयज्ञे हि तिष्ठेद्यो बाह्ये वा चान्तरोऽपि वा ।
सर्वदा परमेशानि जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ ५० ॥

बाह्यमें हो वा अन्तरमें हो, जो मनुष्य जपयज्ञमें नियमासक्त होता है, उसको निःसंदेह जोवन्मुक्त जानना चाहिये ॥ ५० ॥

वैदिकास्तान्त्रिका ये ये धर्म्माः सन्ति महेश्वरि ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ५१ ॥

हे देवि ! वैदिक हों वा तान्त्रिक हों, जो जो धर्म जगत्में विद्यमान हैं, वह सब जपयज्ञके षोडशांश नहीं होंगे ॥ ५१ ॥

ग्रहभूतपिशाचाद्या यक्षरक्षोगणाश्च ये ॥
व्याघ्राद्या जन्तवो देवि तथैव कुपितान्तराः ॥ ५२ ॥

ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष और रक्षोगण व्याघ्रादि कुपितान्तर हिंसक जन्तुगण ॥ ५२ ॥

डाकिन्यो गुह्यकाश्चैव गन्धर्वाश्च सरीसृपाः ।
दानवा भैरवा दुष्टा ये वै श्मशानवासिनः ॥ ५३ ॥

डाकिनीगण, गुह्यकगण, गंधर्वगण, सरीसृपगण, दानवगण, भैरवगण और श्मशानवासी दुष्टगण ॥ ५३ ॥

केऽपि नेच्छन्ति तं देवि जापिनं भयविह्वलाः ।
न स्पृशन्ति च पापानि कदापि साधकं प्रिये ॥५४॥

सबही भयविह्वल होकर जपकारी व्यक्तिका दर्शन नहीं कर सकते हे प्रिये ! सब पाप साधक व्यक्तिको कभी स्पर्श नहीं कर सकते ॥ ५४ ॥

फलमेतद्वाचिकस्य जपस्य परिकीर्त्तितम् ।
तस्माच्छतगुणो पांशुः सहस्रो मानसो मतः ॥५५॥

मैं तुमसे वाचिक जपका फल कहता हूं, उपांशु जपसे उसका शत गुण और मानसिक जपसे उसका सहस्रगुण फल प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिको जप ईरितः ।
किञ्चित्सुश्रवणोपेत उपांशुः परिकीर्त्तितः ॥ ५६ ॥

उच्च वाक्य द्वारा मन्त्रका उच्चारण करनेपर उसको वाचिक जप और किंचित् श्रवणयोग्य जपही उपांशु जप है ॥ ५६ ॥

निजकर्णगोचरो यो मानसः परिकीर्त्तित ।
वाचिकस्तु जपो बाह्यो मानसोऽभ्यन्तरो मतः॥५७॥

और जो अपने कर्णगोचर न हो, वही मानसिकजप है, वाचिक जपही बाह्य जप और मानसिक जपको ही आभ्यन्तर जप कहते हैं ॥ ५७ ॥

उपांशुर्मिश्र एव स्यात्त्रिविधोऽयं जपः स्मृतः ।
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥ ५८ ॥

और उपांशु जपको मिश्र जप कहते हैं, इस भांति जप तीन प्रकारका होता है । जपद्वारा स्तूयमान देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ५८ ॥

प्रसन्ना विपुलान्कामान्दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीम् ।
साधनञ्च जपश्चैव ध्यानं चैव वरानने ।
नाल्पेन तपसा देवि केनापि कुत्र लभ्यते ॥ ५९ ॥

और प्रसन्न होकर विपुल काम्य विषय और अन्तमें शाश्वती मुक्ति प्रदान करते हैं । हे वरानने ! साधन, जप और ध्यान अल्प तपस्यासे कहीं भी प्राप्त नहीं होता ॥ ५९ ॥

यदि भाग्येन देवेशि बहुजन्मार्जितेन च ।
प्राप्यते यत्र तच्चेत्तु जन्मनाप्येकमोक्षभाक् ॥ ६० ॥

हे देवेशि ! यदि जन्मार्जित पुण्यके बलसे वह सब प्राप्त हों तो एक जन्ममें ही मोक्ष हो सकता है ॥ ६० ॥

ब्रह्मज्ञानञ्च यत्प्रोक्तं समाधिस्तत्प्रकीर्त्यते ।
इत्येवं कथितं रम्यं समासेन महेश्वरि ।
इतः परं महादेवि किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६१ ॥

जो ब्रह्मज्ञान कहा है, उसीको समाधि कहते हैं हे महादेवि ! यह मैंने तुम्हारे निकट संक्षेपसे मनोहर गुप्त विषय वर्णन किया, अब इसके पीछे तुम क्या सुननेकी इच्छा करती हो सो कहो ॥ ६१ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति साहस्रे भाषाटीकायांत्रयोदशः पटलः ॥ १३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भो देव परमानंद महायोगेश्वर प्रभो ।
शुश्रूषा यत्र मे देव कृपया कथ्यतां गुरो ॥ १ ॥
श्रुतं विप्रस्य चरितं रेतसस्ते सनातन ।
प्लवश्च यवनश्चैव सौमारश्च महेश्वर ॥ २ ॥

**तेषां रेतःसमुद्भूता म्लेच्छास्ते कामपालकाः ।
कथं जाता महादेव वद मे करुणामय ॥ ३ ॥**

श्रीदेवीने कहा-हे महायोगेश्वर परमानन्द देव प्रभो ! मैं जो सुनना चाहती हूं, आप कृपापूर्वक उसका वर्णन कीजिये । हे सनातन गुरो ! मैंने विप्रचरित और आपके वीर्यका तेज सुना । प्लव, यवन, सौमारगणोंके वीर्योत्पन्न म्लेच्छ गण जो कामरूपके पालक हैं, उन्होंने किस प्रकार वहांसे जन्म ग्रहण किया ? आप कृपा करके यह सब कहिये ॥१॥२॥३॥

ईश्वर उवाच ।

**शाल्वपुत्राश्च बाह्लीका मृताः कौरवसंयुगे ।
नान्यो वंशधरः कश्चित्तद्वंशे तु त्रिलोचने ॥ ४ ॥**

ईश्वर बोले-हे देवि ! शाल्वपुत्र बाह्लिकगण कौरवसमरमें निहत हुए हैं, हे त्रिलोचने ! उस वंसमें अन्य कोई वंशधर नहीं था ॥ ४ ॥

**तदा बाह्लीकरमणी कीर्मिर्गुणवती शुभा ।
युवती सुन्दरी रम्या तपःशीला महामतिः ॥ ५ ॥
पुत्रेच्छया गता काशीं तपस्तेपे दिवानिशम् ।
स्थित्वा विश्वेश्वराग्रे तु द्वारे मे मुक्तिमण्डपे ॥ ६ ॥**

उसी समय परम सुन्दरी मनोरमा सुन्दरी युवती महामति तपःशीला गुणवती बाह्लिकरमणी कल्याणिनी कीर्मि पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छासे काशीमें आनकर विशेश्वरके अग्रद्वार मुक्तिमण्डपमें स्थित हो दिन रात तपस्या करने लगी ॥ ५ ॥ ६ ॥

**तदा बलिसुतो बाणो महाकालो महाबलः ।
तद्द्वारपालको देवि शुशुभे तां निरीक्ष्य च ॥ ७ ॥**

मद्धीकामादाय भैरवं काममोहितः ।
कपालमाली मदिरामोदितोन्मत्तवेषवान् ॥ ८ ॥

उसी समय बलिपुत्र बाण और महाबल महाकाल विश्वेश्वरके द्वारपाल थे, तिनके मध्य मेरे अधिकारमें स्थित भैरव शोभायमान कीर्मिको देखकर कामसे मोहित हुआ कपालमालाधारी मदिरासे मत्त, उन्मत्त वेशवान् ७॥८॥

तपस्विवेषमास्थाय निर्लज्जो रतिनायकः ।
कीर्मेर्जाता महादेवि बन्धूकामलकद्युतिः ॥ ९ ॥

भैरवो विपुलस्तत्र ततो जातो महाङ्कुशः ।
कीर्मेः सुतो महादेवि महाकालस्य रेतसः ॥ १० ॥

तपस्वी वेशधारी, निर्लज्ज रतिनायक भैरवने कीर्मिके संग प्रेम पाशमें बद्ध होकर सहवास किया । हे महादेवि ! इससे कीर्मिके महाकुंशनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ! बन्धूकामलक (दुपहरीके पुष्पके समान) इस पुत्रकी कान्ति देखनेसे कीर्मि अतिशय आल्हादित हुई । महाकालके वीर्यसे यह कीर्मिका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥ १० ॥

वात्सल्यं तत्र दृष्ट्वाहं तत्पुत्रो भैरवस्य च ।
तथानिशं रतिं चापि महाङ्कुशमहाभुजम् ॥ ११ ॥

राज्याप्तिं सह तस्यापि कीर्मिचेष्टां च शाम्भवि ।
कामरूपांतकः शाल्वो राज्यं प्राप्तो महाङ्कुशः॥१२॥

भैरवके उस पुत्रको देखनेसे मुझको अत्यन्त वात्सल्य उत्पन्न हुआ । हे शाम्भवि ! महाभुजशाली महाकुंश अत्यन्त यत्नसहित ललित और पालित होने लगा । कीर्मिकी तपस्यासे उसको राज्य प्राप्त हुआ । कामरूपान्तक शाल्व इस प्रकार महाकुंश रूपसे राज्यको प्राप्त हुआ ॥११॥१२॥

कीर्मेर्योनिं समासाद्य कुलाचारपरायणः ।
समर्च्चयद्यथा काश्यां तथा तत्रापि सर्वदा ॥ १३ ॥

वह शाल्व कीर्मिके गर्भ से उत्पन्न होकर कुलाचारपरायण हुआ और सदाही काशीमें वास करके तुम्हारी पूजा करने लगा ॥ १३ ॥

त्वत्पूजा तत्र महती भविष्यति दिवानिशम् ।
महाङ्कुशं समुद्भूय काश्यामास्कन्दनं कुतः ॥१४॥
ततः प्लवेतिनामा च जगाम मणिमण्डपम् ।
एवं ते कथितं देवि चरितं प्लवसम्मतम् ॥ १५ ॥

हे देवि ! वहां रातदिनही तुम्हारी महती पूजा होगी, इसमें सन्देह नहीं । महाकुंशकी उत्पत्तिके पीछे अन्य काशीमें आक्रमण और आस्कन्दादि कुछ नहीं है । फिर वह प्लवनामसे विख्यात होकर मणिमण्डपमें गया । हे देवि ! यह मैंने तुमसे प्लवचरित्र वर्णन किया ॥ १४ ॥ १५ ॥

यावनं चरितं किञ्चित्कथयामि शृणुष्व तत् ।
आसीत्त्रेतायुगे राजा बाहुर्धर्मपरायणः ।
महाबुद्धिर्महायोद्धा सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ १६ ॥

हे देवि ! कुछेक यवनचरित्र वर्णन करता हूं सो सुनो । त्रेता युगमें बाहुनामक महाबुद्धि महायोद्धा धर्मपरायण सूर्यवंशीय राजा था ॥ १६ ॥

पितृशत्रून्विनिर्जित्य सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
बुभुजे परम कामं योगध्यानं तु विस्मृतम् ॥ १७ ॥

वह पिताके समस्त शत्रुओंको जीतकर सप्तद्वीपवाली पृथ्वीमें सब परम भोग्य विषय भोगने लगा । किन्तु योग ध्यानादि सब भूल गया ॥ १७ ॥

आदौ पराजितस्तैस्तु बाहुर्मासेन निष्कृतः ।
जितराज्यो बाहुराजः सस्त्रीको वनमाययौ ॥ २४ ॥

राजाओंने एकत्र मिलित होकर मंत्रणापूर्वक समुद्र लंघन करके बहुराजको परास्त करनेके पीछे उत्तरकोशलका अधिकार कर लिया बाहुराज्य क्रमशून्य थे, अतएव एकही मासमें पराजित हुए। हृत राज्य बाहुराज स्त्रीसहित वनको चले गये ॥ २३ ॥ २४ ॥

ममार तद्वने बाहुः समस्तं निष्प्रभं यथा ।
तत्पुत्रः सगरो धीरो महावीर्यपराक्रमः ।
विसर्जितौ तेन भूपौ तालजंघोथ हैहयः ॥ २५ ॥
अवमानाद्वसिष्ठस्य तत्तयोरीदृशी गतिः ।
पुनश्च तौ च राजानौ यवनौ प्राणकातरौ ॥ २६ ॥
वसिष्ठं शरणं यातौ रक्ष रक्षेति वादिनौ ।
ततस्तान्यवनान्विप्रो वसिष्ठस्त्वभयं ददौ ॥ २७ ॥

वहां उन्होंने प्राण त्याग किया, इससे सब ही निस्तेज हो गये। बाहुका पुत्र सगर, धीर, महावीर्य और महापराक्रमशाली था। उस भुजबलसे तालजंघा और हैहय गणोंको राज्यसे दूर किया था। उन्होंने वसिष्ठजीका अपमान किया था, इसी कारण उनकी ऐसी दुर्दशा हुई थी। इन दोनों यवन राजने प्राणभयसे कातर होकर वसिष्ठके निकट आगमन पूर्वक रक्ष रक्ष कहकर आश्रय लिया। वसिष्ठने इन यवनोंको अभयदान दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे भूपः सगरः क्रोधमूर्च्छितः ।
तान्हन्तुकामो नृपतिर्वसिष्ठान्तिकमाययौ ॥ २८ ॥
तं तथाभूतमालोक्य वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः ।
उवाच सगरं देवि धर्मज्ञं बाहुनन्दनम् ॥ २९ ॥

उसी समयमें सगरराज क्रोधसे मूर्छित हो उनके विनाश करनेकी इच्छासे वसिष्ठके समीप उपस्थित हुआ । ब्रह्मसम्भव वसिष्ठ ऋषिने धर्मज्ञ बाहुनन्दन सगरराजाको आया हुआ देखकर कहा ॥ २८ ॥ २९ ॥

बाहुनन्दन माहिंसीरभयं दत्तवानहम् ।
तच्छ्रुत्वा स्थगितो राजा बाहुजो ह्यभवत्कृती ॥३०॥

हे वीर बाहुनन्दन ! तुम इनको मतमारना मैंने इनको अभय दिया है । यह सुनकर बाहुराज कृतिवर सगरने स्थगित (आश्चर्यको प्राप्त) होकर विचार किया ॥ ३० ॥

ब्रह्मवाक्यं वृथा न स्यात्प्रतिज्ञा मेऽपि पूर्वजा ।
इदानीं किं करोम्यद्य संकटं समुपस्थितम् ॥ ३१ ॥

मैंने पहिले प्रतिज्ञा करी है कि कभी ब्रह्मवाक्यका अपमान नहीं करूंगा, अबमैं क्या करूं, मुझको विषम संकट उपस्थित है ॥ ३१ ॥

इति सञ्चिन्त्य तत्सर्वं वसिष्ठं स न्यवेदयत् ।
हन्मि तान्मानुषगणान्प्रतिज्ञा मे कृता पुरा ॥ ३२ ॥

यह सब विचारकर वशिष्ठजीसे निवेदन किया । मैंने पूर्वमें प्रतिज्ञा की है कि इन सब यवनोंको हनन करूंगा ॥ ३२ ॥

तत्र त्वद्वचनं श्रुत्वा हतोऽहं किं करोम्यतः ।
त्वद्वाक्यमन्यथा कर्तुं नाहं शक्तो मुनीश्वर ॥ ३३ ॥

अब आपका वचन सुनकर मैं हतबुद्धि हुआ हूं क्या करूं कुछ स्थिर नहीं करसकता. हे मुनिवर ! मैं आपका वचनभी अन्यथा नहीं करसकता ॥ ३३ ॥

यदोपायं नो करोषि श्रेयो मे मरणं तदा ।
एवं श्रुत्वा वसिष्ठोसौ सत्वरं प्रत्यभाषत ॥ ३४ ॥

यदि आप इसका उपाय न करेंगे, तो मेरा मरनाही श्रेष्ठ है । यह वचन सुनकर वशिष्ठने शीघ्र उत्तर दिया ॥ ३४ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

मा विषादं गच्छ सखे कर्त्तव्यं यच्छृणुष्व तत् ।
तवारातीनिमान्सर्वान्मुण्डयित्वा शिरांसि तु ।
वेदाचारबहिर्भूतान्देशात्त्वं कुरु दूरतः ॥ ३५ ॥

वसिष्ठजी बोले—हे सखे ! तुम विषाद मत करो । मुझसे कर्त्तव्य सुनो । आपने इन सब शत्रुओंका शिरमुण्डन और इनका वेदाचार बहिर्भूत करके देशसे दूर निकाल दो ॥ ३५ ॥

हिमाद्रेः पश्चिमे भागे देशे तु यवनो नृपः ।
इत्थं मे वचनं तिष्ठेत्प्रतिज्ञाऽपि च ते विभो ॥ ६६ ॥
शिरसां कृन्तनं युद्धे मुण्डनं तद्वदेव हि ।
वेदेऽपि स्थिरमेतद्धि समानं समुदाहृतम् ॥ ३७ ॥

हिमाचलके पश्चिम भागमें यवन देश है, वहां इनको निकाल दो । तो तुम्हारी प्रतिज्ञा भी मिथ्या नहीं होगी, क्योंकि शिरछेदन और शिरमुण्डन एक कार्य है । वेदमें यह दोनों कार्य ही समान कहे गये हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

ईश्वर उवाच ।

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा सगरोऽपि तथाकरोत ।
तेऽपि वै क्षत्रियाः सर्वे हैहयास्तालजङ्घकाः ।
विडम्बिता विहीनास्ते सदा मुण्डितमस्तकाः ॥३८॥

ईश्वरने कहा—वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर सगरने भी उनके प्रति वैसा ही आचरण किया । क्षत्रिय हैहय और तालजंघगण इस प्रकार मुंडितमस्तक विडम्बित (अपमानित) और हीन होकर ॥ ३८ ॥

सुषेणं मुनिमाश्रित्य सदाचारविवर्जिताः ।
सुषेणस्योपदेशात्ते तपस्तेपुः सदाश्रिताः ॥ ३९ ॥

सुषेण मुनिका आश्रय ग्रहणपूर्वक सदाचाररहित होकर रहे अनन्तर मुनिके उपदेशसे उसने सदा तपस्या करनी आरम्भ की ॥ ३९ ॥

यमाश्रित्य महादेवि स्वेच्छाचारपरायणाः
तामसास्ते महादेवि तामसं भावमाश्रिताः ॥ ४० ॥

हे महादेवि ! वह स्वेच्छाचारपरायण थे, अतएव तामस भाव ग्रहण पूर्वक तामसधर्मी हुए ॥ ४० ॥

संयोगश्च वियोगश्च मन्त्राणाञ्च द्विधा गतिः ।
सात्विके राजसे देवि संयोगः फलदायकः ।
बाह्यान्तरवियोगेन संयोगोपि ह्यनुत्तमः ।
तामसे तु वियोगः स्याद्बाह्यसिद्धिफलप्रदः ॥ ४१ ॥

समस्त मन्त्रोंकी गति संयोग और वियोग भेदसे दो प्रकार है । हे देवि ! सात्विक और राजधर्ममें संयोग फलदायक बाह्यान्तर वियोगसहित संयोग भी उत्तम है, तामसमें वियोगबाह्य भी सिद्धिप्रद होता है ॥ ४१ ॥

तामसः परलोके तु बाह्यस्तद्धर्म ईरितः ।
तेषां तेनैव भावेन प्रसादो मेऽभिजायते ॥
मया दत्तो वरस्तेभ्यः शृणु कामयितुर्वरम् ।
भुंक्ष्वेदानीमिदं राज्यं यवनाभीष्टमेव च ॥ ४२ ॥

तामस परलोकमें बाह्य धर्म कहा जाता है उनके इस तामस भावमें ही मेरी प्रसन्नता होती है, मैंने उसको वर दिया था, सो उन कामना करनेवालेके वरको सुनो । हे यवनो ! तुम इस समय यह राज्य भोग करके अवस्थान करो ॥ ४२ ॥

काले तथेन्द्वष्टनवोन्मिते शाके कलौ युगे ।
पुण्यदेशाधिपा यूयं भविष्यथ सुनिश्चितम् ॥ ४३ ॥

और कलियुगमें इन्दु अष्ट नव शाक अर्थात् नौसौ इक्यासी (९८१) गत होनेपर तुम निःसन्देह पुण्यदेशके अधिकारी होगे ॥ ४३ ॥

एवमेव महेशानि कामरूपाधिपः शिवे ।
यवनो मत्प्रसादेन तथान्यपुण्यभूमिषु ।
बहुभूपसमाकीर्णः कलौ भुंक्ते महीं मुदा ॥ ४४ ॥

हे महेश्वरि शिवे ! इस प्रकार यवनगण कामरूपके अधीश्वर हुए थे यवनगण मेरे प्रसादसे कलिकालमें अन्यान्य पुण्यभूमिके अधीश्वर होकर बहुतर यवनराज प्रफुल्लित चित्तसे पृथ्वीको भोगते हैं ॥ ४४ ॥

एवं ते कथितो देवि वृत्तान्तो यावनः सदा ।
इदानीं श्रूयतां युद्धे सौमारचरितं तथा ॥ ४५ ॥

हे देवि ! यह मैंने तुमसे यावनिक वृत्तान्त कहा । अब सौमारगणोंके युद्धके चरित्रकी कथा सुनो ॥ ४५ ॥

एकदाऽमरराजस्तु खाण्डवं वनमाययौ ।
विहाय देवराज्यं च कौशलाङ्ग्या सह स्वयम् ॥४६॥

एक दिन अमरराज इन्द्र अमरराज्य छोड़कर कौशलाङ्गीके सहित खाण्डव वनमें गये ॥ ४६ ॥

गतेषु बहुकालेषु क्रीडया देवभूभुजः ।
तौर्यत्रिके सम्यगिच्छा जाता बहुविधा तथा ॥ ४७ ॥

देवराजने वहां बहुतकाल क्रीडा करी तदनन्तर उनकी तौर्यत्रि-कादि (गाना नाचना बजाना इत्यादि) विषयमें सम्यक् वासना उत्पन्न हुई ॥ ४७ ॥

रम्भां तिलोत्तमां काश्वीं कुरङ्गाक्षां मनोहराम् ।
आदिदेश समानीय नृत्यं कर्तुं च रम्भया ॥ ४८ ॥

ततस्तेन वृताः सर्वा वेश्या ननृतुरन्विता ।
इन्द्रं विधिविधानेन तोषयामासुरोजसा ॥ ४९ ॥

अनन्तर देवेन्द्रने रम्भा, तिलोत्तमा, काञ्ची, कुरङ्गाक्षी, मनोहरा, इन सब स्वर्गकी स्त्रियोंको रम्भाके साथ बुलाकर नाचनेकी आज्ञा दी । देवराजसे बुलाई हुई अप्सराओंने नाचना आरम्भ किया । अनेक प्रकारके विधानसे स्वर्गकी वेश्याओंने इन्द्रको सन्तुष्ट किया ॥४८॥४९॥

मोहिता चापि कौशाङ्गी देवराजेन सङ्गता ।
तासां नृत्यप्रगीतेन कामोद्रेकोऽभवत्तदा ॥ ५० ॥

अनन्तर कौशाङ्गी मोहित होकर देवराजसे संगत हुई, तब उनके नृत्य-गीत द्वारा इन्द्रको काम उत्पन्न हुआ ॥ ५० ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवि या स्ववेंश्या मनोहरा ।
तया रतिं समकरोद्देवेन्द्रो बलसूदनः ॥ ५१ ॥

फिर सुरासुरप्रणम्य दुर्दान्त दनुजशास्ता बलघातक इन्द्रने मनोरमा नामक स्वर्गवेश्याके प्रति अनुराग प्रदर्शन किया ॥ ५१ ॥

इन्द्रं तद्विधमालोक्य मनो दध्रे तथा तु सा ।
कामवेगेन विभ्रान्ता स्खलिता नृत्यगीतयोः ॥ ५२ ॥

इनको इस प्रकार अनुरक्त देखकर उस मनोहरा स्वर्गकी वेश्याने भी इन्द्रके प्रति मनोधारण किया । इससे कामावेशके कारण घबड़ा कर मनोहराका नृत्य गीत स्खलित होने लगा ॥ ५२ ॥

रतिधैर्यं तयोर्जातं तस्यास्तत्स्खलनं पुनः ॥ ५३ ॥
ततस्तस्या मनो ज्ञात्वा कौशाङ्गी क्रोधमूर्च्छिता ।
उवाच निष्ठुरां वाणीं शृणु देवि मनोहरे ॥ ५४ ॥

यह देख और उन दोनोंकी प्रीति उत्पन्न हुई जान कौशङ्गीने क्रोध मूर्च्छित हो निष्ठुर वचनोंके द्वारा मनोहरासे कहा—हे मनोहरे ! सुनो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

भूत्वा वेश्या महादुष्टा मद्रतं देवमीहसे ।
अतः प्रचलितं चित्तमावयो रतिकर्मणि ॥ ५५ ॥

तू स्वर्गकी महादुष्ट वेश्या होकर मुझमें प्रीति करते हुए देवेन्द्रकी इच्छा करती है इसी कारण हमारे रतिकार्यमें विघ्न उपस्थित कराकर उसको भग्न कर दिया ॥ ५५ ॥

अतो वेश्ये याहि भुवि राजानं पतिमाप्नुहि ।
एवमुक्तं दुष्टशापं कौशाङ्गीमुखनिःसृतम् ।
श्रुत्वा च मूर्च्छिता भूत्वा कौशाङ्गीचरणेऽपतत्॥५६॥

अत एव तू मर्त्यलोकमें जाकर नरपतिको पति प्राप्त करो । कौशाङ्गीके मुखसे निकला इस प्रकार दुष्टशाप सुनकर मनोहरा मूर्च्छित हो कौशाङ्गीके चरणोंमें गिरगई ॥ ५६ ॥

विललाप सुदुःखार्ता धृत्वा च चरणौ मुहुः ।
ततो जगाद कौशाङ्गी द्वात्रिंशद्धायनं भुवि ।
भुक्त्वा मनोहरे शापं पूर्णे स्वास्थ्यं गमिष्यसि॥५७॥

वारम्वार चरण पकड़ कर विलाप करने लगी यह देखकर कौशाङ्गी-को करुणा उत्पन्न हुई । उसने कहा तू बत्तीसवर्ष शाप भोगनेके पीछे फिर सुस्थता लाभ करेगी ॥ ५७ ॥

मन्दाकिन्यां त्यक्ततनुस्ततः स्वर्गं गमिष्यसि ।
कङ्कता मोहिनी सा तु धार्त्तराष्ट्रं पतिं गता ॥ ५८ ॥

फिर तू मन्दाकिनीमें मनुष्यशरीर छोडकर स्वर्गमें जायगी । उस मनोहराने मर्त्यलोकमें कंकती नामक मोहिनी कामिनी होकर धार्तराष्ट्रको पति लाभ किया ॥ ५८ ॥

कौरवे च कुरुक्षेत्रे हते नारिशतं मृतम् ।
तूर्णञ्च कङ्कती सागाच्चन्द्रचूडगिरिं भिया ॥ ५९ ॥

अत्युच्चशिखरे तस्य सा तस्थौ भृशदुःखिता ।
प्राप्ता ऋतुं स्वर्गवेश्या द्वितीयदिवसे निशि ।
कामबाणैश्च संविद्धा मूर्च्छिता तापमागता ॥ ६० ॥

फिर कुरुक्षेत्रके समरमें कौरवोंके निहत होनेपर सौ नारियोंने प्राण त्याग किया कंकती डरकर शीघ्रतासहित चन्द्रचूडपर्वतमें भाग गई । कंकती अत्यन्त दुःखित होकर उस पर्वतके अत्यन्त ऊंचे सिखरमें वास करने लगी एक समय वही स्वर्गवेश्या ऋतुमती होकर दूसरे दिन कामबाणसे विद्ध हो अत्यन्त सन्तापित हुई ॥ ५९ ॥ ६० ॥

इन्द्रो रथसमारूढोऽयादपश्यत्तु सुन्दरीम् ।
सालंकारा कुशद्वीपात्स्मृत्वा तत्पूर्वकारणम् ॥ ६१ ॥

वेदयित्वा च तत्सर्वं तां कान्तां काममोहिताम् ।
रतिं कृत्वा गतस्तस्याः सुतोभूच्च ह्यरिन्दमः ॥ ६२ ॥

इसी समय देवराजने रथमें चढकर कुशद्वीपसे गमन करते करते गहनोंसे युक्त उस सुन्दरीको देखा । उन्होंने पूर्वकारण स्मरणपूर्वक उस काममोहिता कांताको समस्त विदित कराया । फिर आसक्त होकर उसके संग सहवास किया इसीसे गंधमादनपर्वतमें कंकतीके अरिन्दम नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

कङ्कत्याः परमेशानि पर्वते गन्धमादने ।
यतो जग्राह तामिन्द्रो द्वितीयदिवसे ऋतौ ॥ ६३ ॥

ततः सोरिन्दमश्चाभून्म्लेच्छाचारपरायणः ।
व्याधवृत्तिरतो घोरः सर्वदा प्राणिहिंसकः ॥ ६४ ॥

सर्वमांसादनो देवि किरातो घटितो यथा ।
सर्वपुण्यबहिर्भूतः सर्वपापसमाकुलः ॥ ६५ ॥

मद्यमांसमदामोदी कदाचारपरायणः ॥
ईदृशं तं सुतं दृष्ट्वा कङ्कती भृशदुःखिता ॥ ६६ ॥
तपस्तेपेऽतिगाढं च सारात्सारं परात्परम् ।
तदा तस्याः पुरः स्थित्वा देवराजो जगाद ह ॥६७॥

इन्द्रने ऋतुके दूसरे दिन उससे सहवास किया था । इसी कारण अरिन्दम म्लेच्छाचारपरायण व्याधवृत्तिनिरत घोरतर सब प्राणियोंका हिंसक मद्य मांस सम्भोगमें आमोदी और किरातके समान सर्वमांसभक्षी । कदाचार परायण (निंदित आचारयुक्त पवित्र कर्मसे रहित) और सर्वप्रकारके पापोंमें आसक्त हो गया । कंकतीने पुत्रका ऐसा आचरण देख अत्यन्त दुःखित होकर घोर तप आरंभ किया ॥ । तब देवराजने उसके सन्मुख खड़े होकर कहा ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

इन्द्र उवाच ।

किन्निमित्तं तपस्तप्तं त्वया कंकति मे वद ।
तपसा तेऽतिसंतुष्टो यदीच्छसि ददामि च ॥ ६८ ॥

इन्द्रने कहा हे कंकति ! तुम किस कारण तप करती हो ! मुझसे कहो । मैं तुम्हारे तपसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं । जो इच्छा करोगी वही दूंगा ॥ ६८ ॥

कंकत्युवाच ।

सुतस्ते ईदृशो जातः सदा पापपरायणः ॥
द्रष्टुं न शक्ता देवेश यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६९ ॥
देवाधिदेव देवेश सुतोयं ते सुराधिप ।
भवेत्सत्यं न सन्देहः पापचारी नराधमः ॥ ७० ॥
यतस्त्वं देवतानाथो विराधोयं सुतस्तव ।
यथेच्छसि तथा नाथ कुरु मां नय हे प्रभो ॥ ७१ ॥

किंकरीत्वं पार्श्वदेशे किङ्करीत्वे नियोजय ।
देवाधीश वरो ह्येष नान्यः कामः कदाचन ॥ ७२ ॥

कंकर्ती बोली मेरे गर्भसे तुम्हारी जो सन्तान उत्पन्न हुई है । वह सदा ही पापाचारमें निरत है हे देव ! मैं उसका पापाचार देखनेमें समर्थ नहीं हूं । आप इस विषयमें जो उत्तम हो वही कीजिये । हे देवाधिदेव ! देवेश ! तुम्हारा यह पुत्र नराधम होगा इसमें सन्देह नहीं । हे इन्द्र ! आप देवताओंके अधिनाथ हैं । तुम्हारा पुत्र ऐसा नराधम हुआ । इस विषयमें आपकी जो इच्छा हो वह कीजिये मुझको शीघ्र ही जहां इच्छा हो वहां ले चलिये इस किंकरीको लेकर किंकरी कार्यमें नियुक्त कीजिये । हे देवाधिप ! यही मेरी कामना है । अन्य कामना मेरी नहीं है॥६९॥७०॥७१॥७२॥

इन्द्र उवाच ।

शृणु प्रेयसि मद्वाक्यं शापकालो गतस्तव ।
त्वरितं नेष्याम्यधुना त्वामहं सुस्थिरा भव ॥७३॥

इन्द्रने कहा—हे प्रेयसि ! सुनो तुम्हारा शापकाल बीत गया । अब तुझको शीघ्र ही ले जाऊंगा । स्थिर होओ ॥ ७३ ॥

पुत्रस्य पापयोगेन वंशनाशो ध्रुवं भवेत् ।
अतः शताष्टविंशे च पुरुषे क्षयिते सति ॥ ७४ ॥

सौमारवासिनो भूत्वा वंशे मे राजपुङ्गवाः ॥ ७५ ॥

न्यायबुद्धिमहोत्साहा देवविप्रपरायणाः ॥
भविष्यन्ति न सन्देहो ब्रह्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ।
गच्छन्ति चापि वैकुण्ठे सर्वेस्युर्विष्णुवल्लभाः ॥ ७६ ॥

लयमेष्यन्ति तत्रैव यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७७ ॥

पुत्रके पापयोगसे वंशका नाश होता है । अत एव एकसौ अट्ठाईस पुरुषके क्षय होनेपर त्वदीयगर्भज मद्वंश्यगण सौमारदेशमें वास करके राजश्रेष्ठ होंगे । वह सब पुण्यश्लोक अर्थात् ईश्वरभक्त धर्मरत सदाचारपरायण न्यायबुद्धिसम्पन्न महोत्साहशाली ब्रह्मतत्त्वज्ञ और देवद्विजपरायण होंगे । इसमें सन्देह नहीं । वह सभी विष्णुभक्तिपरायण होकर वैकुण्ठमें जायँगे फिर जब प्रलय होगी तब वह प्रलयको प्राप्त होंगे ॥ ७४–७७ ॥

ईश्वर उवाच ।

ततस्तान्तु समादाय जगामेन्द्रो निजालयम् ।
तथा काले तु सौमारः कामरूपाधिपोऽभवत् ॥ ७८ ॥

ईश्वरने कहा तदन्तर इन्द्र उस कंकतीको अपने स्थानमें ले गया यथाकालमें कंकती गर्भज सौमारगण कामरूपके अधीश्वर हुए ॥ ७८ ॥

पूर्वभागे च सौमारः कुवाचः पश्चिमे तथा ।
दक्षिणे यवनस्तद्वदुत्तरे प्लव एव च ॥ ७९ ॥

पूर्व भागमें सौमार पश्चिममें कुवाच दक्षिणमें यवन और उत्तरमें प्लवगणने राज्य किया था ॥ ७९ ॥

एवमेव महादेवि ते सर्वे कामपालकाः ।
एवं ते कथितं देवि सौमारचरितं हि तत् ॥ ८० ॥

हे महादेवि ! यह सब कामरूपके पालक हुए थे हे देवि ! यह मैंने तुमसे सौमारचरित वर्णन किया ॥ ८० ॥

इतः किमिच्छसि श्रोतुं यत्त्वया न श्रुतं क्वचित् ॥ ८१ ॥

इसके पीछे जो कभी तुमने नहीं सुना ऐसा और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ ८१ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां चतुर्दशः पटलः ॥ १४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

पृच्छामि त्वां रहः किंचित्कामाख्या का वदस्व मे॥१॥

श्रीदेवीने कहा मैं आपसे गुप्त रीतिपर पूंछती हूं हे देव ! कामख्या किस प्रकार है ! यह मुझसे कहिये ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

या काली परमा विद्या ब्रह्मरूपा सनातनी ।
कामाख्या सैव देवेशि सर्वसिद्धिविनोदिनी ॥ २ ॥

ईश्वर बोले–हे देवेशि ! जो ब्रह्मरूपा सनातनी महाविद्या परमेश्वरी काली है वही सर्वसिद्धि विनोदिनी कामख्या है ॥ २ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथं काली ब्रह्मरूपा कामाख्याभून्महेश्वर ।
सर्वं मे कृपया नाथ वद त्वं चन्द्रशेखर ॥ ३ ॥

श्री देवी बोली–हे नाथ ! हे महेश्वर ! हे चन्द्रशेखर ! ब्रह्मरूपा काली किस प्रकार कामाख्या हुई करूणाप्रकाश करके इसका मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

यदा सृष्टिः कृता धात्रा स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
तदाहङ्कारदोषेण पूरितोऽसौ पितामहः ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले हे देवेशि ! स्वयम्भू ब्रह्माजीने जब सृष्टि करी तब वह पितामह अहंकारके दोषसे परिपूर्ण होगये ॥ ४ ॥

अहंकारः सर्वनाशकरः सर्वस्य चेश्वरि ।
तमहंकारमादाय स्थितो ब्रह्मा जगद्विभुः ॥ ५ ॥

हे ईश्वरि ! अहंकार सबकाही नाश करता है जगन्निधि ब्रह्मा उस अहंकारको लेकरही स्थित हुए थे ॥ ५ ॥

विस्मृतः सर्ववृत्तान्तः कालिकोक्तो हि यः पुरा ।
केवलाहंमतियुतो धाता भूतो हि सर्वदा ॥ ६ ॥
सर्वकामालयं विश्वं कस्य वा किं निमित्तकम् ।
अज्ञात्वैव महादेवि ब्रह्माहंकारमोहितः ॥ ७ ॥
तं तथाभूतमालोक्य ब्रह्माणं परमेश्वरि ।
तद्देहात्कल्पयामास तदहंकारतः शिवे ॥ ८ ॥
दैत्यं परमदुर्द्धर्षं केशिनामानमुद्यतम् ।
निःसृत्य ब्रह्मणो देहाद्दैत्यः परमदारुणः ॥ ९ ॥
धावतिस्म तदा देवि ब्रह्माणं ग्रसितुं ततः ।
ततः पलायनश्चक्रे विष्णुना सपितामहः ॥ १० ॥

पूर्वमें महाकालीने जो कहा था वह सब भूल गये ब्रह्माजी केवल अहङ्कारमेंही मत्त रहे और सर्व काम भोगालय विश्व किसका है ! इसका क्या होता है इस सबका कुछ भी तत्त्व धारण नहीं किया केवल मायावश अहङ्कारमें पूर्ण होकर ही रहे । हे शिवे ! परमेश्वरी कालीने ब्रह्माजीको अहङ्कारमें मग्न देखकर ब्रह्माके देहस्थित अहङ्कारसे ही परम दुर्द्धर्ष केशिनामक एक दैत्यको उत्पन्न किया यह दैत्य ब्रह्माजीको ग्रास करनेके लिये दौड़ा यह देखकर ब्रह्मा विष्णुके सहित भागनेमें तत्पर हुए ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

ततः केशी महादैत्यः पुरं चक्रे च भारते ।
केशीपुरमिति ख्यातं तत्र स्थित्वा हि दानवः ॥११॥
बुभुजे सकलं देवि भूर्भुवःस्वश्चराचरम् ।
ब्रह्माणं जहि शब्दोभूत्सदा ब्रह्माण्डमण्डले ॥ १२ ॥

तदनन्तर केशी दैत्यने एक पुर बनाया यह केशीपुरके नामसे विख्यात है । यह महादानव वहां वास करके भूर्भुवः स्वः इत्यादि अखिल चराचर

भोगने लगा । 'ब्रह्माको वध करो' यह शब्द ब्रह्माण्डमें सदा ही उठता रहा ॥ ११ ॥ १२ ॥

ततो ब्रह्मा जगद्धाता विष्णुना निरहङ्कृतिः
अस्तौषीज्जगतां धात्रीं कालीं विघ्नविनाशिनीम् ॥१३॥

जगद्विधाता ब्रह्माजी इस समय अहङ्काररहित होकर विष्णुके सहित जगन्माता विघ्नविनाशिनी कालीकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः ॥

नमः परमकल्याणीं प्रणवात्मानमीश्वरीम् ।
निजबीजस्वरूपाञ्च कामबीजस्वरूपिणीम् ॥ १४ ॥
मुण्डमालावलीरम्यां लोलजिह्वां सनातनीम् ।
मायाबीजस्वरूपां च कूर्चबीजस्वरूपिणीम् ॥ १५ ॥
वन्देहं जगतां धात्रीं कालीं कमललोचनाम् ।
घोरघोषां शिवाशब्दां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ॥१६॥
नमामि कालिकां देवीं महाविघ्नविनाशिनीम् ।
प्रणमामि सदा रुद्रां तां च त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ १७ ॥

ब्रह्मा विष्णु कहने लगे । परम कल्याणी प्रणवात्मा ईश्वरीको नमस्कार है जो निजबीजस्वरूपा और कामबीजस्वरूपिणी हैं । उन्हीं मुण्डमाला-वली द्वारा मनोहर महाकालीको नमस्कार है जो मायाबीजस्वरूपा और कूर्चबीचस्वरूपिणी हैं । उन्हीं लोलजीभवाली सनातनी जगन्माता कमल-लोचना कालीमाताकी वंदना करते हैं । जो घोर शब्दवाली तथा सब गीदड़ी जिनकी संगिनी हैं । और जो उन्हींकी सदृश शब्द करनेवाली हैं जो खुले बालवाली और नग्न हैं उन महाविविघ्ननाशिनी कालिकामाताको नमस्कार करते हैं । जो भुवनेश्वरी हैं उन विश्वजननी महाकालीको भक्ति पूर्वक प्रणाम करते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवं स्तुता ततो देवी ब्रह्मणा विष्णुनापि च ।
सहसाकाशवाण्याह किमिच्छसि पितामह ।
भो विष्णो त्वं महाबाहो किमिच्छसि च तद्वद ॥१८॥

ईश्वर बोले—ब्रह्मा और विष्णुके इस प्रकार महाकालीकी स्तुति करनेपर सहसा आकाशवाणी हुई। हे पितामह ! तुम क्या वांछना करते हो भो विष्णु तुम भी क्या चाहते हो ? वह कहो ॥ १८ ॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः ।

जातो दैत्यवरश्चैकः केशीनामा महासुरः ।
आवयोः सकलं नीतं नित्यं तत्तेन मण्डलम् ॥ १९ ॥
हत्वेदानीं तमसुरमावां स्थापय पूर्ववत् ।
देहि दास्यं पदाम्भोजे ह्येतद्धि नौ निवेदनम् ॥२०॥

ब्रह्मा विष्णुने कहा केशिनामक एक दैत्यवर महाअसुरने हमारा सम्पूर्ण जगन्मण्डल हरण किया है । इस समय उस असुरको मारकर हमको पूर्वके समान स्थापन कीजिये ! हे देवि ! आपके चरण कमलोंमें हमारा यही निवेदन है ॥ १९ ॥ २० ॥

श्रीकाल्युवाच ।

शृणु ब्रह्मन्नहो वाक्यमहंकारो गतस्तव ।
इदानीं परिसन्तुष्टा जगद्दास्यति तेन्तिकम् ॥ २१ ॥
सर्वं मायामयं तत्ते विश्वं नान्यस्य पद्मज ।
अहंकारन्तु ते दृष्ट्वा विघ्नं दत्तं दुरासदम् ॥ १२ ॥
मया तुभ्यं जगद्धातस्तवाहंकारनिर्मितम् ।

केशिदैत्यस्वरूपं तद्धन्मि विघ्नं स्थिरो भव ।
मा भयं कुरु भो विष्णो स्थिरो भव महामते ॥२३॥

कालीने कहा—अहो ब्रह्मन् सुनो । तुम्हारा अहङ्कार दूर हो गया है । अब यह जानना यह जगत् भी तुम्हारे अधिकारमें होगा । यह मायामय विश्व अन्यका नहीं है । हे पद्मज ! तुम्हारा अहङ्कार देखकर तुम्हारे प्रति दुर्द्धर्ष विघ्न प्रदान किया था हे जगद्विधातः ! यह विघ्न तुम्हारा अहङ्कार ही केशिदैत्यस्वरूप है । जो हो मैं उसको हनन करूंगी तुम स्थिर रहो भो महामते विष्णो ? तुम भय मत करो स्थिर होओ ॥२१॥२२॥२३॥

ईश्वर उवाच ।

एवमासाद्य आश्वास्य ब्रह्मविष्णू परात्मिका ।
हुंकारेणैव तं भस्म चकार दानवोत्तमम् ।
केशिनामासुरं काली विधिमाह ततस्तु सा ॥ २४ ॥

ईश्वर बोले—परमात्मिका महाकालीने इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुको आश्वासन भरोसा देकर हुङ्कारसे ही उस दानवेन्द्र महाअसुरके शरीरको भस्म किया । तदनन्तर दनुजकुलविघातिनी उग्रतन्वी महाकाली प्राणियोंके उत्पन्नकर्ता पितामह ब्रह्माजीसे स्नेहमय प्रीतिमय मंगलमय उदार वचनोंके द्वारा कहने लगी ॥ २४ ॥

काल्युवाच ।

अहंकारात्पातकं तं जातं ब्रह्मन्महत्तरम् ।
तत्पापस्यापनोदाय क्रियतां पर्वतोत्तमः ॥ २५ ॥
भस्मना केशिदैत्यस्य गोग्रासतृणपूरितः ।
तद्ग्रासभक्षणान्नित्यं गौस्ते पापं क्षयिष्यति ॥२६॥

कालीने कहा हे ब्रह्मन्! अहंकारके कारण तुमको महत्तर पाप उत्पन्न हुआ है। अतएव अपने उपार्जित उस पापसमूहके दूर करनेको केशिदैत्यकी भस्मद्वारा एक तृणलतापूर्ण पर्वतकी सृष्टि करो यह पर्वत बहुत गोग्रास धारण करेगा। गौगणोंके तृण लतारूप गोग्रास भक्षण करने पर तुम्हारा पाप क्षय होगा ॥ २५ ॥ २६ ॥

ईश्वर उवाच।

एकीकृत्य च तद्भस्म केशिदैत्यशरीजम्।
कमण्डलुजलक्षेपाच्चकार पर्वतं विधिः ॥ २७ ॥

ईश्वर बोले—विधाताने केशिदैत्यके शरीरकी भस्म इकट्ठी करके कमण्डलुका जल छिडकनेसे पर्वतकी सृष्टि की ॥ २७ ॥

नात्युच्छ्रितं नातिनिम्नं गोग्रासबहुना वृतम्।
तद्ग्रासभक्षणाद्गौश्च तुष्टः पुष्टो भवेद्ध्रुवम् ॥ २८ ॥

यह पर्वत बहुत ऊंचाभी नहीं और बहुत नीचाभी नहीं है वह बहुत गोग्रास धारण करता है उस भस्मजातगोग्रासद्वारा गौगण हृष्ट पुष्ट होने लगा ॥ २८ ॥

अतो गोवर्द्धनं नाम पर्वताय ददौ विधिः।
यथा यथाऽश्नाति गौश्च तद्ग्रासं पर्वतोत्तमे।
तथा तथा क्षयं याति पातकं ब्रह्मणः शिवे ॥ २९ ॥
तावत्तु निष्कृतिर्धातुर्यावद्गोवर्धनो गिरिः।
ततस्तन्निष्कृतिस्तस्य ब्रह्मणः परमेश्वरि ॥ ३० ॥

इसी कारण विधाताने इस पर्वतका नाम गोवर्द्धन रक्खा हे शिवे! परमेश्वरि! गोगण जिस परिमाणसे ग्रास भक्षण करने लगे। ब्रह्माका भी उसी परिमाणसे पापक्षय होने लगा इस प्रकार गोवर्द्धनगिरिके द्वारा ब्रह्माने समस्तपापसे छुटकारा पाया ॥ २९ ॥ ३० ॥

एवमेवापराधस्ते प्राधान्ये यदि जायते ।
तत्फलापोहनं ह्येवं सर्वेषाञ्च त्रिलोचने ॥ ३१ ॥

हे शिवे ! यदि इस प्रकार प्रधान मनुष्यके निकट तुम्हारा कोई अपराध हो तो इस प्रकार गोग्रासद्वारा उस पापका पीडन हो सकता है ॥ ३१ ॥

ततो ब्रह्मा जगद्धाता विष्णुश्च जगतां पतिः ।
पुनश्च तत्क्रमेणैव अस्तौषीत्परमेश्वरीम् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर जगद्विधाता ब्रह्मा और जगत्पति विष्णुने फिर उसी प्रकार परमेश्वरीकी स्तुति करी ॥ ३२ ॥

ततः काली जगन्माता तावुवाच किमिच्छथः ।
ददामि वत्सौ तत्सर्वं भवन्तौ कातरौ कथम् ॥ ३३ ॥

तब जगन्माता कालीने उनसे कहा—हे वत्सो ! तुम क्या इच्छा करते हो ? कहो । मैं तुमको वह सब दूंगी । कातर क्यों होते हो ॥ ३३ ॥

ब्रह्माविष्णू ऊचतुः ।

आवयोर्जगताञ्चैव मङ्गलाय पदाम्बुजम् ।
महामुक्तिप्रदञ्चैव त्वदीयमतिनिर्मलम् ॥ ३४ ॥
अदृश्यमपि गोप्यं हि मातुराकारवर्जितम् ।
कथन्तत्पूजयिष्यावः सर्वमङ्गलदायकम् ॥ ३५ ॥

भूमौ स्थानं कल्पयस्व यजितुं तत्पदाम्बुजम् ।
सर्वदा पूजयिष्यावो महामङ्गलकारणम् ॥ ३६ ॥

आवयोश्चैव सर्वेषां महामुक्तिफलाय च ।
तदावयोर्दानवाद्याः किं करिष्यन्ति चाशुभम् ।
अवश्यं वै तरिष्यावो दुस्तरं त्वत्पदार्चनात् ॥ ३७ ॥

ब्रह्मा और विष्णुने कहा हे मातः ! हमारे और जगत्की मंगलके निमित्त तुम्हारे महामुक्तिप्रद अतिनिर्मल अदृश्य आकारहीन गोप्य और मंगलदायक अत्युच्च पदोंकी हम किस प्रकार पूजा करेंगे ? आप अपने चरणारविन्दोंके पूजनार्थ पृथ्वीमें स्थानकी कल्पना कीजिये । उसी स्थानमें हम महामंगलके कारणस्वरूप महामुक्तिफलप्रद आपके चरणकमलोंकी पूजा करेंगे । इसके द्वारा हमारे देवताओंका अखिल जीवोंका मंगल होगा । तो अशुभकारी सब दानवादि हमारा क्या करसकेंगे ? हम तुम्हारे चरणोंकी पूजा करनेके कारण दुस्तरसेभी निस्तार पावेंगे । इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

शृणु वत्स महाविष्णो वचनं परमं महत् ।
येन हुङ्कारबीजेन चकार भस्म दानवम् ॥ ३८ ॥
केशिमंत्रं महाबीजं शब्दब्रह्मस्वरूपकम् ।
महातेजोमयं विद्धि तद्बीजं परमं पदम् ॥ ३९ ॥

कालीने कहा हे वत्स महाविष्णो ! मेरे परम महत् वचन सुनो जिस हुंकार बीजसे दानवको भस्म किया है । केशिमंत्र महाबीजभी शब्द ब्रह्मस्वरूप है । वह बीज महातेजोमय और परम पद है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

केशिपुरे च तद्बीजं केशिं हत्वा निवेशितम् ।
आपातालं क्रोशमात्रं बीजस्य तेजसा व्रतम् ॥ ४० ॥

केशिको हनन करके केशिपुरमें वह बीज स्थापित किया है । और वह क्रोशमात्र पातालपर्यन्त तेजसे ढक रहा है ॥ ४० ॥

अतो हि पूज्यं तत्स्थानं महातेजोमयं ध्रुवम् ।
तत्स्थानं त्वं समागम्य मां पूजय यथेप्सितम् ॥४१॥

इस कारण वह स्थान पूज्य और निःसन्देह महातेजोमय है तुम उसी स्थानमें जाकर यथेच्छरूपसे मेरी पूजा करो ॥ ४१ ॥

अतिसंगुप्तभावेन ईप्सितं प्राप्यते फलम् ।
देवदानवगन्धर्वैरन्यैरपि महामते ॥ ४२ ॥

वहां अत्यन्त गुप्तभावसे पूजा करनेपर अभिलासित फल प्राप्त होता है। हे महामते ! देव दानव गन्धर्व और अन्यान्य सभीको पूजा करने पर वही फल प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥

यथा न ज्ञायते कैश्चित्तथार्चां त्वं कुरुष्व मे ।
सर्वापद्भ्यः परित्राणं करिष्यामि च ते सदा ॥४३॥

जिससे दूसरा मनुष्य न जान सके, उसी प्रकारसे मेरी पूजा करो ऐसा करनेपर मैं तुम्हारी सब आपदाओंसे सदा रक्षा करूंगी ॥ ४३ ॥

क्रीडास्थानमिदं विष्णोरुक्तं तुभ्यमिदं सदा ॥
इच्छाशक्तिस्तु या दत्ता विष्णवे च मया पुरा ॥४४॥
महालक्ष्मीस्वरूपेण सेवते ब्रह्मसंस्थिता ।
सैव वृन्दास्वरूपेण पुरेऽत्र संभविष्यति ॥ ४५ ॥

यह स्थान विष्णुका क्रीडास्थान है. यह मैंने तुमसे निश्चित कहा। मैंने पूर्वमें विष्णुको इच्छा शक्ति प्रदान की है, वह ब्रह्मसंस्थिता शक्ति ही महालक्ष्मीरूपसे विष्णुकी सेवा करेगी। वही वृन्दास्वरूपसे इस पुरमें वास करेगी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

वृन्दाया वासतस्ताद्धि पुरं वृन्दावनाभिधम् ।
तत्पुरे चापि भविता तथा त्वत्क्रीडनं ध्रुवम् ॥ ४६ ॥
भूत्वा वृन्दा तरुर्लक्ष्मीरत्र स्थास्यति सर्वदा ।
दैत्यविघ्नी हि भविता सर्वदैत्यनिषूदनम् ॥ ४७ ॥
करिष्ये शृणु वत्सैतद्वचनं मे शुभोदयम् ।
केशिदैत्यवधार्थाय यत्र मे पूजनं कृतम् ॥ ४८ ॥

भो ब्रह्मन् ! तुम मेरे शुभकर वचन सुनो। वृन्दाके केशिपुरमें अवस्थित होने पर उसका नाम वृन्दावन होगा । केशिपुरमें वृन्दाके संग

तुम्हारा विवाह होगा । लक्ष्मी वृन्दा तरुरूपसे इस स्थानमें निरन्तर बास करेंगी । यद्यपि वहां दैत्योंका विघ्न होगा, किन्तु मैं उन सब दैत्योंका वध करूंगी । केशि दैत्यके वधार्थ तुम जिस स्थानमें मेरी पूजा करोगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

युवां वै पश्यतन्तत्र जातं मे योनिमण्डलम् ।
मम तेजः समुद्भूतं विद्धि तद्योनिमण्डलम् ॥ ४९ ॥
सर्वेषामुद्भवस्थानं योनिरेवं न संशयः ।
जानीहि प्रकृतिं देवयोनिमेतान्तु मामकीम् ॥ ५० ॥

तुम देखो, उसी स्थानमें मेरा योनिमण्डल उत्पन्न हुआ है । यह योनि-मण्डल मेरे तेजसे उत्पन्न है और इसको सबका उद्भवस्थान जानना जो मेरी प्रकृति है, वही योनिमण्डल है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

संपूज्य योनिं देवेश सृष्टिं कुरु यथार्थतः ।
कस्मादपि भयं न स्यात्तव क्वापि पितामह ॥ ५१ ॥

हे देवेश ! इस योनिमण्डलकी पूजा करके तुम सृष्टि करो । हे पिता-मह ! तुमको कहीं भी नहीं है ॥ ५१ ॥

अधिष्ठानं ममापि स्यात्तत्र पीठे न संशयः ।
जानीहि तदधिष्ठात्रीरूपं मेऽतिसुशोभनम् ॥ ५२ ॥
नित्यं पूजय तद्रूपं कामाख्यायोनिमण्डले ।
योनिमण्डलमासाद्य कामाख्यां यस्तु पूजयेत् ॥५३॥
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा परत्रेह च मोदते ।
न भयं तस्य कुत्रापि कस्मादपि प्रजायते ॥ ५४ ॥

उसी पीठमें मेरा अधिष्ठान है, इसमें सन्देह नहीं, उस अधिष्ठानस्वरूप मेरे सुशोभनरूप योनिमण्डलमें नित्य पूजा करो । योनिमण्डलमें जाकर जो मनुष्य कामाख्याकी पूजा करता है, वह सर्वसिद्धीश्वर होकर इस लोक

और परलोकमें आनन्दलाभ करता है उसको कहीं भी किसीसे भय नहीं होता ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

तवान्येषां हितार्थाय स्थापितं योनिमण्डलम् ।
पृथिव्यां भारते वर्षे कामरूपं महाफलम् ॥ ५५ ॥

तुम्हारे और अन्य सबके कल्याणके निमित्त योनिमण्डल स्थापित हुआ हैं, यह महास्थान कामरूपनामक भारतवर्षमें अवस्थित है ॥५५॥

नवयोनिसमाकीर्णं महामुक्तिफलप्रदम् ।
नवयोन्यात्मके ब्रह्मन्कामरूपे मनोहरम् ॥ ५६ ॥
कामाख्यातेजसा देवि दीप्यते योनिमण्डलम् ।
किन्त्विदानीं भवत्पापं न पश्यामि कथञ्चन ॥ ५७ ॥

यह महालय नवयोनि समाकीर्ण और महाफलदायक है । हे ब्रह्मन् ! नवयोन्यात्मक कामरूपमें कामाख्या तेजसे यह मनोहर योनिमण्डल दीप्ति पाता है, किन्तु इस समय तुम्हारा पाप कुछ भी नहीं देखती हूं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अहंकारात्समुत्पन्नं त्रिविधं पातकं तव ।
कायिकं वाचिकं चैव मानसञ्च तथा पुनः ॥ ५८ ॥

अहङ्कारसे तुम्हारा कायिक वाचिक और मानसिक यह तीन प्रकारका पाप उत्पन्न हुआ है ॥ ५८ ॥

तत्पापाद्योनिपीठं मे न पश्यासि कदाचन ।
तत्पापध्यानधाराभिरन्धीभूतो दिवानिशम् ॥ ५९ ॥

उसी पापके कारण तुम मेरा योनिपीठ नहीं देख सकते हो और उसी पापके ध्यानधारामें दिनरात अन्धीभूत हो रहे हो ॥ ५९ ॥

तत्र वाचनिकं पापं ध्रुवं नश्यति दर्शनात् ।
गोवर्धनस्य पर्योरुपायं तच्छृणुष्व मे ॥ ६० ॥

तहां गोवर्द्धनके दर्शनसे ही वाचनिक पाप नष्ट होता है अब अन्य दो पापोंके शमन होनेका उपाय कहती हूं सुनो ॥ ६० ॥

नक्षत्रलोकान्नक्षत्रमेकं तत्र निपात्य च ।
श्रेष्ठन्तज्ज्योतिषा देव दृष्ट्वा पीठं तपः कुरु॥६१॥

नक्षत्रलोकसे ध्यानयोगमें एक नक्षत्र निपातित करके योनिपीठको श्रेष्ठ-ज्योति संपन्न देखकर वहां तप करो ॥ ६१ ॥

यावद्द्रक्ष्यसि ज्योतिर्नो मिलितं योनितेजसि ।
तावत्कुरु तपो घोरं तदन्ते पातकद्वयम् ॥ ६२ ॥
प्रशाम्यति न सन्देहो वसतिं कुरु सत्वरम् ।
तस्मिंस्तपोवशात्तु केनापि न हि वीक्ष्यते ॥६३॥

जबतक योनितेजमें वह ज्योति मिली हुई दिखाई न दे तबतक घोर तपस्या करो तदनन्तर वह दोनों पाप नष्ट होंगे इसमें सन्देह नहीं इस कारण शीघ्र वहां जाकर वास करो । वहां तपोबलसे वह कोई नहीं देख सकेगा ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अपराधाच्छ्रेयसस्तु भवेद्वै गतिरीदृशी ।
नक्षत्रस्थापनात्तत्र पृथग्जातिषु वारितः ॥ ६४ ॥
स्थानन्तद्गम्यते वत्स सर्वलोके निरन्तरम् ।
इत्युक्त्वा विररामासौ गगनस्था परात्मिका ॥ ६५ ॥

अपराधके पीछे श्रेयोलोभका उपाय इस प्रकार जाने । वहां नक्षत्र स्थापन अन्यान्य जातिमें निषिद्ध है, हे वत्स ! अन्य सब स्थानोंमें ही अन्य सब लोग जा सकते हैं, परात्मिका गगनस्थिता काली यह सब कहकर विरत हुई ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

कालीं परमकल्याणीं तां नत्वा विधिकेशवौ ।
विस्मयाविष्टमनसौ राज्यं तच्चक्रतुस्ततः ॥ ६६ ॥

अनन्तर केशव और विधाता परमकल्याणी महाकालीको नमस्कार करके आश्चर्ययुक्तचित्तसे दोनों विश्वराज्यमें राजत्व करने लगे ॥६६॥

इत्येवं कथितं गुह्यं यत्पृष्टं गिरिसम्भवे ।
प्राचीनमतिगोप्यं हि वृत्तान्तं कुलनायिके ॥६७॥

हे गिरिवरात्मजे, कुलनायिके ! तुम्हारे पूछनेके अनुसार यह मैंने तुमसे पुरातन अतिगोप्यगुह्य वृत्तान्त कहा ॥ ६७ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति-साहस्रे भाषाटीकायां पञ्चदशः पटलः ॥ १५ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतो हि पूर्ववृत्तान्तः सर्वेषामप्यगोचरः ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कालीरूपाभवत्कथम् ॥ १ ॥

श्रीदेवीजी बोलीं—हे त्रिलोचन ! सबके ही अगोचर जो प्राचीन वृत्तान्त था, वह तो मैंने सुना अब कालीरूपा किस प्रकार हुई यह सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि परं गुह्यं ब्रह्मादीनामगोचरम् ।
सारात्सारतरं देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ २ ॥

ईश्वर बोले-हे देवि ! ब्रह्मादिकोंके भी अगोचर सारसे भी सार भोग-मोक्षदायक परम और गुह्य विषय कहता हूं, सुनो ॥ २ ॥

एकदा विष्णुब्रह्माणौ विरोधं चक्रतुर्मिथः ।
ईश्वरोऽहमीश्वरोऽहमुक्तवन्तौ जलार्णवे ॥ ३ ॥

एक समय जलार्णवमें ब्रह्मा और विष्णुने "मैं ईश्वर । मैं ईश्वर" यह कहकर आपसमें विरोध आरम्भ किया ॥ ३ ॥

तयोः शान्त्यै महेशानि प्रादुर्भूतं जलार्णवे ।
अप्रमेयं महालिङ्गं मदीयं पावनं परम् ॥ ४ ॥
ज्ञानाज्ञानमयं दिव्यं दुर्निरीक्ष्यं भयङ्करम् ।
तन्मध्येऽहं रुद्ररूपो बभ्राम वृषवाहनः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तु तदाश्चर्यं भयकम्पितविग्रहौ ।
स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैरूचतुर्मां पुनश्च तौ ॥ ६ ॥

हे महेश्वरि ! उनका झगडा मिटानेके लिये मेरा अप्रमेय ज्ञानाज्ञानमय दिव्य दुर्निरीक्ष्य भयंकर परमपावन महालिंग जलार्णवसे उत्थित हुआ । मैं रुद्र रूप और वृषवाहन होकर उसमें भ्रमण करने लगा । यह देखकर वह दोनों भयसे कांपने लगे और अनेक स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुति करके फिर मुझसे कहने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः ।

वद कस्त्वं भीमरूप उत्थितोऽसि जलार्णवे ॥ ७ ॥

ब्रह्मा विष्णुने कहा—हे भीमरूप ! जलार्णवसे उत्थित हुए तुम कौन हो ? कहो ॥ ७ ॥

रुद्ररूप उवाच ।

परस्परं विरुद्धयन्तौ युवां दृष्ट्वा जलार्णवे ।
उत्थितोऽहं च भवतोरीश्वरत्वं परीक्षितुम् ॥ ८ ॥

रुद्ररूपीने कहा—तुम्हारा परस्पर विवाद देखकर तुम्हारे ईश्वरत्वकी परीक्षा करनेके लिये मैं इस स्थानमें आविर्भूत हुआ हूं ॥ ८ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्थगितौ ब्रह्मकेशवौ ।
निगूढं ध्यानतो ज्ञात्वा सन्तुष्टो माधवोऽभवत् ॥ ९ ॥

ब्रह्मा और केशव यह बात सुनकर मौन हुए तदनन्तर माधव ध्यान-योगसे निगूढ तत्त्व जानकर परम संतोषको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥

उद्विग्नचेतसा ब्रह्मा ध्यात्वा स ज्ञानमाप्तवान् ।
केवलं रुद्ररूपं मां ज्ञात्वासौ कमलासनः ॥ १० ॥
विचिकित्सापरो भूत्वा विष्णुमाह तदा विधिः ॥११॥

ब्रह्माजी उद्विग्नचित्तसे ध्यान करके कुछ ज्ञानयुक्त हुए और मुझको भली भांति नहीं जान सके केवल रुद्ररूपको जानकर संदिग्ध हुए किन्तु यथार्थ तत्त्व न जानकर विष्णुसे कहने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच ।

भो विष्णो मत्कपालाद्यो जातो रुद्रोप्यसत्तमः ॥१२॥

ब्रह्माजी बोले—भो विष्णो ! मेरे कपालसे जो असत्तम रुद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवमुक्त्वा चोपहासं कृत्वा चापि विगर्हणम् ।
चकार बहुधा देवि विघ्नं दत्तं सुदारुणम् ॥ १३ ॥
मया तस्मै ब्रह्मणे तद्विगर्हितविनिर्मितम् ।
तद्विघ्नमसुरो भूत्वा मध्याह्ने च यथा रविः ॥ १४ ॥
जातस्त्रिपुरनाम्नासौ दानवो देहतो मम ।
सर्वेषां सकलं नीतामिंद्रादीनां महेश्वरि !
तेन दैत्येन देवेशि ततो जिष्णोर्हतं जगत् ॥ १५ ॥

ईश्वर बोले ! इस प्रकार ब्रह्माजी उपहास और निन्दा करने लगे हे देवि तब मैंने दारुण विघ्न प्रदान किया। वह विघ्न मध्यान्हसूर्यके समान महासुररूपमें आविर्भूत हुआ। इस दानवका नाम त्रिपुर है। उसने मेरे देहसे उत्पन्न होकर इन्द्रका इन्द्रत्व और अधिक क्या कहूं, सभीका सब अधिकार हरण कर लिया ॥ १३ ॥ १५ ॥

गरुडं च विना लक्ष्मीमन्यत्सर्वं हृतं बलात ।
हृतं तेनैव दैत्येन ब्रह्मणः कमलासनम् ॥ १६ ॥
ततः पलायिता देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
हिमालयं समासाद्य विष्णुराह तदा विधिम् ॥१७॥

उस दैत्यने विष्णुका गरुड और लक्ष्मीके अतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् बलपूर्वक हरण किया । जब उस दैत्यने ब्रह्माजीका कमलासन हरण किया, तब ब्रह्मा विष्णु इन्द्रादि सब देवता भागकर मेरे यहां (हिमालयमें) उपस्थित हुए और माधवने मेरे सामने ब्रह्माजीसे कहा ॥ १६ ॥ १७ ॥

विष्णुरुवाच ।

शिवनिन्दा कृता धातस्त्वया पूर्वं जलार्णवे ॥
तेनैव चापराधेन वयं सर्वे प्रपीडिताः ॥ १८ ॥

विष्णुने कहा—हे विधाता ! तुमने पहिले जलार्णवमें शिवकी निन्दा की है, उसी अपराधसे हम सब पीडित हुए हैं ॥ १८ ॥

ततस्तु परमेशानं स्तोष्याम्यत्र गिरौ पुनः ।
सर्वं स मङ्गलं कुर्य्याद्भूयो मे रोचते हृदि ॥ १९ ॥

तो आओ, हम इस कैलासाचलमें उनका संतोषसाधन करैं, हमारे हृदयमें भलीभांति बोध होता है कि वही हामरे सर्व प्रकार मंगल करनेवाले होंगे ॥ १९ ॥

समाश्रित्य तपस्तेपुर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
हिमालयं तदा देवाः प्रसादो मे भवेत्तदा ॥ २० ॥

तब ब्रह्मा और विष्णु इत्यादि सब देवता हिमालयका आश्रय कर तपस्या करने लगे । अनन्तर हिमाचलमें उन्होंने मेरा प्रसाद लाभ किया अर्थात् मैं उनके प्रति प्रसन्न हुआ ॥ २० ॥

पृथिवीं च रथं कृत्वा चक्रे चन्द्रदिवाकरौ ।
ब्रह्माणं सारथिं कृत्वा वेदान्रज्जूंस्तथैव च ॥ २१ ॥
देवान् कृत्वा रथाङ्गानि अश्वांश्चैव तथा पुनः ।
धनुः कृत्वा सुमेरुं च ज्यां च कृत्वा तु वासुकिम् २२॥
विश्वं च सकलं कृत्वा रथस्थं यच्चराचरम् ।
बाणं विष्णुं विधायैव त्रिपुरो भस्मसात्कृतः ॥ २३ ॥

हे देवि ! तदन्तर मैंने पृथ्वीको रथ, चन्द्र सूर्यको चक्र (पहिये), ब्रह्माको सारथी, सब वेदोंको रज्जू, देवताओंको अन्यान्य रथांग और अश्व, सुमेरुको शरासन (धनुष), वासुकीको गुण (डोरा), चराचर सम्पूर्ण विश्वको रथस्थ और विष्णुको बाण करके चराचर और देव-दैत्यादिकोंके सहित त्रिपुरासुरको भस्म किया ॥ २१–२३ ॥

चराचरेण सहितं देवदैत्यादिभिः सह ।
मया तत्र महेशानि पुनः सृष्टं जगत्ततः ॥ २४ ॥

हे महेशानि ! तदन्तर मैंने फिर वहां चराचर देवदैत्यादिकोंके सहित जगत्की सृष्टि करी ॥ २४ ॥

यत्र भस्म कृतं देवि जगदेतच्चराचरम् ।
महच्छ्मशानं तद्विद्धि सर्वेषां लयकारणम् ॥ २५ ॥

हे देवि ! जिस स्थानमें यह चराचर भस्मीभूत किया उस स्थानको सबके लयका कारण महाश्मशान जानना चाहिये ॥ २५ ॥

मृतानां सर्वदेवानां तेजस्तत्र व्यवस्थितम् ।
पंचक्रोशात्मकं भूत्वा तेजसा जगतां तथा ॥ २६ ॥
निर्माय मायया देहं त्रैपुरं तस्य वक्षसि ॥ २७ ॥

वहां समस्त मरेहुए देवताओंका तेज निहित है उस स्थानके ऊपर भागमें जगत्का तेज और मायाद्वारा पंचकोशात्मक त्रैपुर देह निम्माण करके ॥ २६ ॥ २७ ॥

तत्र मृत्युस्थले चाहं तुष्टाव परमेश्वरीम् ।
तत्तेजसि महाकालीं परां चैतन्यरूपिणीम् ॥ २८ ॥
ततस्तेजसि सा काली प्रादुर्भूता परा कला ।
महाद्वीपप्रमाणंतु तेजः कालीति कीर्तितम् ॥ २९ ॥

वहां मृत्युस्थलमें मैं परमा चैतन्यरूपिणी परमेश्वरी महाकालीकी स्तुति करने लगा परमा कला महाकालीका वह तेज महाद्वीपप्रमाण है वह का ली ' इस नामसे कही जाती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

मुखमात्रं समादृष्टं महाकाल्यास्तु तेजसि ।
अतो गिरिमुखं नाम मुनिभिः परीगीयते ॥ ३० ॥

उस तेजमें महाकालीका मुख मात्र दीखता है इसी कारण मुनियोंने इस स्थानका नाम ' गिरिमुख ' कहा है ॥ ३० ॥

तद्दृष्ट्वा परमेशानि आनन्दो जायते ध्रुवम् ।
आनन्दकाननं तस्माद्गीयते वेदवादिभिः ॥ ३१ ॥

हे परमेशानि ! उसको देखनेसे दर्शकके मनमें निश्चयही अतुल आनन्द उत्पन्न होता है, इसी निमित्त ब्रह्मवादी उसको ' आनन्द कानन ' कहते हैं ॥ ३१ ॥

कालीमयं हि तत्तेजः सकलं संबभूव ह ।
यथा तु सागरे गच्छञ्छीकरः सागरो भवेत् ॥ ३२ ॥
तथा सूर्यादितेजो हि कालीतेजो बभूव ह ॥ ३३ ॥
तथा नानाजलं देवि गङ्गायां पतितं यदि ।
गङ्गैव जायते सर्वं तथा तेजः सुरेश्वरि ॥ ३४ ॥

वह सभी तेज कालीमय है । जिस प्रकार जलकी बूंदेभी समुद्रमें गिरकर सागररूपमें परिणत होती हैं, इसी प्रकार सूर्यादिका तेज भी कालीतेज हुआ है जैसे अन्यान्य अनेक जल गंगामें गिरकर गंगाही

होजाते हैं ऐसेही हे सुरेश्वरि ! अन्य सब तेजभी कालीमय होते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

सर्वं काल्यमवत्पूर्णं नास्ति भेदो महेश्वरि ।
सर्वं तदमृतं देवि जानीहि सुरसुन्दरि ॥ ३५ ॥

कालीही पूर्ण तेज स्वरूप है । हे सुरसुन्दरि ! उनका भेद दिखाई नहीं देता । हे महेश्वरि ! उस सबकोही अमृत जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

तामहं चानिशं देवि शिरसा धारयाम्यहम् ।
ततो हि शङ्करत्वं मे निश्चितं सत्यमेव हि ॥ ३६ ॥

हे देवि ! मैं उसको सदाही शिरमें धारण कररहा हूं, इसी कारण मेरा शंकरत्व सत्य सत्यही निश्चित हुआ है ॥ ३६ ॥

तां कालीं शिरसा धार्य पंचक्रोशिमयीं सदा ।
अहर्निसं पूजयामि परमानन्दबृंहितः ॥ ३७ ॥

उस पञ्चक्रोशमयी कालीको शिरमें धारणपूर्वक परमान्दसे वर्द्धित होकर मैं दिन रात उनकी पूजा करता हूं ॥ ३७ ॥

अतो विश्वेश्वरत्वं मे सदैवात्र न संशयः ।
ब्रह्मविष्ण्वादिकानाञ्च ईश्वरो यः सुरेश्वरि ॥ ३८ ॥

इसी कारण मैं विश्वेश्वर हुआ हूं इसमें सन्देह नहीं । हे सुरेश्वरि ! वह विश्वेश्वरही ब्रह्मा विष्णु आदिकके ईश्वर हैं ॥ ३८ ॥

विश्वेश्वरः स एव स्यान्नापरः परमेश्वरि ।
केवलानन्दवान्भूत्वा पूजयामि परं सदा ।
तत्र तस्याः कृपा जाता वाग्भवा याशरीरिणी ॥३९॥

अपर कोई ईश्वर नहीं है ! हे परमेश्वरि ! मैं केवलानन्दमय होकर सदा उन महाकालीकी पूजा करता हूं उन्होंने वहां मेरे प्रति अशरीरिणी वाणी द्वारा कृपा प्रकाश करी ॥ ३९ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

भो देव परमानन्द ममानन्दः कृतस्त्वया ।
अतः काश्यां मृतानां त्वमानन्दं देहि सर्वदा ॥ ४० ॥

श्रीकालीने कहा—भोपरमानन्ददायक देव ! तुमने मेरा आनंद वर्द्धन किया है, इस कारण तुम काशीमें मरे मनुष्योंको सदा ही आनंद प्रदान करोगे ॥ ४० ॥

ईश्वर उवाच ।

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मग्नोहममृतार्णवे ।
ददामि परमं ब्रह्म मुमूर्षोः कर्णगोचरे ॥ ४१ ॥
वाराणस्यां सदा देवि स्थित्वा ध्यानपरः शिवे ।
जले स्थले चान्तरिक्षे वाराणस्यां मृताश्च ये ॥ ४२ ॥

ईश्वर बोले—हे शिवे ! महाकालीका यह वचन सुनकरमैं अमृतार्णव में निमग्न हुआ । हे देवि ! मैं वाराणसी (काशी) में सदा ही ध्यानपरायण हो वास करता हुआ मुमूर्षुगणोंके कर्णगोचरमें परम ब्रह्मज्ञान प्रदान करता हूं । जो मनुष्य वाराणसीमें जलमें स्थलमें वा अन्तरिक्ष (आकाश) में प्राण त्याग करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

ददामि परमं ब्रह्म तेषां हि कर्णगोचरे ।
हित्वा हि सकलं कर्म सुकृतं दुष्कृतं हि सः ।
भवेच्च ब्रह्मनिर्वाणं ममोपदेशतः क्षणात् ॥ ४३ ॥

मैं उसके कर्णगोचरमें परब्रह्म प्रदान करता हूं वह मनुष्य समस्त पुण्य और पाप कर्म परित्याग करके मेरे उपदेशसे तत्काल ब्रह्म निर्वाण लाभ करता है ॥ ४३ ॥

तत्सर्वं सुकृतं कर्म दुष्कृतं वा महेश्वरि ।
भवेद्भस्म महाकाल्याः प्रसादाज्ज्ञानयोगतः ॥ ४४ ॥

हे महेश्वरि ! वह सब पुण्य और पापकर्म महाकालीप्रसादलब्ध ज्ञानाग्निसे भस्म हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

काशीलग्नं हि यत्किञ्चित्काशी भवति तत्क्षणात् ।
काशीस्पर्शनमात्रात्तु पापराशिर्विनश्यति ॥ ४५ ॥

जो कुछ काशीमें लग्न होता है, वह कशीस्वरूप होता है. काशीके स्पर्शमात्रसे ही पापसमूह नष्ट हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

शूली कर्म दहेत्कालीतेजः स्पर्शात्क्षणात्तथा ।
तूलराशिं दहत्यग्निः किञ्चित्कालाद्यथा शिवे ॥ ४६ ॥

कालीके तेजस्पर्श करनेके कारण शूली महादेव क्षणमात्रमेंही कर्म दहन करते हैं हे शिवे ! जैसे अग्नि स्पर्शमात्रसे ही रुईके ढेरको जला देता है ॥ ४६ ॥

तथा दहेत्कर्मराशिं काशी जन्मैकतो नृणाम् ।
काशीस्थानं पुण्यचयं किं वाहं कथयामि ते ॥ ४७ ॥

इसी प्रकार काशी मनुष्यके एक जन्ममें ही सब जन्मोंकी कर्मराशि दग्ध करती है काशीस्थान पुण्यराशिसंपन्न है, हे देवि ! पुण्यराशिकाशीकी कथा मैं तुमसे क्या कहूं ॥ ४७ ॥

अपि चेत्त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ।
तदा काशीफलं किञ्चिद्देवि वक्तुं क्षमो भवेत् ॥ ४८ ॥

यदि तुम्हारी समान नारी और मेरे समान पुरुष हो, तो काशीका कुछ थोड़ासा फल वर्णन करनेमें समर्थ हो सकता है ॥ ४८ ॥

अण्डजा उष्मजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः ।
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति काश्यांश्चेद्भाग्यतो मृताः॥४९॥

अण्डज, उष्मज, उद्भिज्ज और जरायुज, यह चारों प्रकारके जीव यदि भाग्यसे काशीमें मरैं, तो सभी मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥

इयं वाराणसी देवि महातेजोमयी शुभा ।
युगभेदाज्जनैरेव दृश्यते हि चतुर्विधा ॥ ५० ॥

कृते रत्नमयी काशी त्रेतायां स्वर्णजा स्मृता ।
द्वापरे सा शिलारूपा कलौ भूमिमयी शुभा ॥ ५१ ॥

हे देवि ! यह वाराणसी महातेजोमयी और कल्याण दायिनी है । सत्य युगमें रत्नमयी, त्रेतामें स्वर्णमयी, द्वापरमें शिलामयी और कलियुगमें मृण्मयी युगभेदसे यह काशी चतुर्विध दिखाई देती है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

नातः परतरं क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
सत्यं सत्यं महादेवि शपथेन वदामि ते ॥ ५२ ॥

हे महादेवि ! काशीकी अपेक्षा श्रेष्ठतम क्षेत्र तीनों लोकमें दूसरा नहीं है, यह मैं तुमसे सत्यही सत्य शपथ करके कहता हूं ॥ ५२ ॥

संसारवर्त्मनो देवि मुक्तिमिच्छति यः पुनः ।
पाषाणसदृशो भूत्वा तिष्ठेत्काश्यां नियंत्रितः ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य संसारमार्गमें स्थित होकर मुक्ति पानेकी कामना करता है, वह पत्थरके समान होकर मनसंयमपूर्वक काशीमें वास करै ॥ ५३ ॥

स एव पण्डितो ज्ञानी स एव कुलपावनः ।
प्राणान्तेऽपि महादेवि काशीं न निस्त्यजेद्बुधः॥५४॥

हे महादेवि ! जो मनुष्य प्राणान्त होने परभी काशीको नहीं छोड़ता, वही मनुष्य पंडित, ज्ञानी कुलपावन और बोधवान् है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥

स एव परमो मूर्खः स एव कुलनाशकः ।
वृथैव मूर्खलोकोऽयं काशीं प्राप्य त्यजेत्तु यः ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य काशीको प्राप्त होकरके फिर छोड देता है उसके समान परम मूर्ख और कुलनाशक दूसरा नहीं है, मूर्खमनुष्यही काशीको प्राप्त होकरके फिर छोड देता है ॥ ५५ ॥

बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि काशीं लभेत्पुनः ।
तदा नैव त्यजेत्काशीं प्राणान्तेऽपि कदाचन ॥५६॥

बहुत जन्मोंके पुण्यफलसे यदि काशी प्राप्त हो, तो फिर प्राणान्त होनेपरभी उसको कभी न छोड़ै ॥ ५६ ॥

अनायासेन संसारसागरं यस्तितीर्षति ।
स गच्छेदपि यत्नेन मम वाराणसीं पुरीम् ॥ ५७ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य सहजमें संसार सागरसे पार होनेकी कामना करै वह यत्नपूर्वक मेरीवाराणसी पुरीमें जायँ ॥ ५७ ॥

अन्नं दद्यादन्नपूर्णा ज्ञानं दद्यात्सरस्वती ।
प्राणान्ते मुक्तिदाताहं काश्यां स्थित्वा सदैव हि॥५८॥

वहां अन्नपूर्णा अन्न दान करती हैं, सरस्वती ज्ञान देती हैं और मैं सदा स्थिति करके प्राणान्तकालमें मुक्तिप्रदान करता हूं ॥ ५८ ॥

एवं ते कथितं देवि यत्पृष्टं गिरिजे मयि ।
परमं पावनं मोक्षं किमितः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५९ ॥

हे गिरिजे देवि ! तुमने जो मुझसे पूँछा था वह परमपावन मोक्षका विषय मैंने तुमसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ५९ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशति साहस्रे भाषाटीकायां षोडशः पटलः १६ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

गुरुस्त्वं सर्वलोकानां परमेश पुरातन ।
जगदूर्द्ध्वकलाधीश वद कोलानिपातनम् ॥ १ ॥

श्रीदेवी बोली—हे पुरातन परमेश ! आप सर्वलोकोंके गुरु हैं । हे जगत्के ऊर्ध्वकलाधीश्वर ! अब कोलानिपातन वर्णन कीजिये ॥१॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कोलासुरनिपातनम् ।
महाकालीप्रसङ्गेन वृत्तान्तमिदमद्भुतम् ॥ २ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! कोलासुरनिपातन कहता हूँ. सुनो । महाकालीके प्रसंगमें यह वृत्तान्त परम अद्भुत है ॥ २ ॥

पापं जातं ब्रह्मशापाद्विष्णोरतुलतेजसः ।
पीडितस्तेन पापेन तपश्चक्रे स सर्ववित् ॥ ३ ॥

ब्रह्मशापके बलसे अतुलतेजस्वी विष्णुका पाप उत्पन्न हुआ वह सर्वज्ञ देव उस पापसे पीड़ित होकर तपस्या करने लगे ॥ ३ ॥

हिमालयान्तिके गत्वा पापस्यास्य क्षयात्मिकाम् ।
अष्टाक्षरीं महाविद्यां महाकाल्याः सदा जपन् ॥ ४ ॥

वह हिमालयके समीप जाकर उस पापका क्षय करनेवाली महाकाली की अष्टाक्षरी महाविद्याका सदा जप करने लगे ॥ ४ ॥

दशवर्षसहस्रान्ते सन्तुष्टाभून्महेश्वरी ।
तस्याः सन्तोषमात्रेण विष्णोर्हृदयपङ्कजात् ।
कोलानामासुरो भूत्वा निर्गतः सहसा हि तत ॥ ५ ॥

हे महेश्वरि ! दशहजार वर्ष पीछे महाकाली सन्तुष्ट हुई । उनके सन्तोषमात्रसे ही विष्णुके हृदयकमलसे कोलानामक महाअसुर सहसा निकला ॥ ५ ॥

तेन दैत्येन बलिना सर्वं नीतं दुरात्मना ।
इन्द्रादिसकलान्देवान्विनिर्जित्य महासुरः ।
हृतवान्वैष्णवं धाम ब्रह्मणः कमलासनम् ॥ ६ ॥

उस दुरात्मा बलवान् दैत्यने इन्द्रादिक देवताओंको पराजित करके अखिल मण्डल विष्णु वैकुण्ठ और ब्रह्माका कमलासन इत्यादि सबही जीत लिया ॥ ६ ॥

ततो विष्ण्वादयो देवाः कालीं गत्वा सनातनीम् ।
तुष्टुवुर्भक्तियोगेन रक्ष रक्षेति वादिनः ॥ ७ ॥

अनन्तर विष्णु इत्यादि देवता सनातनी कालीके निकट जाकर "रक्ष रक्ष" इत्यादिवचनोंसे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

इदानीं रे वत्स विष्णो हन्मि कोलान्सबान्धवान् ।
कोलानगरमास्थाय कुमारीरूपमास्थिता ॥ ८ ॥

श्रीकालीने कहा—हे वत्स विष्णु ! अब मैं कुमारीरूप धारण करके कोलानगरीमें जाय उस असुरकुल वर्वर कोलासुरको सबान्धव हनन करूंगी ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवं श्रुत्वा तु तद्वाणीं ब्रह्मविष्ण्वादयः सुराः ।
आनन्दजलधौ मग्नाः शिखिवन्ननृतुर्घनात् ॥ ९ ॥

ईश्वर बोले—ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवता महाकालीके इस प्रकार वचन सुन आनन्दसागरमें निमग्न हो घनगर्जना श्रवण कर मोरके समान नाचने लगे ॥ ९ ॥

ततः काली करालास्या द्विजकन्यास्वरूपतः ।
गत्वा कोलापुरं देवी कोलासुरसमीपतः ।
तमयाचत तद्भक्ष्यं कुमारी दैत्यपुङ्गवम् ॥ १० ॥

तदनन्तर करालबदना महाकालीने विप्रकुमारीका रूप धारण करके कोलापुरमें कोलासुरके समीम जाय उस दैत्यराजसे किंचित् भक्ष्य द्रव्य मांगा ॥ १० ॥

काल्युवाच ।

मातृतातविहीनाहं सहायपरिवर्जिता ।
क्षुधिताहं महाराज भोज्यं मह्यं प्रदीयताम् ॥ ११ ॥

कालीने कहा—मैं माता पिता हीन और सहायहीन हूं, हे महाराज ! मुझे कुछ भोज्य द्रव्य प्रदान कीजिये ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच ।

ततः कोलासुरो देवि मायया परिमोहितः ।
दयया तां करे धृत्वा विवेशान्तःपुरे स्वयम् ॥ १२ ॥

ईश्वर बोले—हे देवि ! तदनतर कोलासुर मायासे मोहित हो कृपापूर्वक उस कुमारीका हाथ पकडकर स्वयं उसको रनवासमें लेगया ॥ १२ ॥

उवाच भोज्यं दास्यामि तुभ्यं तत्ते समीप्सितम् ।
अत्रोपविश बाले त्वमासने मणिरञ्जिते ॥ १३ ॥

और कहा—जो इच्छा है, मैं वही भोजन तुम्हें दूंगा । हे बालिके ! तुम इस मणिरंजित आसन पर बैठो ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वासौ ददौ भोज्यं नानाविधमनेकशः ।
भुक्त्वा सा सकलं देवि पुनर्देहीति वादिनी ॥ १४ ॥
पुनर्ददौ बहुतरं तच्चापि बभुजे स्वयम् ।
नाहं तृप्ता वदन्तीं तां तदोवाच महासुरः ॥ १५ ॥

यह कहकर उस दैत्यने बहुतवार अनेक प्रकारके भोज्य द्रव्य उसको दिये। बालिकाने उस सबको भक्षण करके कहा—इनसे मेरी तृप्ति नहीं हुई और भोजन दो। दैत्यराजने फिर बहुत भोजन दिया. उस सबको भी भक्षण करके कहा—इनसेभी मेरी तृप्ती नहीं हुई उसके यह वचन सुनकर महाअसुरने कहा ॥ १४ ॥ १५ ॥

यथा तृप्तिर्भवेद्बाले तावद्धि कुरु तत्तथा ।
इत्युदीरितमाकर्ण्य काली बालस्वरूपिणी ॥ १६ ॥

हे बाले ! जिससे तुम्हारी तृप्ति हो, तुम वही करो । बालस्वरूपिणी कालीने कोलासुरके यह वचन सुनकर ॥ १६ ॥

कोषं हयं हस्तिनश्च रथं सैन्यं सबान्धवम् ।
क्षणेन बभुजे काली कोलं चापि महाबलम् ॥ १७ ॥

उसका कोष, घोडे, हाथी, रथ, सेना, बांधव, इन सबको भक्षण कर महाअसुर कोलासुरको भक्षण करलिया ॥ १७ ॥

कालरुद्रो यथा काले क्षणाल्लोकत्रयं यथा ।
तथा कोलापुरं शून्यं कृतं काल्या क्षणाच्छिवे॥१८॥

हे शिवे ! जैसे कालरुद्र क्षणभरमें तीनों लोकोंको महा प्रलयमें संहार करते हैं ऐसेही महाकालीने क्षणमात्रमें कोलापुरको सूना कर दिया॥१८॥

अथासुरास्तथा नाष्टान्दृष्ट्वा विष्णुमुखाः सुराः ।
निरन्तरं पुष्पवृष्टिं चक्रुस्ते ननृतुः परम् ॥ १९ ॥
जगुः सुललितं गीतं देवगन्धर्वकिन्नराः ।
विद्याधरी देवपत्नी किन्नरीभिः समन्ततः ॥ २० ॥

तदन्तर विष्णु इत्यादि देवताओंने सब शत्रुओंको मरा देखकर फूलोंकी वर्षा करी। देव, गंधर्व, किन्नरगण और विद्याधरी किन्नरी तथा देवताओंकी स्त्रियें हर्षमें भरकर नृत्य करने लगीं ॥ १९ ॥ २० ॥

पूजिता तैः कुमारी सा कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
सर्वलोकैः पूजिता च कुमारी सा दिने दिने ॥ २१ ॥

फिर सबने मिलकर नन्दनवनोत्पन्न कुसुम चंदनके भारसे उस कुमारीकी पूजा करी । इसके पीछे सब लोक अपने घरमें नित्य कुमारीकी पूजा करने लगे ॥ २१ ॥

ततः सान्तर्हिता देवि कुमारी ब्रह्मविग्रहा ।
एवं हि ते मया प्रोक्तं कोलासुरनिषूदनम् ॥ २२ ॥

इसके उपरान्त वह ब्रह्मरूपिणी कुमारी अन्तर्धान होगई । हे देवि ! यह मैंने तुमसे कोलासुरके मरनेका वर्णन किया ॥२२॥

ब्रह्मशापो दुराधर्षो भ्रमतोऽपि न तच्चरेत ।
वाग्वज्रश्च ब्राह्मणानां सदा जानीहि कामिनि ॥२३॥

हे कामिनि ! ब्रह्मशाप दुर्द्धर्ष है, भूलकरभी ब्रह्मशापका कार्य न करै, ब्राह्मणके शापका वहन सदा वज्रस्वरूप जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अतोऽविद्यः सविद्यो वा विप्रः पूज्यः सदा भवेत् ॥
सन्तुष्टे ब्राह्मणे देवि तुष्टा देवा वयं सदा ॥ २४ ॥

इस कारण ब्राह्मणके विद्वान् वा अविद्वान् होनेपरभी वह, देवतुल्य पूज्य है । ब्राह्मणके सन्तुष्ट होनेपर हम सब देवता सदा सन्तुष्ट रहते हैं ॥ २४ ॥

वितुष्टे ब्राह्मणे देवि वितुष्टा वयमेव हि ॥ २५ ॥

हे देवि ! ब्राह्मणके असन्तुष्ट रहनेपर हमभी असन्तुष्ट रहते हैं ॥ २५ ॥

यद्यकार्यशतं देवि ब्राह्मणः समुपाचरेत ।
आत्मनो हितकामेन तं तथापि न चोत्सृजेत ॥ २६ ॥
नापमानश्च कर्त्तव्यं सर्वदा सुरपुङ्गवे ।
ब्राह्मणः सर्वदेवात्मा मोक्षतेजःसमो हि सः ॥ २७ ॥

ब्राह्मण यद्यपि सौ सौ अकार्य करै, किन्तु तोभी अपने हितकी कामनासे उसका त्याग वा उसका अपमान करना उचित नहीं है. हे सुरवरे ! ब्राह्मणको सर्वदेवमय और मोक्षतेजके समान जाने ॥ २६ ॥ २७ ॥

अप्रसूतिश्च सा काली कुमारीरूपधारिणी ।
ततः प्रभृति देवेशि कुमारी पूज्यते सुरैः ॥ २८ ॥

वह काली अप्रसूति कुमारीरूपधारिणी हुई थी इसी कारण तबसे देवताओंने कुमारीपूजा आरंभ करी ॥ २८ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः कुमारी पूज्यते सदा ।
अन्ये सर्वे प्रपूज्यन्ते ब्रह्माण्डतलगोचराः ॥ २९ ॥

और तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि ब्रह्माण्डतलनिवासी समस्त लोकही कुमारीकी पूजा करने लगे ॥ २९ ॥

कुमारीपूजनफलं वक्तुं नार्हामि सुन्दरि ।
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ॥ ३० ॥

हे सुन्दरि ! मै करोड सहस्र जीभ और मुखोंसे भी कुमारी पूजाका फल वर्णन करनेमें असमर्थ हूं ॥ ३० ॥

तस्माच्च पूजयेद्बालां सर्वजातिसमुद्भवाम् ।
जातिभेदो न कर्तव्यः कुमारीपूजने शिवे ॥ ३१ ॥

हे प्यारी ! इसी कारण सर्वजातीय कुमारीगणोंकी पूजा करनी चाहिये ! हे शिवे ! कुमारी पूजामें जातिभेद नहीं है ॥ ३१ ॥

जातिभेदान्महेशानि नरकान्न निवर्तते ।
विचिकित्सापरो मन्त्री ध्रुवश्च पातकी भवेत् ॥ ३२ ॥

इसमें जातिभेदका विचार करनेपर नरकमें गिरकर फिर नहीं लौट सकता । मन्त्रवान् मनुष्य संदिग्ध होकर कर्म करनेसे पातकी होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥

देवीबुद्ध्या महाभक्त्या तस्मात्तां परिपूजयेत् ।
सर्वविद्यास्वरूपा हि कुमारी नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

अतएव महाभक्ति धारण करके देवीबुद्धिसे कुमारीकी पूजा करनी चाहिये । कुमारी सर्वविद्यास्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥

एका हि पूजिता बाला सर्वं हि पूजितं भवेत् ।
यदि भाग्यवशाद्देवि वेश्याकुलसमुद्भवाम् ॥ ३४ ॥
कुमारीं लभते कान्ते सर्वस्वेनापि साधकः ॥
यत्नतः पूजयेत्तां तु स्वर्णरौप्यादिभिर्मुदा ॥ ३५ ॥

एक कुमारीकी पूजा करनेसे सब देवी देवताओंकी पूजा हो जाती है । हे देवि ! यदि भाग्यसे वेश्याकुलोत्पन्न कुमारी मिल जाय, तो साधक प्रसन्न हो उसको स्वर्ण, चांदी आदि सर्वस्व प्रदानपूर्वक यत्न सहित पूजा करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

तदा तस्य महासिद्धिर्जायते नात्र संशयः ।
महासिद्धिर्भवेदस्य स एव श्री सदाशिवः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार करनेसे साधकको महासिद्धि होती है और वह श्रीसदाशिव की समान होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३६ ॥

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व प्रियंवदे ।
वपुस्तस्य महेशानि काञ्चनं परिजायते ।
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा क्रीडते भैरवो यथा ॥ ३७ ॥

कुमारीसाधकके लक्षण कहता हूं, हे प्रियंवदे ! वह तुम सुनो उसका देह काञ्चनकी समान क्रांतियुक्त होता है और वह मनुष्य सब प्रकारकी सिद्धिसे युक्त होकर भैरवकी समान विहार करता है ॥ ३७ ॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गतिस्तस्य सुनिश्चितम् ।
हठात्तु जायते सर्वं यद्यन्मनसि वर्तते ॥ ३८ ॥

वह स्वर्ग, मर्त्य और पाताल सर्वत्र ही जा सकता है, जिस समय जो मनमें हो, तब वैसा ही रूप धारण कर सकता है ॥ ३८ ॥

कायव्यूहं समासाद्य सर्वत्र व्यापको भवेत् ।
अव्याहतश्च सर्वत्र पुरन्दरसमः शिवे ॥ ३९ ॥

काया विस्तारको प्राप्त होकर तत्काल सर्वत्र व्यापक होनेकी सामर्थ्य होता है इन्द्रकी समान उसकी आज्ञा सर्वत्र ही अटल होती है ॥ ३९ ॥

देवदानवगन्धर्वनागकिन्नरयोषितः ।
विद्याधरी राजनारी सेवंते तं दिवानिशम् ॥ ४० ॥

देव, दानव, गन्धर्व, नाग, किन्नरोंकी स्त्रियें, विद्याधरी और राजनारी, यह सब दिन रात उसकी सेवा करते हैं ॥ ४० ॥

अन्ते च प्राप्यते तेन परं निर्वाणमुत्तमम ।
कुमारीपूजने काले साधकः शिवतां व्रजेत् ॥ ४१ ॥

और वह साधक अन्तमें परमनिर्वाणको प्राप्त होता है। कुमारी पूजाकालमें साधक शिवत्व लाभ करता है ॥ ४१ ॥

कुमारी पूज्यते यत्र स देशः क्षितिपावनः ॥
महापुण्यतमो भूयात्समन्तात्क्रोशपंचकम् ॥ ४२ ॥

जिस स्थानमें कुमारीकी पूजा होती है' वह स्थान पृथ्वीमें पवित्र है, वह स्थान चारों ओर पांच कोशसहित पुण्यमय है ॥ ४२ ॥

कुमारीपूजनं यत्र कुर्याच्च परमेश्वरि ।
स्फुरत्येव महाज्योतिः प्रत्यक्षं भारते भुवि ॥ ४३ ॥

इस भारतमण्डलमें कुमारीकी पूजा करने पर इस कुमारीके देहसे प्रत्यक्षरूपमें प्रभा प्रकाशित होती है ॥ ४३ ॥

विशम्भरो नाम राजा चैत्रवंशसमुद्भवः ।
अपूजयत्कुमारीं तां वेश्याकुलसमुद्भवाम् ।
कांचीनाम्नीं कृष्णवर्णां सर्वलक्षणपूरिताम् ॥ ४४ ॥

विशम्भर नामक चैत्रवंशीय राजाने वेश्याकुलोत्पन्न एक कुमारीकी पूजा करी थी, वह कुमारी कांची नाम्नी सर्व सुलक्षण सम्पन्न और कृष्णवर्ण थी ॥ ४४ ॥

पूजाकाले महादेवि कांची जाता स्फुरत्प्रभा ।
यत्प्रभापटलाच्छन्नो राजा मोक्षमवाप्तवान् ॥ ४५ ॥

हे महादेवि ! पूजाकालमें इस कुमारीके कृष्णवर्ण देहसे प्रभामण्डल प्रकाशित होने लगा । राजा उस महाप्रभा मण्डलसे आच्छन्न होकर मोक्षको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥

सम्यक्प्रपूरिता नासीत्कांची ज्योतिर्मयी प्रभा ।
भूत्वा नित्या हि तत्स्थाने सदागृह्णाति पूजनम् ॥ ४६ ॥

यह कुमारी कांची प्रभा पूर्ण नहीं थी, किन्तु वह तबसे ज्योतिर्मयी होकर उसी स्थानमें पूजा ग्रहण करने लगी ॥ ४६ ॥

कांचीनाम्नी पुरी जाता तत्स्थानंतु महाफलम् ।
मोक्षदा सा पुरी ज्ञेया पंचक्रोशमयी शुभा ॥ ४७ ॥

उसी स्थानमें एक कांची नामक महाफलदायिनी पुरी हुई । चारों ओर पंचक्रोश सहित वह पुरी कल्याण और मोक्षकी देने वाली है ॥ ४७ ॥

गृहव्यापारमन्यच्च तत्र यद्यत्कृतं भवेत् ।
तत्सर्वं पूजनं तस्यां चित्रमेतन्नगात्मजे ॥ ४८ ॥

हे पर्वतनन्दिनी ! जिस स्थानमें गृहकर्मादि जो जो किया जाता है, उसीसे उसकी पूजा होती है, हे देवि ! यह अति विचित्र है ॥ ४८ ॥

अतः कांची पुरी देवि वाराणस्या समा शुभा ।
एवं तु पूजिता बाला काम्पिल्येन महात्मना ॥ ४९ ॥

हे महेशानि ! इसी कारण कांची पुरीको वाराणसीके समान कल्याण दायिनी जाने । पूर्वमें महात्मा काम्पिल्यने इसी प्रकार कुमारीकी पूजा करी थी ॥ ४९ ॥

काम्पिल्ये नगरे पूर्वं समुद्भूता वरानने ।
अद्यापि दृश्यते लोके शिलारूपेण तिष्ठति ॥ ५० ॥

हे वरानने ! पहिले काम्पिल्य नामक नगरमें कुमारी देवीकी पूजा हुई । अब भी वह कुमारी शिलारूपसे वहां वास करती दिखाई देती है ॥ ५० ॥

सर्वपुण्यतमो वासः सर्वतीर्थसमाकुलः ।
सर्वयज्ञयुतो देवि वेष्टितश्च महर्षिभिः ॥ ५१ ॥
सर्वाश्चर्यसमाक्रान्तः काम्पिल्ये च पुरे वरे ।
ये वसन्ति महादेवि काम्पिल्ये नगरे शुभे ॥ ५२ ॥
इह भुक्त्वा वरान्भोगान्बहुतुष्टिप्रदायकान् ।
सर्वसम्पत्समाकीर्णा ह्यन्ते देव्याः प्रसादतः ।
उल्लंघ्य विष्णुलोकं वै देव्याः स्थानं समाप्नुयुः ॥५३॥

वह स्थान परम पूण्यतम वसतिस्थान है, वह सर्व यज्ञयुक्त सर्व तीर्थसमाकुल, ऋषिगणसेवित और सर्वाश्चर्यमय है, हे देवि ! जो मनुष्य काम्पिल्य नगरमें वास करता है, वह देवीके प्रसादसे इस लोकमें सर्व प्रकारके तुष्टिप्रद भोग उपभोग कर और सर्व सम्पत्ति युक्त होता है और परलोकमें ब्रह्मलोक उलंघन करके देवीके स्थानको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

यदि कामी भवेत्कोऽपि वैकुण्ठं परमं व्रजेत् ।
मल्लोकं वा महेशानि गच्छेन्मे मणिमन्दिरम् ॥५४॥

यदि कोई मनुष्य कामी हो, तो वह वैकुण्ठपुरमें जाता है अथवा मेरे लोकके मणिमन्दिरमें वास करता है ॥ ५४ ॥

एवं तेद्य मया प्रोक्तं कुमारीचरितं शिवे ।
किञ्चिदेव महामाये पुनः किं परिकथ्यते ॥ ५५ ॥

हे शिवे ! यह मैंने इस समय तुमसे किंचित् कुमारीचरितका वर्णन किया । हे महामाये ! अब क्या कहूं सो कहो ॥ ५५ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायां सप्तदशः पटलः ॥ १७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं कुमारीचरितं प्राक्तनन्देववाञ्छितम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कहोलचरितं परम् ॥ १ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे देव ! देवतावांच्छित पुरातन कुमारीचरित सुना अब परमोत्कृष्ट कहोलचरित्र सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ १ ॥

आज्ञापय महादेव कृपया परमं हि तत् ।
हितं हि सर्वलोकानां योगिनां हृदयार्थदम् ॥ २ ॥

हे महादेव ! आप कृपापूर्वक वह सब लोकहितकर योगियोंका हृदयार्थप्रद साधुचरित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच ।

वेदवेदान्तवेदांगसर्वशास्त्रस्वरूपभाक् ।
सर्वयोगीश्वरस्तीर्थपूतः सर्वाघवर्जितः ॥ ३ ॥

ईश्वर बोले—वेद वेदान्त और वेदाङ्गका तत्त्व जाननेवाले एवं सर्वशास्त्रार्थतत्त्वग्राही सर्वयज्ञकारी सर्वतीर्थसम्पूत (अर्थात् पवित्र) सब पापोंसे रहित ॥ ३ ॥

सर्वविद्यासर्वमन्त्रकृतसिद्धिर्ऋषीश्वरः ।
सर्ववर्य्यो मुनिश्रेष्ठः परिबभ्राम मेदिनीम् ॥ ४ ॥

सर्व विद्या और मन्त्रद्वारा कृतसिद्धि सबमें श्रेष्ठ ऋषिश्रेष्ठ कहोल ऋषीश्वर पृथ्वीमें भ्रमण करने लगे ॥ ४ ॥

चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ।
सहस्रसूर्यसंकाशः स एवासीत्पुरा शिवे ॥ ५ ॥

उसी समय उनको एक बड़ी चिन्ता प्राप्त हुई उससे वह अत्यन्त उद्विग्नमन हुए पहले वह सहस्र सूर्यकी समान प्रभायुक्त थे ॥ ५ ॥

चिन्तया परया सोऽभूत्प्रदीप इव चापरः ।
तदाकाशसमुद्भूता श्रुता वाणी महर्षिणा ॥ ६ ॥

इस समय महती चिन्तासे दीपकके शिखाकी समान क्षीण होगये फिर महर्षिने एक आकाशवाणी सुनी ॥ ६ ॥

कहोल याहि पूर्वस्मिञ्छंकरं देवशङ्करम् ।
स गुरुः सर्वसत्त्वानां सकलं ते करिष्यति ॥ ७ ॥
श्रुत्वा तां गागनीं वाणीं परमानन्दसंप्लुतः ॥
गत्वोवाच कहोलो मे वृत्तान्तं सकलं हि तत् ॥ ८ ॥

"हे कहोल ! तुम पूर्व दिशामें कल्याणकारी शंकर देवके निकट जाओ वह सब जीवोंके गुरु हैं। वही तुम्हारी चिन्ता दूर करके समस्त कार्य संपादन करेंगे यह आकाशवाणी सुनकर उन्होंने आनन्दके साथ जलसे भीज पूर्वदिशामें गमन कर मुझसे सब वृत्तान्त कहा ॥७॥८॥

ततस्तस्मै मया दत्ता विद्या काली पराकला ।
चन्द्राक्षरी सर्वज्ञानभावनी चिन्मयी शुभा ॥ ९ ॥
दत्तश्च परमाचारः श्रीमदागमसम्मतः ।
कथितश्च मया तस्मै कहोल पुत्र तच्छृणु ॥ १० ॥

अनंतर मैने उनको परमा कला कालीविद्या अर्पण करी । यह विद्या चन्द्राक्षरी और सर्वज्ञानदायिनी चिन्मयी और कल्याणदायक है ।

और उनको श्रीमदागमसम्मत परम सदाचारभी देकर कहा। हे वत्स कहोल ! सुनो ॥ ९ ॥ १० ॥

अनेनाचारयोगेन गत्वा कालीं दिगम्बराम् ।
भावयित्वा पूजयेत सर्वाज्ञानविनाशिनीम् ॥ ११ ॥

इस आचार योगसे काशीमें दिगम्बरी कालीके निकट जाकर उन सर्व अज्ञानविनाशिनीकी पूजा करो ॥ ११ ॥

ततस्ते संशया नष्टा भवेयुर्भुवनेश्वरे ।
इत्याज्ञप्तः कहोलः स ऋषिर्वेदविशारदः ।
काशीं गत्वायजत्कालीं पश्चाचारयुतो मुदा ॥ १२ ॥

इससे भुवनेश्वरके समीप तुम्हारा सब संशय नष्ट होगा। उन वेदविशारद ऋषि कहोलने मेरी इस प्रकार आज्ञा पाय काशीमें जाय पश्चाचारसे संपन्न होकर कालीकी पूजा करी ॥ १२ ॥

ततस्ते संशया विघ्नाः पलायाञ्चक्रिरेऽन्वहम् ।
ऋषेस्तस्य कहोलस्य वेदमूर्तेर्महामतेः ॥ १३ ॥

इससे महामति वेदमूर्ति कहोलऋषिके सब संशय विघ्न दिन दिन पलायन करने लगे ॥ १३ ॥

ततस्तस्मिन्कृपा जाता महाकाल्या ऋषौ शुभा ।
तथा च कृपया युक्तः कहोलऋषिसत्तमः ॥ १४ ॥

तदनन्तर उन ऋषि पर महाकालीकी कृपा हुई कालीकी कृपासे ऋषिश्रेष्ठ कहोल ॥ १४ ॥

आत्मानं कालिकारूपं मेने ब्रह्म सनातनम् ।
ज्ञानमायाविनिर्धूतमद्वैतं परमं शिवे ॥ १५ ॥

आत्मस्वरूपको परम ब्रह्म सनातन मायारहित ज्ञाननिर्धूत अद्वैत परमकालीरूपको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

सर्वमायाविनिर्मुक्तो जातः स ऋषिरुत्तमः ।
सर्वं ब्रह्ममयं चासीज्जगदेतच्चराचरम् ॥ १६ ॥

फिर वह सर्व मायासे छूट और संशयरहित हो इस अखिल चराचर जगत्को ब्रह्ममय देखने लगे ॥ १६ ॥

आत्मदेहादिकं किञ्चिज्जानाति न च कर्हिचित् ॥
तेनैव ब्रह्मज्ञानेन देहकर्मादिकं खलु ।
भस्मीभूतं महेशानि ऋषेस्तस्य महात्मनः ॥ १७ ॥

वह आत्मदेहादि कुछभी नहीं जानसके ब्रह्मज्ञानद्वारा उन महात्मा ऋषिके देह कर्मादि सभी भस्म होगये ॥ १७ ॥

ब्रह्मभूतः कहोलर्षिर्महाकाल्याः प्रसादतः ।
अत्याचारेषु सर्वेषु रतः स्यात्स्फुरते हि सः ॥ १८ ॥
एवमेव महाकाली कहोलर्षिसुमानिता ।
चकार लीनं तमृषिं स्वीयदेहे तु कारणे ॥ १९ ॥

महाकालीके प्रसादसे वह कहोल ऋषि ब्रह्मस्वरूप हुए फिर वह सब प्रकार अत्याचारमें रत तथा अत्याचारकी स्फूर्ति (अर्थात् उसका प्रकाश) पाने लगे । इस प्रकार महाकालीने कहोलऋषिके द्वारा पूजित होकर उन महर्षिको अपने कारण देहमें लीन कर लिया ॥ १८ ॥ १९ ॥

यं यं भावमुपाश्रित्य यजेत्कालीं हि साधकः ।
प्राप्नुयादचिरात्तं हि महाकाल्याः प्रसादतः ॥ २० ॥

जो साधक जो जो भाव अवलम्बन करके कालीकी आराधना करता है । वह महाकालीके प्रसादसे तत्काल उनको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं कहोलचरितं पूर्वं विस्मयकारकम् ।
देवासुरमुनीन्द्राणामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ २१ ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् ।
कां विद्यां प्राप्य सा जाता तद्वदस्व मयि प्रभो ॥२२॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे प्रभो ! मैंने देव, असुर, मुनि और ऋषियोंको भी विस्मयकारक पुरातन कहोलचरित्र सुना । अब तीनों लोकको पवित्र करनेवाली गंगाका विषय सुननेकी इच्छा हुई है । और उन्होंने किस विद्याको प्राप्त होकर जन्म ग्रहण किया । यह मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
श्रवणात्सर्वपापानि नाशमायान्ति नान्यथा ॥ २३ ॥

ईश्वरने कहा—हे देवि ! जो तुमने पूछा वह सुनो इसके सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥

मन्त्रमादौ प्रवक्ष्यामि त्रैलोक्यपावनाभिधम् ।
महादेव्या महाकाल्या महादेवेन भाषितम् ॥ २४ ॥

पहिले देवभाषित महादेवी महाकालीका त्रैलोक्यपावननामक मन्त्र कहता हूं ॥ २४ ॥

निजबीजं समुद्धृत्य सम्बोधनपदद्वयम् ।
पुनश्च निजबीजं हि विद्य चापि यशस्करीम् ॥ २५ ॥

निज बीज कहकरके सम्बोधन पदद्वय उद्धारपूर्वक फिर निजबीज उद्धार करनेके पीछे यशस्करी परा विद्या उच्चारण करै (?) ॥ २५ ॥

एतां विद्यां समाराध्य गङ्गा त्रैलोक्यपावनी ।
जटातटे ममास्थायाजपद्विद्यामहर्निशम् ॥ २६ ॥

त्रैलोक्यपावनी गंगाने इस विद्याकी आराधना करके मेरे जटातटमें अवस्थानपूर्वक दिन रात इस विद्याका जप किया ॥ २६ ॥

तेन सा पावनी गङ्गा मोक्षदा सर्वदेहिनाम् ।
सिद्धमन्त्रप्रभावेन कालीतेजोपबृंहिता ॥ २७ ॥

उसी मंत्रके प्रभावसे पावनी गंगा सब देहधारियोंको मोक्षदायिनी हुई सिद्धि मंत्रके प्रभावसे कालीतेजमें संवर्द्धित होकर ॥ २७ ॥

अतः सा पावनी भूता मोक्षदा च सदाशिवे ।
अतो हि सर्वतीर्थेषु सा विद्या सर्वपूजिता ॥ २८ ॥

और मुक्तिप्रदा हुई हैं, वह सदा पावनी है । हे शिवे ! इसी कारण वह विद्या सर्वतीर्थोंमें सदा पूजित है ॥ २८ ॥

माहात्म्यं किमु वक्ष्यामि गङ्गायाश्च सुरेश्वरि ।
यन्नामस्मरणादेव पापिनो मुक्तिभागिनः ॥ २९ ॥

हे सुरेश्वरि ! गंगाका माहात्म्य क्या वर्णन करूं जिनके नामको स्मरण करते ही पापी मुक्तिलाभ करते हैं ॥ २९ ॥

गंगागंगेति यो ब्रूयात्पापिनामपि पातकी ।
सर्वांश्च पातकान्हित्वा स गच्छेद्वैष्णवीं पुरीम् ॥३०॥

पापियोंमें पातकी और अतिपातकी होकर भी जो मनुष्य गंगा गंगा कहता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । और वह विष्णुपुरीमें जाता है ॥३०॥

यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि च महेश्वरि ।
प्रायश्चित्तविहीनानि प्रायश्चित्तपराण्यपि ॥ ३१ ॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति गंगाजलनिषेकतः ।
नगर्य्या वा पुरादम्बु यत्तद्गंगां प्रसर्पति ॥ ३२ ॥

हे महेश्वरि ! जिस पापका प्रायश्चित्त है, वा जिसका प्रायश्चित्त नहीं है, ऐसे समस्त पाप ही गंगा स्नानसे नष्ट होते हैं, नगरी पुरी वा अन्यान्य स्थानोंसे बहता हुआ जल गंगामें गिरने पर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सर्वं गङ्गा भवत्येव मन्त्रमाहात्म्यतः शिवे ॥ ३३ ॥

मंत्र माहात्म्यसे वह सब गंगा ही हो जाता है ॥ ३३ ॥

यत्र देशेवसद्गङ्गा स देशः पुण्यभाजनः ॥ ३४ ॥

जिस देशमें गंगा देवी बहती हैं, वह देश पुण्यभाजन है ॥ ३४ ॥

पुण्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं पवित्रं योजयद्वयम् ।
तत्र यत्क्रियते कर्म गङ्गायां तत्र संशयः ॥ ३५ ॥
गङ्गायां यत्कृतं देवि तदक्षयफलं भवेत् ।
साङ्गं वापि विहीनं वा कथितं शम्भुवल्लभे ॥३६॥
तत्रस्थाः प्राणिनः सर्वे देवलोकविनिःसृताः ।
भुक्त्वा च विविधान्भोगान्कृत्वा च सुकृतं सदा ।
अनायासेन यास्यन्ति स्थानं परमदुर्लभम् ॥ ३७ ॥

गंगाकी दो योजन दूर तक भूमि पवित्र पुण्यक्षेत्र कहकर निर्दिष्ट है। वहां कोई कार्य करनेपर गंगामें ही वह कार्य किया जाता है इसमें संदेह नहीं गंगामें सांग वा हीन रूपसे जो कुछ किया जाता है वह अक्षयफल-दायक होता है। हे शंभुवल्लभे ! गंगास्थित सब प्राणी देवलोकसे निकल कर गंगावासी हुए है। गङ्गावासी विविध भोगोंको भोगते हुए सदा सुकृतिसाधनपूर्वक सहजमें ही शोकादिशून्य परम दुर्लभ स्थानमें जाते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

यत्र लोका न शोचन्ति देवर्षिगणसंस्तुते ।
गङ्गायां त्यजति प्राणान्यस्तु पुण्यस्वभावतः ॥३८॥
ज्ञानतो मोक्षमाप्नोति वैकुण्ठं तदभावतः ।
स्वर्लोकाद्या महेशानि गंगयाघविवर्जिताः ॥ ३९ ॥

हे देवर्षिगणसंस्तुते देवि ! जिस गङ्गातटमें जाकर मनुष्य सोच नहीं करते उस गंगातट पर जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक प्राणत्याग करता है वह मोक्षको प्राप्त होता है और अज्ञानसे मरनेपर वैकुंठ प्राप्त होता

है । हे महेश्वरि ! स्वर्गादि समस्त लोक गंगाद्वारा पापहीन होकर पवित्र स्थान हुए हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

गङ्गामुद्दिश्य यो गच्छन्पथि प्राणान्विमुञ्चति ।
विष्णुलोकं बहुगुणं पापी चेत्सोऽपि गच्छति ॥ ४० ॥

गंगाके उद्देश्यसे गमन करके मार्गमें प्राण त्याग करनेपर यदि वह पापीभी हो तोभी बहुगुण विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

तत्तीरे यस्त्यजेत्प्राणान्न्यायतोऽन्यायतोऽपि वा ।
सोऽपि स्वर्गमवाप्नोति सर्वसद्भावसंयुतम् ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य न्यायसे वा अन्यायसे गंगाके तटपर प्राणत्याग करता है तो वह सर्व फलयुक्त स्वर्गलाभ करता है ॥ ४१ ॥

यावदस्थीनि गंगायां स्थीयन्ते हि मृतस्य च ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ४२ ॥

जबतक गंगामें मृतककी अस्थि पडी रहती हैं । तबतक सहस्रों वर्षपर्यन्त वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

गंगाजलसमायोगान्म्रियते यत्र कुत्रचित् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ४३ ॥

जो कोई मनुष्य जिस किसी स्थानमें यदि गंगाजलके संयोगसे प्राण त्याग करै तो वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें पूजित होता है॥४३॥

गङ्गातीरे चतुर्हस्ते पिण्डं दद्यात्समाहितः ।
पितॄणां निष्कृतिं कृत्वा विष्णुलोके वसेन्नरः ॥ ४४ ॥

गंगातटमें गंगाप्रवाहके चार हस्त दूर सावधानचित्तसे पितरोंको पिण्ड देनेपर पितरोंका छुटकारा होता है । और पिण्ड देनेवाला मनुष्य विष्णुलोकमें वास करता है ॥ ४४ ॥

गङ्गायां तर्पणं देवि पुण्यवान्यः समाचरेत् ।
महातृप्तिर्भवेत्सत्यं पितॄणाञ्च शताब्दिका ॥ ४५ ॥

जो पुण्यवान् मनुष्य गंगामें पितृतर्पण करता है उसके पितर सौ वर्ष-तक महातृप्त रहते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ४५ ॥

ऋषीणां देवतानाञ्च तथैव समुदाहृतम् ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ सन्ध्यायां वा महानिशि॥४६॥
स्नानं दानं तपो होमं तर्पणं पूजनं शिवे ।
सर्वं कुर्य्यात्तु गंगायां कालभेदं न चाचरेत् ॥ ४७ ॥

ऋषि और देवताओंकीभी इतनी तृप्ति होती है । हे देवि ! दिन वा रात्रि संध्याकाल वा महानिशा इन सब समय गंगामें स्नान दान तप होम तर्पण पूजा इत्यादि सब कार्य करे । इसमें कालभेदका विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कालभेदं समाचर्य यदि कर्म त्यजेच्छिवे ।
ततस्तु स्थावरो भूयादरण्ये तदनन्तरम् ॥ ४८ ॥
दावाग्नीनां शिखाभिर्वा नष्टो ह्यन्येन हेतुना ।
तदन्ते परमेशानि चाण्डालो नित्यदुःखितः ॥ ४९ ॥

हे शिवे ! यदि कालभेद समाचरणपूर्वक अर्थात् गंगाके तटपर रात्रि आदि कर्म्मकालके विरुद्धकालमें जानेसे उस कालको कर्म्मका अयोग्य समझकर गंगामें कर्म्म त्याग करे । तो वह स्थावर होकर वनमें जन्म ग्रहण करता है । तदनंतर दावाग्निशिखा और अनेक प्रकारके कारणोंसे नष्ट होता है । हे परमेश्वरि ! उसके उपरान्त वह मनुष्य नित्य दुःखी चाण्डाल होकर जन्म लेता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

सप्तजन्मसु जायेत तदन्ते रजको भवेत् ।
जन्मत्रयं महेशानि तदन्ते शूद्रयोनिषु ॥ ५० ॥
दशजन्म महेशानि ततो वैश्यत्वमाप्नुयात् ।
ब्राह्मणत्वं ततः प्राप्य लभेत्पुण्यगतिं ततः ॥ ५१ ॥

सात जन्मतक चाण्डाल होकर फिर तीन जन्म धोबी होता है । इसके पीछे शूद्रयोनिमें दश जन्म बिताकर चार जन्म पर्यन्त वैश्य होता है । फिर तीन जन्म क्षत्रिय और फिर ब्राह्मणत्वको प्राप्त होकर पुण्यगति प्राप्त कर सकता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

गंगायां हरते यो हि यत्किञ्चित्परमेश्वरि ।
तस्य मोहान्धतमसो रौरवान्नास्ति निष्कृतिः ॥५२॥
आभूतसंप्लवं यावत्कथितं ते सुरेश्वरि ।
गङ्गातीरे च गङ्गायां प्रतिगृह्णाति यो नरः ।
श्वपचो जायते नित्य दशजन्मनि कामिनि ॥ ५३ ॥

हे परमेश्वरि ! हे सुरेश्वरि ! यदि कोई मनुष्य गंगापर किंचितमात्र भी द्रव्य हरण करे तो वह प्रलयकालपर्यन्त मोहान्धतमस रौरव नरकमें गिरता है । किसी प्रकार छुटकारा नहीं पाता हे कुलकामिनि ! जो मनुष्य गंगाके तटपर वा गंगामें प्रतिग्रह करता है अर्थात् दान लेता है वह चाण्डालयोनिमें जन्म लेकर दश जन्म बिताता है ॥५२॥५३॥

ततो दारिद्र्यदोषेण परिभ्रमति मेदिनीम् ।
सप्त जन्म महादेवि तदन्ते निष्कृतिं व्रजेत् ॥ ५४ ॥

फिर दारिद्र्यदोषसे पीडित होकर सात जन्म पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करता है । फिर छुटकारा मिलता है ॥ ५४ ॥

एवन्ते कथितं तस्या मन्त्रमाहात्म्यमुत्तमम् ।
कालिकाया महेशानि गङ्गामाहात्म्यकारणात् ॥५५॥

हे महेशानि ! यह मैंने तुमसे गंगामाहात्म्यके कारण कालिकाका उत्तम मंत्र माहात्म्य कहा ॥ ५५ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे भाषाटीकायामष्टादशः पटलः ॥ १८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

भो देव परमानन्द करुणावारिवारिधे।
अपारे घोरसंसारे पतितानां महार्णवे।
त्वामृते कः समुद्धर्तानन्ते ब्रह्माण्डमण्डले॥ १॥

श्रीदेवीने कहा—हे परमानन्द देव ! हे करुणासिन्धो ! अपार और घोरतर संसार सागरमें पडे हुए मनुष्योंका उद्धार करनेवाले आपके अतिरिक्त ब्रह्माण्डमण्डलमें और कौन है॥ १॥

गुरुस्त्वं सर्वसत्त्वानां ब्रह्मादीनां यतो ध्रुवम्।
पृच्छामि त्वामतो नाथ कृपया परया वद॥ २॥

आपही ब्रह्मादि सब जीवोंके गुरु हैं हे नाथ ! इसी कारण आपसे पूछती हूं कृपा प्रकाशपूर्वक कहिये॥ २॥

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वन्मुखाम्भोजनिर्गतम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यन्मे मनसि चागतम्॥ ३॥

हे जगन्नाथ ! आपके मुखकमलसे निकला हुआ सब विषय सुना अब अपना मनोगत विषय सुननेकी इच्छा करती हूं॥ ३॥

कां विद्यां समुपाश्रित्य करालो भैरवः स्वयम्।
क्रोधवक्त्रो भैरवोऽभूत्सर्वसत्त्वभयप्रदः॥ ४॥

कराल भैरव कौनसी विद्याको अवलम्बन करके सर्व जीवोंको भयप्रद क्रोधवक्त्र भैरव हुए॥ ४॥

विद्रवन्ति भयार्ता वै यस्माद्देवासुरादयः।
त्यक्त्वा स्वां स्वां श्रियं सत्त्वं पलायन्त इतस्ततः॥५॥

जिनको देखते ही भयसे कातर हो देव और असुर इत्यादि समस्तही अपना अपना ऐश्वर्य सत्त्व छोडकर इधर उधर भागते हैं॥ ५॥

तां विद्यां श्रोतुमिच्छामि वद नाथ दिगम्बर॥ ६॥

हे नाथ दिगम्बर ! मैं उसी विद्याके सुननेकी इच्छा करती हूं आप वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच ।

अतिगुह्या महाविद्या गुह्याद्गुह्यतरा हि सा ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सर्वस्वं जीवनावधि ॥ ७ ॥
कथितुं नैव शक्नोमि तां विद्यां परमेश्वरि ।
कथ्यते नाममात्रं हि ज्ञायतां कुलभैरवि ॥ ८ ॥

ईश्वर बोले–हे परमेश्वरी ! वह महाविद्या गुह्यसेभी गुह्य अतिगुह्य है । वह ब्रह्मा,विष्णु महादेवादिकाभी जीवनसर्वस्व है । अतएव मैं उस विद्याके कहनेमें समर्थ नहीं हूं हे कुलभैरवि ! नाममात्र कहता हूं तुम जानलो ॥ ७ ॥ ८ ॥

या च वै परमेशानि सुन्दरी वरदायिनी ।
विद्याराज्ञी घोरकाली अनिरुद्धसरस्वती ॥ ९ ॥
गृहीत्वा तां महाविद्यामादिनाथः स भैरवः ।
महाकालश्रीभैरवात्सद्गुरोः श्रीमुखाच्छिवे ॥ १० ॥
प्राप्तिमात्रान्मनोर्यस्य करालो भैरवः शिवे ।
अकरोत्पूतमात्मानं सर्वस्मादधिकं स्वयम् ।
सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मादिसुरवन्दितः ॥ ११ ॥

हे परमेशानि ! आदिनाथ वह भैरव महाकालभैरवादि सद्गुरुके श्रीमुखसे सुन्दरी वरप्रदा घोरकाली अनिरुद्ध सरस्वती नामक श्रेष्ठ विद्याको प्राप्त हुए । करालभैरव उस विद्याकी प्राप्तिमात्रसेही अपनी आत्माको पवित्र करके स्वयं ब्रह्मादि देवताओंसे वन्दित और सब संसारसे मुक्त होकर सबसे श्रेष्ठ हुए ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

सतूदयाचले पूर्वं तपस्तेपेऽतिदुष्करम् ।
भूत्वोर्द्ध्वचरणो देवि वर्षाणां नियुतद्वयम् ॥ १२ ॥

हिमाचले चैकलक्षं लक्षं वै मन्दराचले ।
कनकाद्याश्रमे लक्षमुड्डीयाने द्विलक्षकम् ॥ १३ ॥
पञ्चविंशतिलक्षं च तथा जालन्धरे शिवे ।
पुण्यशैले तथा लक्षं पञ्चविंशतिमानतः ॥ १४ ॥
पञ्चविंशतिलक्षं च कामाख्यायोनिमण्डले ।
एवं तेपे तपो घोरं कोटिवर्षं सुदुष्करम् ॥ १५ ॥
कष्टेन महता देवि करालो भैरवः स्वयम् ।
तथापि तं प्रति प्रीता नाभूत्काली कपालिनी ॥१६॥

वह पूर्व दिशा उदयाचलमें जाकर दुष्कर तपस्या करने लगे उन्होंने ऊर्ध्वपद अर्थात् ऊपरको पैर करके दो नियुत वर्ष तप किया था हिमाचलमें एक लक्ष मन्दराचलमें लक्ष कनकाचलमें लक्षवर्ष और उड्डीयानमें दो लक्ष जालन्धरमें पच्चीस लक्ष पुण्यशैलमें पच्चीस लक्ष कामाख्या योनिमण्डलमें पच्चील लक्ष इस प्रकार कराल भैरवने करोड वर्षतक महाकाष्ठसे अत्यन्त कठिन तपस्या करी थी । किन्तु तो भी काली उनके प्रति प्रसन्न नहीं हुई ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

ततः स भैरवो देवि गुरोरन्तिकमन्वगात् ।
निवेदयामास तथा वृत्तान्तं तपसः शिवे ॥ १७ ॥

हे शिवे ! इसके पीछे कराल भैरवने गुरुके निकट जाकर तपस्याका सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १७ ॥

श्रुत्वा श्रीमानादिनाथो महाकालो महेश्वरः ।
मन्नाथः परमेशानि भावनावशतां गतः ॥ १८ ॥

हे देवि ! यह सुनकर मदीयनाथ श्रीमदादीनाथ महेश्वर महाकाल चिन्ता करने लगे ॥ १८ ॥

विना च परमाचारं न हि सिद्धिर्भवेत्किल ।
कथं त्वां परमाचारं कथयामि समासतः ॥ १९ ॥

जिस परमाचारके बिना वह सिद्धि होनेवाली नहीं है । मैं किस प्रकार उस परमाचारका वर्णन करूं ? ॥ १९ ॥

स एव परमाचारः कालीहृदयसंगतः ।
गुह्यातिगुह्यगुह्यश्च ब्रह्मादीनामगोचरः ॥ २० ॥

वह महाकालीके हृदय गत रहता है । वह गुह्यातिगुह्य ब्रह्मादिकोंके भी अगोचर है ॥ २० ॥

परमुक्तिप्रदः साक्षात्सर्वसिद्धिवरप्रदः ।
कालीप्रत्यक्षबीजोऽयं मम सर्वस्वमेव च ॥ २१ ॥

और सर्वसिद्धिवरप्रद तथा साक्षात् मुक्तिप्रद है । यह कालीका प्रत्यक्ष बीज भी मेरा सर्वस्व है ॥ २१ ॥

केवलं कथितं सर्वं शिवेन सदृशो भवेत् ।
श्रुत्वा शान्तो महायोगी गोपितस्तेन यत्नतः ॥२२॥

यह केवल कथित होनेपर ही उसके सुननेसे शिवतुल्य और सत्त्वशान्त महायोगी होता है । इसी कारण यत्नपूर्वक गुप्त रहता है ॥ २२ ॥

आचारार्थं स्वीयपादं कालरुद्रे समर्पितम् ।
मम सर्वस्वकं चेदं निरुद्वेगोऽप्यनेन वै ।
संगोप्यानेन परमं तथाचारं सदाचरेत् ॥ २३ ॥

आचारके निमित्त इसका पादांश कालरुद्रमें समर्पण किया गया है । यह मेरा सर्वस्व है । इसको प्राप्त होकर ही मैं निरुद्वेग और स्वस्थचित्त हुआ हूं, अत्यन्त गुप्तरीतिसे यत्नपूर्वक इस आचारका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २३ ॥

सदाचारस्य सम्प्राप्त्या तत्त्वज्ञानं महामतिः ।
सर्वेषामधिपो भूयाद्विश्ववन्द्यः सदाशिवः ।
अजरामरतां प्राप्तो महाशान्तः परमेश्वरः ॥ २४ ॥

सदाचाररतं नित्यं शान्तं दृष्ट्वाप्यहं पुनः ।
पदं मदीयं गुरुतां दत्त्वा तस्मै समासतः ॥ २५ ॥
अहं तु तस्य देहे वै मुदा तिष्ठामि सर्वदा ।
सर्वेषान्तु सहस्रारे तिष्ठामि कमले परे ॥ २६ ॥

सदाचारका निगूढ तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेपर वह मनुष्य सबका अधीश्वर महामति विश्ववन्द्य तथा सदाशिव महाशान्त और परमेश्वर होकर अजर अमरता प्राप्त करता है । तिस आचारमें निरत नित्य शान्त मनुष्यको देखकर मैं अपना पद और गुरुत्व प्रदान करता हूं । मैं उसके देहमें सदा ही आनन्दसहित वास करता हूं । मैं सबके सहस्रार कमलमें स्थित रहता हूं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

शिवत्वं प्राप्य तिष्ठामि मामकं सर्वदा ह्यहम् ।
शिवः शिवोऽहं तु शिवो न भेदः कुत्रचित्सदा ॥२७॥

मैं वहां शिवत्वमय होकर सदा ही वास करता हूं । मैं शिव । मैं शिव । मैं शिव । मेरा कहीं भी किसी समय भेद नहीं है ॥ २७ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां गुरुर्यत्र ततः शिवः ॥
सोऽपि शान्तो महायोगी आचारक्षम एव सः ॥२८॥
नान्यः कश्चित्क्षमः क्वापि सदाचारे कदाचन ।
शिवस्य कृपया चैव केवलं साधकः क्षमः ॥ २९ ॥
क्षमा सा गिरिजा देवी नान्यः कश्चित्कदाचन ।
उग्रभावो भीमकर्मा करालो भैरवः सदा ॥ ३० ॥
तमेव परमाचारं कथं गोप्तुं क्षमो ह्यहम् ।
यथा मे कालिकाराध्या तथाचारोऽयमेव हि ॥३१॥

जहां ब्रह्मा विष्णु महेश्वरादिके गुरु हैं । वहीं शिव हैं । इस प्रकार विचारशील वह मनुष्य ही शान्त महायोगी और वही आचारमें समर्थ है

अन्य कोई मनुष्य उस आचारमें समर्थ नहीं है । साधकमनुष्य शिवकी कृपाके बलसे ही उसमें समर्थ होता है । और वह गिरिसुता देवी समर्थ होती है । अन्य कोई नहीं यह भयंकर कर्मकारी करालभैरव सदा ही उग्रस्वभाव है । तो उस परमाचारके छिपानेमें कैसे समर्थ हूं ? कालिका जिस प्रकार मेरी आराधनीय है । यह आचार भी उसी प्रकार है २८–३१

विद्याराज्ञीं समाराध्यां दातुं योग्यः कदाप्यहम् ।
योग्यो न परमाचारं दातुं कालीहृदःप्रियम् ॥ ३२ ॥
इति सम्भाव्यादिनाथः करालं भैरवं प्रति ।
आज्ञापयामास पुत्र प्रति गच्छ त्रिलोचनम् ॥ ३३ ॥

आराध्या विद्या राज्ञीके प्रदान करनेमें मैं कदाचित् योग्य हूं । किन्तु कालीका हृदयगत आचार प्रदान करनेमें कभी योग्य नहीं हूं । श्रीमान् आदिनाथने इस प्रकार विचार कर करालभैरवको आज्ञा दी । हे पुत्र ! तुम त्रिलोचनके समीप जाओ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

देवी शिवं समारुह्य तत्रासीत्करुणामयी ।
यातो मातुः कालिकायास्ततोसौ भैरवः स्वयम् ३४॥

वहां करुणामयी काली शिवोपरि आरोहण करके स्थित हैं तदनन्तर भैरव माताके निकट गये ॥ ३४ ॥

त्यक्त्वा तपस्तु सकलं भावयन्नन्तरात्मना ।
यद्यज्जप्तं तपो ह्येवं सर्वं जातं वृथा हि तत् ॥ ३५ ॥
ममाभाग्यवशात्सा हि गुर्वाज्ञा विफला भवेत् ।
अतः शरीरं त्यक्ष्यामि न वक्ष्यामि कदाचन ॥३६॥

तपस्या छोडकर अन्तरात्माके सहित जो जो जप किया वह समस्त ही तपकी समान विफल हुआ । भैरवने मनमें विचारा मेरे दुर्भाग्यके वश गुरुकी आज्ञा भी विफल हुई इस कारण मैं शरीरको त्याग दूंगा अब कभी इस देहका भार वहन नहीं करूंगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

प्रतिज्ञामीदृशीं कृत्वा देहं संत्यक्तमुद्यतः ।
तदाकाशसमुद्भूता वाणी जाता मनोहरा ॥ ३७ ॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वह शरीर त्यागनेमें उद्यत हुए उसी समय मनोहर आकाशवाणी हुई ॥ ३७ ॥

शृणु त्वं हि महाभाग महात्मन्भैरव स्वयम् ।
तामाज्ञां कथयामि त्वां श्रुत्वा कर्णेऽवतंसय ॥ ३८ ॥

हे महात्मा करालभैरव ! इस आज्ञाको सुनो । और सुनकर धारण करो ॥ ३८ ॥

गुर्वाज्ञा विफला या तु तव वै भैरवोत्तम ।
नाचारेण तपस्तप्तं त्वयात्मज्ञानतः सदा ॥ ३९ ॥

तुम्हारे गुरुकी आज्ञा विफल होनेका कारण यह है कि तुमने विना-आचार केवल आत्मज्ञानानुसारही सदा तप किया है ॥ ३९ ॥

कथं तुभ्यं तु सिद्धिश्च दर्शनं वा ददाम्यहम् ।
पुनर्याहि महाकालभैरवं भवनाशनम् ॥ ४० ॥
आदिनाथं तव गुरुं वृत्तान्तं कथयेदृशम् ।
तदावश्यं महाचारं तुभ्यं वै स प्रदास्यति ॥ ४१ ॥

मैं तुमको किस प्रकार दर्शन दूं । सुतरां तुमको सिद्धि नहीं हुई । तुम फिर उन आदिनाथ भवनाशन महाकालभैरव गुरुके निकट जाओ और यह सब वृत्तान्त कहो । वह तुमको अवश्य ही महाचार प्रदान करेंगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

तेनैवाचारतो देव ममाराधनमाचर ॥
अचिरात्तत्प्रदास्यामि यद्यन्मनसि वर्त्तते ॥ ४२ ॥

हे सुव्रत ! तुम उसी आचरणसे मेरी आराधना करो तो तुम्हारे मनमें जो जो वर्त्तमान है वह सब प्रदान करूंगी ॥ ४२ ॥

कालीतारामहामंत्रं हितं मन्त्रश्च वै ध्रुवम् ।
कुलाचारं विना यो हि जपेद्वै नारकी भवेत् ॥ ४३ ॥

कुलाचारके विना जो मनुष्य कालीताराका महामंत्र जपता है। वह निःसन्देह नारकी होता है ॥ ४३ ॥

कथं सिद्धिर्भवेत्तस्य मुक्तिस्तिष्ठति दूरतः ॥ ४४ ॥

उसको किस प्रकार सिद्धि हो उसको मुक्ति दूर स्थित रहती है ॥४४॥

एवमाज्ञां महाकाल्या लब्ध्वासौ भैरवोत्तमः ।
पुनर्गत्वा च श्रीनाथ आदिनाथं महाप्रभुम् ॥ ४५ ॥
महाकालं महादेवं शून्यरूपं जगद्गुरुम् ।
निवेदयामास तदा यद्यद्वाक्यं समीरितम् ॥ ४६ ॥

वह भैरवोत्तम महाकालीकी इस प्रकार आज्ञा पाकर पुनर्गमनपूर्वक महादेवीने जो जो वचन कहे थे वह सब वचन श्रीनाथ महाप्रभु महाकाल महादेव शून्यरूप जगद्गुरु आदिनाथसे निवेदन किये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मातुः कृपा महाकाल्याः करालो भैरवोधुना ।
इति मत्वानन्दितः स गुरुर्वै शून्यरूपभाक् ॥ ४७ ॥

कराल भैरवके प्रति महाकाली माताकी कृपा हुई है। यह विचार कर शून्यरूपी जगद्गुरुको आनन्द उदय हुआ ॥ ४७ ॥

तदा नियमपूर्वं हि करालो भैरवोऽवदत् ॥ ४८ ॥
कुलाचारं परं गुप्तं कालीतन्त्रोदितं हि यत् ।
महाकालो जगन्नाथोऽभिषिक्तं तच्चकार ह ॥ ४९ ॥
शाक्ताभिषेकविधिना पूर्णाभिषेकतस्तथा ॥
ददौ नाम करालाय क्रोधवक्रेति विश्रुतम् ॥ ५० ॥

तब नियमपूर्वक कालीतन्त्रोदित परम गुप्त कुलाचार कहा। महाकाल जगन्नाथने शाक्ताभिषेक और पूर्णाभिषेक विधिद्वारा उसके अभिषेक

या और करालवक्त्रभैरवको क्रोधवक्त्रभैरव यह नाम प्रदान किया॥४८॥ ४९ ॥ ५० ॥

दिव्यभावं श्रावयित्वा वरिभावं ततः परम् ।
मदिरां मत्स्यमुद्रां च पात्रं कारणपूरितम् ॥
ददौ तस्मै महाकालः शून्यरूपी गुरुः स्वयम् ॥५१॥

उन शून्यरूपी स्वयं गुरु महाकालने उसको दिव्यभाव और वीरभाव दान करनेके पीछे मदिरा मत्स्य और मुद्रा सहित कारणपूरित पात्रका पदेश दिया ॥ ५१ ॥

तदानीं शुशुभे सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
क्रोधवक्त्रोऽपि नत्वा श्रीमहाकालीपदाम्बुजम् ॥५२॥

तब चराचर जगत् शोभा पाने लगा क्रोधवक्र भैरवने श्रीमहाकालीके रणकमलोंमें नमस्कार पूर्वक ॥ ५२ ॥

महाकालस्तदा देवि स्मृत्वा श्रीगुरुपादुकाम् ।
गुर्वाज्ञया भावयुक्तः परं स्वीकृत्य कारणम् ॥ ५३ ॥

हे देवि! महाकालने भी गुरुपादुकाको स्मरण करके गुरुकी आज्ञासे भावयुक्त होकर कारण स्वीकार किया ॥ ५३ ॥

स बुद्धिमांश्च तेजस्वी परमानन्दपूरितः ।
आनन्दजलधौ देवि निमग्नः क्रोधभूपतिः ॥ ५४ ॥
शक्तिपादौ महेशानि भूयो नत्वा गुरोः पदम् ।
अस्तैषीत्परया भक्त्या संसारे सागरे स्थितः ॥५५॥

फिर बुद्धिमान् तेजस्वी क्रोधवक्त्रभैरव आनंदसागरमें निमग्न हो शक्तिपदमें वारम्वार प्रणाम करनेके पीछे गुरुके चरणोंकी वंदना करके संसारमें अवस्थापूर्वक परमभक्तिसहित गुरुकी स्तुति करने लगे ॥५४–५५॥

क्रोधवक्त्रभैरव उवाच ।

नमामि नाथं सुरकल्पवृक्षं गुरुं चिदानन्दमहावतारम्।
नित्यं हि विज्ञानमनन्तरूपंपरात्परं ब्रह्मशिवस्वरूपम् ५६

क्रोधवक्त्र भैरवने कहा—जो चिदानंदके महावतार सुरकल्पवृक्ष श्रीनाथगुरु विज्ञानस्वरूप आनन्दमय नित्य शिव ब्रह्मस्वरूप परात्पर ॥५६॥

जगन्निवासं जगदादिमूलमज्ञातमेकं परमात्मसङ्गम् ।
तेजोमयं निष्कलतत्त्वभावं क्रियाविहीनं परमं निरञ्जनम्५७

जगदादिमूल जगन्निवास अज्ञात एक, परमात्माके संग तेजोमय निष्फल तत्त्वभाव क्रियाविहीन परमनिरंजन ॥ ५७ ॥

प्रपञ्चहीनं परिपूर्णभावमाद्यन्तहीनं प्रकृतेः परस्तात् ।
अरूपरूपं स्फुटमेव सत्यं कृपावतारं खलु शून्यरूपम् ५८॥
अनादिसंसारविनाशबीजं परं पवित्रं परगोचरं गुरुम् ।
शिवाभिधं केवलानाममन्त्रात्प्रकाशभावं प्रणमामि नित्यम् ॥ ५९ ॥

प्रपञ्चहीन परिपूर्णभाव अनाद्यन्त प्रकृतिसे परे अरूपरूप सत्यस्वरूप कृपावतार शून्यरूप ॥५८॥ अनादि संसार विनाश बीज है । और जो अत्यंत पवित्र और इंद्रियोंसे अग्राह्य हैं उन परम पवित्र गुरुको प्रणाम करता हूं । जो शिवमय केवल नाममंत्रमें ही जिनका प्रकाशभाव है उन गुरुको नमस्कार करता हूं ॥ ५९ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयान्पश्यन्ति त्वामादिविदश्च सर्वे । यज्ज्ञानजं लोचनमेव सत्यं स च प्रविष्टस्त्वयि नाथ सत्यम् ॥ ६० ॥

हे नाथ ! हे गुरो ! आदिविद्वरणीयगण जिनको अणुसे भी अणीयान् और महत्से भी महान् दर्शन करते हैं । तथा जिनका ज्ञानज लोचन ही सत्य है वही आपमें प्रविष्ट हैं ॥ ६० ॥

असारसंसारसमुद्रनावं वन्देऽहमाद्यं पुरुषं पुराणम् ।
त्वमेव कालीपरमार्थबीजं नमाम्यहं त्वच्चरणार-
विन्दम् ॥ ६१ ॥

वही असार संसार समुद्रसे तारनेवाले हैं उन आद्य पुरातन पुरुषको मैं नमस्कार करता हूं । और तुम ही परमार्थसे महाकाली बीजस्वरूप हो आपके चरणकमलोंमें मेरा नमस्कार है ॥ ६१ ॥

स्तोत्रेणानेन यो भक्त्या त्वां स्तोष्यति च साधकः ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने तस्य मुक्तिप्रदा भव ॥ ६२ ॥

जो साधकोत्तम प्रातः मध्याह्न और सायंकालमें इस स्तोत्रद्वारा भक्तिसहित तुम्हारी स्तुति करे । उसको मुक्ति प्रदान करो ॥ ६२ ॥

महाकालभैरव उवाच ।

स्तोत्रेणानेन सन्तुष्टः सदाहं तव पुत्रक ।
गच्छ शीघ्रं योनिपीठं देवीशिखरमाश्रितः ॥ ६३ ॥
भज कालीं कुलाचारभाववेश्यापरायणः ।
अचिराद्वाञ्छिता सिद्धिर्भविता ते न संशयः ॥६४॥

महाकालभैरवने कहा हे पुत्र ! तुम्हारे इस स्तोत्रसे मैं संतुष्ट हुआ । तुम शीघ्र योनिपीठमें जाय देवीशिखरमें आश्रय करके कुलाचारभाव वेश्यापरायण हो कालीका भजन करो । तो बहुत शीघ्र सिद्धिलाभ करसकोगे । इसमें संदेह नहीं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

वेश्यामध्यगतं वीरं कदा पश्यामि साधकम् ।
एवं वदति सा काली तस्माद्वेश्यापरो भव ॥ ६५ ॥
मन्त्राचारे हि सर्वत्र न हि दोषः कदाचन ।
तस्माद् भ्रान्तिं परित्यज्य कुलधर्मं समाश्रय ॥६६॥

मंत्राचारमें सर्वत्र ही वेश्या दोषजनक नहीं होती । अतएव भ्रान्ति त्यागके कुलधर्मका आश्रय करो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

भ्रान्तिस्तत्र न कर्त्तव्या सिद्धिहानिर्यतो भवेत् ।
विशुद्धचित्तो भूयाच्चेत्सिद्धिः स्यान्निकटस्थिता॥६७॥

साधनविषयमें भ्रांति सिद्धिकी हानि करती है । अतएव भ्रांति त्याग दे । विशुद्धचित्त हो तो सिद्धि निकट ही वर्त्तमान है ॥ ६७ ॥

ईश्वर उवाच ।

ततो नत्वा महाकालीं गुरुं बहुविधं मुदा ।
योनिपीठं समासाद्य देवीशिखरमाश्रितः ॥ ६८ ॥
उर्व्वशीमेनकारम्भापञ्चचूडातिलोत्तमाः ।
पञ्चवेश्यारतो भूत्वा कुलाचारपरायणः ।
भावशुद्धां महाविद्यां जजाप क्रोधभूपतिः ॥ ६९ ॥
विद्याराज्ञीं घोरकालीमनिरुद्धसरस्वतीम् ।
अष्टोत्तरशतेनैव तस्य प्रत्यक्षतामयुः ॥ ७०॥

ईश्वर बोले-तदनंतर भैरव महाकाली और गुरुको बहुत वार नमस्कार करके योनिपीठ आश्रयपूर्वक उर्व्वशी, मेनका, रम्भा, पञ्चचूडा और तिलोत्तमा इन पांच वेश्यामें निरत होकर कुलाचारपरायण हुए अनंतर क्रोधभैरव विद्याराज्ञी घोरकाली और अनिरुद्ध सरस्वती भावशुद्ध महाविद्याका मंत्र जपने लगे । अष्टोत्तरशतवार जप द्वारा उनकी प्रत्यक्षता लाभ करी ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

काली करालवदना तेजोरूपा सनातनी ।
तेजसा परिसंच्छाद्य ब्रह्माण्डमण्डलं सदा ॥ ७१ ॥

करालवदना तेजरूपा सनातनी काली तेजसे ब्रह्माण्डमण्डलको आच्छन्न कर रही हैं ॥ ७१ ॥

तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेजो भैरवो भयविह्वलः ।
अनुपायो मूर्च्छितः सन्नपतत्पर्वताद्भुवि ॥ ७२ ॥

वह महत्तेज देखकर भैरव भयविह्वल मूर्च्छित और अनुपाय होकर पर्वतसे पृथ्वीमें गिर गये ॥ ७२ ॥

ततः काली जगन्माता कृपासागरसञ्चया।
आश्वास्योवाच तं क्रोधं वाचामृतसमानया ॥ ७३ ॥

तदनंतर कृपासागरसञ्चया जगन्माता काली वचनामृत द्वारा अभिषिक्त करके उस क्रोधभूपतिको समझाने लगी ॥ ७३ ॥

ईश्वर उवाच ।

समुत्थाय ततो देवीं भैरवः पुलकान्वितः।
अस्तौषीत्परया भक्त्या नानाविधिविधानतः ।
मुहुर्मुहुर्ननामासौ ततः कालीमुवाच च ॥ ७४ ॥

श्रीईश्वर बोले–तदनंतर भैरवने पुलकित होकर गात्रोत्थानपूर्वक परम-भक्तिसहित अनेक विधिविधानसे कालिकाकी स्तुति करी । और फिर वार-म्वार प्रणाम करके महाकालीसे कहा ॥ ७४ ॥

क्रोधवक्त्र उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम परमात्मा सनातनी ।
ममाऽभीष्टं प्रयच्छ त्वं सर्वदा मे मनोन्मयि ॥ ७५ ॥

क्रोधवक्त्रने कहा–हे मनोन्मयी काली ! आप परब्रह्म परम धाम परमात्मा और सनातनी हैं आप मेरी वांछित अभिलाषा प्रदान कीजिये ॥ ७५ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

ब्रह्मविष्णवादिकानाञ्च ब्रह्माण्डान्तरवासिनाम् ।
नित्यं नियामकस्त्वं हि भव भैरवसत्तम ॥ ७६ ॥

श्रीकालीने कहा–हे भैरवसत्तम ! तुम ब्रह्मा विष्णु इत्यादिके और ब्रह्माण्डान्तरवासीके सबही नित्य निग्राहक हो अर्थात् सबके पूज्य होओ ॥ ७६ ॥

कुलाचारेण यः कोऽपि मामर्च्चयति पुत्रक ।
स मे पुत्रत्वमागच्छेत्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ७७ ॥
गृह्णातु वक्रं दास्यामि ब्रह्माण्डभयदं भवान् ।
वक्रं हि कालरूपं तत्सर्वनिग्राहकं परम् ॥ ७८ ॥

जो कुलाचारसे मेरी पूजा करै वह सत्य सत्यही मेरा पुत्र होता है। मैं तुमको ब्रह्माण्डमण्डलका भयप्रद वक्त्रप्रदान करती हूं ॥७७॥ तुम्हारा यह वक्त्र कालरूप और सबकाही निग्राहक (अर्थात् भयकारी) होगा ॥ ७८ ॥

ईश्वर उवाच ।

तस्मै वक्रं हि सा दत्वा क्षणं शान्तिमगाच्छिवा ।
महाकाली भैरवोऽपि वज्रपाणिर्बभूव सः ॥ ७९ ॥

ईश्वरने कहा–हे शिव ! भैरवको वक्त्रप्रदान करके महाकाली क्षण कालके निमित्त शान्तिको प्राप्त हुई । वह भैरवभी वज्रपाणि हुए ॥ ७९ ॥

करालभैरवं रूपं क्रोधवक्रो ह्यवाप सः ।
वज्रपाणिर्महाकालीप्रसादादीश्वराभिधः ॥ ८० ॥

वह करालभैरवरूप क्रोध वक्त्र हुए । महाकालीके प्रसादसे यह वज्रपाणी भैरव ईश्वर नामसे कथित हुए हैं ॥ ८० ॥

इतिश्रीयोगिनीतन्त्रपूर्वार्द्धे कथितं मया ।
गोपनीयं सदा भद्रे योनिं परनरे यथा ॥ ८१ ॥

यह मैंने श्रीयोगिनीतन्त्रके पूर्वतन्त्रोंका परमविषय वर्णन किया । हे भद्रे ! इसको पराये मनुष्यसे योनिके समान सदा गुप्त रक्खे ॥ ८१ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसंवादे, चतुर्विंशतिसाहस्रे मुरादाबाद निवासि कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषाटीकायां एकोनविंशतितमः पटलः ॥ १९ ॥

योगिनीतंत्रका पूर्वखण्ड समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः ।

उत्तरखण्डम् ।

ॐ नमः कामाख्यायै ।

प्रधानसाधारविकल्पसत्ता स्वभावभावाद्भुवनत्रयस्य । सा विद्यया व्यक्तिकरीह मायाज्योतिः परा पातु जगन्ति नित्यम् ॥ १ ॥

जिन्होंने प्रकृति और आधारके सहित विकल्प सत्ताके स्वभाव भाव और विद्यासे तीनों जगत्को व्यक्त किया है । वह मायामयी परमज्योति सदा ही जगत्की रक्षा करै ॥ १ ॥

श्रीकाल्युवाच ।

उड्डीयानादिकं पीठं श्रुतं मे प्राणवल्लभ ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कामरूपस्य निर्णयम् ॥ २ ॥

श्रीदेवीने कहा-हे प्राणवल्लभ ! उड्डीयानादि पीठका विषय मैंने सुना अब कामरूपका निर्णय सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ २ ॥

यदुक्तं तत्तथा नाथ घोरपापविनाशकम् ।
कामाख्यसंज्ञकं पीठं प्रख्यातं हि कलौ युगे ॥ ३ ॥
कलिसर्पस्य दंष्ट्राणां विचित्राणां विभेदकम् ।
भेषजं परमं देव किं मे तत्कथ्यतां विभो ॥ ४ ॥

हे नाथ ! जिसके कीर्त्तनसे घोरपाप नष्ट होते हैं । वह कामाख्या नामक पीठ कलियुगमें पुण्यमय कहकर विख्यात है । हे देव ! तो कलिसर्पके विचित्र दाढोंकी विभेदक औषधि क्या है ? वह मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

उड्डीयानस्य देवेशि प्रादुर्भावः कृते युगे ॥
पूर्णशैलस्य संभूतिस्त्रेतायुगमुखे ऽभवत् ॥ ५ ॥
द्वापरे जालशैलस्य कामाख्यस्य कलौ युगे ।
घोरस्य कलिपापस्य विनाशाय महेश्वरि ॥ ६ ॥
प्रतिवर्षे पीठयुग्ममुपपीठं तथा च ते ।
त्रयं त्रयं महाक्षेत्रं पुण्यारण्यं त्रयं त्रयम् ॥ ७ ॥

श्री भगवान् बोले—हे देवेशि ! सत्ययुगमें उड्डीयान त्रेता युगके मुखमें पूर्णशैल द्वापरमें जालशैल और कलियुगमें कामाख्या प्रादुर्भूत होती हैं । हे महेश्वरि ! घोरतर कलियुगके पापोंका नाश करनेके लिये प्रतिवर्ष तुम्हारा दो दो पीठ और उपपीठ तीन तीन महाक्षेत्र और तीन तीन पुण्यक्षेत्र विद्यमान हैं ॥ ५–७ ॥

प्रतिपीठे महादेवः प्रतिपीठे चतुर्भुजः ।
प्रतिपीठे स्थिता गङ्गा पार्वती प्रतिपीठके ॥ ८ ॥

प्रतिपीठमें महादेव प्रतिपीठमें चतुर्भुज प्रतिपीठमें गंगा स्थित और प्रति पीठमें पार्वती विद्यमान हैं ॥ ८ ॥

प्रतिपीठे प्रतिक्षेत्रं प्रत्यरण्ये तथैव च ।
कलौ गृहात्सुदूरे च तीर्थबुद्धिः प्रजायते ॥ ९ ॥

प्रतिपीठमें प्रतिक्षेत्र और प्रति पुण्यारण्यही तीर्थ है कलियुगमें घरसे दूरदेशमें तीर्थबुद्धि होती है ॥ ९ ॥

किन्तु तीर्थानि वै सन्तिसर्वाणि स्वस्वभावतः ।
प्रतिपीठे पृथक्धर्म आचारश्च पृथक् पृथक् ॥ १० ॥

किन्तु सर्वतीर्थभावना सिद्ध ही कहे गये हैं । प्रतिपीठमेंही धर्म और आचार पृथक् हैं ॥ १० ॥

देशे देशे कुलाचारा मन्तव्याश्चैव हेतुभिः ।
पृथक्पूजा पृथङ्मन्त्रो मर्त्ये वै तीर्थपीठकम् ॥ ११ ॥

देशके भेदसे कुलाचार हेतुद्वारा भिन्न भिन्न हैं । मर्त्यलोकमें तीर्थ पीठ पूजा और मंत्र पृथक् पृथक् हैं ॥ ११ ॥

भद्रपीठं दाक्षिणात्ये मध्यदेशस्य पार्वति ।
जालन्धरन्तु पाश्चात्यं पूर्णपीठन्तु पूर्वतः ॥ १२ ॥

हे देवि ! मध्यदेशके दाक्षिणात्यमें भद्रपीठ, पश्चिममें जालन्धर, पूर्वमें पूर्णपीठ ॥ १२ ॥

ऐशान्यां पूर्वभागे च कामरूपं विभावय ।
जालन्धरन्तु वायव्ये कोला पुरे तथोत्तरे ॥ १३ ॥
ईशाने चैव वेहारं महेन्द्रं कियदुत्तरे ।
श्रीहट्टं चापि पूर्वे च ह्युपपीठान्यथो शृणु ॥ १४ ॥

ईशान कोणके पूर्वभागमें कामरूप जानना चाहिये, वायुकोणमें जालन्धर उत्तरमें कोल्हापुर, ईशानमें विहार, कुछ दूर उत्तरमें महेन्द्र और पूर्वमें श्रीहट्ट है. अब सब उपपीठ सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥

नौकायानेन देवेशि अष्टषष्टिस्तु योजनम् ।
विस्तारमोड्रपीठस्य आयामस्त्रिगुणो भवेत् ॥ १५ ॥

हे देवेशि ! नौकायानद्वारा अडसठयोजन विस्तारयुक्त ओड्रपीठ है । इसका आयाम विस्तारसे त्रिगुण है अर्थात् अधिक है ॥ १५ ॥

शकटाकारकं पीठं चतुष्कोणं सुपीठकम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं वायुबिम्बेन चिह्नितम् ॥ १६ ॥

शकटाकारपीठ पीठयुक्त और चतुष्कोण चतुर्द्वारयुक्त वायुबिम्बद्वारा चिह्नित ॥ १६ ॥

तीर्थकोटिद्वययुतं सिन्धुभद्रकपीठकम् ।
यत्र सोमेश्वरं लिङ्गमादिपीठं तथा परम् ॥ १७ ॥

इसी स्थानमें दो करोड तीर्थयुक्त सिन्धुभद्रक पीठ आदिपीठ सोमेश्वर लिंग ॥ १७ ॥

कामधेनुश्च यत्रैव यत्र चक्रेश्वरो हरः ।
क्षेत्रं विरजसंज्ञश्च एकाम्रं तदनन्तरम् ॥ १८ ॥

कामधेनु और चक्रेश्वर हर अवस्थित है तदनन्तर विरज क्षेत्र फिर एकाम्र ॥ १८ ॥

भास्करस्य महाक्षेत्रं यत्र मातंगशंकरः ।
कुशस्थली महापुण्या दण्डकश्च वनं तथा ॥ १९ ॥

भास्करका महाक्षेत्र और जहां मातंग शङ्कर हैं । तदनन्तर महापवित्र कुशस्थली और दण्डक वन ॥ १९ ॥

सुमन्तश्च तथारण्यं शिवयूपश्च पूर्वतः ।
पश्चिमे धेनुकारण्यं उत्तरे तु गयाशिरः ॥ २० ॥

सुमन्तारण्य और पूर्व दिशामें शिवयूप पश्चिममें धेनुकारण्य उत्तरमें गयाशिर ॥ २० ॥

दक्षिणे चन्द्रभागा च ओढ्रपीठं वरानने ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णमायामे शतयोजनम् ॥ २१ ॥

दक्षिणमें चन्द्रभागा और ओढ्रपीठ है यह विस्तारमें त्रिंशत् (तीस) योजन और दीर्घमें सौ योजन है ॥ २१ ॥

अत्र कामेश्वरी देवी योनिमुद्रास्वरूपिणी ॥ २२ ॥
भूगोलपीठके तत्र गोलोकेश्वर एव च ।
धर्मपीठं महापीठं यत्र कामेश्वरो हरः ॥ २३ ॥

इसी स्थानमें योनिमुद्रास्वरूपिणी कामेश्वरी देवी अवस्थित है। वहां भूगोलपीठकमें गोलोकेश्वर विद्यमान हैं। फिर धर्मपीठ और महापीठ हैं। इस स्थानमें कामेश्वर हर स्थित है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अविमुक्तं महाक्षेत्रं हंसप्रपतनं तथा ।
ब्रह्मयूपस्तु यत्रैव यत्र श्वेतवटः स्थितः ॥ २४ ॥

तदनन्तर अविमुक्त नामक महाक्षेत्र और हंसप्रपतन है। वहां ब्रह्मयूप और श्वेतवट विद्यमान है ॥ २४ ॥

कुरुक्षेत्रं तु तत्रैव यत्र मायास्वना नदी ।
अयोध्यारण्यकं पुण्यं धर्मारण्यं तथा परम् ॥ २५ ॥

इसी स्थानमें कुरुक्षेत्र और मायास्वना नदी है। तदन्तर पुण्यमय अयोध्यारण्यक धर्मारण्य ॥ २५ ॥

कचात्मकं महारण्यं यत्र पातालशङ्करः ।
गण्डकी च नदी पूर्वे विष्णुयूपश्च पश्चिमे ॥ २६ ॥
दक्षिणे वृषभं लिङ्गमुत्तरे कदलीवनम् ।
एतन्मध्यतमं पीठं चापाकारं मनोरमे ॥ २७ ॥

और कचात्मक महारण्य है इस स्थानमें पातालशंकर स्थित हैं अनन्तर पूर्वमें गण्डकी नदी और पश्चिममें विष्णुयूप दक्षिणमें वृषभ लिंग और उत्तरमें कदलीवन है। हे मनोरमे ! यही चापाकार मध्यपीठ है ॥ २६ ॥ २७ ॥

जानाम्यहं तथा पद्मं रक्तवर्णं विभासते ।
एकादशशतायामं योजनानां तथा नव ॥ २८ ॥
अशीत्यष्टौ च प्रस्तारे त्रिकोणं पीठमुत्तमम् ।
प्रवरं पीठकं तत्र पीठश्चाशोकमेव च ।
सीतायाश्च महाक्षेत्रमगस्त्यस्याश्रमंतथा ॥ २९ ॥

इस स्थानमें पद्म रक्तवर्ण प्रकाशित होता है । तदनन्तर दैर्ध्य अर्थात् लम्बाईमें ग्यारह सौ नौ योजन और विस्तारमें अट्ठासी योजन त्रिकोण नामक उत्तम पीठ है वहां प्रवरपीठ और अशोकपीठ विद्यमान है । हे प्रिये ! तदनन्तर सीताका महाक्षेत्र और अगस्त्याश्रम है॥ २८ ॥ २९ ॥

हरस्य परमं क्षेत्रं क्षेत्रत्रयमिदं प्रिये ।
माधवारण्यकं क्षेत्रं हरस्यारण्यकं तथा ॥ ३० ॥
अरण्यश्चैव भर्गस्येत्येवमारण्यकत्रयम् ॥ ३१ ॥

और हरका महाक्षेत्र यह तीन क्षेत्र विद्यमान हैं फिर माधवारण्यक क्षेत्र और हरारण्यक एवं भर्गारण्य यह तीन आरण्य विद्यमान हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

उत्तरे ब्रह्मक्षेत्रञ्च दक्षिणे सागरोदधिः ।
पूर्वे चोदयकूटञ्च पश्चाच्छ्रीपर्वतं प्रिये ॥ ३२ ॥

उत्तरमें ब्रह्मक्षेत्र, दक्षिणमें सागर, पूर्वमें उदयकूट और पश्चिममें श्रीपर्वत है ॥ ३२ ॥

एतन्मध्यतमं पीठं पुण्याख्यं नाम नामतः ।
पदात्पादान्तरं यावन्मध्ये हस्तद्वयान्तरम् ॥ ३३ ॥
शिवरात्रौ च गमनं सौरमासेन मासकम् ।
कामरूपं विजानीयात्षट्कोणं च प्रगर्भकम् ॥ ३४ ॥

इन सबके मध्यगत पीठ पुण्य नामसे कही गई है. वहाँ शिवरात्रिमें सौर माससे मासकी गणनाके अनुसार मध्यभागमें दो हाथके अन्तरसे और एकपादसे पादान्तरके अन्तरमें गमन करनेसे प्राप्त होता है कामरूप षट्कोण और प्रकृष्ट गर्भक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तत्पुण्यं तत्समं वेत्थ नवव्यूहं त्रिमण्डलम् ।
पर्वतैर्दशभिर्युक्तं वेदिमध्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३५ ॥

वह कामरूप समान और पुण्यजनक तथा परिमाणमें नौ व्यूह और तीन मण्डल है । उसकी वेदिका मध्य दशपर्वतयुक्त कहा गया है ॥ ३५ ॥

मध्यपीठं महापीठं यत्र कामेश्वरो भवेत् ।
तत्र पीठे हि देवेशि याति चम्पावती नदी ॥ ३६ ॥

वहां मध्यपीठ महापीठ है । उस पीठमें कामेश्वर विद्यमान हैं । हे देवि ! उसी स्थानमें चम्पावती नदी बहती है ॥ ३६ ॥

कन्याश्रमं महाक्षेत्रं यत्र रुद्रपदद्वयम् ।
एकाश्रमं परं क्षेत्रं यत्र नागाख्यशंकरः ॥ ३७ ॥

फिर महाक्षेत्र कन्याश्रम है । वहां रुद्रके दो पद विद्यामान हैं । उसी स्थानमें एकाश्रमक्षेत्र है । वहां नागाख्य शंकर विद्यमान हैं ॥ ३७ ॥

मानसं क्षेत्रकश्चैव यत्र विश्वेश्वरो हरः ।
नाटकारण्यकश्चैव चम्पकारण्यकंतथा ॥ ३८ ॥

और वही मानस क्षेत्र है । उस क्षेत्रमें विश्वेश्वर हर विद्यमान हैं । इसके पीछे नाटकारण्य और चम्पकारण्यक हैं ॥ ३८ ॥

पिच्छिला वा दक्षिणतो गौतमस्य महाफला ।
पूर्वे स्वर्णनदीं यावत्करतोया च पश्चिमे ॥ ३९ ॥
दक्षिणे मन्दशैलश्च ह्युत्तरे विहगाचलः ।
प्रस्तारे योजनार्द्धं चायामे पञ्च च योजनम् ॥ ४० ॥
अयुतत्रयश्च त्रिस्रोतस्तथा पञ्चोद्भवं दश ।
अष्टकोणश्च सौमारं यत्र दिक्करवासिनी ॥ ४१ ॥
नित्यं वसति सा देवी ज्ञानाद्ध्यानेन मुक्तिदा ।
तत्र देव्याः प्रसादेन स्थितिं गच्छन्ति नान्यथा॥४२॥

दक्षिणदिशामें गौतमकी महाफला पिच्छिला नदी है । पूर्वमें स्वर्णनदी । पश्चिममें करतोया । दक्षिणमें मन्दशैल और उत्तरमें विहगाचल है । जो कि

विस्तारमें आधा योजन और दैर्घ्यमें पञ्च योजन है। तीन अयुत त्रिस्रोत और दश अयुत पञ्चोद्भव है। इसके पीछे अष्ट कोण है। वहां दिक्करवासिनी देवी वास करती है। वहां ज्ञान पूर्वक ध्यान करनेपर मुक्ति प्राप्त होती है। उस स्थानके निवासी देवीके प्रसादसे सुखसहित वास करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१॥४२॥

अथोत्तरं नवं पीठं सौमारावधि कथ्यते।
वसत्यत्र तु प्रत्यक्षं सदा दिक्करवासिनी ॥ ४३ ॥

अब निरन्तर जिस स्थानमें दिक्करवासिनी वास करती है वह सौमारसे आरम्भ करके नवपीठ कही जाती है ॥ ४३ ॥

दिक्करस्य च वायव्ये नीलपीठं सुदुर्लभम्।
यत्र कामेश्वरी देवी योनिमुद्रास्वरूपिणी ॥ ४४ ॥

दिक्करके वायुकोणमें अत्यन्त दुर्लभ नीलपीठ है वहां योनिमुद्रास्वरूपिणी कामेश्वरी देवी है ॥ ४४ ॥

पारिजातं महाक्षेत्रं यत्रादित्यस्तु शंकरः।
कौषेयस्य पुरं क्षेत्रं तथा चामरकण्टकम् ॥ ४५ ॥

और पारिजात महाक्षेत्र तथा आदित्यशंकर विराजमान हैं इसके पीछे कौषेयका पुर और क्षेत्र तथा अमरकण्टक है ॥ ४५ ॥

अरण्यमाश्विनश्चैव गौतमारण्यकं शिवम्।
अरण्यं शिवनाथस्य शृणु पीठादितः प्रिये ॥ ४६ ॥

आश्विनारण्य और मंगलप्रद गौतमारण्य है फिर शिवनाथका अरण्य है। हे प्रिये ! वह पीठ आदिसे सुनो ॥ ४६ ॥

पूर्वे सौरशिलारण्यं पश्चिमे स्वर्णदी शुभा।
दक्षिणे ब्रह्मयूपस्तु उत्तरे मानसं सरः ॥ ४७ ॥

पूर्वमें सौरशिलारण्य। पश्चिममें शुभदायक स्वर्णदी। दक्षिणमें ब्रह्मयूप और उत्तरमें मानससरोवर है ॥ ४७ ॥

एतन्मध्यगतं पीठं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
सौमाराख्यं महापीठं षट्कोणन्तु त्रिमण्डलम् ॥४८॥

यह सबका मध्यगत स्थान भोग मोक्ष दायक है सौमाराख्य महापीठ षट्कोण और त्रिमण्डल है ॥ ४८ ॥

सहस्रयोजनायामं हयताम्रञ्च पञ्चमम् ।
प्रस्तारे तु व्यामहीनं कोलापीठं प्रकीर्त्तितम् ॥ ४९ ॥

हय ताम्राख्य पंचम पीठ सहस्र योजन व्यायाम युक्त है कोलापीठ व्यायामहीन कहीगई है ॥ ४९ ॥

सौमाराख्यं महापीठं शिवतल्पञ्च पीठकम् ।
वक्रशैवेश्वरं लिङ्गं यत्र वै कमला शिला ॥ ५० ॥

तदनन्तर सौमाराख्य महापीठ और शिवतल्प पीठ है फिर वक्र शैवेश्वर लिंग है वहां अरुण अवस्थित है ॥ ५० ॥

केदारक्षेत्रं प्रथमं यत्र केदारशंकरः ।
यत्र पिण्डकरं क्षेत्रमरुणो यत्र तिष्ठति ॥ ५१ ॥

अनन्तर केदार क्षेत्र प्रथम है वहां केदारशंकर शिव हैं उसीके समीप पिण्डकरक्षेत्र है वहां अरुण अवस्थित है ॥ ५१ ॥

दुर्गारण्यं सोमारण्यं भद्रारण्यं तथैव च ।
अशीतियोजनं क्षेत्रं षट्त्रिंशद्योजनायतम् ।
चौहाराख्यं महाक्षेत्रं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ५२ ॥

तदनन्तर दुर्गारण्य सोमारण्य और भद्रारण्य है । इसके पीछे अस्सी योजनतक व्याप्त और तेरसठ योजन व्यायामयुक्त चौहाराख्य महाक्षेत्र है वहां जानेसे शोच नहीं करना पड़ता ॥ ५२ ॥

ब्रह्मक्षेत्रं कलाक्षेत्रं रघुक्षेत्रं तथैव च ।
नन्दनं पारिजातञ्च शिवारण्यं तथा परम् ॥ ५३ ॥

तदानन्तर ब्रह्मक्षेत्र कलाक्षेत्र रघुक्षेत्र और नन्दन पारिजात शिवारण्य है ॥ ५३ ॥

देशारण्यं ततः प्रोक्तं सप्तपीठमिदं प्रिये ।
पूर्वे तु हीरिका नाम नदी पुण्यतमा स्मृता ॥ ५४ ॥

देशारण्य यह सात पीठ स्थित है । पूर्वदिशामें पुण्यतमा हीरिका नदी है ॥ ५४ ॥

पश्चिमे नाथकं लिङ्गमुत्तरे किलिपर्वतः ।
दक्षिणे नाथवृक्षस्तु पीठन्तु परिकीर्त्तितम् ॥ ५५ ॥

पश्चिममें नाथकलिंग उत्तरमें किलिपर्वत और दक्षिणमें नाथवृक्ष पीठ कही गई है ॥ ५५ ॥

गोयानेन त्रिभिर्मासैस्तथा चैव दिनत्रयम् ।
मासहीनेन पूर्वोक्तकाले नोपक्रमस्ततः ॥ ५६ ।
वाराही प्रथमं पीठं द्वितीयं कोलपीठकम् ।
क्षेत्रं कुमारं प्रथमं द्वितीयं नन्दनाह्वयम् ॥ ५७ ॥
तृतीयं शाश्वतीक्षेत्रं मातङ्गं प्रथमं वनम् ।
सिद्धारण्यं द्वितीयन्तु तृतीयं विपुलं वनम् ॥ ५८ ॥
कोटिशश्च वृतं लिङ्गैः कोटिकोटिगणैर्वृतम् ।
पञ्चतीर्थं भवेत्पूर्वे पश्चिमे धनदा नदी ॥ ५९ ॥

गोयान (बैलगाडी) द्वारा तीन मास तीन दिन और नौका द्वारा मासहीन अर्थात् दो मास तीन दिनमें तीनों पीठकी फेरी लग जाती है । वाराही प्रथम पीठ और दूसरी कोल पीठ है । कुमारक्षेत्र प्रथम, नन्दन और शाश्वती क्षेत्र तीसरा है. मातंग प्रथम वन, सिद्धारण्य दूसरा और विपुल वन तीसरा है यह सब करोड करोड लिंग और करोडकरोड गणोंसे परिवृत्त । पूर्वमें पंचतीर्थ और पश्चिममें धनदा नदी है॥५६–५९॥

पत्राख्या दक्षिणे चैव तूत्तरे कुरुबकावनम् ।
एतन्मध्यगतं देवि श्रीपीठं नाम नामतः ॥ ६० ॥

दक्षिणमें पत्राख्या वन और उत्तरमें कुरुवका वन है हे देवि ! इन सबके मध्यगत स्थानका नाम श्रीपीठ विख्यात है ॥ ६० ॥

इति श्रीयोगिनी तन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चतुर्विंशतिसाहस्रे कामरूपपीठाधिकारे प्रथमतमे द्वितीयभागे भाषाटीकायां प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

नित्यं निर्वर्त्य स्वगृहे पितॄन्नान्दीमुखानपि ।
अभ्यर्च्य विधिवद्भक्त्या पश्चाद्यात्रां समाचरेत् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—अपने घरमें नित्यकर्म समानपूर्वक पितरोंकी पूजा अर्थात् नान्दीमुख श्राद्ध सम्पन्न करके भक्तियुक्त हो फिर यथाविधि यात्रा करे ॥ १ ॥

उत्तरस्यां गते शुक्रे सानुकूले शुभे ग्रहे ।
गुरुपित्रोरनुज्ञाप्य ब्राह्मणानां विशेषतः ।
भोजयित्वा द्विजान्सप्त ततो यात्रां समाचरेत् ॥२॥

शुक्रके उत्तरमें अवस्थित होनेपर और सब शुभग्रहोंके सानुकूल होनेपर गुरु और पिता मातादिकी तथा विशेषतः ब्राह्मणोंकी अनुमति ग्रहणपूर्वक सात ब्राह्मणोंको भोजन कराकर फिर यात्रा करनी चाहिये ॥ २ ॥

सिंहे धनुषि मेषे च लग्ने सत्पूर्वपीठके ।
तुलायां कुम्भमीने च न गच्छेत्पश्चिमं बुधः ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् पुरुष सिंह धनु और मेष राशिमें पूर्वकी और तुला मिथुन और कुम्भ रासिमें पश्चिमकी ओर ॥ ३ ॥

वृषेऽङ्गनायां मकरे न गच्छेद्दक्षिणालयम् ।
कर्कटे कीटमीने च न गच्छेदुत्तरं सुधीः ॥ ४ ॥

वृष कन्या और मकरमें दक्षिणकी ओर कर्क वृश्चिक और मीनमें उत्तरकी ओर गमन न करै ॥ ४ ॥

चापे गव्यङ्गनायां च न गच्छेद्वह्निकोणकम् ।
मकरे कर्कटे मीने नैर्ऋत्यां परिवर्ज्जयेत् ॥ ५ ॥
वायव्यां कुम्भमेषे च चापे चैव विवर्जयेत् ।
सिंहे मीने कर्कटे च ह्यैशान्यान्तु न चिन्तयेत् ॥६॥

सुधी मनुष्य धनुः वृष और कन्यामें, अग्निकोणकी ओर मकर कर्क और मीनमें, नैर्ऋत कोणकी ओर कुम्भ मेष और धनु राशिमें वायुकोणकी ओर तथा सिंह मीन और कर्कमें ईशान कोणकी ओर गमन न करे ॥ ५ ॥ ६ ॥

एतत्स्थूलं विजानीयाद्योगिनीं शृणु शंकरि ।
न गच्छेन्मन्दवारे च पूर्वदेशं मम प्रिये ॥ ७ ॥

यह सब स्थूलरूपसे जानना हे शङ्करि ! योगिनीको सुनो हे प्रिये ! मन्दवार अर्थात् शनैश्चरके दिन पूर्वदेश ॥ ७ ॥

पश्चिमे सवितुर्वारे दक्षिणां बुधवासरे ।
कुजवारे चोत्तराश्च बुध वापि दिशं त्यजेत् ॥ ८ ॥

रविवारको पश्चिम देश, बुधवारको दक्षिण देश और मंगलवारको उत्तर देशमें गमन न करै ॥ ८ ॥

जीववारे तु नैर्ऋत्यां वायव्यां भृगुवासरे ।
शनिवारे तथैशान्यां सोमे चैव विशेषतः ॥ ९ ॥

बृहस्पतिवारको नैर्ऋत्य कोणमें, शुक्रवारको वायु कोणमें, सनिवारको और विशेषतः सोमवारको ईशान कोणमें न जाय ॥ ९ ॥

पूर्वदेशं महेशानि प्रतिपन्नवमी ह्यसत् ।
तत्र यात्रा न कर्त्तव्या योगिनी सम्मुखा यतः ॥ १० ॥

हे महेशानि ! यात्री लोग पडवा और नवमीको पूर्व दिशामें यात्रा न करै क्योंकि इनमें सन्मुख योगिनी होती है ॥ १० ॥

चतुर्दश्यान्तथा षष्ठ्यां पश्चिमन्तु विवर्जयेत् ।
त्रयोदशीं च पञ्चम्यां न गच्छेद्दक्षिणां दिशम् ॥११॥

चौदश और छठमें पश्चिम दिशा तेरस और पञ्चमीमें दक्षिण दिशा ११

दशम्यां च द्वितीयायां वर्जयेद्राक्षसीन्दिशम् ।
पूर्णिमा सप्तमी चैव वायव्यां सर्वथा त्यजेत् ॥ १२ ॥

द्वितीया और दशमीमें नैर्ऋत दिक् पूर्णिमा और सप्तमीमें वायव्य दिक् ॥ १२ ॥

न गच्छेच्चैव त्वैशानीममावस्याष्टमीदिने ।
विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मन्प्रतिपत्सु विवर्जितः ॥१३॥

और अमावस्या तथा अष्टमीमें ईशान दिक् परित्याग करै । पडवामें विष्कम्भ प्रीति और आयुष्मान् योग वर्जन करै ॥ १३ ॥

सौभाग्यं शोभनश्चैव द्वितीयास्वतिगण्डकम् ।
सुकर्मा वैधृतिश्चैव तृतीयायां विवर्जितः ॥ १४ ॥

द्वितीयामें सौभाग्य शोभन और अतिगण्डक वर्जनीय है तृतीयामें सुकर्मा वैधृति ॥ १४ ॥

गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातश्च तथैव च ।
चतुर्थ्यां वर्ज्जयेद्देवि पञ्चम्यां हर्षणन्तथा ॥ १५ ॥

चतुर्थीमें गण्ड, वृद्ध ध्रुव और व्याघात पंचमीमें हर्षण ॥ १५ ॥

वज्रः सिद्धिर्व्यतीपातौ षष्ठ्यां जानीहि शंकरि ।
वरीयान्परिघश्चैव सप्तम्यां परिवर्जयेत् ॥ १६ ॥

षष्ठीमें वज्र सिद्धि और व्यतीपात, सप्तमीमें वरीयान् और परिघ योग वर्जन करै ॥ १६ ॥

शिवः सिद्धिश्च साध्यश्च वर्ज्जयेदष्टमीतिथौ ।
नवम्यां शुभशुक्रौ च दशम्यां ब्राह्ममेव वा ॥ १७ ॥

अष्टमीमें शिव सिद्धि और साध्य नवमीमें शुभ शुक्र दशमीमें ब्रह्म १७

एकादश्यां तथैन्द्रन्तु द्वादश्यां वैधृतिं त्यजेत् ।
उत्तरात्रयं त्रयोदश्यां विशाखायां चतुर्द्दशीम् ॥ १८ ॥

एकादशीमें ऐन्द्र, द्वादशीमें वैधृति, त्रयोदशीमें उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा चतुर्दशीमें विशाखा ॥ १८ ॥

मघार्द्रा भरणीश्चैव पौर्णमास्यां विवर्जयेत् ।
पक्षतौ कृत्तिका निन्द्या द्वितीयायान्तु ज्येष्ठका ।
अयात्रिके च नक्षत्रे प्रस्थानं न कदाचन ॥ १९ ॥

पौर्णमासीमें मघा आर्द्रा और भरणीको त्याग दे । प्रतिपत्में कृत्तिका और द्वितीयामें ज्येष्ठा यह सब नक्षत्र यात्रा वा प्रस्थानमें कभी शुभ नहीं है ॥ १९ ॥

यात्रायान्तु न दुष्टस्य कारणस्य विचिन्तनम् ।
जन्ममासे जन्मदिने जन्मनक्षत्रके तथा ।
अष्टम्यां च नवम्याञ्च सदा यात्रां विवर्ज्जयेत् ॥२०॥

यात्राकालमें करणका विचार नहीं करना चाहिये । जन्ममास जन्मदिन और जन्मनक्षत्रमें अष्टमी और नवमीमें सदा यात्रादि वर्जित है ॥ २० ॥

आपत्काले च यात्रायां सदुषा पश्चिमे मता ।
गोधूलिसमयश्चैव पूर्वदेशे प्रशस्यते ॥ २१ ॥

आपत्कालमें पश्चिम ओरकी यात्रामें उषा काल श्रेष्ठ है और पूर्वकी यात्रामें गोधूलिसमय प्रशस्त (उत्तम) है ॥ २१ ॥

मध्याह्ने दक्षिणे चैव अपराह्ने तथोत्तरे।
ऐशान्याश्च तथा रात्रौ नैर्ऋत्यां सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥२२॥

मध्याह्नके समय दक्षिणमें अपराह्नकालमें उत्तर रात्रिकालमें ईशान कोन दोनों सन्ध्यामें नैर्ऋत कोन ॥ २२ ॥

मध्यन्दिने तथाग्नेये वायव्यां प्रातरेव हि।
वारुणादिषु योगेषु यथाकालं समाचरेत् ॥ २३ ॥

मध्य दिनमें अग्निकोण, प्रातः कालमें वायुकोण, और वारुणादि योगमें यथाकालमें यात्रा करे ॥ २३ ॥

विना जन्मदिनं तत्र ह्यष्टमीं नवमीं तथा।
प्राचीं दिशं समागच्छेद्यात्रां कुर्यादुदङ्मुखः ॥२४॥

इनमें जन्मदिन अष्टमी और नवमीके अतिरिक्त यात्रा करनी चाहिये उत्तरमुख होकर पूर्वदिशामें ॥ २४ ॥

पश्चिमे प्राङ्मुखः कुर्याद्दक्षिणे पश्चिमामुखः।
उत्तरे दक्षिणमुखो यात्रां कुर्यात्सुसिद्धये ॥ २५ ॥

पूर्वमुख होकर पश्चिम दिशामें पश्चिममुख होकर दक्षिणदिशामें दक्षिण-मुख होकर उत्तरदिशामें यात्रा करनेसे कार्य सिद्ध होता है अर्थात् जिस समय पश्चिमदिशाको गमन करनेकी इच्छा हो तब प्रथम सर्वाभिमुख हो कुछ दूर चले, फिर पश्चिमको यात्रा करे दक्षिणको यात्रा करनी हो तो प्रथम पश्चिमको चलकर फिर दक्षिणको जाय एवं उत्तरको जाना हो तो प्रथम दक्षिणको चलकर फिर उत्तरको चले तो कार्यसिद्धि होती है ॥२५॥

कुसुमं यावकः शंखो भेरीवाद्यश्च भूमिपः।
गवां शतं रथं यानं दक्षिणे शुभगाः स्मृताः ॥ २६ ॥
सिद्धान्नं मांसपिण्डश्च भक्तभाजनमद्भुतम्।
मत्स्यपिण्डं पराहाराः सर्वे ते दक्षिणे शुभाः ॥२७॥

यात्राके समय दक्षिणभागमें कुसुम (पुष्प) यावक (कुल्माष) शंख भेरीवाद्य (नगाडेका शब्द) राजा बहुतसी गायें रथ और यान तथा सिद्ध अन्न मांसपिण्ड, भातका पात्र अद्भुत वस्तु मत्स्यपिण्ड और उत्कृष्ट आहार दक्षिणभागमें शुभ हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

कन्या वै मिथुनं वेश्या पूर्णकुम्भाः स्त्रियस्तथा ।
चरन्तः पशवोन्ये च वामतः शुभकारकाः ॥ २८ ॥

वामभागमें कन्या दम्पत्ति (स्त्री पुरुष) वेश्या और पूर्णकुम्भ अर्थात् भरा हुआ घड़ा हाथमें लिये स्त्री और चरणशील पशु पक्षीगणोंको शुभकारक जानना चाहिये ॥ २८ ॥

अग्रे दधि फलं यात्रा शुभदं परिकीर्त्तितम् ।
यदि क्रौञ्चमयूराश्च युग्मशो यान्ति गच्छतः ।
तदा सिद्धिं विजानीयादन्यथा विघ्नमादिशेत् ॥ २९ ॥

अग्रभागमें दधि और फल शुभदायक है और गमनकालमें दोदा क्रौञ्च (पक्षिविशेष) और मोरके गमन करनेसे शुभको प्राप्त होता है, नहीं तो विघ्नाचरण करते हैं ॥ २९ ॥

गृध्रः श्येनाश्च चिल्लाश्च पार्श्वे गच्छन्ति वै यदा ।
न कुर्याद्यात्रिको यात्रां वायसे वनसंस्थिते ॥३०॥

यात्राके समय यदि पार्श्वदेशमें गृध्र, श्येन (बाज) और चील गमन करे, तो यात्रीको यात्रा नहीं करनी चाहिये । यदि कौवा वन-स्थित ॥ ३० ॥

च्युते निष्ठुरसम्भाषं गृहगोधारुतं तथा ।
क्रन्दनं कलहं श्रुत्वा न गच्छेत्तु कदाचन ॥ ३१ ॥

गिरे हुए वृक्षपर बैठकर निष्ठुर भाषण करे, तब और गृहगोधा अर्थात् घरकी छिपकलीका शब्द सुनकर गमन करना उचित नहीं है रुदन और कलह सुनकर भी कभी यात्रा न करे ॥३१॥

गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे शुक्रे चास्तमुपागते ।
देवतादर्शनं यात्रां प्रतिष्ठां चापि यत्नतः ॥ ३२ ॥
व्रतारम्भं तथोद्वाहं गृहप्रासादिकं तथा ॥ ३३ ॥
वापीकूपतडागानि यन्त्रस्यारम्भणं तथा ।
आरम्भो यज्ञवृक्षस्य चारामकरणं तथा ॥ ३४ ॥
देवव्रतवृषोत्सर्गं यज्ञस्यारम्भणं तथा ।
कर्णवेधश्च वृद्धिश्च स्त्रीणामानयनं त्यजेत् ॥ ३५ ॥

गुर्वादित्ययोगमें और सिंहराशिमें बृहस्पतिके प्राप्त होनेपर, शुक्रके अस्त होनेपर देवता दर्शन, यात्रा, और प्रतिष्ठा व्रतारंभ विवाह गृह और प्रासादादि वापी कूप तडागादिका खोदना, यन्त्रारंभ, यज्ञीय वृक्ष लगाना, आरामकरण, देवव्रत, वृषोत्सर्ग यज्ञारंभ, कानछेदन, वृद्धि श्राद्ध और स्त्रीको नहीं लावे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

सुराणां दर्शनं पूर्वं न कुर्वीत कदाचन ।
प्रागारम्भं व्रतानाश्च यात्रा सम्वत्सरात्परम् ॥ ३६ ॥

देवताका दर्शन भी इसमें कभी न करै । व्रतका प्रथमारंभ, यात्रा सम्वत्सरके पीछे ॥ ३६ ॥

व्यालव्रते महापुण्ये तथा नित्यव्रते च वै ।
न कालनियमस्तत्र तथा च रोहिणीव्रते ॥ ३७ ॥
शिवरात्रिव्रते चैव प्रयागस्य च मुण्डने ।
देशदाहे ग्रहाणाश्च त्वशुभं नैव चिन्तयेत् ॥ ३८ ॥

व्यालव्रत और नित्यव्रत करना चाहिये । इसमें कालनियम नहीं है और रोहिणीव्रत शिवरात्रिव्रत, प्रयागमें मस्तकमुण्डन और देशदाह इन सब विषयोंमें ग्रहादिके अशुभ होनेपर भी कर्मका आरंभ करै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

उज्जयिन्यामर्कशुद्धिर्मध्यदेशे विधोस्तथा ।
कुजशुद्धिर्जनस्थाने त्वरण्यान्यां बुधस्य च ॥ ३९ ॥

उज्जयिनीमें सूर्य शुद्धि, मध्यदेशमें चन्द्रशुद्धि जनस्थानमें कुज (मंगल) शुद्धि, अरण्यमें बुधशुद्धि ॥ ३९ ॥

गौडे चान्ध्रे गुरोः शुद्धिः कामरूपे भृगोः स्मृता ।
मथुरायामर्कजस्य राहोरङ्गे च वंगके ॥ ४० ॥

गौड और आन्ध्रदेशमें गुरुशुद्धि, कामरूपमें शुक्रशुद्धि, मथुरामें शनैश्चरशुद्धि अंग और वंगदेशमें राहुशुद्धि शुभकर होती है ॥ ४० ॥

धनुर्बाणं तथा तद्वदोड्रपीठे व्यवस्थितम् ।
जालन्धरे चतुर्हस्तमूर्म्मिके पूर्णहस्तकम् ॥ ४१ ॥

पंक्तिहस्तं कामरूपे सौमारे तारहस्तकम् ।
कोलपीठे तुर्य्यहस्तं चौहारे द्विगुणं भवेत् ॥ ४२ ॥

ओड्रपीठमें धनुर्बाण स्थित है, जालन्धरमें चार हस्त, ऊर्मिकमें पूर्णहस्त, कामरूपमें पंक्तिहस्त, सौमारमें तारहस्त, (तीनहस्त) कोलपीठमें तुर्यहस्त, (चार हस्त) और चौहारमें द्विगुण व्यवस्थित है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

महेन्द्रे वै कलाहस्तं श्रीहट्टे वह्निहस्तकम् ।
उपपीठे तु पाताले हस्तमेव हि विद्धि तत् ॥ ४३॥

रत्नपीठे तु षड्हस्तं लोहित्याश्चैव तूत्तरे ।
बलदेवाश्रमे चैव तथा कन्याश्रमेषु च ।
योगिनीमुखमासाद्य स्नानं ध्यानं गतिन्त्यजेत् ४४॥

महेन्द्रमें कलाहस्त, श्रीहट्टमें वह्निहस्तक, एवं उपपीठ और पातालमें एक हस्त जाने । रत्नपीठमें लोहितीके उत्तरमें बलदेवाश्रममें और

कन्याश्रममें छे हस्त अवस्थित हैं। योगिनीके मुखमें गमन, स्नान और ध्यान न करै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

यानेनार्द्धफलं विन्द्यात्तथा छत्रं च पादुके।
तीर्थयात्राफलं हन्ति व्यायामो मांसभक्षणम् ॥ ४५ ॥

यान (सवारी) द्वारा तीर्थमें जानेसे वा छत्री पादुका इत्यादिको लेकर तीर्थमें जानेसे आधा फल प्राप्त होता है। व्यायाम (कसरत) और मांसभक्षणसे तीर्थयात्राका फल नष्ट होजाता है ॥ ४५ ॥

तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेन तीर्थस्य च फलं भवेत्।
ज्ञानेन तु तदाप्नोति ज्ञानहीनस्य निष्फलम् ॥४६॥

अनुषङ्ग क्रमसे अर्थात् किसी और प्रयोजनसे कहीं जानेपर तीर्थकी प्राप्ति होजाय तो तीर्थका फल प्राप्त होता है, ज्ञानपूर्वक ऐसा होनेसे भी वही फल प्राप्त होता है और अज्ञानसे यदि दर्शन हो तो वह निष्फल होता है ॥ ४६ ॥

तीर्थे चाचमनं त्याज्यं पादप्रक्षालनन्तथा।
शौचमाचमनं चैव त्वन्यतीर्थप्रशंसनम् ॥ ४७ ॥

तीर्थमें आचमन और पैर धोना, शौच और दूसरे तीर्थकी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

अन्यतीर्थरतिं चैव सदा तीर्थेषु दूषणम्।
न मलं निर्वपेत्तीर्थे न केशं निर्वपेत्क्वचित् ॥ ४८ ॥

एक तीर्थमें जाकर दूसरे तीर्थमें प्रीति नहीं करनी चाहिये। तीर्थमें मलत्याग और बाल कतरने अनुचित है ॥ ४८ ॥

न तीर्थतीरे निवसेद्दक्षिणे तु विशेषतः।
दक्षिणे चैव तीर्थस्य न स्नायाद्धि कदाचन ॥ ४९ ॥

तीर्थके तटमें और तीर्थके दक्षिणमें निवास न करै। तथा तीर्थके दक्षिणमें स्नान कभी न करै ॥ ४९ ॥

तीर्थस्य चोत्तरे भागे चाष्टकोटिसहस्रशः ।
वसन्ति तत्र तीर्थानिपुण्यान्यायतनानि च ।
दक्षिणे कुण्डतीर्थस्य सरितो वामतः प्रिये ॥ ५० ॥

हे प्रिये ! तीर्थके उत्तरभागमें, कुण्डतीर्थके दक्षिणमें और नदीके वामभागमें आठ करोडसहस्र तीर्थ और पुण्यायतन अधिष्ठित हैं ॥ ५० ॥

तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेच्च कदाचन ।
येषु तीर्थेषु ये देवा ये च तत्र द्विजातयः ।
वन्दितव्याश्च पूज्याश्च तेषां वाक्येन पूतता ॥ ५१ ॥

तीर्थमें ब्राह्मणकी परीक्षा कभी न करै, जिस तीर्थमें जो जो देवता और ब्राह्मण वास करते हैं, वही वन्दनीय और पूजनीय हैं इन ब्राह्मणोंके वचनानुसार कर्म करनेसे पवित्र होता है ॥ ५१ ॥

न कालनियमः श्राद्धे मधु पिण्डे तु वर्जयेत् ।
तीर्थं गत्वा न दूरे तु वसेत्तीरे विचक्षणः ॥ ५२ ॥

श्राद्धमें कालनियम नहीं है, पिण्डमें मधु वर्जित है, तीर्थके दूर तटमें वास न करै ॥ ५२ ॥

ग्रहणे चैव तीर्थे च तथा च पितृवासरे ।
यज्ञारम्भे समाप्तौ च भूकम्पे तु विशेषतः ॥ ५३ ॥
ब्राह्मणे दानयोग्यत्वं श्राद्धयोग्यत्वमेव च ।
यद्दीयते चापरीक्ष्य निष्फलं परिकीर्त्तितम् ॥ ५४ ॥

तीर्थस्थलमें, ग्रहणमें, पितृवासरमें, यज्ञारंभमें, यज्ञसमाप्तिमें, विशेष कर भूमिकम्पमें यह ब्राह्मणगण श्राद्धादिदानमें योग्य हैं वा नहीं हैं, इस प्रकार परीक्षाके विना यदि महादान भी करे तो वह भी निष्फल होता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

नावाहनं न चार्घ्यं च न चाग्नौ हवनं तथा ।
पवित्रसेचनं नैव तथाक्षय्यावधारणम् ॥ ५५ ॥

तीर्थश्राद्धे न कुर्वीत वासःसूत्रप्रदापनम् ।
तत्र सप्तदशान्पिण्डान्पिण्डकालेषु निर्वपेत् ॥ ५६ ॥

आवाहन, अर्घ्यदान, अग्निमें हवन, पवित्रसेचन, अक्षय्यावधारण, वाससूत्रप्रदापन अर्थात् जो पिण्डके ऊपर त्रिगुणित सूत्र रखते हैं, वह तीर्थश्राद्धमें उचित नहीं है । तीर्थ श्राद्धके समय सत्रह पिण्ड देवें ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

श्राद्धं समाप्य पिण्डं हि न दद्याच्च कदाचन ।
मज्जनं प्रतिकुण्डे च प्रतितीर्थे च मज्जनम् ॥ ५७ ॥

दिवसे दश चाष्टौ च पञ्च सप्त त्रयं तथा ।
ततः कृत्वाभिषेकं च तीर्थं च प्रतिपूजयेत् ॥ ५८ ॥

श्राद्धसमापन करके फिर पिण्डप्रदान कभी न करे । प्रतितीर्थ और प्रतिकुण्डमें दश, आठ, पांच, सात वा तीनवार मज्जन करना चाहिये इसके पीछे अभिषेक करके तीर्थपूजा करै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

लोहित्ये चैव शोणे च गयायां विरजेषु च ।
कन्याश्रमेष्वगस्त्ये च पारियात्रे तथैव च ॥ ५९ ॥

मुकुराङ्गे तु चैकाम्रे मुण्डनञ्च विवर्जयेत् ।
पापराशिस्तु केशाग्रे प्रयत्नेन प्रतिष्ठितः ॥ ६० ॥

तस्माच्छिखां परित्यज्य कर्णमूले च स्थापयेत् ।
पक्षान्ते चैव मासान्ते षण्मासान्ते च वत्सरे ॥ ६१ ॥

अष्टावष्टौ समान्ते वा मुण्डनञ्च पुनश्चरेत् ॥ ६२ ॥

लोहित्यतीर्थमें, शोणमें, गयामें, विरजमें, कन्याश्रममें, अगस्त्यमें, पारियात्रमें, मुकुरांग और एकाम्रमें मुण्डन वर्जित है, पापराशि केशाग्रमें अवस्थान करती है, इसी कारण शिखा परित्यागकर कर्णमूलमें स्थापित करे। पक्षके अन्तमें, महीनेके अन्तमें, छः महीनेके अन्तमें वा वर्षके अन्तमें अथवा आठ आठ वर्षके अन्तमें पुनर्वार मुण्डन करे ॥ ५९–६२ ॥

ततः कुशमयं विप्रं कृत्वा तीर्थे निधाय च ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा बान्धवान्स्नापयेद्बुधः ॥ ६३ ॥

बुद्धिमान् कुशमय ब्राह्मण निर्माण करके तीर्थमें रक्षणपूर्वक उत्तराभिमुख हो बांधवोंको स्नान करावे ॥ ६३ ॥

कुशोतीति हि मन्त्रेण त्रिवारं स्नापयेत्कुशैः ।
तीर्थस्यास्य तुरीयाङ्गं फलं प्राप्स्यत्यसंशयम् ॥६४॥
गृहीत्वा तु द्विजक्रोडं नामोच्चारणमज्जने ।
कृत्वा तीर्थफलस्यार्द्धं ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ ६५ ॥

'कुशोतीति' इस मंत्रसे तीनवार कुशद्वारा स्नान करानेपर उस तीर्थ स्नानका तुरीयांग अर्थात् पादफल होगा, इसमें सन्देह नहीं। ब्राह्मणका अंगग्रहणपूर्वक नामोच्चारणसे मज्जन करनेपर ब्राह्मणका आधा फल होता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

वरं विक्रयणं मातुर्वरं विक्रयणं पितुः ।
न स्नापयेच्चासगोत्रं न तीर्थेषु प्रतिग्रहम् ॥ ६६ ॥

यद्यपि माता पिताका बेचनाभी अच्छा है तथापि असगोत्रको तीर्थस्नान न करावे और दान भी न ले ॥ ६६ ॥

सिद्धक्षेत्रेषु तीर्थेषु नाशीः कुर्य्यात्परस्य च ।
गयादितोऽन्यत्र भुवि तिलं गाश्च विशेषतः ॥ ६७ ॥

न गृह्णीयात्तु शूद्रस्य न तेन सह वा वसेत् ।
यस्य यज्ञस्य यत्पात्रं तस्य पापेन लिप्यते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परयज्ञं विवर्जयेत् ॥ ६८ ॥

सिद्धक्षेत्र और तीर्थमें पराया आशीर्वाद उचित नहीं है । एक स्थानमें यदि शूद्र हो, तो अन्यत्र गमन करे, तथापि शूद्रके तिल और गौ ग्रहण न करे, क्योंकि वह यज्ञमें ग्रहण करने योग्य नहीं है । जिस यज्ञका जो पात्र है, उसके ही होनेसे पाप स्पर्श नहीं होता अतएव सर्व प्रयत्नसे पराया यज्ञ वर्जित है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे कामरूपाधिकारे प्रथमतमे द्वितीयभागे भाषाटीकायां द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कामरूपं महापीठं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
सदा च संस्थितस्तत्र पार्वत्या सह शङ्करः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—कामरूप महापीठ गुह्यसे भी परमगुह्य है वहां महादेवजी पार्वतीके सहित नित्य वास करते हैं ॥ १ ॥

न चिरात्पूजितो देवस्तस्मिन्पीठे प्रसीदति ।
तत्तु पीठं प्रवक्ष्यामि श्रृणु तं साम्प्रतं प्रिये ॥ २ ॥

वह देवदेव इस पीठमें पूजित होकर शीघ्र प्रसन्न होते हैं । हे प्यारी ! अब उसी पीठका वर्णन करता हूं सुनो ॥ २ ॥

यात्राकाले शतनदी लिङ्गकोटिगुणावृता ।
वायुकूटस्य चरमं धनुर्हस्तप्रमाणतः ॥ ३ ॥

वायुकूटके अन्तभागमें एक धनुष और एक हाथके प्रमाणसे करोड लिंगसमावृत शतनदी संयुक्त बहती है ॥ ३ ॥

वायुरूपी स्थितस्तत्र तस्मान्निःसृत्य मारुतः ।
तं तु वायुं समभ्यर्च्य वायुलोकमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥
पूर्णवायुगिरेः शैलश्चन्द्रकूट इति स्मृतः ।
मध्यतश्चैव गोदन्तः क्रान्तो वै दक्षिणे शुभः ॥ ५ ॥

वहां वायु रूपवान् अवस्थित है, उससे वायु निकलती है, उस वायुकी अर्चना करनेसे वायुलोक प्राप्त होता है । वायुगिरिके पूर्वमें चन्द्रकूटशैल, मध्यमें गोदन्त, दक्षिणमें अश्वक्रान्त ॥ ४ ॥ ५ ॥

माधवश्चन्द्रकूटे तु गोदन्ते च जटाधरः ।
षण्मुखश्च जयन्तश्च ह्यश्वक्रान्ते जनार्दनः ॥ ६ ॥

चन्द्रकूटमें माधव, गोदन्तमें जटाधर, षण्मुख और जयन्त, अश्वक्रान्तमें जनार्दन अवस्थित हैं ॥ ६ ॥

तत्तद्बीजेन मन्त्रेण पूजयेन्मधुपायसैः ।
यो वसेद्वायुकूटे तु धनानामधिपो भवेत् ॥ ७ ॥
चन्द्रशैले निवासात्तु क्षयी भवति नान्यथा ।
पापी भवति गोदन्ते त्वश्वक्रान्ते तु मुक्तिमान् ॥ ८ ॥

उस उस बीजमन्त्र द्वारा मधु और खीरसे उनकी पूजा करें. जो वायु-कूटमें वास करता है वह धनाधिप होता हैं. चन्द्रकूटमें वास करनेसे क्षयी और गोदन्तमें पापी होता है. अश्वकान्तमें वास करनेसे मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

चन्द्रशैलस्य पूर्वे तु किंचिदाग्नेयगोचरे ।
लौहित्यमध्ये देवेशि धनुस्त्रिंशत्प्रमाणतः ॥ ९ ॥
इन्द्रशैल इति ख्यातस्तत्र वासे महाफलम् ॥ १० ॥

चन्द्र शैलसे कुछेक आग्नेयकोणविभागमें लोहित्य मध्य वाम भागमें तीस धनुःप्रमाण इन्द्रशैल है वहां जानेसे महाफल होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

" सुधीशवंशसम्भूत माधवप्रीतिदायक ॥ सुधीश्रवणआह्लादात्पार्थ हर नमोऽस्तु ते " यह उच्चारण कर भृगुप्राय सर्गयुक्त आदि पंक्ति संयुक्त है । उसके ऊर्ध्वमें भृगु और दण्डी तथा शक्ति सुरान्विता जानता है । फिर नादबिन्दुसंयुक्त सुभावित जानता है । अष्टाक्षर इस मंत्रको जपकर फिर अर्घ्यसमापन करै । मेष मीन और पौर्णमासीमें उपयुक्त परिमाणसे इस मंत्रको जपता हुआ स्नान करनेपर ब्रह्मत्व प्राप्त होता है कभी दुर्गति प्राप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

स्नानञ्च दिवसे कुर्यान्महापातकनाशनम् ।
इत्यनेन तु मन्त्रेण यः स्नायाच्चन्द्रपाथसि ॥ १८ ॥
अविच्छिन्ना स्थितिस्तस्य यावत्तिष्ठति मेदिनी ।
भवति श्रीचन्द्रभवने शनैर्याति परं पदम् ॥ १९ ॥

दिनमेंही स्नान करना चाहिये । दिनमें स्नान करनेसे महापातक नष्ट होते हैं. इस मंत्रसे जो मनुष्य चन्द्रतीर्थमें स्नान करता है, वह बीरमनुष्य जबतक पृथ्वी विद्यमान रहेगी तबतक अविच्छिन्नरूपसे अर्थात् निरन्तर परमस्थान चन्द्रभवनमें वास करेगा, इसमें संदेह नहीं और फिर क्रमसे मुक्तिकोभी प्राप्त करेगा ॥ १८ ॥ १९ ॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे चतुर्धनुःप्रमाणतः ।
मानसं नाम तत्तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २० ॥

उसकी दक्षिणदिशाके विभागमें चार धनुःप्रमाण सब पापोंका नाशकरनेवाला मानसतीर्थ है ॥ २० ॥

कार्तिके शुक्लपक्षे तु स्नानं तत्र समाचरेत् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति मन्त्रेण परमेश्वरी ॥ २१ ॥

हे परमेश्वरि ! कार्तिकके शुक्लपक्षमें वहां मंत्रद्वारा स्नान करनेसे विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

तस्मान्न संशयस्तीर्थं विष्णुतुष्टिप्रदायकम् ।
योगज्ञानाप्तये तुष्ट्यै चार्घ्यं दद्यात्सरित्पतेः ॥ २२ ॥

अतएव यह तीर्थ जो विष्णुका तुष्टिदायक है, इसमें सन्देह नहीं योग ज्ञान प्राप्तिके निमित्त सरित्पतिके संतोषार्थ अर्घ्य देवे ॥ २२ ॥

तस्य दक्षिणदिग्भागेऽष्टाविंशतिधनुर्मितम् ।
अयुताख्यं सरस्तत्र स्नात्वाच्युतपदं व्रजेत् ॥ २३ ॥

उसकी दक्षिण दिशाके विभागमें अट्ठाईस धनुःपरिमित अयुत नामक सरोवर है वहां स्नान करनेसे अच्युतपद (वैकुण्ठ) प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

वर्षासु चतुरो मासान् यस्तत्र स्नानमाचरेत् ।
स याति ब्रह्मसदनं मध्याह्ने यदि शङ्करि ॥ २४ ॥

हे शंकरि ! जो मनुष्य वर्षाकालमें चार महीने मध्याह्नसमय वहां स्नान करता है वह ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २४ ॥

स्नात्वा मन्त्रेण तत्पश्चादर्घ्यं दद्यात्तु साधकः ।
अमृताख्यमहापिण्डदानात्सिद्धिरवाप्यते ।
अमृतेधिवसन्त्सर्वं प्राणिनां किल्बिषापहम् ॥ २५ ॥

साधक मंत्र द्वारा स्नान करके फिर अर्घ्य देवे । इसके पीछे अमृताख्य पिण्डप्रदान करनेसे सिद्धिलाभ (और देवलोकमें पूजा प्राप्त होती है) अमृताख्यतीर्थमें वास करनेपर प्राणियोंके पापसे रक्षा होती है ॥ २५ ॥

तद्दक्षिणे दशधनुः ऋणमोचनकं सरः ।
गत्वा ऋणत्रयान्मुक्तो भवबन्धं न गच्छति ॥ २६ ॥

उसके दशधनुः दक्षिणमें ऋणमोचनक सरोवर है । वहां जानेसे मनुष्य पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण इन तीनों ऋणसे छूटकर संसार बंधनसे मुक्तिलाभ करते हैं ॥ २६ ॥

भाद्रे ललितसप्तम्यां तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।
माघे मासि चतुर्दश्यां स्नात्वा मुक्तिश्च विदन्ति॥२७॥

भादोंके महीनेकी ललित सप्तमीमें वहां स्नान करनेसे स्वर्गलाभ और माघके महीनेकी चौदशमें स्नान करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २७ ॥

ऋणग्रस्तनरान्सर्वान् विविधात्कर्मबन्धनात् ।
ऋणत्रयान्मोचयिता ऋणमोचनकं सरः ॥ २८ ॥

यह ऋणमोचनक सरोवर इस प्रकार सब ऋणग्रसित मनुष्योंके विविध कर्मबंधन और तीनों ऋणसे मुक्त करता है ॥ २८ ॥

दक्षिणे त्वश्वक्रान्तस्य किञ्चिदाग्नेयगोचरे ।
धनुरर्कप्रमाणेन चाश्वक्रान्ताह्वयं सरः ॥ २९ ॥

अश्वक्रान्तके दक्षिण कुछेक आग्नेयकोणकी दिशामें बारह धनुः प्रमाण अश्वक्रान्त नामक सरोवर है ॥ २९ ॥

नागलोकादुत्थितश्च कल्किरूपी जनार्दनः ।
स्नात्वा तत्रैव विरजे ह्यश्वं तीर्थं चकार ह ॥ ३० ॥

कल्किरूपी जनार्दन भगवान्ने नागलोकसे प्रादुर्भूत होकर उस विरजमें स्नान करके अश्वतीर्थ किया था ॥ ३० ॥

मार्गस्योत्तरभागे तु तत्रार्घ्यं च समाहरेत् ।
गन्धतोयेन क्षीरेणमन्त्रेणानेन यत्नतः ॥ ३१ ॥

वहां मार्गके उत्तरमें अर्घ्य लाकर गंधतोय (जल) और दुग्धद्वारा इस मंत्रसे यत्नसहित पूजा करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणैः सेविते पुण्ये वाराणस्याः कलाधिके ।
सक्षीरश्च गृहाणार्घ्यं मुक्तिं तत्र भजाम्यहम् ॥ ३२ ॥
अश्वक्रमेण सम्भूत पापविच्युतिकारक ।
अयुतैकनिदानाय त्वश्वक्रान्ताय ते नमः ॥ ३३ ॥

सदाचारी ब्राह्मणोंके द्वारा सेवित काशीके उत्कृष्टस्थानमें तुम मेरे प्रदान किये हुए क्षीरसहित अर्घ्यको ग्रहणकर मुझे मुक्तिलाभ कराओ हे अश्वक्रमोत्पन्न ! हे पापविनाशिन् ! आप अश्वक्रान्त हैं और उपासकोंके अभीष्टसिध्यर्थ आप अनेक उपाय करते हैं अतएव आपके निमित्त प्रणाम करते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नात्वा यज्ञफलं लभेत् ।
अश्वमेधादिकं पुण्यं मौसलस्नानमात्रतः ॥ ३४ ॥

इस मन्त्र द्वारा स्नान करनेसे यज्ञका फल मिलता है, मौसलतीर्थमें स्नान मात्रसे अश्वमेधकी अपेक्षा अधिक लाभ होता है ॥ ३४ ॥

विधिवत्स्नानमात्रेण राजसूयफलं लभेत् ।
दानमक्षयतां याति पितॄणान्तर्पणं तथा ॥ ३५ ॥
विशाखस्थो यदा भानुः कृत्तिकासु च पूर्णिमा ।
स योगः पद्मको नाम ह्यश्वक्रान्ते सुदुर्लभः ॥ ३६ ॥
अश्वक्रान्तादेवतीर्थे ततः पैतामहे शुभे ।
स्नानं येऽत्र करिष्यन्ति तेषां लोका महोदयाः ॥ ३७ ॥

और विधिवत् स्नान करनेसे राजसूययज्ञका फल प्राप्त होता है और पितृतर्पण तथा स्नान करनेसे वह अक्षय होता है । सूर्यके विशाखा नक्षत्रमें स्थित होनेपर और कृत्तिकामें पूर्णिमाके मिलनेपर उसको पद्मकयोग कहते हैं, अश्वक्रांतमें इस योगका प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है । अश्वक्रान्तके अन्तर्गत देवतीर्थ है, फिर शुभदायक पैतामहतीर्थ है, जो इस तीर्थमें स्नान करता है, उसको महल्लोक प्राप्त होता है ॥ ३५–३७ ॥

न स्पृहा तेषु पुण्यस्य कृतस्यापकृतस्य च ।
करिष्यन्ति महेशानि सत्यमेतदुदाहृतम् ॥ ३८ ॥
तीर्थानां परमं तीर्थं लोकेऽषु त्रिषु विद्यते ।
कार्त्तिकी तु विशेषेण पुण्यपापहरा परा ॥ ३९ ॥

मन्त्रैर्दानैस्तपोभिश्च यत्कृत्यं जायते द्विजैः ।
युतस्तु स्नानमात्रेण शुभैरपि सुभावितैः ॥ ४० ॥
पातकात् सुविनिष्क्रान्ता महापातकिनः प्रिये ।
उपपातकसंसर्गाः स्वयं मुक्ता भवन्ति ते ॥ ४१ ॥

हे महेशानि ! (सज्जनगण कहते हैं कि, वहां पुण्यापुण्यकी स्पृहा नहीं करनी चाहिये । यह सब तीर्थ तीनों लोकमें परमोत्तम हैं, पुण्य पापोंका हरनेवाला कार्तिकी तीर्थ विशेष प्रकारसे श्रेष्ठ है, वहां मन्त्रदान और तपस्याद्वारा सुकृतिलाभ और स्नानमात्र मंगलकर पुण्यलाभ होता है, तथा उसका दर्शन करनेपर महापातकी पापोंसे रक्षा पाता है । हे प्रिये ! उपपातकी मनुष्यभी वहां जानेसे मुक्तिलाभ करते हैं ॥३८–४१॥

तत्रोपवासी यक्षस्य पुण्डरीकस्य यत्फलम् ।
तत्प्राप्नोति नरः क्षिप्रमनायासेन शङ्करि ॥ ४२ ॥

हे शंकरि ! उपवासी पुण्डरीक यक्षने जो फल प्राप्त किया था वहाँ उपवास करनेसे तत्काल मनुष्योंको सहजमें ही वह फल प्राप्त हो सकता है ॥ ४२ ॥

माघे स्नात्वा तिलान्यस्तु प्रयच्छति च सद्विजे ।
यथाशक्त्या च भक्त्या च स त्रिभोर्भुवने वसेत् ॥४३॥

जो मनुष्य वहां माघके महीनेमें स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणका भक्तिपूर्वक यथाशक्ति तिल दान करता है. वह ईश्वरके भवनमें निवास करता है ॥ ४३ ॥

तत्रोपवासं स्नानञ्च तद्वै गव्याशनन्तथा ।
यः करोति नरः सोऽपि मृते स्वर्गमवाप्नुयात् ॥४४॥

जो मनुष्य वहां स्नान उपवास और गौके घृत, दुग्ध, दधि इत्यादिका भोजन करता है, उसको भी मृत्युके पीछे स्वर्ग प्राप्त है ॥ ४४ ॥

वसन्ति तत्समीपस्था ये च तन्नरजातयः।
तेऽपि तस्यानुभावेन स्वर्गं यान्ति न संशयः॥ ४५॥

उसके समीप जो जो नरजाति वास करती है. उस तीर्थके प्रभावसे वह प्राणियोंको अगम्य पुण्यवानोंकी अभीप्सित स्वर्गभूमि प्राप्त करती है. इसमें संदेह नहीं ॥ ४५॥

ये यच्छन्ति द्विजेऽप्यर्थं पूजनं ब्रह्मशान्तितः।
ते मृतासनमारूढाः पद्मासनचतुर्भुजाः।
ब्रह्मणा सह सायुज्यं प्राप्नुवन्त्यपुनर्भवम्॥ ४६॥

जो मनुष्य ब्रह्मशान्तिमें ब्राह्मणोंको अर्थ (धन) दान करता है और वहां पूजा करता है, वह अन्तसमय पद्मासनमें आरोहणपूर्वक चतुर्भुज हो ब्रह्मके सहित सायुज्यको प्राप्त होता है, फिर उसको जन्म लेना नहीं पड़ता ॥ ४६॥

प्रायोपवेशं ये तत्र प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः।
ते हंसयानेन नरा दिवं यान्त्यकुतोभयाः॥ ४७॥

जो मनुष्य वहां प्रायोपवेशन अर्थात् अन्न, जल परित्याग करके व्रताचरण करता है, वह हंसके विमानमें चढकर सर्वत्र निर्भय हो स्वर्गमें जाता है ॥ ४७॥

नृत्यन्ति पितरस्तेषां तुष्टाश्चैव पितामहाः।
लभन्ते तर्पणात्तृप्तिं पितुर्दानात्त्रिविष्टपम्॥ ४८॥

उसके पितृपितामह संतुष्ट हो हर्षमें भरकर नृत्य करते हैं. वहां तर्पण करनेसे पितर संतुष्ट और दान करनेसे स्वर्गगामी होते हैं ॥ ४८॥

स्पृष्टास्तु पापिनस्तत्र मुच्यन्ते भवबन्धनात्।
ब्रह्मणोऽनुचरो भूयात्तत्र दानान्न संशयः॥ ४९॥

पापीगण उस स्थानका स्पर्श करनेपर संसार बंधनसे छूट जाते हैं वहां दान करनेसे सदा ब्रह्माका अनुचर होता है इसमें संदेह नहीं ॥४९॥

अश्वक्रान्तमनुप्राप्य न स्नाने न मनोऽमलम् ।
भुंक्ते वा यदि वाऽभुंक्ते दिवा वा यदि वा निशि॥५०॥
तत्तीर्थं सर्वतीर्थानां स एव प्रवरो मतः ।
पापघ्नं पुण्यजननं प्राणिनां परिकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

दिनमें वा रात्रिमें, भोजन किये वा विना भोजन किये अश्वक्रान्तमें स्नान करनेसे मन निर्मल होता है. सुतरां ज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षलाभ करता है वह तीर्थ सब तीर्थोंकी अपेक्षा पापनाशक पुण्यजनक और श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

ये पुनर्भावितात्मानस्तत्र स्नात्वा जनार्दनम् ।
पूजयन्ति यथाशक्ति ते प्रयान्ति त्रिविष्टपम् ॥ ५२ ॥

जो मनुष्य संयत होकर वहां स्नान करनेके पीछे जनार्दनकी पूजा करते हैं, वह स्वर्गको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रो नित्यं सन्निहितास्त्रयः ।
अवतीर्थे महेशानि नान्यत्पुण्यतमं भुवि ॥ ५३ ॥

और ब्रह्मा विष्णु तथा रुद्र सदाही उसके समीप रहते हैं, हे महेशानी ! अश्वतीर्थकी अपेक्षा पुण्यतम तीर्थ पृथ्वीमें दूसरा नहीं है ॥ ५३ ॥

विरजन्त्वमलं तोयं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
ब्रह्मलोकस्ययत्स्थानं धन्याः पश्यन्तितीर्थकम् ॥५४॥

विरज नामक निर्मल जलयुक्त तीर्थ तीनों लोकमें विख्यात है वहां जानेसे ब्रह्मलोकको सब स्थानोंके दर्शन करनेका फल प्राप्त होता है ॥५४॥

येतु वर्षशतं साग्नि अग्निहोत्रमुपासते ।
कार्त्तिकीं वा महेश्येकां तीर्थान्ते सममेव तत् ॥५५॥

एक सौ वर्ष साग्निक होकर अग्निहोत्रका अनुष्ठान करनेसे जो फल होता है, कार्तिकी पूर्णिमाको उस तीर्थमें वास करनेसे उसीके समान फल मिलता है ॥ ५५ ॥

सर्वयज्ञफलं तुल्यं सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
अन्येषाञ्चैव वेदानां समाप्तिस्तेन वै कृता ॥ ५६ ॥
अश्वक्रान्ते च यैर्गत्वा सन्ध्या च समुपासिता ।
सयत्नात हस्तदण्डेन चाश्वक्रान्तजनेन तु ॥ ५७ ॥
भृङ्गारेण करङ्केण मृन्मयेनापि शङ्करि ।
आनीय तज्जलं पुण्यं कृता सन्ध्या विचक्षणैः ॥५८॥
समाधिना समाधेया सप्राणायामपूर्विका ।
तस्यां कृतायां यत्पुण्यं तच्छृणुष्व वरानने ॥ ५९ ॥

और वह मनुष्य सर्वयज्ञका, सर्वतीर्थका और सब वेदोंके समाप्त करने का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं । जो मनुष्य अश्वक्रान्तमें जाकर सन्ध्योपासन करता है भृङ्गा (कांसी) करङ्क (कसकुट) वा मिट्टीक पात्र द्वारा अथवा कांबरमें वहांसे जल लाय समाधिद्वारा प्राणायामपूर्वक संध्योपासन करता है. हे वरानने । उसका फल सुनो ॥ ५६–५९॥

तेन द्वादशवर्षाणि भवेत्सन्ध्या सुवन्दिता ।
अश्वमेधफलं स्नाने पाने दशगुणं तथा ।
उपवासेऽप्यनंतश्च प्राप्नोति सुमहत्फलम् ॥ ६० ॥
तीर्थान्तरे गवां कोटिं विधिवद्यः प्रयच्छति ।
एकाहं यो वसेत्तीर्थे स सर्वं तत्फलं लभेत ॥ ६१ ॥

हे प्रिये ! उसके द्वारा बारहवर्षकी सन्ध्योपासनका फल प्राप्त होता है । स्नान और उसका जल पीनेसे दशगुणफलका लाभ और वहां उपवास करनेसे महा अनन्तफल प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अर्द्धपादप्रमाणेन यस्तु स्वर्णं प्रयच्छति ।
स्वर्णमानफलं तस्मै तस्माद्यामतः परम् ॥ ६२ ॥

वहां अर्द्धपादके सुवर्णदान करनेसे उसको पूर्णपाद स्वर्णदानका फल प्राप्त होता है ६२ ॥

चन्द्रशैलं गता धारा जाह्नवी सा प्रकीर्त्तिता ।
अश्वतीर्थस्पृशा धारा मज्जने तु विधीयते ॥ ६३ ॥

अश्वतीर्थकी जो धारा चन्द्रशैलका स्पर्श करती है, उसे गंगा जानना चाहिये और उसमें स्नान करनेसे भी गंगा स्नानका फल मिलता है ॥ ६३ ॥

चन्द्रशैलस्पृशा धारा सा विज्ञेया सरस्वति ॥ ६४ ॥

जो धारा चन्द्रशैलका स्पर्श करती है, उसको सरस्वती जानना चाहिये ॥ ६४ ॥

अश्वक्रांते संगमस्तु वर्षासु च प्रदृश्यते ।
प्रयान्तं तद्विजानीयात्कार्त्तिकेषु विशेषतः ॥ ६५ ॥

वर्षाकाल और विशेषकर कार्तिकमें अश्वक्रांतमें संगम दिखाई दे तो उसको प्रयान्त कहते हैं ॥ ६५ ॥

यस्तत्र मुण्डनं कुर्यात् प्रयागसदृशं फलम् ।
अद्यापि दृश्यते देवि गयाकुण्डे द्विधाकरम् ॥ ६६ ॥

जो मनुष्य वहां मुण्डन करता है, उसको प्रयागमें मुण्डन करानेके समान फल मिलता है । हे देवि ! अबतक गयाकुण्डमें द्विधारा दिखाई देती है ॥ ६६ ॥

इह लोके दरिद्रो यो भ्रष्टराज्योऽथवा पुनः ।
अवश्वक्रान्ते जले गत्वा मनुं वैष्णवकं जपेत् ।
कृत्वा पूजोपहारश्च देवानां पितृतर्पणम् ॥ ६७ ॥
कृत्वा पिण्डप्रदानन्तु सोऽचिराज्जन्मवर्जितः ।
एकचक्रो भवेद्राजा सत्यमेतन्न संशयः ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य इस लोकमें दरिद्र वा राज्यभ्रष्ट होते हैं वह अश्वक्रान्तजलमें गमनपूर्वक वैष्णवमंत्र जपकर पूजा, उपहार और देवतातर्पण,

पितृतर्पण और पिण्डदान करनेसे चक्रवर्ती राजा होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

इह जन्मनि सौभाग्यं धनं धान्यं वरस्त्रियः ।
भवन्ति विविधास्तस्य यैर्यात्रा कार्तिके कृता ॥६९॥

जो कार्तिकमें यात्रा करता है, उसको इस जन्ममें सौभाग्य, धन, धान्य और उत्तम स्त्री मिलती है ॥ ६९ ॥

इदं यात्राविधानं यः कुरुते कारयेत वा ।
शृणोति वा स पापैस्तु सर्वैरेव प्रमुच्यते ॥ ७० ॥

इस यात्राविधानमें जो कुछ कार्य किया जाय, वा कराया जाय, या सुना जाय तो सब प्रकारके पापोंसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ७० ॥

अगस्त्यागमनं येन कृतं यातीह मानवः ।
ब्रह्मक्रियाप्रलोभेन बहुवर्षशतेन च ।
यात्रां चैत्रीं तथा कुर्याद्देवसंस्कारमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य वहां अगस्त्य गमन यात्रा करता है, वह बहुतसे शतवर्ष ब्रह्मक्रियानुष्ठानके फलको प्राप्त होता है और उसी स्थानमें चैत्रमासकी यात्रा करनेसे देवसंस्कारको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

किमन्यत् बहुनोक्तेन न तदस्तीति भाविनि ।
प्राप्यं संप्राप्यते तेन भवं नायं हि पश्यति ॥ ७२ ॥
सर्वयज्ञफलैस्तुल्यं सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
सर्वेषाञ्चैव देवानां समष्टिस्तेन वै कृता ॥ ७३ ॥
ये गताश्चाश्वतीर्थे तु सकृत्स्नात्वा यथाविधि ।
पुत्रिण्या वै दुहित्रा वा वसुभिः सहिताः कुले ॥ ७४ ॥
शिखराणां प्रदातॄणां युवतीनां न संशयः ।
मोदते तत्तस्य तु वै सर्वाङ्गं परिपूरितम् ॥ ७५ ॥

हे भाविनी ! बहुत कहनेका क्या प्रयोजन है जो कुछ प्राप्य विषय है वह सबही प्राप्त होजाता है और पापका दर्शन तकभी नहीं होता, इसमें समस्त यज्ञफल, सर्वतीर्थफल और सब देवताओंके पूजनका फल मिल जाता है जो मनुष्य अश्वतीर्थमें जाकर विधिपूर्वक स्नान करता है, वह पुत्र कन्या और बहुत धनसे वर्द्धित होकर कुलमें वास करता है और वह दाताओंमें प्रवर होता है, तथा स्त्रियोंके सहित सर्वाङ्गमें परिपूरित होकर सुखसे वास करता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७२–७५ ॥

काशीवासं युगान्यष्टौ दिनैकं पुरुषोत्तमे ।
तदेव कोटिगुणितं विरजामुखदर्शने ।
तत्सदृशं गुणं विन्द्यादश्वतीर्थे क्षणे क्षणे ॥ ७६ ॥

आठ युग काशीवास और एक दिन पुरुषोत्तमवाससे जो फल होता है, विरजामुख दर्शन करनेपर उससे करोड गुण फल मिलता है अश्वतीर्थमें क्षण क्षण उसीके समान फल प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

एतस्य दर्शनकृतौ नृपसूयलाभः
स्नानं जले दशगुणं तव वाजपेयात् ।
गण्डूषमात्रमपिबेत्तु स चाश्वमेधः
सर्वक्रतोरधिकमप्यधिकं भवान्तः ॥ ७७ ॥

अश्वतीर्थका दर्शन करनेसे राजसूय यज्ञका फल वहां स्नान करनेपर बाजपेययज्ञसे दशगुण और गण्डूष (चिल्लू) मात्र पान करनेसे अश्वमेधका फल और सब यज्ञोंसे अधिक फल प्राप्त होकर संसार बंधनसे मुक्तिलाभ करता है ॥ ७७ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चतुर्विंशतिसाहस्रे
कामरूपाधिकारे प्रथमतमे द्वितीयभागे
भाषाटीकायां तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

यदि प्रसन्नो मे नाथ वराहीं यदि वाप्यहम् ।
तमेकं मे वद विभो कुत्र किन्नाम ते मतम् ॥ १ ॥
केषु केषु च होमेषु त्वां पश्यन्ति सदा द्विजाः ।
नाम्ना च कतमं स्थानं शोभते धरणीतले ॥ २ ॥

श्रीदेवी बोली—हे नाथ ! यदि मेरे ऊपर आप प्रसन्न हैं और मैं यदि आपकी वराहीं (वरदेने योग्य) और प्यारी हूं, तो हे विभो ! आपका कहां क्या नाम है ? सो कहिये ॥ १ ॥ किस किस स्थानमें ब्राह्मण आपका दर्शन करते हैं ? आप किस किस नामसे किस किस स्थानमें वास करके वहां धरणीतलकी शोभा संपन्न करते हैं यह कहकर मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पुष्करेऽहं सुरेशानो गयायां वै सुशर्म्मदः ।
कान्यकुब्जे वेदगर्भो भृगुकक्षे पितामहः ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैं पुष्करतीर्थमें सुरेशान, गयामें सुशर्मद. कान्यकुब्जमें वेदगर्भ, भृगुकच्छमें पितामह ॥ ३ ॥

कौबेर्यां सृष्टिकर्ता च नन्दिपुर्यां बृहस्पतिः ।
प्रभासे पद्मजन्मा च स्वर्णनद्यां सुरप्रियः ॥ ४ ॥

कौबेरीमें सृष्टिकर्ता, नन्दिपुरीमें बृहस्पति, प्रभासमें पद्मजन्मा, स्वर्ण नदीमें सुरप्रिय ॥ ४ ॥

द्वारावत्यान्तु वाग्देवो नाटके नाटकेश्वरः ।
नीलाचले च कामेशः पिङ्गलो हस्तिपर्वते ॥ ५ ॥

द्वारावतीमें वाग्देव, नाटकमें नाटकेश्वर, नीलाचलमें कामेश, हस्तिपर्वतमें पिङ्गल ॥ ५ ॥

कुशावर्त्ते तु विजयो जयन्तः पुष्पकराचले ।
भस्माचले भयानन्दश्चन्द्रकूटे च माधवः ॥ ६ ॥

कुशावर्त्तमें विजय, पुष्कराचलमें जयन्त, भस्माचलमें भयानन्द चन्द्रकूटमें माधव ॥ ६ ॥

अन्तर्गृहे पद्महस्तो मंगलायाञ्च त्र्यम्बकः ।
भद्रपीठे च दिव्येशो ह्यश्वक्रान्ते जनार्दनः ॥ ७ ॥

अन्तर्गृहमें पद्महस्त, मंगलामें त्र्यम्बक, भद्रपीठमें दिव्येश, अश्वक्रान्तमें जनार्दन ॥ ७ ॥

अहिच्छत्रे तुलानन्दः श्रीशैले तु जगत्प्रियः ।
कुशहस्ते पद्मपाणिर्मानशैले मुनीश्वरः ॥ ८ ॥

अहिच्छत्रमें तुलानन्द, श्रीशैलमें जगत्प्रिय, कुशहस्तमें पद्मपाणि, मानशैलमें मुनीश्वर ॥ ८ ॥

श्रीकण्ठे श्रीनिवासश्च श्रूयतां प्राणवल्लभे ।
कन्याश्रमे च रुद्रो वै मैनाके विश्वनादकः ॥ ९ ॥

श्रीकण्ठमें श्रीनिवास, कन्याश्रममें रुद्र, मैनाकमें विश्वनादक ॥ ९ ॥

एकाम्रे चैव नागेशो विरजायां महेश्वरः ।
मूलिकाख्ये तथा विष्णुर्महेन्द्रे भार्गवस्तथा ॥ १० ॥

एकाम्रमें नागेश, विरजामें, महेश्वर, मूलिकाख्यमें विष्णु, महेन्द्रमें भार्गव ॥ १० ॥

कौशिक्यान्तु तथा बोधिरयोध्यायान्तु भार्गवः ।
मणिकूटे हयग्रीवो वराहो बिन्दुपर्वते ॥ ११ ॥

कौशिकीमें बोधि, अयोध्यामें भार्गव, मणिकूटमें हयग्रीव, बिन्दुपर्वतमें वराह ॥ ११ ॥

जटाधरस्तु गोदन्ते गोमन्ते जांगलेश्वरः ।
परमेष्ठी ब्रह्मपुत्रे विश्वशैले तु गह्वरः ॥ १२ ॥

गोदन्तमें जटाधर, गोमन्तमें जांगलेश्वर, ब्रह्मपुत्रमें परमेष्ठी, विश्वशैलमें गह्वर ॥ १२ ॥

चित्रशैलेतु चित्रेशो देविकायाश्चतुर्भुजः ।
वृन्दावने पद्मपाणिः कुशहस्तस्तु नैमिषे ॥ १३ ॥

चित्रशैलमें चित्रेश, देविकामें चतुर्भुज, वृन्दावनमें पद्मपाणि, नैमिषमें कुशहस्त ॥ १३ ॥

मन्दरे च महाबोधिर्गोपीन्द्रो हनुपर्वते ।
भागीरथ्यां पद्मगर्भः काम्पिल्ले कनकप्रियः ॥ १४ ॥

मन्दरमें महाबोधि, हनुपर्वतमें गोपीन्द्र, भागीरथीमें पद्मगर्भ, काम्पिल्लमें कनकप्रिय ॥ १४ ॥

करणे चैव कामारिः कपोते हव्यवाहनः ।
वसिष्ठश्चार्बुदे चैव श्वेतनद्यां मनोभवः ॥ १५ ॥

करणमें कामारि, कपोतमें हव्यवाहन, अर्बुदमें वसिष्ठ, श्वेतनदीमें मनोभव ॥ १५ ॥

धवलायां पिनाकी च पिच्छिलायां त्रिविक्रमः ।
यज्ञगर्भस्तु आगस्ते उर्व्वश्यां मधुसूदनः ॥ १६ ॥

धवलामें पिनाकी, पिच्छिलामें त्रिविक्रम, आगस्त्यमें यज्ञगर्भ, उर्वशीमें मधुसूदन ॥ १६ ॥

रुक्मिणीशे हरिश्चैव पैतृकेतु रुचिस्तथा ।
गोमन्ते वामनश्चैव काश्यां विश्वेश्वराह्वयः ॥ १७ ॥

रुक्मिणीशमें हरि, पैतृकमें रुचि, गोमन्तमें वामन, काशीमें विश्वेश्वर ॥ १७ ॥

प्रजापतिः प्रयागे च विदर्भाया द्विजप्रियः ।
गंगाधरो भद्रपीठे मातंगे चैव त्र्यम्बकः ॥ १८ ॥

प्रयागमें प्रजापति, विदर्भामें द्विजप्रिय, भद्रपीठमें गंगाधर, मातंगमें त्र्यम्बक ॥ १८ ॥

त्रिपुरारिर्नन्दशैले पाण्डुशैले त्रिलोचनः ।
गंगाह्रदे त्रिलोकेशो भित्तिपुर्य्यां दिवाकरः ॥ १९ ॥

नन्दशैलमें त्रिपुरारि, पाण्डुशैलमें त्रिलोचना, गंगाह्रदमें त्रिलोकेश भित्ति-पुरीमें दिवाकर ॥ १९ ॥

वमटे मिंगिलानाथो दारुशृंगे कलानिधिः ।
महालिंगं दारुवने अशोके तु विनाशकः ॥ २० ॥

वमटमें मिंगिलानाथ, दारुशृंगमें कलानिधि , दारुवनमें महालिंग अशोकमें विनाशक ॥ २० ॥

हरिसेनश्चुल्लुकायां पर्णाटे तु ह्यनन्तकः ।
मार्कण्डेयो वटे चैव इक्षुद्वारे दिवाकरः ॥ २१ ॥

चुल्लुकामें हरिसेन, पर्णाटमें अनन्त, वटमें मार्कण्डेय, इक्षुद्वारमें दिवाकर ॥ २१ ॥

गोकर्णे च विकर्णाख्यो मन्दारे मधुसूदनः ।
अष्टोत्तरशतं स्थानं मया ते परिकीर्त्तितम् ॥ २२ ॥

गोकर्णमें विकर्ण और मन्दारमें मधुसूदन, यह मैंने तुमसे अष्टोत्तर शत अर्थात् एक सौ आठ स्थान कहे ॥ २२ ॥

यत्र वै मम सान्निध्यं नित्यं तु तव सुव्रते ।
एतेषामपि यस्त्वेकं पश्येद्वै भक्तिमान्नरः ।
स्थानं विरजसं लब्ध्वा मोदते शाश्वतीः समाः ॥२३॥

इन सब स्थानोंमें मेरी और तुम्हारी नित्य समीपता है । हे सुव्रते ! मनुष्य भक्तिमान् होकर यदि इनमेंसे एककाभी दर्शन करें अथवा एकमें भी स्नान करें तो वहां विरजभवनको प्राप्त होकर सदा सुखपूर्वक वास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥

मानसं वाचिकञ्चैव कायिकं यच्च दुष्कृतम् ।
तत्सर्वं वै समं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ २४ ॥

और मानसिक, वाचिक, तथा कायिक, जो कुछ दुष्कृत (पाप) हैं वह सभी प्रशमित होजाते हैं, इसमें विचारनेकी कोई बात नहीं है ॥२४॥

यानि तानि च सर्वाणि गत्वा मां चेक्षते नरः ।
मोक्षमार्गि भवति च यत्राहं तत्र संस्थितः ॥ २५ ॥

मनुष्य जिस जिस तीर्थमें जाकर मेरा दर्शन करे, मैं उसी उसी तीर्थमें स्थित रहकर उनको मोक्ष देता हूं ॥ २५ ॥

पुष्पोपहारैर्धूपैश्च ब्राह्मणानाञ्च तर्पणैः ।
ध्यानेन च स्थिरेणाशु प्राप्स्यते परमेश्वरि ॥ २६ ॥

हे परमेश्वरि ! पुष्प, बलि, उपहार, धूपदान और ब्राह्मणतृप्ति और अचलध्यान मुझको शीघ्र प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

अश्वक्रान्तस्योत्तरत ऋणमोचनपश्चिमे ।
द्वाविंशतिधनुर्मानं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥ २७ ॥
क्षेत्रं द्विपञ्चकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम् ।
पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलं लभेत् ॥ २८ ॥

अश्वक्रान्तके उत्तरमें और ऋणमोचनके पश्चिममें बाईस धनुपरिमित सर्व देवनमस्कृत द्विपञ्चक नामक एक :परमदुर्लभ क्षेत्र है. वहां रुद्रदेवकी पूजा करनेसे, ज्योतिष्टोमका फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

षण्मासान्नियताहारी ब्रह्मचर्यें समाहितः ।
उषित्वा तत्र देवेशि प्राप्यते परमं पदम् ॥ २९ ॥
कृते युगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषं मतम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रमश्वतीर्थं कलौ युगे ॥ ३० ॥

हे देवेशि ! वहां नियताहारसे ब्रह्मचर्य अवलम्बनपूर्वक छः महीने वास करनेपर परमपद प्राप्त होता है । सत्ययुगमें पुष्कर, त्रेतामें नैमिष, द्वापरमें कुरुक्षेत्र और कलियुगमें अश्वतीर्थको श्रेष्ठ जानना चाहिये ॥ २९-३० ॥

तस्मात्तदुत्तरे तीरे साधयेन्मानसेप्सितम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं तत्र दानेऽक्षयं फलम् ॥ ३१ ॥

अतएव उसके उत्तरतीरमें मनोभिलाभ साधन करै । द्वापरमें कुरुक्षेत्र-तीर्थ श्रेष्ठ है, वहां दान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

दुष्करं पञ्चके दानं पञ्चक सर्वदुष्करम् ।
यदन्यत्र कृतं पापं तीर्थे याति च लाघवात् ।
न तत्तीर्थे कृतेऽन्यत्र क्वचिदन्यो व्यपोहति ॥ ३२ ॥

पंचकतीर्थमें दान दुष्कर है, पंचकमें सभी दुष्कर जाने अन्यस्थानका किया हुआ पार तीर्थमें नष्ट होता है, किन्तु उसी तीर्थमें पाप करनेसे अन्यत्र कहीं भी नष्ट नहीं होता ॥ ३२ ॥

द्वादशाहं दशाहं वा मासार्द्धं दश चैव वा ।
रुद्रस्यार्द्धासनगता मेरुपृष्ठे यशस्विनी ।
महादेवं ततो देवि प्रणता परिपृच्छति ॥ ३३ ॥

अनन्तर यशस्विनी पार्वतीने दशाह, (दशदिन) द्वादशाह (बारह-दिन) मासार्द्ध इत्यादिरूपसे मेरुपृष्ठपर वास करते करते रुद्रके आसनार्द्धमें बैठ, प्रणत हो महादेवजीसे पूछा ॥ ३३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
कथं तत्क्षयमाप्नोति तन्ममाचक्ष्व शङ्कर ॥ ३४ ॥

देवीने कहा—सहस्रजन्मान्तरका पूर्वसंचित जो पाप है, वह किस प्रकार क्षयको प्राप्त होता है ? हे शंकर ! यह मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यमनुत्तमम् ।
सर्वतीर्थेषु विख्यातमश्वक्रान्तमतः परम् ॥ ३५ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवि ! परम गुह्यतम विषय कहताहूं, सुनो । देवाभिलषित अश्वक्रान्ततीर्थ सब तीर्थोंकी अपेक्षा विख्यात है ॥ ३५ ॥

यस्योत्तरे तु यत्क्षेत्रं मयोक्तमविमुक्तकम् ।
एतदेव परं ज्ञानमेतदेव परन्तपः ॥ ३६ ॥

इसके उत्तरमें जो क्षेत्र है, वह मैं तुमसे कहता हूं यह अश्वक्रान्तही परमज्ञान और यही परमतपस्या है ॥ ३६ ॥

एतदेव परं ब्रह्म चैतदेव पर पदम् ।
यथा नारायणः श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तमः ।
यथेश्वराणां गिरिशः स्नानानामेतदुत्तमम् ॥ ३७ ॥

यही परब्रह्म और यही परमपद है । जिस प्रकार देवताओंमें पुरुषोत्तम नारायण श्रेष्ठ हैं और ईश्वरोंमें गिरीश श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सब स्थानोंमें यह अश्वक्रान्तही श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥

दत्तं जप्तं हुतं शेषं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ।
ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ३८ ॥

वहां दान, जप, होम, तप, ध्यान, अध्ययन, ज्ञानादि जो कुछ किया जाता है, वह सर्वदा अक्षय होता है ॥ ३८ ॥

अश्वक्रान्ते परो योगो ह्यश्वक्रान्ते परा गतिः ।
अश्वक्रान्ते परो मोक्षस्तीर्थं नैवास्ति तादृशम् ॥३९॥

अश्वक्रान्तमें परमयोग, अश्वक्रान्तमें परमगति और अश्वक्रान्तमें परममोक्ष प्राप्त होती है, अतएव इसके समान अन्यतीर्थ नहीं है ॥ ३९ ॥

मेरुमन्दरतुल्योऽपि राशिः पापस्य सर्वशः ।
अश्वक्रान्तं समासाद्य सर्वो व्रजति संक्षयम् ॥ ४० ॥

अश्वक्रान्तमें जानेसे मेरुमन्दराचलके समान समस्त पापराशि क्षयको प्राप्त होती हैं ॥ ४० ॥

अश्वक्रान्तस्थिताः स्पृष्टाः पांसुभिर्वायुनेरितैः ।
यदि दुष्कृतकर्माणो यास्यन्ति परमां गतिम् ॥ ४१ ॥

मनुष्य यदि परमपातकी भी हो, तथापि अश्वक्रान्तमें वायुसे उड़ी धूलि द्वारा स्पृष्ट होकरभी परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

न सा गतिः कुरुक्षेत्रे गयाद्वारे च पुष्करे ।
या गतिर्विहिता पुंसां ह्यश्वक्रान्तनिवासिनाम् ॥४२॥

अश्वक्रान्तनिवासी जैसी गतिको प्राप्त होते हैं, कुरुक्षेत्र, गयाद्वार और पुष्करतीर्थमें भी वैसी गति प्राप्त नहीं होती ॥ ४२ ॥

न दानेन तपोभिर्न यज्ञैर्नापि च विद्यया ।
प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा चाश्वतीर्थे स लभ्यते ॥ ४३ ॥

अश्वतीर्थसे जिस प्रकार श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है, दान, तपस्या, यज्ञ और विद्यासे भी वैसी गति प्राप्त नहीं होती ॥ ४३ ॥

संसर्गाच्च भवेन्मोक्ष इतरासत्परिग्रहात् ।
अगस्त्यादपि चाग्न्यादि चेदमेव महत्तरम् ॥४४॥

अश्वतीर्थके संसर्गसे मोक्षलाभ और सत्परिग्रहसे पवित्रगति प्राप्त होती है । अगस्त्यादितीर्थसे भी यह तीर्थ महत्तर है ॥ ४४ ॥

ब्रह्महा चापि यो गच्छेदश्वक्रान्तं कदाचन।
अश्वक्षेत्रस्य माहात्म्यात्तस्य हत्या निवर्त्तते।
न तस्य पुनरावृत्तिः कदाचिदपि दृश्यते॥ ४५॥

ब्रह्मघाती मनुष्यभी यदि अश्वक्रान्तमें जाया करे, तो वह उस माहात्म्यके बलसे ब्रह्महत्याके पापसे छुटकारा पानेमें समर्थ होता है और फिर उसको कभी जन्मग्रहण करना नहीं पड़ता॥ ४५॥

उत्तरं दक्षिणं वापि अन्यद्वारं विचिन्तयेत्॥ ४६॥
सर्वोऽप्यस्य शुभः कालश्चाश्वक्रान्ते वरानने।
महादानेन तल्लाभो यत्फलं लभते नरः॥ ४७॥

हे वरानने! उत्तर वा दक्षिण अथवा अन्य जो कोई द्वार या जिस किसी कालमें अश्वक्रान्ततीर्थ शुभकर है अन्यतीर्थमें मनुष्य महादानद्वारा जो फल लाभ करते हैं॥ ४६॥ ४७॥

अश्वतीर्थे तु काकिण्यां दत्तायां लभतेऽक्षयम्।
एकाहमुपवासं यः करोतीह मम प्रिये।
फलं वर्षसहस्रस्य लभते मत्परायणः॥ ४८॥

इस अश्वतीर्थमें एक कौडीमात्र दानकरके उसी प्रकार अक्षय फल लाभ करसकता है। हेप्रिये! मत्परायण मनुष्य इस स्थानमें केवल एक दिन उपवास करनेपर सहस्रवर्षके उपवासका फल प्राप्त करता है॥४८॥

तीर्थान्तरे गवां कोटिं विधिवद्यः प्रयच्छति।
एकाहश्च वसेच्चात्र तयोस्तुल्यं फलं भवेत्॥ ४९॥

तीर्थान्तरमें विधिपूर्वक करोड गोदान करनेसे जो फल होता है, अश्वक्रान्तमें एक दिन उपवास करनेसे वही फल प्राप्त होसकता है॥४९॥

प्रयागे माघमासे तु सम्यक् स्नानेन यत्फलम्।
तत्फलं कोटिगुणितमश्वतीर्थे क्षणे क्षणे॥ ५०॥

और प्रयागमें माघमासमें सम्यक्प्रकार स्नान करनेसे जो फल मिलता है, अश्वतीर्थमें क्षण क्षण उससे करोड करोड गुण फल प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ।
सेवनाच्चैव मध्याह्ने अपराह्णे तु शङ्करि ॥ ५१ ॥

हे शंकरि ! मध्याह्न अपराह्णकालमें अश्वतीर्थकी सेवा करनेसे तीर्थान्तर सेवनसे साठ करोड सहस्र और साठ करोड शतगुण फल प्राप्त होजाता है ॥ ५१ ॥

मेरुमन्दरतुल्यो हि राशिः पापस्य सर्वशः ।
अश्वक्रान्तं समासाद्य सर्वो व्रजति संक्षयम् ॥ ५२ ॥

अश्वक्रान्ततीर्थकी सेवासे मन्दराचलकी समानभी सब पापराशि क्षय हो जाती हैं ॥ ५२ ॥

कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा
जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ।
मण्डूकमत्स्याः क्रमशोऽश्वक्रान्ते
त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति ॥ ५३ ॥

कीट, पतंग, मशक, वृक्ष और मत्स्य, मण्डूकादि जो जो जीव वहां जलमें वा स्थलमें विचरते हैं, वह अश्वतीर्थमें देह त्यागकर शिवत्वको प्राप्त होते हैं अर्थात् शिव होजाते हैं ॥ ५३ ॥

यो वसेत्पञ्चके नित्यं स गच्छेत्परमां गतिम् ॥५४॥

जो मनुष्य पंचकतीर्थमें नित्य वास करता है वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

सर्वेषामेव लोकानां ब्रह्मलोकस्य चोपरि ।
यदीच्छेत्तत्पदं गन्तुं स वसेदत्र दुष्करम् ॥ ५५ ॥

सब लोकोंके ऊपरी भागमें ब्रह्मलोक अवस्थित पंचकनिवासी मनुष्य अभिलाषा करनेपर उसी ब्रह्मपदको प्राप्त होसकते हैं ॥ ५५ ॥

यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु मधुसूदनः।
तथैव सर्वक्षेत्राणामादिः पञ्चकमुच्यते ॥ ५६ ॥

जैसे मधुसूदन सब देवताओंके आदि हैं, ऐसेही पञ्चकतीर्थ सब क्षेत्रोंमें आदि कहा गया है ॥ ५६ ॥

अनुलोमविलोमाभ्यां तथा व्यस्तसमस्तयोः।
स्नातव्यं पञ्चकं यच्च अश्वतीर्थं वरानने ॥ ५७ ॥

हे वरानने ! पंचकतीर्थ और अश्वतीर्थमें अनुलोम विलोमके क्रमसे अर्थात् एकसे अपर और अपरसे प्रथम इस प्रकार और व्यस्त समस्त क्रमसे स्नान करना चाहिये ॥ ५७ ॥

तथैवोत्तरमारण्यं तदेव फलमश्नुते।
विधिवद्गम्यमानेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
पञ्चकालोकनादेव नरः प्राप्नोति तत्फलम् ॥ ५८ ॥

वह उत्तरारण्य गवन करके उसीके तुल्य फलको प्राप्त होते हैं। विधिपूर्वक जाननेसे समस्त तीर्थोंका जो फल है, एक पंचकतीर्थके दर्शनमात्र सेही मनुष्य वह फल प्राप्त कर सकते हैं ॥ ५८ ॥

दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीतले।
सान्निध्यमश्वतीर्थस्य मुक्तिद्वारसमीपतः ॥ ५९ ॥

पृथ्वीतलमें दश करोड सहस्र तीर्थ स्थान हैं, अश्वकान्ततीर्थमें मुक्तिद्वारके समीप उन सबका सान्निध्य है ॥ ५९ ॥

यावत्तिष्ठन्ति गिरयो यावत्तिष्ठन्ति सागराः।
तावत् पञ्चकमृत्यूनां ब्रह्मलोके स्थितिर्मता ॥ ६० ॥

जबतक सब पर्वत और समुद्र अवस्थित है, तबतक पञ्चकमें मरे मनुष्यको ब्रह्मलोक लाभ होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६० ॥

जन्मान्तरसहस्रैश्च आजन्म मरणान्तिकम् ।
निर्दहेत् पातकं सर्वं सकृत् स्नात्वा तु शङ्करि ॥६१॥

हे शंकरि ! पंचकतीर्थमें एकवार स्नान करनेसे सहस्र जन्मान्तर और जन्मसे मरणतक जो पाप संचित हुए हैं, वह सब भस्म हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

योगाभ्यासेन यस्तिष्ठेत्सम्यग्वर्षत्रयं नरः ।
एकेन जन्मना मुक्तियोगं मोक्षञ्च विन्दति ॥ ६२ ॥

जो मनुष्य पंचकतीर्थमें तीन वर्ष योगाभ्यासकरके अवस्थान करता है, उसको योगाभ्यासके कारण एक जन्ममें ही मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥

ऋणमुक्त्यै तु देवेशि समन्तात्पञ्चकं स्मृतम् ।
ब्रह्मणः सदनं भद्रे प्रसह्यमपि सर्वतः ॥ ६३ ॥

हे देवेशि ! ऋणमोचनकतीर्थके चारों ओर पंचकतीर्थ अवस्थित है और उसके सब ओरही ब्रह्मसदन है ॥ ६३ ॥

यत्र स्नानं जपो होम श्राद्धं दानादिकं स्मृतम् ।
एकैकशो महेशानि पुनाति सकलं कुलम् ॥ ६४ ॥

यहां स्नान, जप होम , श्राद्ध और दानादि करनेसे वह एक एकही सब कुलके उद्धार करता है ॥ ६४ ॥

अश्वतीर्थे समक्षे तत्किञ्चित्पश्चिमगोचरे ।
धनुरष्टप्रमाणेन सिद्धकुण्डमिहोच्यते ॥ ६५ ॥
अत्र स्नात्वोदकं पीत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ।
त्रिरात्रोपोषितेनात्र एकरात्रोषितेन वा ।
द्विजातीनान्तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम् ॥ ६६ ॥

अश्वतीर्थके समीप कुछेक पश्चिमदिशामें आठ धनुःप्रमाण सिद्धकुण्ड है, वहां स्नान और जलपान करनेपर सब प्रकारके पातकोंसे छुटकारा

मिलता है । द्विजगण तीनरात वा एकरात उपवास करके इन सब तीर्थोंकी सेवा करैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

यस्य वायुर्वशी भद्रे हस्तपादौ च संयतौ ।
अनुलेप्य ब्रह्मचारी तीर्थानां फलमाप्नुयात् ॥ ६७ ॥

हे भद्रे ! जिसका प्राणपवन वशीभूत है और जिसके हाथ पैर संयत तथा जो मनुष्य अनुलेप्य अर्थात् तिलकादिधारी और ब्रह्मचारी है वही मनुष्य तीर्थका फल प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ६७ ॥

सिद्धकुण्डं महाभोगं देवताभिः सुसंस्कृतम् ।
पुनीहि सर्वपापेभ्यस्तीर्थवर्य नमोस्तु ते ॥ ६८ ॥

"सिद्धकुण्डं महाभोगं देवताभिः सुसंस्कृतम् । पुनीहि सर्वपापेभ्यस्तीर्थवर्य नमोऽस्तु ते" ॥ ६८ ॥

इत्यनेन तु मन्त्रेण वैशाखे कृष्णपक्षके ।
त्रयोदश्यां स्नानमात्रात्पुनात्युभयतः कुलम् ॥ ६९ ॥

इस मंत्रसे वैशाखमासकी कृष्णपक्षीय त्रयोदशीमें केवल स्नानमात्र करनेसेही दोनों कुल पवित्र करता है ॥ ६९ ॥

पश्चिमे तस्य तीर्थस्य किञ्चिद्वायव्यगोचरे ।
चतुःषष्टिधनुर्मानं तीर्थं ब्रह्मसरः स्मृतम् ॥ ७० ॥

कुछेक वायुकोणको उस तीर्थके पश्चिममें चतुःषष्टि अर्थात् चौंसठ धनुपरिमाण ब्रह्मसरोवर है ॥ ७० ॥

तत्र स्नात्वा पितॄन्भक्त्या तर्पयित्वा यथाविधि ।
पापकर्तॄनपि पितॄन्तारयेन्नात्र संशयः ॥ ७१ ॥

वहां स्नान करने और भक्तिपूर्वक यथाविधि पितरोंका तर्पण करनेसे पापकारी पितरोंको भी सद्गति प्राप्त होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥७१॥

स्नात्वा याति द्विजः सम्यक्ततः संस्कारतां व्रजेत् ।
स्वयं तु ब्रह्मणा (घृष्टं--दृष्टं) घट्टमीश्वरप्रियकाम्यया ७२

स्वयं तु ब्रह्मणा स्नातं तस्मात्पावनकारकम् ।
इत्यनेन तु मंत्रेण स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ ७३ ॥

माघे मासि चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे विशेषतः ।
दत्त्वा दानञ्च विधिवद्ब्रह्मलोके महीयते ॥ ७४ ॥

" स्नात्वा याति द्विजः सम्यक् ततः संस्कारतां व्रजेत् । स्वयन्तु ब्रह्मणा घट्टमीश्वरः प्रियकाम्यया । स्वयन्तु ब्रह्मणा स्नातं तस्मात्पावनकारकम् " इस मंत्रसे यथाविधि स्नान करनेपर विशेषतः माघमासके शुक्लपक्षमें चतुर्दशीमें विधिपूर्वक दान करनेसे ब्रह्मलोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

इन्द्रकूटस्य कौबेर अशीतिधनुर्मानतः ।
रामक्षेत्रं विजानीयात्तस्य कुण्डं कुले प्रिये ॥ ७५ ॥
बिल्वकुन्दप्रमाणन्तु स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄनपि ।
तीर्थेभ्यः परमं तीर्थं रामतीर्थं वरानने ॥ ७६ ॥

इन्द्रकूटके उत्तरमें अस्सी धनुःप्रमाण राम क्षेत्र है. उसके तटमें बिल्वकुन्दप्रमाण वह कुण्ड अवस्थित है, उसमें स्नान और पूजा करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है, हे वरानने ! रामतीर्थ तीर्थोंमें परमोत्तम है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

ब्राह्मणानर्च्चयित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ॥ ७७ ॥

वहां ब्राह्मणकी अर्चना करनेसे ब्रह्मलोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥

तस्य तीरे महाभागे श्रीरामेण महात्मना ।
पितरस्तर्पिताः सर्वे तीर्थवर्य नमोऽस्तु ते ॥ ७८ ॥

"तस्य तीरे महाभागे श्रीरामेण महात्मना । पितरस्तर्पिताः सर्वे तीर्थवर्य नमोऽस्तुते" ॥ ७८ ॥

इत्यनेन तु मन्त्रेण वैशाखे कृष्णपक्षके ॥
एकादश्यां स्नानमात्रे पुनात्युभयतः कुलम् ॥ ७९ ॥
तस्य पूर्वे नवधनुः सीतातीर्थं वरानने ।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति सशरीरा द्विजातयः ॥८०॥

इस मंत्र द्वारा वैशाखमासके शुक्लपक्षकी एकादशीमें स्नानमात्र करनेसे दोनों कुल पवित्र होते हैं । इस तीर्थके नव धनुः अन्तरमें सीतातीर्थ है, वहां स्नान करनेसे ब्राह्मणगण सशरीर स्वर्गमें जाते हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

क्रौञ्चंचापि माहाश्राद्धे त्वक्षयं समुदाहृतम् ।
सीतया रामभद्रेण निर्मितं तीर्थमुत्तमम् ॥
तस्मात्पुनीहि मां पापान्मोक्षं कुरु सुरार्चिते ॥ ८१ ॥

क्रौञ्चश्चापि महाश्राद्धे त्वक्षयं समुदाहृतम् । सीतया रामचन्द्रेण निर्मितं तीर्थमुत्तमम् । तस्मात्पुनीहि मां पापान्मोक्षं कुरु सुरार्चिते ॥ ८१ ॥

मौनी भूत्वा त्रयोदश्यां तत्र स्नात्वा महाफलम् ।
मन्त्रेणानेन तु स्नात्वा रत्नेनार्घ्यं प्रदापयेत् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोके वसेन्मृतः ॥ ८२ ॥

इस मंत्र द्वारा त्रयोदशीमें मौनी हो वहां स्नान करनेके अनन्तर रत्नद्वारा अर्घ्यप्रदान करनेपर परलोकमें पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकमें वास करता है ॥ ८२ ॥

दक्षिणे चैव सीताया धनुर्दशकमानतः ।
तत्राभिषेकमात्राच्च विजयी सर्वदा भवेत् ॥ ८३ ॥

सीतातीर्थके दक्षिणमें दशधनुः परिमित शोभायमान तीर्थ है, वह तीर्थ तीर्थोंमें उत्तम है, उसमें स्नान करनेसे सदा विजयकी प्राप्ति होती है ॥८३॥

तीर्थानां परमं तीर्थं विजयं नाम शोभनम् ।
तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयन्नाम विश्रुतम् ॥ ८४ ॥

सब तीर्थोंमें परमोत्तम विजयनामक तीर्थ सुशोभित है । वहां विजय नामसे विख्यात महेशलिंग है ॥ ८४ ॥

षण्मासान्नियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः ।
उषित्वा तत्र देवेशि मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ८५ ॥

उस स्थानमें छः मास नियताहारी ब्रह्मचारी और समाहित होकर वास करनेपर संपूर्ण पातकोंसे छूट जाता है ॥ ८५ ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं योगतीर्थमिति श्रुतम् ।
सर्वपापहरं शम्भोर्निवासः परमेष्ठिनः ॥ ८६ ॥

तदनन्तर योगतीर्थ नामसे विख्यात तीर्थोंमें एक उत्तम तीर्थ है; उस स्थानमें परमेष्ठि ब्रह्मा और सब पापोंको हरनेवाले महादेवजी वास करते हैं ॥ ८६ ॥

दृष्ट्वा लिङ्गंतु देवस्य योगीशं नाम विश्रुतम् ।
ईप्सितॉल्लभते कामान्रुद्रस्य दयितो भवेत् ॥ ८७ ॥

वहां योगीश नामक महादेवके लिंगका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण अभिलषितविषयोंको प्राप्त होकर रुद्रदेवका प्रिय होता है ॥ ८७ ॥

मुक्तितीर्थं विजानीहि द्वाविंशति धनुर्मितम् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण स्नात्वार्घ्यं विनिवेदयेत् ॥ ८८ ॥
मोक्षाभिकांक्षिभिर्युक्तैर्वन्द्यसे पूज्यसेऽनिशम् ।
योगकुण्डं महाभागं मां पुनात्वमरार्चिता ॥ ८९ ॥

फिर बाईस धनुपरिगित मुक्तितीर्थ है " मोक्षाभिकांभिर्युक्तैर्वन्द्यसे पूज्य-सेऽनिशम् । योगकुण्डं महाभागे मां पुनात्वमरार्चिता " इस मंत्रसे मुक्ति-तीर्थमें स्नान करनेके पीछे अर्ध्यनिवेदन करै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

तस्यातिदूरे लोकस्य वृत्तं कुण्डमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु विधिवत्सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ ९० ॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदायाथ दानानि विविधानि च ।
स्नात्वा कोलेन बीजेन तत्त्वेनार्घ्यं निवेदयेत् ॥९१॥

लोकवृत्तनामक अति उत्तम कुण्ड उससे अतिदूर स्थित है वहां स्नाना करनेसे विधिपूर्वक पितरदेवताओंका तर्पण करके ब्राह्मणोंको विविध दान प्रदानपूर्वक कोलबीजमंत्रद्वारा स्नान करनेके पीछे तत्त्वद्वारा अर्ध्य निवेदन करै ॥ ९० ॥ ९१ ॥

पश्चात्कोलेश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ९२ ॥

इसके पीछे कोलेश्वरका दर्शन करनेपर भवबंधनसे मुक्तिलाभ करत-है ॥ ९२ ॥

तिथिहस्तमितं कुण्डं देवगन्धर्वसेवितम् ।
कुण्डे सिततृतीयायां ग्रामं धान्यं धनं लभेत ॥९३॥

फिर पन्द्रह हस्तपरिमित गंधर्वसेवित कुण्ड है, वहां शुक्लपक्षकी तीजमें स्नान करनेसे ग्राम धान्य और धनलाभ होता है ॥ ९३ ॥

इन्द्रशैलस्य याम्ये तु धनुर्द्वादशमानतः ।
सूर्यतीर्थमिति ख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ ९४ ॥

इन्द्रशैलके दक्षिणमें बारह धनुपरिमित सूर्यतीर्थनामक विख्यात एक उत्तम तीर्थ है ॥ ९४ ॥

अदृश्यमूर्त्तिर्भगवान् सततस्तीरथेरतः ।
आस्ते लोकहितार्थाय व्यापी योगतनुः स्वयम् ॥९५॥

वहां योगतनु अदृश्यमूर्ति व्यापी सप्तसप्ति (सूर्यदेव) लोकहितार्थ स्वयं अवस्थित है ॥ ९५ ॥

महाहरश्च निरतं निवासं कृतवानिह ।
तथैव देवताः सर्व्वास्तस्यां सेव्याः समागताः ॥९६॥

जब देवदेव महादेव उस स्थानमें सदा वास करते हैं, तब सब देवता वहां सेव्यरूपसे अर्थात् बड़ेबड़े देवता आते हैं ॥ २६ ॥

भानुबीजेन तु स्नात्वा ह्यर्घ्यं तारेण दापयेत् ।
रामक्षेत्रं ततो गच्छेत्साधकः सिद्धिमानसः ॥ ९७ ॥

वहां भानुबीजसे स्नान और तारामंत्रसे अर्घ्यप्रदान करना चाहिये फिर सिद्धिके निमित्त साधक रामक्षेत्रमें जाय ॥ ९७ ॥

दुर्गकूपद्वयं तत्र ब्रह्मयूपश्च तिष्ठति ।
दुर्गकूपोदकं पीत्वा माघे मासि चतुर्दशी ॥ ९८ ॥
भवेद्भक्त्या गर्भधरा मन्त्राणामयुतं जपन् ॥
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य ततः श्राद्धं प्रकल्पयेत ॥ ९९ ॥
पितृंश्च तारयेत्तेनब्रह्मलोके महीयते ॥ १०० ॥

वहां दो दुर्ग कूप और ब्रह्मयूप अवस्थित हैं, माघके महीनेकी चौदशमें भक्तिपूर्वक दुर्गाकूपका जल पीकर अयुत (दशसहस्र) मंत्र जपने और तत्रस्थ यूपकी प्रदक्षिणा करके श्राद्ध करनेपर पितरोंका उद्धार करके ब्रह्म-लोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

काकिनीश्च न्यसेत्कूपे सुवर्णं रजतं तथा ।
यस्य मित्रस्य यद्वित्तं शोधयेत्पूर्वजन्मनि ॥ १०१ ॥

उस कूपमें काकिनी (कौड़ियें) सोना और चांदी डालनेसे पूर्वजन्मका मित्रऋणादि शोध होता है ॥ १०१ ॥

ततो गच्छेदिन्द्रशैलं दक्षिणाभिमुखेन तु ।
मणीश्वरं ततः पश्येन्निर्गताच्च प्रमुच्यते ॥ १०२ ॥

तदनन्तर दक्षिणाभिमुख हो इन्द्रशैलमें जानेके पीछे मर्णाश्वरका दर्शन करनेपर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १०२ ॥

वधबन्धनयुक्तोऽपि युक्तो वाप्युपपातकैः ।
इन्द्रकूटस्थितं दृष्ट्वा मणिनाथं स वायुना ।
क्षणेन मुच्यते देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ १०३ ॥

हे देवि ! मनुष्य वधबन्धनयुक्त वा आपातक युक्त हो । इन्द्रकूटस्थित मणिनाथका वायुसहित दर्शन करनेपर क्षणमात्रमें मुक्तिलाभ करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १०३ ॥

चरमे लोमतीर्थस्य धनुः पञ्चप्रमाणतः ।
नागतीर्थं ततो जातं पृथिव्यां ख्यातिमागतम् ॥१०४

लोमतीर्थके अन्तमें पञ्चधनुः प्रमाण पृथ्वीख्यात नागतीर्थ है ॥१०४॥

नागकुण्डे तु वैकुण्ठः स्नात्वा नागान्समर्चयेत् ।
पुण्यदं सर्वतीर्थेषु सर्पाणां विषनाशनम् ॥ १०५ ॥

"नागकुण्डेतु वैकुण्ठः" इस मंत्रसे स्नानादि करके नागोंकी पूजा करै । यह तीर्थ सर्व तीर्थोंमें पुण्यप्रद है । इसमें स्नानादि करनेसे सर्व प्रकारके पाप नष्ट होते हैं और सर्पोंका विष नष्ट होता है ॥ १०५ ॥

स्नानं कुर्वन्ति ये मर्त्या भक्त्या श्रावणपञ्चमीम् ।
न तेषां तत्कुले पीडा सर्पाः कुर्वन्ति कर्हिचित्॥१०६॥

जो मनुष्य श्रावणकी पंचमीमें भक्तिपूर्वक स्नान करता है; सर्पगण उसके कुलमें कभी पीडादायक नहीं होते ॥ १०६ ॥

श्राद्धं पितॄणां ये तत्र करिष्यन्ति नरा भुवि ।
ब्रह्मा तुष्टः परं स्थानं दास्यते नात्र संशयः ॥१०७॥

जो मनुष्य वहां पितृश्राद्ध करता है, ब्रह्मा उसके प्रति संतुष्ट होकर परम स्थानप्रदान करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १०७ ॥

चन्द्राद्युत्तरतः शैलश्चतुः षष्टिप्रमाणतः ।
जले तत्र गयाकुण्डं क्षेत्रं तीरे तदुच्यते ॥ १०८ ॥

चन्द्रशैलके उत्तरमें चौंसठ हस्त प्रमाण गयाक्षेत्र है, उसके जलको गया कुण्ड और तीरको गयाक्षेत्र कहते हैं ॥ १०८ ॥

गयाशीर्षं पूर्वभागे धनुर्द्वाविंशमानतः ।
यावल्लोहित्यपर्यन्तमुत्तरे ब्रह्मयोनिकम् ॥ १०९ ॥
गयातीर्थं परं गुह्यं पितॄणांचातिवल्लभम् ।
कृत्वा पिण्डप्रपादन्तु न भूयो जायते नरः ॥ ११० ॥

उसके पूर्वभागमें लोहित्यपर्यन्त और उत्तरमें ब्रह्मयोनिपर्यन्त बाईस धनुः परिमित पितृवल्लभ परमगुह्य गया तीर्थ है, वहां पिण्डदान करनेसे मनुष्यको फिर जन्मग्रहण करना नहीं पडता ॥ १०९ ॥ ११० ॥

आगस्त्येऽस्मिन्गयायाञ्च तथा नीलाचले गमे ।
यात्राभेदे ददेत्पिडं गयामथ सकृत्प्रिये ॥ १११ ॥

हे प्रिये ! आगस्त्यमें, गयामें और नीलाचलमें यात्रा भेदसे पिण्डदान करना चाहिये, किन्तु गयामें केवल एकबार पिण्ड देवे ॥ १११ ॥

शोचन्ति पितरस्तस्य व्यथात्र च परिश्रमः ।
गायन्ति पितरो गीतं कीर्त्तयन्ति महर्षयः ॥ ११२ ॥
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्माकं तारयिष्यति ।
एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः ॥ ११३ ॥
तेषां तत्समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः ॥ ११४ ॥

यो दद्याद्विधिवत्पिण्डान्गयां गत्वा समाहितः
धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिण्डदायिनः।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्य स्वराप्नुयात् ॥ ११५ ॥

गयामें अनेकबार गमन करनेसे परिश्रमके हेतु उसके पितर शोच करते हैं महर्षिगण कहते हैं कि, पितर यह कहकर गान करते हैं कि, जो कोई गमनागमनकरकेही हमको तार सकता है. (अर्थात् गयाकी यात्रासे ही पितरोंका उद्धार होता है) मनुष्यगण गुणवान् शीलवान् बहुत पुत्रोंकी अभिलाषा करते हैं क्योंकि उनमें एक मनुष्य भी गमनागमन करके हमारा उद्धार कर सकता है। अतएव सभी और विशेषतः ब्राह्मण गण वहां जाकर सावधान चित्तसे विधिपूर्वक सर्व प्रयत्नसे पिण्डप्रदान करैं गयामें पिण्ड देनेवाले मनुष्य धन्य हैं। वह मातृकुल और पितृकुल इन दोनों कुलके सात पुरुष पर्यन्त उद्धार करते हैं ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

परपिण्डप्रदानं तु नाम्ना वै पायसेन तैः।
कर्त्तव्यमृषिभिर्दिष्टं पिण्याकेन गुडेन तु ॥ ११६ ॥
तिलपिण्याककैर्देया भक्तिमद्भिर्नरैः सदा।
श्राद्धं तु तत्र कर्त्तव्यमर्घ्यावाहनवार्जितम् ॥ ११७ ॥

पायस (खीर) द्वारा नामोच्चारणपूर्वक परपिण्डप्रदान करना चाहिये। ऋषियोंने कहा है कि पिण्याक (खजूर) द्वारा वहां श्राद्ध करै। मनुष्य भक्तियुक्त चित्तसे तिलपिण्याक द्वारा अर्घ्यावाहनवर्जित श्राद्ध करै ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

मूषिकागृध्रकाकैश्च नानुदृश्यं चरन्ति ते।
श्राद्धं तत्तीर्थके प्रोक्तं पितॄणां तुष्टिदं परम् ॥ ११८ ॥

मूषिक गृध्र और काक जिससे उसको न देख सके इस विषयमें सावधान रहना चाहिये। इस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे पितृगण अतिशय तृप्ति-लाभ करते हैं ॥ ११८ ॥

कार्यं तत्र प्रयत्नेन भुक्तिरेवाथ कारणम् ॥ ११९ ॥
भक्त्या तुष्यन्ति पितरस्तुष्टा ददति कामनाः ।
आयुः पुत्रान्धनं धान्यं कामांस्त्वन्यांस्तथैव च ॥१२०

अतएव सर्व प्रयत्नसे इस स्थलमें पितरोंको भोग प्रदान करना चाहिये पितरगण भोग द्वारा संतुष्ट होकर समस्त अभिलषित विषय और आयु, पुत्र, धन, धान्य तथा अन्याय विविधप्रकार काम्य प्रदान करते हैं ॥ ११९ ॥ १२० ॥

भक्त्या चाराधिते रुद्रे नृणां पितृपितामहाः ।
अकालेऽप्यथवा काले गयाश्राद्धे सतीं गतिम् ॥१२१॥

वहां भक्तिपूर्वक रुद्रकी आराधना करनेसे पितृपितामहको सद्गति और प्रीतिलाभ होता है, अकालमें हो, अथवा कालमें हो, मनुष्यगण सदाही गयाश्राद्ध करैं ॥ १२१ ॥

प्राप्य चैव सदा स्नानं कर्त्तव्यं पितृतर्पणम् ।
पिण्डदानञ्च तेनात्तं पितॄणाञ्चातिवल्लभम् ॥ १२२ ॥

वहां सदा स्नान और तर्पण करनेसे दोष नहीं होता । वहां पिण्डदान पितरोंको अत्यन्त प्रिय है ॥ १२२ ॥

पितरो हि निरीक्षन्तो गगनं समुपागताः ।
आशया परया भक्त्या आशामेषां प्रपूरयेत् ॥१२३॥

गयामें आकाशमण्डलमें पितरगण आनकर प्राप्त होनेकी आशासे अवस्थान करते हैं, अतएव परमभक्ति सहित उनकी आशा पूर्ण करनी चाहिये ॥ १२३ ॥

विलम्बो नैव कर्त्तव्यो न च विघ्नं समाचरेत् ।
अच्छिन्ना सन्ततिस्तेषां सदा काले भविष्यति ॥१२४

इस विषयमें विलंब करना उचित नहीं है विलंब करनेसे विघ्न बाधा

उपस्थित होती है जो गयामें पिण्डदान करता है उसकी संतान सन्तति सदा अविच्छिन्न रहती है ॥ १२४ ॥

पितरः पुत्रदातारो वृद्धिश्राद्धं च कांक्षिणः ॥ १२५ ॥

वृद्धिश्राद्धाभिलाषी पितरगण पुत्रदान करते हैं ॥ १२५ ॥

तेन तेषां च तद्देयं यथोक्तेन विधानतः ।
अतः श्राद्धं पुरा प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
तेनतत्सत्वरं कार्यं द्विजैः पितृपरायणैः ॥ १२६ ॥
तीर्थेऽक्षते गृहे वापि संक्रान्तौ ग्रहणेपि वा ।
विषुवे तु तथान्यत्र जन्मनक्षत्रपीडने ।
एते वै श्राद्धकालाः स्युः पुरा स्वायम्भुवोऽब्रवीत्१२७

अतएव कभी उनको निराश न करै । पूर्वकालमें भगवान् स्वयम्भूने स्वयं अन्तश्राद्धका विषय कीर्त्तन किया है, पितृपरायण द्विजगण यह कार्य शीघ्र संपादन करैं. तीर्थमें, अक्षतमें वा गृहमें, संक्रमणकालमें, ग्रहणमें विषुवकालमें जन्मनक्षत्र यह सब प्रशस्तश्राद्धकाल है, ऐसा भगवान् स्वयम्भूने कहा है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

कृते श्राद्धे न वै पुंसां पीडा भवति देहजा ।
इहामुत्र कृतं वापि सर्वं त्यजति दुष्कृतम् ॥ १२८ ॥
पीडा याम्या न भवति ग्रहचौरनृपादिजा ।
दुष्कृतं नश्यते सर्वं परत्र च गतिं शुभाम् ॥ १२९ ॥
लभते नात्र सन्देहः प्रजापतिवरो यथा ।
कामेश्वरी सप्त वेदं त्वश्वक्रान्तं तु कार्त्तिके ॥१३०॥
मातृमुख्यं गयाश्राद्धं पितृमुख्यन्तु चान्यतः ।
पिण्डान्षोडशवैदद्याद्बहुलं कारयेत्सुधीः ॥ १३१ ॥

श्राद्ध करनेसे मनुष्यको देहज पीडा नहीं होती और इस लोक तथा परलोकके समस्त पाप यमयातना और ग्रह चौर नृपादिकी करी पीडा एवं दुष्कृत नष्ट होते हैं तथा वह परलोकमें शुभगतिको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं । जैसे प्रजापतिका वर व्यर्थ नहीं होता, ऐसेही यह सब भी कभी व्यर्थ होनेवाला नहीं है । कामेश्वरी सप्तवेद और अश्वक्रान्तमें कार्त्तिकमें जाना चाहिये । गयाश्राद्ध मातृमुख्य, अन्यत्र श्राद्ध पितृतुल्य जाने । बुद्धिमान् पहिले सोलह पिण्ड देकर फिर बहुत पिण्ड देवे ॥१२८॥ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

पातयेत्क्षीरधाराश्च ह्यारुह्य सोमपर्वतम् ।
साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
मया गयां समासाद्य अपनीतमृणत्रयम् ॥ १३२ ॥

तदनन्तर "हे ब्रह्माविष्णुमहेश्वरादिका देवताओ ! मैं गयामें आनकर तीनों ऋणसे मुक्त हुआ तुम साक्षी हो ओ" इस मन्त्रसे सोमपर्वतपर आरोहण करके दूधकी धार गिरावै ॥ १३२ ॥

ततो भेर्य्यादिशब्देन चारुह्य शिबिकां नरः ॥१३३॥

फिर भेरी इत्यादिका शब्द करके मनुष्य पालकीमें चढै ॥ १३३ ॥

गृहं गत्वा समभ्यर्च्य गृहदेवीं यथाविधि ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादक्षय्यमुपधारयेत् ॥ १३४ ॥

अनन्तर घर जाकर यथाविधि गृहदेवीकी पूजा करै फिर ब्राह्मण भोजन करानेके पीछे अक्षयावधारण करै ॥ १३४ ॥

भुञ्जीत ब्राह्मणैः सार्द्धं दक्षिणामुपपादयेत् ॥ १३५ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंके संग भोजन कर दक्षिणा देवै ॥ १३५ ॥

अस्मिन्पिण्डप्रदानेन चागस्त्ये विरजेषु च ।
दशाश्वमेधिके चैव तथा विष्णुपदेषु च ॥ १३६ ॥

गयातीर्थमें, आगस्त्यमें और विरज तथा दशाश्वमेधिकमें एवं विष्णुपदमें ॥ १३६ ॥

एकत्र पिण्डदः कश्चित्पुनः श्राद्धं विवर्जयेत् ।
पुनराकर्षणं कृत्वा शापः पतति मूर्द्धनि ॥ १३७ ॥

जो एकत्र पिण्डदान करे तो पुनः श्राद्ध न करे, पुनर्वार आकर्षण करनेसे मस्तकपर शाप पड़ता है ॥ १३७ ॥

त्रिदिनं पातयेत्पिण्डं गयायाञ्च विशेषतः ।
ततो मातृगयायाञ्च त्वेकाहमपि पातयेत् ।
आगस्त्ये विरजे चैव पातयेच्च दिनत्रयम् ॥ १३८ ॥

विशेषकर गयामें तीन दिन पिण्डदान करे । फिर मातृगयामें एक दिन पिण्ड देना चाहिये । आगस्त्य और विरजमें तीन दिन पिण्ड देवे ॥ १३८ ॥

इति योगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे कामरूपाधिकारे चतुर्विंशतिसाहस्रे द्वितीयभागे भाषाटीकायां चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ततः प्रभाते विमले साधकः सिद्धमानसः ।
सोमशैलस्य चैशान्यां दृष्टिमात्रान्तरे प्रिये ।
मानशैलं ततो गत्वा गच्छेद्वाराणसीं सरः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे प्रिये ! तदनन्तर विमल प्रातःकालमें सिद्धाभिलाषी साधक सोमशैलके ईशानकोणमें दृष्टिमात्र अन्तर अवस्थित मानशैलमें गमन पूर्वक वाराणसीसरोवरमें जाय ॥ १ ॥

मणीश्वरस्य चैशान्ये किञ्चित्पूर्वादिगोचरे ।
धनुःसप्तान्तरे चैव कुण्डं वाराणसीयकम् ॥ २ ॥

मणीश्वरके ईशानकोण किंचित् पूर्वकी ओर सात धनुःके अन्तरमें वाराणसीयक कुण्ड है ॥ २ ॥

द्वाविंशद्धनुरायामं सर्वदेवैश्च संयुतम् ।
देवी त्रिपथगा तत्र गोमती च सरस्वती ॥ ३ ॥

वह लम्बाईमें बाईस धनुकी बराबर है उसमें देवता सदाही स्थित रहते हैं । देवी त्रिपथगामिनी गोमती, सरस्वती ॥ ३ ॥

करतोया दिव्यनदः लोहित्यो घर्घरस्ततः ।
सरयूर्धूतपापा च नर्मदा च महानदी ॥ ४ ॥

करतोया, दिव्यनद, लोहित्य, घर्घरा,सरयू और निर्धौतपाप महानदी नर्मदा ॥ ४ ॥

दृषद्वती देविका च तथा चर्म्मण्वती नदी ।
कृष्णवेणी तथा पुण्या शोणः श्येनो महानदः ॥ ५ ॥
कावेरी यमुना चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ।
मम प्रीत्यर्थमायान्ति कुण्डं वाराणसीयकम् ॥ ६ ॥

दृषद्वती, देविका, चर्मण्वती, पुण्यदायिनी, कृष्णवेणी, महानद, शोण, और श्येन, कावेरी, यमुना और अन्यान्य अनेकों नद नदी मेरी प्रीतिके निमित्त वाराणसीयक कुण्डमें आनकर स्थित रहती हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

उदधिर्गह्वरं चैव क्षीरोदश्च तथा पयः ।
घृतोदश्चैव मद्योदो दध्योदश्चैव सागरः ॥ ७ ॥
ह्रदाश्च सरितश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
मधुमासे चतुर्दश्यां समायान्ति न संशयः ॥ ८ ॥
वैशाखस्य तृतीयायां समायान्ति सुमध्यमे ।
स्नात्वा तत्र दिवं यान्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ९ ॥

उदधि और गह्वरगण, क्षीरोद, पयोद, घृतोद, मद्योद, दध्योद और सागर समस्त ह्रद सरिद्गण और विविध तीर्थ यह सभी चैत्रमासकी

चौदश और वैशाखमासकी तृतीयाको वहां आते हैं. इसमें सन्देह नहीं वहां स्नान करनेपर प्रलयकालतक स्वर्ग भोगता है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

जगन्माये जगद्दीपे जगत्पापप्रणाशिनि ।
अमृतं देहि मे वाराणासि कुण्ड नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥

"जगन्माये जगद्दीपे जगत्पापप्रणाशिनि । अमृतं देहि मे वाराणासि कुण्ड नमोस्तुते" ॥ १० ॥

इत्यनेन तु मन्त्रेण त्वन्येनार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ११ ॥

इत मन्त्रसे औरसे भी अर्घ्य निवेदन करै ॥ ११ ॥

तस्य दक्षिणादिग्भागे धनुःपंचप्रमाणतः ।
द्वाविंशतिधनुर्मानं कुण्डं च मणिकर्णिकम् ।
मणिकर्ण्यासमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥

उसके दक्षिण दिशाकी ओर पांच धनुः प्रमाण दूर बाईस धनुः परिमित मणिकर्णिकाका कुण्ड है, हे महेश्वरि ! मणिकर्णिकाके समान तीर्थ नहीं हुआ और होगाभी नहीं ॥ १२ ॥

सत्यं सत्यं पुनःसत्यं सत्यमेव सुनिश्चितम् ।
मणिकर्ण्या समं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ १३ ॥

यह सत्य सत्यही वारम्वार कहता हूं. ब्रह्माण्डगोलकमें मणिकर्णिका समान अन्य तीर्थ नहीं है यह निश्चित है ॥ १३ ॥

युग्मादिषु च संक्रान्तावुपरागे महेश्वरि ।
स्नानं मध्यन्दिने कुर्यान्महापातकनाशनम् ॥ १४ ॥

युग्मादिमें, संक्रमणमें, ग्रहणकालमें मध्याह्नसमयमें, मणिकर्णिकामें स्नान करनेसे महापातक नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

मणिकर्णि सुरश्रेष्ठे मणीश्वरि मणिप्रिये ॥
अघं हर कृतावासे मणिकर्णि नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥

हे मणिकर्णे सुरश्रेष्ठे मणीश्वरि और मणिप्रिये ! अपने स्थानमें वास करते हुए मेरे सब पापोंको हरण करो तुम्हें प्रणाम है ॥ १५ ॥

मन्त्रेणानेन तु स्नात्वा प्रणिपत्य प्रपूजयेत् ॥ १६ ॥

इस मन्त्रसे स्नान और प्रणाम करके पूजा करै ॥ १६ ॥

ऐशान्यां मणिशैलस्य मङ्गला नाम वै नदी ।
क्षीरनीरवहन्तीत्वं पापौघाच्च पुनीहि माम् ॥ १७ ॥

मणिपर्वतके ईशानकोणमें जो मंगलानाम नदी है वह क्षीरके समान जल बहाती हुई मेरे पापसमूहोंको दूर करै ॥ १७ ॥

स्नात्वा मन्त्रेण देवेशीं प्रणिपत्य प्रसादयेत् ।
मणीश्वरं ततो गत्वा क्षालयेन्मनुमुच्चरन् ।
स्पृष्ट्वा द्वितीयकेनैनं तृतीयेनाभिपूजयेत् ॥ १८ ॥

इस मन्त्रसे प्रणाम करके प्रसन्न करै । फिर मणीश्वरमें जाकर प्रथम मंत्र उच्चारणपूर्वक प्रक्षालनानन्तर दूसरे मन्त्रद्वारा स्पर्श करके तीसरे मंत्रसे पूजा करे ॥ १८ ॥

कलाहस्तद्वयांशेन सिद्धिक्षेत्रमिहोच्यते ।
हंसोऽर्घ्यासनमारूढो रश्मिबिन्दुसमायुतः ॥ १९ ॥

अपनी पूर्णकलाओं तथा दोनों हाथोंसे यह सिद्धिक्षेत्र कहलाता है । इसमें सूर्यकी किरणोंकी संक्षेपसे स्थिति है और इनमें आसनके ऊपर विराजमान हंसस्वरूपका अर्घ्यप्रदानपूर्वक ध्यान करना चाहिये ॥ १९ ॥

मन्त्रोऽयं देवदेवस्य ऋषिर्गर्ग उदाहृतः ।
छन्दोनुष्टुब्भवो देव इष्टार्थे विनियोजयेत् ॥ २० ॥

देवदेवका यह मन्त्र गर्गऋषिने कहा है इसका छन्द अनुष्टुप्, भव इसके देवता और इष्टार्थ (इष्टसिद्धि) में इसका विनियोग करै ॥ २० ॥

उद्यत्किरीटेन्दुकलं सदैव
बिभर्ति वैयाघ्रतनुं चतुर्भिः ।
शूलश्च यं यः परमश्च वज्रं
रक्तं त्रिनेत्रं परमं मृगं च ॥ २१ ॥

मध्ये देवं पूजयेत्कृत्तिवासं
भीमं देवं तत्पुरस्ताद्धरश्च ।
भवं साम्बं शक्रमध्ये विसंज्ञं
पश्चाद्देवं वामनं कालसंज्ञम् ॥ २२ ॥

जिन देवके किरीटस्थित मणिसे सबकी किरणछटा प्रकाशित होती है। जिन्होंने अपने देहमें व्याघ्रचर्म धारण किया है, जो शूल, वर, अभय और वज्र इन चारोंसे शोभायमान हैं जो लालवर्णके तीन नेत्रोंसे विराजित हैं और मृगस्थ अंग भयानक मूर्त्ति हैं, उन परमदेवकृत्तिवास हर महेश्वरकी मध्यभागमें पूजा करे। फिर कालसंज्ञक वामनकी पूजा करनेके पीछे ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥

यजेच्छक्तीः पद्मपत्रेषु देवी
वाराणसीकीर्तितयोः पुरस्तात् ।
श्रीकण्ठाद्यंतद्बहिः संयजेद्वै
गृहान्पश्चात्तत्पुरस्ताद्दिगीशान् ॥ २३ ॥

वामेऽनन्तः पूजितः स्यात्पिनाकी
दाक्षे भागे कमला सर्वनश्च ।
सिद्धेशाख्यादग्रतश्च प्रपूज्या
स्वैः स्वैर्मन्त्रैः स्वीयकल्पोदितैश्च ॥ २४ ॥

मणिनाथश्चादिलिङ्गं ब्रह्मपाषाणमक्षयम् ।
ऐशान्यां मङ्गला देवि चैतन्मध्यगतं प्रिये ॥ २५ ॥

वहां स्थित वाराणसी कीर्ति शक्ति सबकी पद्मपत्रमें पूजा करके बहिर्भागमें श्रीकण्ठादिकी पूजापूर्वक तत्पुरस्थित दिगीशगण और वामभागमें अनंतकी पूजा करै, दक्षिणभागमें पिनाकी और सर्वतः कमलादेवी तथा आदिमें सिद्धेशाख्य देवता इन सब देवताओंके कल्पोक्त स्वस्वमंत्रद्वारा पूजा करके मणिनाथ आदिलिंग अक्षय ब्रह्मपाषाण इनकी पूजा करै. हे देवि ! ईशान कोणके भागमें मंगला देवी अवस्थान करती है यह मध्यतम क्षेत्र है ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

कोशत्रयमिदं क्षेत्रं मणिपीठं सुरार्चिते ।
दक्षवक्त्रे च कामेशी हयग्रीवन्तु पश्चिमे ॥ २६ ॥

हे देवताओंसे पूजित ! यह मणिपीठ क्षेत्र तीन कोशमें व्याप्त है। इसके दक्षिणमुखमें, कामेशी पश्चिममें हयग्रीव ॥ २६ ॥

उत्तरं कमलं लिङ्गमुत्तरायाः समुद्भवः ।
पूर्ववक्त्रे च विरजा उत्तरे कीलकोद्भवम् ॥ २७ ॥

उत्तरमें उत्तरासमुद्भूत कमललिंग है ! पूर्वमुखमें विरजा, उत्तरमें कीलकोद्भव ॥ २७ ॥

अन्यत्र कोटिद्वितयं सर्वं वामोद्भवं भवेत् ।
रमणायाः समुद्भूतं कुण्डं पञ्चशतं शतम् ॥ २८ ॥

अन्यत्र वामोद्भव दो करोड कुण्ड हैं और रमणासंभव पांचसौ कुण्ड हैं ॥ २८ ॥

सार्द्धकोटिस्तथा लिङ्गं त्रिशतं च कलौ युगे ।
भूम्यन्तरस्थं लक्ष्यञ्च सार्द्धलक्षं जले प्रिये ॥ २९ ॥

और डेढ़ करोड लिंग हैं, परन्तु कलियुगमें तीन सौ लिंग वर्तमान है हे प्रिये ! भूमिके अन्तरमें लक्ष जलमें डेढ़ लाख ॥ २९ ॥

द्विलक्षं पर्वते चैव पञ्चलक्षं गुहासु च ।
भूमिपीठे लक्षसप्तं वृक्षमूले तु लक्षकम् ॥ ३० ॥

पर्वतमें दोलाख, गुहोंमें पांच लाख, भूमिपीठमें सात लाख वृक्षमूलमें लाख ॥ ३० ॥

कुण्डमध्यगतं लिंगमर्द्धलक्षं तथैव च ।
संध्यासन्ध्यांशके चैव कुण्डं लौहित्यपावनम् ॥३१॥

कुण्डमें अर्द्धलक्ष लिंग हैं और सन्ध्यासन्ध्यांशको पवित्र लौहित्य कुण्ड जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

नवेन्दुशाके देवेशि विदितं सर्वमेव तु ।
त्र्यंशं सन्ध्यांशके चैव यदा शूद्रो भवेन्नृपः ॥ ३२ ॥

नवेन्दु (१९) शाकेमें वह सर्वत्र विदित हुआ है तीसवें शाकेकी संधिमें जब शूद्र राजा हो ॥ ३२ ॥

तदा कामेश्वरी देवी स्फुटिता मध्यमांशतः ।
अन्ते शाकेश्वरीनैवस्फुटिता मध्यमेंशके ॥ ३३ ॥

तब कामेश्वरी देवी मध्यमांशमें प्रकाशमान होगी । फिर मध्यमांशमें शाकेश्वरी प्रकट होगी ॥ ३३ ॥

अन्त्यांशे चैव शाके च सुव्यक्ता उर्वशी तदा ।
भूशाक माधवे व्यक्ता सुधांशे विरजा प्रिये ॥ ३४ ॥

अन्त्यांश शाकेमें उर्वशी देवी सुव्यक्ता (प्रकट) होगी । भूशाकके मध्यमांशमें विरजा प्रकट होगी ॥ ३४ ॥

फल दिव्येश्वरत्वं यद्राजसूयेन लभ्यते ।
तत्फलं प्राप्यते देवि पूजनाद्वन्दनात्प्रिये ॥ ३५ ॥

हे देवि ! राजसूयद्वारा जो दिव्यैश्वरत्वफल प्राप्त होता है वहां पूजा वन्दनादि करनेसे वही फल प्राप्त करसकता है इसमें सन्देह नहीं ॥३५॥

वायव्ये मानशैलस्य वराहो नाम पर्वतः ॥ ३६ ॥

हे प्रिये ! मानशैलके वायुकोणमें वराहनामक एक पर्वत है ॥ ३६ ॥

तस्य पूर्वे दक्षिणे च नरनारायणं सरः ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च विष्णुलोके महीयते ॥३७॥

उसकी पूर्वदक्षिण दिशामें नरनारायणसरोवर है, वहां स्नान पान करनेसे स्वर्ग लोक प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

तस्य पश्चिमतीरे च लिंगं सोमेश्वरं हरम् ।
तीर्थं प्रभासनामानं मृतानां मुक्तिदं परम् ॥ ३८ ॥

उसके पश्चिमतटमें सोमेश्वर लिंग शिव विद्यमान हैं उस तीर्थका नाम प्रभास है यह तीर्थ मरेहुए मनुष्योंको परलोकमें मुक्ति देता है ॥ ३८ ॥

देवनात्कृतपिण्डानां कामपूरकृतं नृणाम् ।
तत्र वैनायकं तीर्थं वायव्ये धनुरष्टकम् ॥ ३९ ॥

पितृगणके क्रीडाकरने और पिण्डग्रहण करनेसे मनुष्योंके मनोरथोंको पूर्णकरनेवाला वहां वायुकोणमें अष्टधनुः परिमित वैनायक तीर्थ है ॥३९॥

सशतं धनुरायामं प्रभासं तीर्थमुत्तमम् ।
वायव्ये तस्य देवेशि धनुरर्कप्रमाणतः ॥ ४० ॥
तीर्थं बिन्दुसरः पुण्यं स्नानात्पातकनाशनम् ।
मणिसोमाचलान्तेन धनुः साहस्रपञ्चकम् ॥ ४१ ॥

प्रभासतीर्थ शतधनुः लम्बाईसे युक्त है । हे देवि ! उसके वायुकोणमें बारह धनुः परिमित बिन्दुसरोवरनामक पापनाशक अत्युत्तम पवित्र तीर्थ विद्यमान है, वह मणि सोमाचलपर्यन्त पांच हजार धनुः फैला हुआ है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

भूलिंगे च भवेत्कोटिज्यामिता च सरस्वती ।
धानुष्कोकिलकः शम्भुर्लक्षः कालिरुदाहृता ॥४२॥

भूलिंगमें करोडधनुःपरिमित सरस्वती है, वहां धनुष्कोकिलक शम्भु ओर लक्षकालिका स्थित हैं ॥ ४२ ॥

नाटकाचलपूर्वे तु मतङ्गो नाम पर्वतः ।
अचलं यावदग्नौ तु शिवस्यान्तर्गृहं स्मृतम ॥ ४३ ॥

नाटकाचलके पूर्वमें मतङ्ग नामक पर्वत है, यहां अचलपर्यन्त स्थान शिवका अन्तर्गृह कहा गया है ॥ ४३ ॥

अन्तर्गृहमृता ये च यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
अक्षयं सत्कृतं तत्र यत्कृतश्च तदक्षयम् ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य अन्तर्गृहमें प्राणत्याग करता है वह अक्षय ब्रह्म सनातन पदको प्राप्त होता है और वहां जो कुछ सत्कार्य करै वह सब अक्षय होता है ॥ ४४ ॥

मणिशैले स्थिता ये च ये मृतास्ते पुनर्भवाः ।
तत्र दानं कुरुक्षेत्रसमं भवति नान्यथा ॥ ४५ ॥

जो मणिशैलमें वास करता है, उसको फिर जन्म लेना नहीं पडता वहां दान करनेसे कुरुक्षेत्रकी समान फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥

अश्वतीर्थेन्द्रमध्ये तु ब्रह्मावधिरुदाहृतः ।
वराहस्य मुखे तोयं दृष्ट्वा मत्स्योदरी तदा ।
आषाढे वर्षणे विष्णोर्यदा मत्स्योदरं भवेत् ॥ ४६ ॥

अश्वतीर्थेन्द्रमध्यमें ब्रह्मावधि कहागया है, तब वराहके मुखमें जल और मत्स्योदरीका दर्शन करै । आषाढ़ वर्षणकालमें जब विष्णुका मत्स्योदर होता है ॥ ४६ ॥

तद्वा सर्वप्रयत्नेन स्नानं कुर्यान्मम प्रिये ।
शतजन्मकृतं पापं स्नानान्नश्यति निश्चितम् ॥ ४७ ॥

तब सर्वप्रयत्नसे वहां स्नान करना चाहिये । इस स्थानमें सौ जन्मके किये पाप निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

भाद्रे वा श्रावणे वापि तदार्द्धार्द्धं लभेत्फलम् ।
कार्त्तिके दृश्यते किंचित्फलं दशगुणोत्तरम् ॥ ४८ ॥

भाद्र वा श्रावणमें आधा फल होता है । कार्तिकमें उसका दशगुणसेभी अधिक फल प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

हस्ताचलस्य पूर्वे तु किंचिदैशान्यगोचरे ।
भस्माचलं स्थिरं भूत्वा समीक्षेत्काममुच्चरन् ॥ ४९ ॥

हस्ताचलके पूर्व कुछेक ईशानकोणकी ओर स्थिर मंत्रोच्चारणपूर्वक भस्माचलका दर्शन करे ॥ ४९ ॥

कीलकाचरमे भागे नाक्रान्तं सूत्रमापते ॥ ५० ॥

कीलकके अन्त्यभागमें आक्रान्त आकर्षण किये हुएका सूत्रपात न करे ॥ ५० ॥

तत्क्षेत्रस्योत्तरे भागे धनुरर्कप्रमाणतः ।
उर्वशीति समाख्याता सर्वकिल्बिषनाशिनी ॥ ५१ ॥

उस क्षेत्रके उत्तरभागमें बारह धनु·प्रमाण सब पापोंका नाश करनेवाला उर्वशीतीर्थ है ॥ ५१ ॥

माघे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां च समाहितः ।
स्नात्वाश्वमेधजं पुण्यं लभते संक्रमेषु च ॥ ५२ ॥

वहां माघके महीनेकी शुक्लद्वादशीमें और संक्रांतिमें सावधान होकर स्नान करनेसे अश्वमेधकी तुल्य फल प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

दिनक्षये च ग्रहणे न स्नायाद्धि कदाचन ।
नाशोऽपि ज्येष्ठपुत्रस्य धनस्य परमेश्वरि ॥ ५३ ॥

हे परमेश्वरी ! सायंकाल वा ग्रहणमें वहां कभी स्नान न करे, ऐसा करनेसे ज्येष्ठ पुत्र और धनका नाश होता है ॥ ५३ ॥

तारं श्रवणशून्यश्च वाराहं सशिखीस्थितः ।
समार्णको वह्निजायानन्तोऽयं च प्रकीर्तितः ॥ ५४ ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ।
उर्वश्यन्तानि सर्वाणि पापं हर नमोऽस्तु ते ॥ ५५ ॥

ताराश्रवणशून्य शिखीसहित वाराह समार्णक और वह्निजाया यह अनन्त कहाते हैं । समुद्रसे लेकर सरोवरोंतक पृथ्वीमें जितने तीर्थ हैं, वह सब उर्वशीतीर्थतक मेरे पापोंको दूर करै, उनको प्रणाम है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

मन्त्रेण विधिवत्स्नात्वा चोत्तराशामुखेन तु ।
वारुणेन च मन्त्रेण दद्यादर्घ्यं विभूतये ॥ ५६ ॥

इस मन्त्रद्वारा उत्तर मुख हो विधिपूर्वक स्नान करके विभूतिके निमित्त वारुणमन्त्रसे अर्घ्य देवे ॥ ५६ ॥

पूर्वाशामज्जनं कृत्वा महाऽलक्ष्या विमुच्यते ।
धनं धान्यं प्रजावृद्धिः कुबेराशाविमज्जनात् ॥ ५७ ॥

पूर्वाभिमुख होकर स्नान करनेसे दरिद्र दूर होता है, उत्तराभिमुख होकर मज्जन करनेसे धन धान्य और प्रजाकी वृद्धि होती है ॥ ५७ ॥

तस्याः पूर्वे चार्कधनुरयुताशं तथा परम् ।
सूर्यतीर्थमिति ख्यातं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ५८ ॥

उसके पूर्वमें बाहर धनु परिमित दशसहस्र देवताओंकोभी दुर्लभ विख्यात सूर्यतीर्थ है ॥ ५८ ॥

ऋषयः सिद्धगन्धर्वास्तीर्थानि च सरांसि च ।
माहात्म्यमतुलं तस्य सूर्यकुण्डस्य शङ्करि ॥ ५९ ॥

ऋषिगण, सिद्धगण और गन्धर्वगण समस्ततीर्थ और सरोवर सभी उस सूर्यकुण्डके समीप स्थित हैं ॥ ५९ ॥

भृग्वन्तं गगनं देवि भृगुस्वार्गान्तिको मनुः ।
स्नाने च पूजने चार्घ्ये स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥६०॥

हे देवि ! भृग्वन्त गगन एवं भृगुस्वर्गान्तिक मनु स्नान, पूजन, अर्घ्य और स्तवमें विनियोग करे अर्थात् भृगुसंपुटित ओंकारसे स्नान आदि करे ॥ ६० ॥

मासि चैत्रे च माघे च सप्तम्यां रविवासरे ।
स्नात्वा सर्वमवाप्नोति सूर्यलोकञ्च विन्दति ॥ ६१ ॥

चैत्र और माघमासकी सप्तमीमें रविवारके दिन स्नान करनेसे मनुष्य सूर्यलोकको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥

रक्तांशो विंशसम्भूत महापातकनाशन ।
हरमानससौभाग्य पापं हर नमोऽस्तु ते ॥ ६२ ॥

हे रक्तांशु ! हे विंशसे उत्पन्न ! हे महापातकोंके नाशकर्त्ता ! हे शिव मनस्वरूप ! हे महाभाग्यवाले । मेरे पापोंको हरो तुमको प्रणाम है॥६२॥

मन्त्रेणानेन संपूज्य प्रणतिं समुपाचरेत् ।
तत्पूर्वे वै पञ्चधनुः कामाख्यं नाम वै सरः ।
तत्र स्नात्वा त्रयोदश्यां सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥६३॥

इस मंत्रसे पूजा और प्रणाम करै, उसके पूर्वभागमें पंचधनुःपरिमित कामाख्यानामक सरोवर है. वहां त्रयोदशीमें स्नान करनेसे समस्त कामना प्राप्त होती हैं ॥ ६३ ॥

धात्रीफलं मुखे कृत्वा यस्तु स्नानं समाचरेत् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं राजानं पृथिवीपतिम् ॥ ६४ ॥

आँवलेको मुखमें रखकर स्नान करनेसे अपुत्रमनुष्यको पुत्र प्राप्त होता है और वह पुत्र पृथ्वीका पति राजा होता है ॥ ६४ ॥

चैत्रे सितत्रयोदश्यां स्नात्वा राज्यञ्च विन्दति ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कामेनार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ६५ ॥
कामकुण्ड महाभाग देवीभिः संस्कृतः स्वयम् ।
प्रयच्छ कामान्सकलान्पापाच्च त्राहि सर्वतः ॥ ६६ ॥

चैतके महीनेकी शुक्लत्रयोदशीमें स्नान करनेसे राज्य प्राप्त होता है 'कामकुण्ड महाभाग देवीभिः संस्कृतः स्वयम् । प्रयच्छ कामान्सकलान् पापाच्च त्राहि सर्वतः '' इस मंत्रसे अर्घ्य निवेदन करै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

सूर्यतीर्थे चार्घ्यदानं यः करोति वराङ्गने ।
शतमष्टोत्तरञ्चापि सहस्रमयुतं तथा ।
द्वादशाष्टौ तु देवेशि चाश्वमेधफलं लभेत् ॥ ६७ ॥

हे शोभायमान अंगवाली ! जो मनुष्य सूर्यतीर्थमें अष्टोत्तरशतसहस्र वा अयुत अथवा द्वादश या आठ अर्घ्य देता है, वह अश्वमेधके फलको पाता है ॥ ६७ ॥

माघे वा फाल्गुने वापि स्वाहार्घ्यं सप्तमीदिने ।
स्नात्वा ह्युदये काले कुष्ठी पापाद्विमुच्यते ॥ ६८ ॥

माघ वा फाल्गुनमें सप्तमीके दिन सूर्योदयकालमें स्नान करनेपर अर्घ्य देवे तो कुष्ठी मनुष्य पापोंसे छूट जाता है ॥ ६८ ॥

अपुष्पिता च विंशाहाद्या नारी परमेश्वरि ।
तत्राभ्यर्च्यार्घ्यदानेन सा नारि पुष्पिता भवेत् ॥ ६९ ॥

हे परमेश्वरी ! जो नारी अपुष्पिता है, अर्थात् समयपर ऋतुमती नहीं होती, वह पूजापूर्वक अर्घ्यदान करनेसे वीस दिनमें ऋतुमती होती है ॥ ६९ ॥

योऽर्घ्यं तु मार्त्तपात्रेण चादित्यस्य तु शङ्करि ।
सप्तजन्मनि दारिद्र्यमृतेसौ चाभिजायते ॥ ७० ॥

हे शंकरि ! मिट्टीके पात्रमें सूर्यको अर्घ्य देनेसे सात जन्म श्रीमान्के घर जन्म लेकर दरिद्रता प्राप्त नहीं होती ॥ ७० ॥

मृतापत्या च या नारी त्वह्नि संपूज्य भास्करम् ।
करवीरेण वार्केण तथा धात्रीफलेन च ।
करवीरशतं दत्त्वा नापुत्री जायते क्वचित् ॥ ७१ ॥

मृतापत्या नारी ! (अर्थात् जिसकी सन्तान मर जाती हो) दिनमें कनेरके सहित आकके फूल वा धात्रीफलके सहित शत करवीरद्वारा सूर्यकी पूजा करनेसे पुत्रवती होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७१ ॥

अभावे करवीरस्य पत्राण्यपि निवेदयेत् ।
रक्तं रुद्रजटश्चैव रक्तश्च करवीरकम् ॥ ७२ ॥

कनेरके अभावमें कनेरके पत्तेभी निवेदन करै । रक्तरुद्रजटा (लालरुद्र-जटा) और लाल कनेर ॥ ७२ ॥

तथा रक्ततया देवि शस्तं भास्करपूजने ।
सर्वेषाञ्चैव पुष्पाणां श्रेष्ठश्च करवीरकम् ॥ ७३ ॥

तथा अन्यान्य रक्तपुष्प सूर्यकी पूजामें प्रशस्त होते हैं, वह सब पुष्पोंमें कनेरका पुष्प श्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥

एकंच करवीरश्च रक्तपद्मसहस्रकम् ।
प्रतिपुष्पं चाश्वमेधफलं सम्यक्प्रजायते ॥ ७४ ॥

एक कनेर हजार रक्तपद्मके समान है प्रतिपुष्पमें अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन करवीरेण पूजयेत् ।
अभावे करवीरस्य त्रिवारं वाग्यतः स्मरेत् ॥ ७५ ॥

इस कारण सर्व प्रयत्नसे कनेरके पुष्पद्वारा पूजा करनी चाहिये। कनेरके अभावमें मौन धारणपूर्वक तीनबार कनेरको स्मरण करे ॥ ७५ ॥

उच्चरेत्करवीरेति न तथा कोटिजाप्यतः ।
प्रीतिः स्यात्करवीरस्य न तथा याति भास्करः॥७६॥

'करवीर' यह वाक्य उच्चारण करनेसे करोड जपके समान फल होता है, करवीरसे सूर्यदेवकी जैसी प्रीति होती है, अन्यपुष्पसे वैसी नहीं होती ॥ ७६ ॥

संवत्सरस्य मध्ये तु चैकदा सप्तमीव्रतम् ।
सूर्यतीर्थे पुमान्कृत्वा पुनाति कुलसप्तकम् ॥ ७७ ॥

सम्वत्सरके बीच सूर्यतीर्थमें एकबार सप्तमीका व्रत करनेसे सातों कुलको पवित्र करता है ॥ ७७ ॥

अपराह्णं परं कालं विजानीहि व्रतस्य च ।
न्यूनातिरिक्ते देवेशि न सिद्धिर्जायते भुवि ॥ ७८ ॥

अपराह्णही व्रतका श्रेष्ठ काल जानना चाहिये. हे देवेशि ! उसमें कम अधिक होनेसे पृथ्वीमें सिद्धि प्राप्त नहीं होती ॥ ७८ ॥

द्विपक्वं वर्जयेद्यस्माद् घृतश्चैव कलायकम् ।
कशेरुश्शृङ्गबेरश्च लवणश्च कषायकम् ॥ ७९ ॥
अम्लश्चैव तथा तिक्तं दूषितञ्च न भक्षयेत् ।
शिलापात्रे च भोक्तव्यं रौप्यताम्रे कदाचन ॥ ८० ॥

द्विपकं कलाय (सतीनक) और घृतवर्जित है कशेरु, अदरख लवण, कषाय खट्टी और तीखी तथा दूषित वस्तुका भोजन न करै पत्थरके बर्तनमें भोजन करै चांदी और तांबेके पात्रमें कभी भोजन न करै ॥ ७९ ॥ ८० ॥

मदनस्य दक्षभागे धनुःपंक्तिप्रमाणतः ।
तीर्थं गङ्गासरिन्नाम तत्र स्नात्वा महत्फलम् ॥ ८१ ॥
गङ्गातीरे नरः स्नात्वा पितॄन् देवांश्च तर्पयेत् ।
ब्रह्मलोकं समाप्नोति रविसंक्रमणे ग्रहे ॥ ८२ ॥

मदनके दक्षिणभागमें दशधनु प्रमाण गंगासर नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे फल दशधनुः प्रमाण होता है । गंगासरके तीन रविसंक्रमण और ग्रहणकालमें स्नान करनेपर देव पितरका तर्पण करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

विष्णुपादरजोद्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ।
धर्मद्रवे सरिच्छ्रेष्ठे त्राहि मां सर्वपातकात् ॥ ८३ ॥
तुलायां मकरे चैव शुक्लाष्टम्याञ्च भामिनि ।
स्नानमात्रं नरः कृत्वा विष्णुलोके महीयते ॥ ८४ ॥

तुला मकर और शुक्लाष्टमीमें "धर्मद्रवे सरिच्छ्रेष्ठे त्राहि मां सर्व पातकात्" इस मंत्रसे स्नान करनेपर विष्णुलोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे धनुरष्टप्रमाणतः ।
आगस्त्यं परमं तीर्थं मृतानां भुक्तिमुक्तिदम् ।
यो गत्वा मज्जते मर्त्यः सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् ॥८५॥

उसके दक्षिणभागमें आठ धनुः प्रमाण आगस्त्यनामक परम तीर्थ है. उसमें प्राणत्याग करनेसे मनुष्य भोग तथा मोक्षको प्राप्त होते हैं, जो मनुष्य वहां जाकर मज्जन करता है वह सर्वज्ञत्वको प्राप्त होता है॥८५॥

स्वयं देवो महादेवो विष्णुस्तत्र च संस्थितः ।
कामाख्यायाश्च क्रीडार्थमागस्त्यं कुण्डमुत्तमम्॥८६॥
सर्वपापहरं शुद्धं विष्णुब्रह्मादिभिर्युतम् ।

देवदानवविद्याधृग्वन्दितं सर्वकामदम् ॥ ८७ ॥
नानारत्नादिभिर्नद्धं सोपानं सुमनोहरम् ।
शल्यस्योत्पाटनं कुण्डं महादेव्याश्चतुष्टयम् ॥८८॥

वहां स्वयं महादेव और विष्णु स्थित हैं, कामाख्याकी क्रीडाके निमित्त सर्वपापहर, विशुद्ध ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि देवताओंसे सेवित विद्याधरवन्दित, सर्वकामनादायक नानारत्नसम्पन्न मनोहर सोपानयुक्त पुण्यतम आगस्त्य-कुण्ड विद्यमान है महादेवीके चारों कुण्ड दुःख विनाश करनेवाले हैं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

माघे च कार्त्तिके चैव शुक्लपक्षे वरानने ।
दशम्यां स्नानमात्रेण पुष्करस्य फलं लभेत् ॥ ८९ ॥

हे वरानने ! माघ वा कार्तिकके शुक्लपक्षकी दशमीमें स्नान मात्र कर-नेसे पुष्कर तीर्थका फल प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥

शतजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
सहस्रजन्मजं पापं विषुवे च दिनक्षये ॥ ९० ॥

और सौ जन्मका किया हुआ पाप तत्काल नष्ट होता है और विषुव और तिथिक्षयमें हजार जन्मका पाप नष्ट होनेपर पुण्यलोक लाभ करता है ॥ ९० ॥

पौषे च कर्कटे चैव कृष्णाष्टम्यां महेश्वरि ।
स्नानञ्च वर्जयेद्देवि भार्याहानिर्भवेद्यतः ॥ ९१ ॥

हे महेश्वरी ! पौष, कर्कट और कृष्णाष्टमीमें स्नान न करै, हे देवि ऐसा करनेसे भार्याकी हानि होती है ॥ ९१ ॥

यथा वराणसी पुण्या तथा पुण्या न संशयः ।
गुह्यतीर्थं परं देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ ९२ ॥

वाराणसी जिस प्रकार पुण्यमयी है यह भी वैसेही है इसमें सन्देह नहीं । हे देवि ! यह परमगुह्यक्षेत्र है ॥ ९२ ॥

एतद्गुह्यतमं क्षेत्रमेतद्गुह्यतरं परम् ।
यत्र गत्वा नरः सद्यो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ९३ ॥

यह तीर्थ परमगुह्यतम है, इसमें गमन करनेसे मनुष्य तत्कालही सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ९३ ॥

तत्र देवो महादेवो यत्र देवी सरस्वती ।
गङ्गादिसरितः सर्वाः समुद्राः सप्त चैव हि ॥ ९४ ॥

यहां महादेव देवी सरस्वती, गंगादि सरिद्गण, सात समुद्र ॥ ९४ ॥

नदाः शोणादयो यत्र तीर्थानि च सरांसि च ।
किम्वा वामे परीतस्य कुण्डस्य परमेष्ठिनः ।
न शक्यो विस्तराद्वक्तुं मया जलजलोचने ॥ ९५ ॥

शोणादि नद और सब तीर्थ तथा सब सरोवर परमेष्ठीके कुण्डके वाममें विराजित हैं । हे कमलके समान नेत्रोंवाली ! मैं अब विस्तार सहित वर्णन करनेमें असमर्थ हूं ॥ ९५ ॥

यथा चराचरं सर्वं त्रैलोक्यं त्रासयेल्लघु ।
तथा त्रायस्व मां नित्यं तीर्थवर्य नमोऽस्तुते ॥ ९६ ॥
तस्य क्षेत्रस्य चाग्नेये किञ्चित्पश्चिमगोचरे ॥
एकविंशद्धनुर्मानं वासवं नाम तीर्थकम् ॥ ९७ ॥

" यथा चराचरं सर्वं त्रैलोक्यं त्रासयेल्लघु । तथात्रायस्व मां नित्यं तीर्थवर्य नमोस्तुते " इस मन्त्रसे वहां पूजार्घ्यादि प्रदान करे । उस क्षेत्रके आग्नेय कोणमें कुछेक पश्चिमकी ओर इक्कीस धनुः परिमित वासव नामक तीर्थ है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

वासवे परमे तीर्थे स्नात्वाभ्यर्च्य च वासवम् ।
शक्रबीजेन देवेशि चेष्टं हि सदनं व्रजेत् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पृथ्व्यां त्वर्घ्यं निवेदयेत् ॥ ९८ ॥
वासवाख्यं महातीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ।
भवाम्भसि निमज्ज्याथ यथोक्तफलदो भव ॥ ९९ ॥

- परम तीर्थ वासवमें स्नान और शक्रबीजसे वासव (इन्द्र) की पूजा करके अभिलषितस्थानके जानेमें समर्थ होता है "वासवाख्यं महातीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् । भवाम्भसि निमज्ज्याथ यथोक्त फलदो भव" इस मन्त्रसे अर्घ्य निवेदन करना चाहिये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

तस्य पश्चिमतो देवि नातिदूरे व्यवस्थितम् ।
धनुः सप्तप्रमाणेन रम्भातीर्थं महेश्वरि ॥ १०० ॥

हे महेश्वरि । उसकी पश्चिम दिशामें थोड़ीही दूर स्थित सात धनुः प्रमाण रम्भानामक तीर्थ है ॥ १०० ॥

रम्भातीर्थे नरः स्नात्वा रूपवानभिजायते ।
भर्त्रा सह मृता यापि ज्ञानान्नारी पतिव्रता ।
रम्भालोकश्च तदनु तदन्ते भवनं हरेः ॥ १०१ ॥

मनुष्य रम्भातीर्थमें स्नान करके रूपवान् होते हैं । पतिव्रता नारी भर्त्ताके सहित वहां ज्ञानपूर्वक प्राणत्याग कर पहिले रम्भालोक और फिर हरिके लोकमें जाती है ॥ १०१ ॥

याति नास्त्यत्र सन्देहः शेषे च गुरुवासरे ।
ब्रह्मकर्मसमुद्भूते सर्वकामप्रदे शुभे ॥ १०२ ॥
कामद्रवे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् ।
स्नात्वा तु येन रम्भायै मन्त्रेणार्घ्यं निवेदयेत्॥१०३॥

वहां गुरुवारमें "ब्रह्मकर्मसमुद्भूते सर्वकामप्रदे शुभे । कामद्रवे नमस्तेस्तु त्राहि मां भवसागरात् । इस मंत्रसे स्नान करके रम्भाको अर्घ्यप्रदान करै ॥ १२ ॥ १०३ ॥

क्षेत्रस्य पश्चिमे भागे धनुस्त्रिंशत्प्रमाणतः ।
तत्रैव रुक्मिणीकुण्डं स्नात्वा ब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥१०४॥

क्षेत्रके पश्चिमभागमें त्रिंशत् (तीस) धनुः प्रमाण उसी स्थानमें रुक्मिणीकुण्ड है वहां स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मपुरमें जाता है ॥ १०४ ॥

मुखस्य क्षालनं कृत्वा नारी वा पुरुषोऽपि वा ।
रूपवान् परलोके तु जायते नात्र संशयः ॥ १०५ ॥

पुरुष हो वा स्त्री हो इस तीर्थमें मुख धोनेसे परलोकमें रूपलाभ करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १०५ ॥

स्नानं कन्दर्पबीजेन शृणु क्षालनमन्त्रकम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानैः क्षालितं वदनं त्वयि ।
रूपवानाश्विनोर्याति रूपं सत्येन देहि मे ॥ १०६ ॥

कन्दर्प बीज मन्त्रसे स्नान करना चाहिये "ब्रह्मविष्णुऽमहेशानैः क्षालितं वदनं त्वयि । रूपवानाश्विनोर्याति रूपं सत्येन देहि मे । यही मुखप्रक्षालनका मन्त्र है ॥ १०६ ॥

तस्य क्षेत्रस्य वायव्ये धनुरष्टकसम्मितम् ।
पितृणां परमं तीर्थं स्नानाद्याति परां गतिम् ॥ १०७ ॥

उस क्षेत्रके वायव्यमें अष्ट धनुः परिमित पितृगणोंका परमतीर्थ है वह-स्नान करनेसे परमगति प्राप्त होती है ॥ १०७ ॥

पितृतीर्थ महाभाग स्वयं देवाष्टसत्कृत ।
तृप्तिहेतोर्महाभाग अघोरान्मां पुनीहि ताः ॥ १०८ ॥

"पितृतीर्थं महाभाग स्वयं देवाष्टसत्कृत । तृप्तिहेतोर्महाभाग अघोरान्मां पुनीहि ताः" ॥ १०८ ॥

अत्र स्नात्वा च मन्त्रेण पितृमेधफलं लभेत ।
आगस्त्यस्य तु दक्षे च गत्वा स्नात्वा सुतर्प्य च॥१०९
धनुर्वेदप्रमाणश्च गवाक्षगति वै सरः ।
तत्र गत्वा च सप्तम्यां पितृणामनृणो भवेत ॥ ११० ॥

इस मंत्रसे वहां स्नान करनेपर पितृमेध यज्ञका फल मिलता है। आगत्यके दक्षिणमें जाय स्नान, तर्पण करनेके पीछे चार धनुःप्रमाण गवाक्षगति तीर्थमें जानेपर पितरोंकेऋणसे मुक्त होता है ॥ १०९ ॥११०॥

गयातीर्थं महातीर्थं पितॄणां नास्ति तत्समम् ।
पावनं सर्वतीर्थेषु मां पुनीतादिति पापतः ॥ १११ ॥

गयातीर्थ महातीर्थ है, इसकी समान पितरोंका उद्धार करनेवाला दूसरा तीर्थ नहीं है यह सब तीर्थोंमें पवित्र है। सो मुझे पापसे पवित्र करो ॥ १११ ॥

अनेन कृत्वा स्नानं तु धृत्वा वै धौतवाससी ।
विधाय तिलकं दद्यात् कुर्यात्क्षेत्रे प्रदक्षिणम् ॥११२॥

इस मंत्रसे स्नान करके उठने पर धुले वस्त्र पहर तिलक लगाकर क्षेत्रकी प्रदक्षिणा करै ॥ ११२ ॥

गत्वा दशाश्वक्षेत्रे च पिण्डं दद्यात्समाहितः ।
तत्र षोडशकैर्देवि पितॄन् संतर्पयेद्बुधः ॥ ११३ ॥

फिर दशाश्वक्षेत्रमें जाकर सावधानचित्तसे पिण्ड देना चाहिये। हे देवि ! पण्डितगण षोडशोपचार द्वारा पितरोंकी पूजा करै ॥ ११३ ॥

क्षीरेण मधुना चैव पादापनयनेन च ।

दक्षिणादिक्रमाच्चात्र एकैकाहस्तकान्तरे ।
देवीषोडशकं तत्र प्रतिदेवीं समर्चयेत् ॥ ११४ ॥

तदनन्तर क्षीर मधु और पादपानयन द्वारा (गंगाजल) से अर्चना करै । इस स्थानमें एक एक हस्तप्रमाण षोडश (१६) देवी है, दक्षिणादिक्रमसे उन सब देवियोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ११४ ॥

गयाकूपे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवमुमापतिम् ।
आत्मानं तारयेत्सद्यो दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ११५ ॥

मनुष्यगण गयाकूपमें स्नान और देवदेव उमापतिका दर्शन करके आत्माका तारण और ऊपर नीचेके दश दश पुरुष पवित्र करतेहैं॥११५॥

विष्णुर्ब्रह्मा च रुद्रश्च अगस्त्यश्च शतक्रतुः ।
क्रौञ्चश्चैव गणेशश्च कुमारश्च प्रजापतिः ॥ ११६ ॥

विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, अगस्त्य, शतक्रतु, (इन्द्र) गणेश, क्रौंच कुमार प्रजापति ॥ ११६ ॥

च्यवनः कश्यपश्चैव पुलस्त्यश्च यथाक्रमम् ।
अश्वक्रान्तस्य वृद्धश्चैवमागत्यामृतवासरे ।
अत्र स्थातुं पृथक् पिण्डमन्यत्र पतिना सह ॥ ११७ ॥

च्यवन, कश्यप और पुलस्त्य इन्होंने क्रमानुसार अश्वक्रान्त और अगस्त्यके समान इस स्थानमें स्थिति की है यह, माताका पृथक् पिण्ड देना चाहिये, अन्यत्र पतिके सहित पिण्ड देना उचित है ॥ ११७ ॥

दशाश्वमेधे यः पिण्डो नाम्ना येषान्तु निर्वपेत् ।
भुविस्थाश्च दिवं यान्ति स्वर्गस्थामोक्षमाप्नयुः ॥११८॥

दशाश्वमेधमें जिसके नामसे पिण्ड दिया जाय वह स्वर्गस्थ होनेपर उसको मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ११८ ॥

येऽस्मत्कुले च पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥
ये चाप्यकृतचूडाश्च ये च गर्भाद्विनिःसृताः ॥११९॥
येषां पाणिग्रहो नैव येऽग्निदग्धास्तथापरे।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥१२०॥

हमारे कुलमें जिन पितरोंकी पिण्डोदकक्रिया लुप्त हुई है, जो जो मुण्डन होनेसे प्रथम ही मरगये हैं वा जो जो मनुष्य गर्भनिःसृत हैं जिन जिनका विवाह नहीं हुआ है, जो मनुष्य अग्निमें दग्ध हुए हैं वह सब इस भूमिमें दिये पिण्ड द्वारा तृप्त और तृप्त होकर परम गतिको प्राप्त हों॥११९-१२०

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥ १२१॥
तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च।
ये च सिंहव्याघ्रहतास्त्वन्यश्चै प्रहताश्च ये।
दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ॥१२२॥

पिता, पितामह, प्रपितामह, माता पितामही, प्रपितामही तथा मातामह, प्रमातामह और जो कोई सिंह व्याघ्रादि द्वारा अथवा अन्य हिंसकादि द्वारा वा दाढ और सींगवाले जन्तुके द्वारा मरे है मैं उनको पिण्ड देता हूं॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथापरे।
विद्युच्चौरहता ये च तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ॥१२३॥

जो कोई अग्नि द्वारा वा अन्य भांति आग्नेयादिद्वारा एवं विद्युतादि द्वारा मरे हैं मैं उनको पिण्ड देता हूं॥ १२३ ॥

पशुयोनिं गता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः।
अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेषां पिण्डं ददाम्यहम्॥१२४॥

जो पशुयोनि वा पक्षी कीट सरीसृपादि योनि अथवा वृक्ष योनिको प्राप्त हुए हैं मैं उनको पिण्ड देता हूं ॥ १२४ ॥

असंख्यजनसंस्था ये ये नीता यमशासनम् ।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ १२५ ॥

जो असंख्यजन संस्थित हैं (अर्थात् जो बहुतसे लोगोंको पालन करनेवाले हैं) वा जो युद्धादि द्वारा यमसदनमें गये हैं मैं उनका उद्धार होनेके निमित्त यह पिण्ड देता हूं ॥ १२५ ॥

जात्यंतरसहस्राणि भ्रमन्ति स्वेन कर्मणा ।
मनुष्यान्तर्गता ये च तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ॥१२६॥

जो अपने कर्मके फलसे सहस्रों जातियोंके अन्तरमें घूमते हैं जिन्होंने मनुष्य जन्म लिया है, मैं उनको यह पिण्ड देता हूं ॥ १२६ ॥

अन्येषां यातनास्थानां प्रेतलोकनिवासिनाम् ।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ १२७ ॥

जो अन्य प्रकारके यातना स्थानमें स्थित हैं; जो प्रेतलोक निवासी हैं, उनके उद्धारके निमित्त मैं यह पिण्ड देता हूं ॥ १२७ ॥

येऽबान्धवा बान्धवाश्च येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ॥ १२८ ॥

जो बांधव वा अबांधव अथवा जो अन्य जन्ममें बांधव थे, इस पिण्डद्वारा वह सब तृप्तिलाभ करैं ॥ १२८ ॥

ये ये पितृकुले जाताः कुले मातुस्तथैव च ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवाः स्मृताः ॥१२९॥

ये ये कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदाराविवर्जिताः ।
क्रियालोपहता ये च जात्यन्धाः पंगवस्तथा ॥१३०॥

विरूपा आमगर्भाश्च ये च जाताः कुले मम ।
तेषां पिण्डं मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ १३१ ॥

जिन्होंने पितृकुल मातृकुल, गुरुकुल, श्वशुरकुल वा बन्धुकुलमें जन्म लिया है, अथवा अन्यरूपमें बांधव और जिस कुलमें पिण्डलोप हुआ है, उस कुलके औरजो पुत्र स्त्री हीन हैं, जिनके कुलमें क्रियालुप्त होगई है, जो जन्मान्ध और जो पंगु हैं जो विरूप वा सगर्भ हैं, जिन्होंने मेरे कुलमें जन्म लिया है, मैं उनको पिण्ड देता हूं अक्षयरूपको प्राप्त हो ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

ये बान्धवा ये पितृवंशजाता
मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः ।
कुलद्वयेऽस्मिन्मम दासभूता
भृतेस्तथैवामृतसेवकाश्च ॥ १३२ ॥
मित्राणि सख्यः सुहृदश्च सर्वे
स्पृष्टाश्च दृष्टाश्च कृतोपकाराः ।
जन्मान्तरे ये मम संगताश्च
तेभ्योन्तिमं पिण्डमहं ददामि ॥ १३३ ॥

जो बांधव और पितृवंशोत्पन्न तथा मातृवंशोत्पन्न हैं, जो हमारे अदि-काय, हमारे दोनों कुलमें जो दास, सूत, भृत्य और सेवक हैं, एवं मित्र, सखा परसखा वृक्ष पुष्प दुष्ट और उपकार करनेवाले तथा जो जन्मान्त-रमें मेरे दास भूतहैं मैं उनको यह अंतिम पिण्ड देताहूं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

सूर्यकुण्डस्य वायव्ये धनुर्दण्डान्तरे स्थितः ।
देवो गदाधरस्तत्र प्रणिपत्य प्रदापयेत् ॥ १३४ ॥

सूर्यकुण्डके वायव्यकोणमें धनुर्दण्डान्तरमें गदाधरदेव स्थित हैं, उनको प्रणाम करके पिण्डदान करे ॥ १३४ ॥

साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ।
मया गयां समासाद्य पितृणां निष्कृतिः कृता॥१३५॥
आगतोऽहं गयां देव पितृकार्ये गदाधर ।
त्वमेव साक्षी भगवाननृणोऽहं ऋणत्रयात् ॥ १३६ ॥

देवगण, ब्राह्मणगण और वसुगण तुम मेरे साक्षी हो, मैंने गयामें आनकर पितरोंका छुटकारा किया । हे गदाधर ! मैं पितृकार्यके लिये गयामें आया हूं हे देव ! तुम साक्षी होओ, मैं तीनों ऋणसे मुक्त हुआ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

पितृपिण्डस्य मध्ये तु पिण्डं दद्याच्च षोडश ।
वर्त्तुलं कारयेत्पिण्डं क्षीरधारां सुपातयेत् ॥ १३७ ॥

पितृपिण्डके मध्यमें सोलह पिण्ड देवे । पिण्ड गोलाकार करके उनमें दूधकी धार छोड़े ॥ १३७ ॥

गदाधरस्य वामेतु नाति दूरेण शङ्करि ।
तत्र मातृगया देवि दक्षिणेन सुतीर्थकम् ॥ १३८ ॥
तथा गदाधरं देवं केशवं पुरुषोत्तमम् ।
तं प्रणम्य प्रयत्नेन न भयं जायते नृणाम् ॥ १३९ ॥

हे शंकरि ! गदाधरके वामभामें थोड़ीही दूर मातृगया और दक्षिणमें सुतीर्थक है, वहां गदाधर देव केशव पुरुषोत्तमको यत्नसहित प्रणाम करनेसे मनुष्यको फिर जन्म लेना नहीं पड़ता ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

मौनादित्यं महात्मानं कनकार्कं विशेषतः ।
दृष्ट्वा मौनेन विप्रर्षिः पितृणामनृणो भवेत् ।
ब्रह्माणं पूजयित्वा च ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ १४० ॥

विप्रर्षिगण महात्मा मौनादित्यका और विशेषकर कनकादित्यका

मौनावलम्बनसे दर्शन करके पितरोंके अनुगामी होते हैं, वहां ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ॥ १४० ॥

उर्व्वश्या दक्षिणे तीरे या शिला तुङ्गगा प्रभा ।
सा विज्ञेया च गायत्री पूजयेद्गन्धचन्दनैः ॥ १४१ ॥

उर्वशीके दक्षिणतीरमें जो (उन्नत और प्रकाशवान्) शिला है, उसीको गायत्री जानना चाहिये, गन्ध चन्दनादिद्वारा उसकी पूजा करै ॥ १४१ ॥

प्रातरुत्थाय गायत्रीमुपागम्य तु नामशः ।
सन्ध्यां कृत्वा प्रयत्नेन सर्व्ववेदफलं लभेत् ॥ १४२ ॥

प्रातःकालमें उठकर गायत्रीके समीप गमनपूर्वक परमयत्नसे संध्या करनेपर चारों वेदका फल प्राप्त होता है ॥ १४२ ॥

सावित्रीश्चैव मध्याह्ने दृष्ट्वा यज्ञफलं लभेत् ।
दशाश्वमेधे धनदो देवदेवो जनार्दनः ॥ १४३ ॥

और मध्याह्नमें सावित्रीका दर्शन करनेपर यज्ञका फल पाता है । दशाश्वमेधमें धनदत्तदेवदेव जनार्दन स्थित हैं ॥ १४३ ॥

तत्र पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती ॥ १४४ ॥

वहां पिण्डदान करनेसे नित्य तृप्तिलाभ होता है ॥ १४४ ॥

गयायां पितृरूपेण देवदेवो जनार्दनः ।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात् ॥ १४५ ॥

गयाधाममें देवदेव जनार्दन पितृरूपसे स्थित हैं उन पुण्डरीकाक्ष देवका दर्शन करनेपर तीनों ऋणसे छुटकारा मिलता है ॥ १४५ ॥

दृष्ट्वा पितामहं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४६ ॥

मनुष्यगण वहां पितामहदेवका दर्शन करके सब पापोंसे छूट जते हैं ॥ १४६ ॥

मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु आगस्त्ये पिण्डपातनम् ॥ १४७ ॥

मकर संक्रमण और चन्द्र सूर्यके ग्रहणकालमें अगस्त्य तीर्थमें पिण्डदान करनेका सुअवसर प्राप्त होना तीनों लोकमें दुर्लभ है ॥ १४७ ॥

आत्मजो वा तथान्यो वा गयाकूपेऽश्वमेधिके ।
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १४८ ॥

आत्मज हो वा अन्य हो गया कूपके अश्वमेधिकमें जिस नामसे पिण्ड निक्षेप करेगा उसको शाश्वत ब्रह्मधाममें लेजायगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ १४८ ॥

तद्ब्रह्मकल्पितं स्थानं विप्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः ।
पूजितैः पूजिताः सर्वे पितृभिः सह देवताः ॥ १४९ ॥

ब्रह्मकल्पित विप्रगण उस ब्रह्मकल्पित स्थानमें पूजित पितरोंके सहित देवताओंके द्वारा पूजित होते हैं ॥ १४९ ॥

तर्पयेत्तु गयाविप्रान्हव्यकव्यविधानतः ।
दानं चैव परित्यागो गयायान्तु विधीयते ॥ १५० ॥

गयामें हव्य कव्य विधानसे ब्राह्मणोंको तृप्त करे । गयामें दान करना चाहिये ॥ १५० ॥

यः करोति महादानं वृषोत्सर्गं करोति यः ।
दशाश्वमेधिके चैव पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १५१ ॥

जो मनुष्य दशाश्वमेधिमें महादान वा वृषोत्सर्ग करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १५१ ॥

चतुःषष्टिर्धनुर्मानं क्षेत्रमागस्त्यमीरितम् ।
पञ्चपञ्चाशतं तीर्थमुक्तं तीर्थं सुमध्यमे ॥ १५२ ॥

हे सुमध्यमे ! आगस्त्यक्षेत्र चौंसठ धनुःपरिमित है, उसमें पञ्चपञ्चाशत् (५५) तीर्थ हैं ॥ १५२ ॥

उर्वशी च तथा सूर्यः कामः पुत्रश्च वासवः ।
आगस्त्यश्चाश्वमेधश्च तीर्थसारो गयाबिलः ॥१५३॥

हे देवि ! उर्वशी, सूर्य, काम, पुत्र, वासव, आगस्त्य, अश्वमेध और गयाबिवल यह सब तीर्थसार हैं ॥ १५३ ॥

उद्बन्धनमृता ये च गलपाशान्मृताश्च ये ।
चितिं स्पृष्ट्वा च या नारी क्रिया तेषां न विद्यते ।
नान्त्येष्टिर्न च दाहश्च नाशौचं तेषु विद्यते ॥ १५४ ॥

जो किसी प्रकारके बंधन द्वारा और जो फांसीसे मरे हैं. जिन स्त्रियोंने चिताका स्पर्श किया है उनका अन्त्येष्टि, दाह, अशौच और क्रियादि नहीं है ॥ १५४ ॥

आगस्त्ये च गयायाञ्च क्रियां कुर्य्यात्त्रिरात्रकम् ।
अमायाञ्च समारभ्य कुर्य्याच्चैव त्रिरात्रकम् ॥१५५॥

आगस्त्य और गयामें तीन रात क्रिया करनी चाहिये अमावस्यासे आरम्भ करके तीन रात क्रिया करे ॥ १५५ ॥

अन्यत्र च क्रिया तेषां यः करोति स दुर्मतिः ।
विफला च क्रिया तेषां चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ।
ततः शुद्धिमवाप्नोति अन्यथा नारकी भवेत् ॥१५६॥

जो दुर्मति अन्यत्र उनकी क्रिया करता है, उसकी वह क्रिया विफल होती है, वह चन्द्रायण व्रत करके शुद्ध होवे, नहीं तो नारकी होता है ॥ १५६ ॥

अश्वतीर्थे कृतं पापं गयायान्तु विनश्यति ।
गयायां यत्कृतं पापं रामक्षेत्रे विनश्यति ॥ १५७ ॥

अश्वतीर्थमें पाप करनेसे वह गयामें नष्ट होता है और गयामें पाप करनेसे रामक्षेत्रमें नष्ट होता है ॥ १५७ ॥

रामक्षेत्रे कृतं पापं मणिकूटे विनश्यति ।
मणिकूटे कृतं पापं नीलशैले विनश्यति ॥ १५८ ॥
नीलशैले कृतं पापमन्तर्गेहे विनश्यति ।
अन्तर्गेहे कृतं पापं सोमतीर्थे विनश्यति ॥ १५९ ॥

रामक्षेत्रमें पाप करनेसे वह मणिकूटमें नष्ट होता है मणिकूटमें पाप करनेसे नील शैलमें और नीलमें पाप करनेसे अन्तर्गेहमें नष्ट होता है, अन्तर्गेहका किया पाप सोमतीर्थमें नष्ट होता है ॥१५८॥१५९॥

सोमतीर्थे कृतं पापं मङ्गलायां व्योपोहति ।
मङ्गलायां कृतं पापमागस्त्ये तु विनश्यति ॥ १६० ॥

सोमतीर्थका किया पाप मङ्गलामें दूर होता है और मंगलाका किया पाप आगस्त्यमें नष्ट होता है ॥ १६० ॥

आगस्त्ये यत्कृतं पापं मन्दरे तद्विनश्यति ।
मन्दरे यत्कृतं पापं वज्रलेपे विनश्यति ॥ १६१ ॥

आगस्त्यका किया पाप मन्दरमें नष्ट होता है और मन्दरका किया पाप वज्रलेपमें नष्ट होता है ॥ १६१ ॥

वज्रलेपाच्च यत्पापमश्वक्रान्ते विनश्यति ।
अश्वक्रान्ते कृतं पापमुर्व्वश्यां तद्व्यपोहति ॥१६२॥

वज्रलेपका किया पाप अश्वक्रांतमें नष्ट होता है और अश्वक्रान्तका किया पाप उर्वशीमें नष्ट होता है ॥ १६२ ॥

माहात्म्यश्रवणे नाथ संहिताश्रवणेन वै ।
दिनं नयेन्महेशानि रात्रौ विष्णुं विचिन्तयेत् ।
कृत्वा वासन्तु तत्रैव नक्तं भोज्यं न वै भवेत् ॥१६३॥

हे महेशानि ! माहात्म्य और संहिता सुननेमें दिन बितावैं और रात्रिमें विष्णुका चिन्तन करै । वहां वास करके रात्रिमें भक्षण न करै ॥ १६३ ॥

ततोऽन्यदिवसे काल्या चागस्त्ये स्नानमाचरेत् १६४

तदन्तर अन्य दिनमें काल्या आगस्त्य तीर्थमें स्नान करै ॥ १६४ ॥

भस्माचलं स्पृशी धारा सा विज्ञेया सरस्वती ।
तत्र गत्वा महेशानि अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ १६५ ॥

जो धरा भस्माचलका स्पर्श करती है, वहां सरस्वती है. हे महेशानि ! वहां गमन करनेसे अग्निष्टोमयज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है ॥ १६५ ॥

विष्णोर्वक्षः स्थिते भद्रे मकरन्दप्रिये शुभे ।
जन्मजन्मार्जितं पापं हर मे परमेश्वरि ॥ १६६ ॥

हे भद्रे ! तुम विष्णुके वक्षस्थलमें स्थित हो और मकरन्दकी प्रिया हो । हे परमेश्वरि ! मेरे जन्मजन्मार्जित पापोंको दूर करो ॥ १६६ ॥

स्नायादनेन मन्त्रेण कार्त्तिकीश्च विशेषतः ॥ १६७ ॥

इस मंत्रद्वारा स्नान और विशेषकर कार्तिकीमें स्नान करै ॥ १६७ ॥

देवस्य पूर्वभागे तु वापी तिष्ठति शोभना ।
तस्याः स्वच्छोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥१६८ ।

देवके पूर्वभागमें शोभना वापी स्थित है, उसका स्वच्छ जल पीनेसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता अर्थात् मोक्ष होजाता है ॥ १६८ ॥

आग्नेये भस्मशैलस्य धनुरष्टप्रमाणतः ।
पिशाचमोचनं नाम तीर्थं परम पावनम् ॥ १६९ ॥

हे कल्याणी ! भस्मशैलके आग्नेय कोणमें अष्ट धनुःप्रमाण पिशाचमोचन नामक परम तीर्थ है ॥ १६९ ॥

पिशाचमोचने तीर्थे पूजयेच्चैव शूलिनम् ।
इदं देवस्य तल्लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम् ॥ १७० ॥

इस पिशाच मोचनक नामक तीर्थमें भगवान् त्रिलोचन (शिव) की पूजा करै यहां देवाधिदेव (महादेवका) कपर्दीश्वर नामक लिङ्ग है ॥ १७० ॥

वायव्ये भस्मकूटस्य धनुःपंचप्रमाणतः ॥ १७१ ॥

भस्मकूटके वायु कोणमें पांच धनुः परिमाण ॥ १७१ ॥

कपालल्लोचनं नाम तीर्थेभ्यस्तीर्थमुत्तमम् ।
पूजनीयं प्रयत्नेन स्तोतव्यं विविधैस्तवैः ॥ १७२ ॥

कपालल्लोचन नामक उत्तम तीर्थ है वहां परमयत्नसहित विविध स्तुति और पूजा करै ॥ १७२ ॥

कपालं पतितं तस्य स्थाने च मम सुन्दरि ॥
तस्मिन् स्नातो वरारोहे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१७३॥
कपालेश्वरमीशानमस्मिंस्तीर्थे व्यवस्थितम् ॥
तस्योत्तरे धनुः पञ्चमिते वै कपिला शिवे ॥
तत्र स्नात्वा वरारोहे मुच्यते भवबन्धनात् ॥१७४॥ से

हे देवि ! वहां मेरा कपाल गिरा है वरारोहे ! उसमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्याका पाप नष्ट होता है, इस तीर्थमें कपालेश्वर ईशानमें स्थित हैं, हे शिवे ! इसके उत्तर भागमें पंचधनुः प्रमाण कपिलातीर्थ है, हे वरारोहे ! उसमें स्नान करनेपर मनुष्य संसारके बंधनसे छूटजाता है॥१७३॥१७४॥

कपिलाह्रदतीर्थेऽस्मिन्स्नात्वा संयतमानसः ।
वृषध्वजं शिवं दृष्ट्वा सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ १७५ ॥

हे प्यारी ! संयतमन हो इस कपिलाह्रद तीर्थमें स्नान करनेके पीछे वृषध्वजका दर्शन करनेसे सर्व यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ १७५ ॥

पूर्वाशाभिमुखेनैव आरोहेद्भस्मकूटकम् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पूजयित्वा प्रशस्यते ॥ १७६ ॥

वृषाचल नमस्तेऽस्तु धर्ममार्गत्रिविष्टप ।
आरोहयामि शिखरं भस्मकूट नमोऽस्तु ते ॥ १७७ ॥

पश्चिमाभिमुखं यस्तु आरोहेत्पर्वतं यदि ।
दशजन्मकृतं पुण्यं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ १७८ ॥

पूर्वमुख हो भस्मकूटमें आरोहण करे, हे वृषाचल ! तुमको नमस्कार है हे धर्ममार्गके वैकुण्ठ ! मैं शिखरपर चढ़ता हूं, हे भस्मकूट ! आपको प्रणाम है. इस मन्त्रसे पूजा करनेपर पुण्यलोक प्राप्त होता है यदि कोई पश्चिम मुख होकर पर्वतपर आरोहण करे तो उसके दश जन्मका किया पुण्य तत्काल ही नष्ट होता है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

उत्तराभिमुखो यश्च यस्त्वैशान्यसुसंमुखः ।
धनं पुत्रं कलत्रञ्च सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ॥ १७९ ॥

जो उत्तरकी ओर वा ईशान कोणकी ओरको मुख करके आरोहण करता है, उसका धन और पुत्रकलत्रादि (स्त्री आदि) तत्काल सब नष्ट होते हैं ॥ १७९ ॥

अन्यद्वारं प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं शुभम् ।
वृषध्वजस्य माहात्म्यं शृणु देवि वरानने ॥ १८० ॥

संयुक्ता सोमवारेण ह्यमावस्या भवेद्यदि ।
तदा भस्माचलं गत्वा देवमभ्यर्च्य यत्नतः ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य स गच्छेत्परमं पदम् ॥ १८१ ॥

हे वरानने देवि ! गुह्यसे भी गुह्य शुभकारक वृषध्वजका माहात्म्य सुनो मनुष्य सोमवारयुक्त अमावस्याको भस्माचलमें जाय यत्नसहित देवताओंकी पूजा करनेसे इक्कीस कुलका उद्धार करके स्वयं परमपदको प्राप्त होता है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

गन्धाद्यैः स्नापयेल्लिङ्गं कमलैः सुमनोहरैः ।
पञ्चामृतेन तोयेन चन्दनेन विलेपयेत् ॥ १८२ ॥

मनोहर कमल और गन्धादिद्वारा उस लिंगको स्नान करानेके पीछे उसका पंचामृत जल चन्दनसे विलेपन करे ॥ १८२ ॥

महात्मना ततः कार्यं मासान्ते प्रतिपर्वणि ।
बिल्वपत्रेण संपूज्य रत्नतोयेन स्नापयेत् ॥ १८३ ॥

तदनन्तर महीनेके पीछे प्रतिपर्वमें रत्नतोयद्वारा स्नान कराकर बेल पत्रसे पूजा करे ॥ १८३ ॥

प्रसादेन तु मन्त्रेण रुद्रपुष्पेण पूजयेत् ।
बन्धूकेन जयन्तेन मालूरेण विशेषतः ॥ १८४ ॥

फिर प्रसाद मन्त्र और रुद्रपुष्प बन्धूक (दुपहरिया) जयन्त और विशेषकर बिजोरेसे पूजा करे ॥ १८४ ॥

ध्येयः प्रीतो देवदेवः पिनाकी
प्रांशूनेत्रैर्दीप्यमानैस्तृतीयैः
लोलैः साक्षात्सर्वपापौघहर्त्ता
पञ्चास्यं वै धारयन्देवदेवः ॥ १८५ ॥
बिभ्रद्देहे चर्म वैयाघ्रकाण्डं
भूत्या शुभ्रं चन्द्रकान्तं वपुश्च ।
देव्या गात्रे नीलदेहो मुखश्च
स्पृष्ट्वा पाणिं पाणिना सुप्रसन्नः ॥ १८६ ॥

तदनन्तर देवदेव पिनाकी चपल त्रिनेत्रद्वारा दीप्यमान सर्वपापौघ हर्ता देवदेव पंचमुख, व्याघ्रचर्म, विभूतिशुभ्र, चन्द्रमाद्वारा मनोहर शरीर, हाथसे देवीका हाथ स्पर्श करनेवाले नीलदेह महेश्वरका ध्यान करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

पत्रेषु पूजयेदेता देवताः परमेष्ठिनः ।
धाम धर्मं तथा सूक्ष्मं विष्णुं नारायणं हरम् ॥१८७॥
विज्ञेयं विरजं विश्वं मध्यादि प्रतिपूजयेत् ।
शक्तीः संपूजयेच्चैव रामाद्याः प्रोक्तलक्षणाः ॥ १८८ ॥
बाह्ये संपूजयेद्भक्त्या श्रीकण्ठाद्याश्च तद्बहिः ।
पीठेशांश्च तथा बाह्ये पीठेशांश्चाग्रतोऽर्चयेत ॥१८९॥

फिर पत्रादिद्वारा परमेष्ठी, देवगण धाम, धर्म सूक्ष्म, विष्णु नारायण हर, विरज और विश्वादिकी पूजा करे, तदनन्तर उक्त लक्ष्मण रामादि शक्तियोंकी भक्तिपूर्वक बहिर्देशके पूजा करे, इसके पीछे बाहर श्रीकण्ठादिकी और अग्रभागमें पीठेशगणोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ १८७ ॥ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

त्रैयम्बकेण मन्त्रेण पूजयेत्कमलां विना ।
नन्दीशं मुकुटश्चैव दिक्पालान्पूजयेत्क्रमात ॥१९०॥

त्रैम्बक मन्त्रसे कमलाके अतिरिक्त नन्दीश मुकुट और क्रमानुसार दिक्पालोंकी पूजा करे ॥ १९० ॥

एवं संपूज्ज्य देवेशं पूजाभिर्भक्तिमान्नरः ।
प्रणम्य परमेशानमिदं स्तोत्रमुदाहरेत् ॥ १९१ ॥

इस प्रकार मनुष्य भक्तिमान् होकर देवेश परमेशानकी पूजा करके यह स्तोत्र पढे ॥ १९१ ॥

ओं नमस्ते विश्ववर्णाय हिरण्याय कपर्दिने ।
हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः ॥ १९२ ॥
ईशान वज्रसम्भूत हरिकेश नमोऽस्तुते ।
नमो बालार्ककर्णाय ज्वलद्रूपधराय च ॥ १९३ ॥

नमोऽशुद्धाय शुद्धाय सौभगाय क्षयाय च ।
भवांगाऽमितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः ॥ १९४ ॥

नमः षट्कर्मतुष्टाय त्रिकर्मनिरताय च ।
वर्णाश्रमेण विधिवत्पृथक्कर्मप्रवर्त्तिने ॥ १९५ ॥

नमः शोशीयशोशाय करणाय च ते नमः ।
श्वेतपिंगलनेत्राय कृष्णवक्त्रेक्षणाय च ॥ १९६ ॥

धर्मकामार्थमोक्षाय सर्वपापहराय च ।
नमस्त्रिशूलहस्ताय उमाकान्ताय वै नमः ॥ १९७ ॥

ईशानवक्त्रसम्भूत हरिकेश नमोऽस्तु ते ।
प्रसीद पार्वतीकान्त उमानन्दाय वै नमः ॥ १९८ ॥

जो विश्ववर्ण, हिरण्य हिरण्यकर्ण, हिरण्यकृतचूड और हिरण्यपति है, उनको मैं नमस्कार करता हूं. हे ईशान ! वज्रसंभूत ! हे हरिकेश ! आपको नमस्कार करता हूं जो बालार्क कर्ण है अर्थात् जिनके कर्ण बाल सूर्यके समान हैं, जिनका रूप प्रकाशित है, जो शुद्ध स्वरूप अशुद्ध सौभग और अक्षय हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं जो भवांग, अमितकेश और मुक्तकेश हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं । जो षट्कर्ममें सन्तुष्ट त्रिकर्म निरत और जो वर्णाश्रमके विधिपूर्वक पृथक् पृथक् कर्ममें प्रवर्तित होते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं । जो शोशीय, शोश और करण रूप हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं ! जो श्वेत पिंगल नेत्र और जिनका मुख और नेत्र कृष्ण है । जो धर्म अर्थ काम और मोक्षस्वरूप तथा सब पापोंके हरनेवाले हैं, जो त्रिशूलहस्त और उमाकान्त हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूँ । हे ईशानके मुखसे उत्पन्न ! हे हरिकेश ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं । हे पार्वतीकान्त ! प्रसन्न होओ हे उमानन्द ! मैं तुमको नमस्कार करता हूं । ॥ १९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

ततोऽनुज्ञां समादाय कृताञ्जलिपुटस्तदा ।
प्रणम्य पूजयित्वा च इमं मन्त्रमुदीरयेत ॥ १९९ ॥

अनन्तर हाथ जोड़कर आज्ञा ग्रहण करनेके पीछे प्राणाम और पूजा करके यह मंत्र उच्चारण करै ॥ १९९ ॥

उमानन्द नमस्तेऽस्तु पार्वतीप्रीतिवर्द्धन ।
निर्विघ्ना यातु मे सिद्धिर्यस्मात्पूजा कृताद्य मे ॥२००॥
जगन्नाथ प्रसादेन श्रीमत्कामेश्वरं शिवम् ।
देवेश पूजयाम्यद्य आज्ञया ते महेश्वर ॥ २०१ ॥

हे उमानन्द ! तुमको नमस्कार है । हे पार्वतीकी प्रीति बढानेवाले ! मैं इस समय आपकी पूजा करता हूं आप मेरी सिद्धि निरविघ्न कीजिये । हे महेश्वर ! हे देवेश ! हे जगन्नाथ ! मैं आपके प्रसाद और आपकी आज्ञासे अब श्रीमत्कामेश्वरशिवकी पूजा करता हूं ॥ २०० ॥ २०१ ॥

प्राच्यां तस्य समभ्यर्च्यो विष्वक्सेनो जनार्दनः ।
देवस्य पश्चिमे भागे मातंगं नाम क्षेत्रकम् ।
धनुर्द्वाविंशमानेन तत्र वासान्न शोचति ॥ २०२ ॥

उसके पूर्वभागमें विष्वक्सेन जनार्दनकी पूजा करै ॥ देवके दक्षिणभागमें मातंग नामक क्षेत्र है, उसका परिमाण बाईस धनुः है, वहां बासकरनेसे शोककी प्राप्ति नहीं होती ॥ २०२ ॥

तत्र यत्पातकं चीर्णं ब्रह्महत्यासमं भवेत् ।
तच्च यत् सुकृतं किञ्चिदग्निष्टोमफलप्रदम् ॥ २०३ ॥

वहां यत्किंचित् सामान्य पाप करनेसेभी ब्रह्मवधके तुल्य होता है और वहां कुछ थोड़ासा पुण्य करनेपर वह अग्निष्टोमकी तुल्य फल प्रदान करता है ॥ २०३ ॥

मातंगीं पूजयेत्तत्र गन्धाद्यैर्भक्तिमान्नरः ।
मायाबीजेन देवेशि भावेन सुसमाहितः ॥ २०४ ॥

मनुष्यगण भक्तिमान् और भावपूरित होकर सावधान चित्तसे गन्धादिद्वारा मायाबीजसे इसीस्थानमें मातंगीकी पूजा करै ॥ २०४ ॥

तत्रस्थो मन्दरं पश्येद्दक्षिणाभिमुखस्तु यः ।
स सर्वकुलमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥ २०५ ॥

दक्षिणाभिमुख होकर वहां मन्दरका दर्शन करनेसे सर्वकुलका उद्धार करके ब्रह्मलोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ २०५ ॥

नमो मन्दरशैलाय विष्णुरूपाय वेधसे ।
तं दृष्ट्वाथ स्वर्गसंस्थो भवेत्पापव्यपोहनात् ॥ २०६ ॥

मैं मन्दरशैलमें विष्णुरूप विधाताको नमस्कार करताहूं उनके दर्शन संसारके सब पाप दूर करनेपर स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ २०६ ॥

वीक्षेत्सन्ध्याचलं पश्चाद्दिने मन्त्रमुदीरयेत् ।
युगकोटिसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् ॥
क्षयोस्ति गजवक्रे च साक्षी भव मतंगज ॥ २०७ ॥

फिर दिनमें संध्याचलका दर्शन करके पीछे यह मन्त्र उच्चारण करै जो पाप हजारों करोडों युगोंमें इकट्ठे किये हैं, वह गजवक्त्रमें क्षयहोजाते हैं, हे मातंगी ! तुम साक्षी हो ॥ २०७ ॥

ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलवारिकुशान्वितम् ।
उत्थाय प्रणिपातेन दद्यादाचमनीयकम् ॥ २०८ ॥

इस मंत्रसे तिल, जल, कुश, युक्तकरके सूर्यनाराणको अर्घ्य देवे । फिर प्रणामपूर्वक उठकर आचमन प्रदान करना चहिये ॥ २०८ ॥

आदित्यस्य व्रताङ्गे तु चार्घ्यदाने विशेषतः ।
उपविश्य ततो दद्यादन्यत्रोत्थाय दापयेत् ॥ २०९ ॥

आदित्यके व्रतांगमें और विशेषतः अर्घ्यदानमें बैठकर दान करे अन्यत्र उठकर अर्घ्य देना चाहिये ॥ २०९ ॥

अधोमुखश्चार्घ्यपात्रं दत्वाऽर्घ्यान्ते विचक्षणः ।
तत्र चण्डेश्वरं सूर्यं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ २१० ॥

अधोमुख अर्घ्यपात्रमें अर्घ्यदान पूर्वक, बुद्धिमान् मनुष्य वहांके चंडेश्वर सूर्यको प्रणाम करके विसर्जन करे ॥ २१० ॥

दशाश्वमेधे नैर्ऋत्ये दक्षिण्ये मम सुन्दरि ।
इक्षुक्षेपान्तरे यच्च संस्थितं कलिपर्वतम् ॥ २११ ॥
तत्रारोहणमात्रेण सुकृतश्च विनश्यति ।
दुःखितं लिप्यते गात्रे कलिः स्पृशति नान्यथा॥११२

हे सुन्दरी ! दशाश्वमेधके नैर्ऋत और मेरे दक्षिण इक्षुक्षेपान्तर (जितने स्थानमें एक गन्ना रक्खा जाय) में जो कलिपर्वत स्थित हैं उसपर आरोहण करते ही संपूर्ण पुण्य नष्ट होकर दुःख प्राप्त होता है और गात्रमें कलिका स्पर्श होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २११ ॥ २१२ ॥

कलिः स्पृशति यां धारां सा धारा मम वाहिनी ।
सर्वं कलिमलं तीर्थं तथैनं परिवर्जयेत ॥ २१३ ॥

कलि जिस धाराको स्पर्श करता है । उस धाराको मेरी ही वाहिनी जाने यह तीर्थ सर्वत्रही कलिमलमय है अतएव इसको परित्याग करे ॥२१३॥

मन्दरस्य हि चैशान्यां धनुः षोडशकोन्मितम् ।
चक्रतीर्थं महातीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ।
ग्रहोपदोषजश्चैव पातकं यत्कृतं बहु ॥ २१४ ॥

कृष्णे शुक्ले चतुर्थ्यांश्च दृष्ट्वा सिंहे च चन्द्रकम् ।
तद्दोषाः पातकं यच्च सर्वं स्नानाद्विनश्यति ॥२१५॥

मन्दरके ईशान कोणके सोलह धनुः परिमाण सब पापोंका नाश करनेवाला चक्रतीर्थ है इस महातीर्थमें शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी चतुर्थीको और सिंहके चन्द्रमा देखकर स्नान करनेसे ग्रहोपदोषजात (क्रूरग्रह जनित पीडा आदि) सब पातक नष्ट होते हैं ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

अस्थीनि पातयेद्यस्तु सप्तरात्रौ मम प्रिये ।
चक्राङ्कितं भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ २१६ ॥

हे प्यारी ! जो मनुष्य सात रात्रि अस्थिपातन करते हैं । अर्थात् जो मनुष्य उस तीर्थमें सात रातमें अस्थि डाल देते हैं तो वह चक्राङ्कित होते हैं । इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१६ ॥

चक्रतीर्थे व्रतं यत्तु गोपीचन्दनधारणात् ।
प्राप्नोति तत्फलं जन्तुर्मृतौ हरिपुरं व्रजेत् ॥ २१७ ॥

चक्रतीर्थमें व्रत धारण करनेसे गोपीचन्दन धारण करते उसका अक्षय फल पाता है । और मरनेपर हरिपुरमें जाता है ॥ २१७ ॥

द्वारकायां समुद्भूत द्विजन्म भवसागरात् ।
तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवबन्धनात् ॥२१८॥

हे द्वारकामें प्रकट हुए हे द्विजन्मा ! हे तीर्थराज ! आपको प्रणाम है । मेरा भवबन्धन और संसारसागरसे रक्षा करो ॥ २१८ ॥

स्नात्वा तु मन्त्रेणानेन सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा विधातारं प्रपूजयेत् ।
दश पूर्वान् दश परान् आत्मानञ्चैव तारयेत् ॥२१९॥

इस मन्त्रसे स्नान करनेके पीछे सूर्यदेवको अर्घ्य देवे । मनुष्यगण चक्रतीर्थमें स्नान करके विधाताकी पूजा करनेसे दश पहिले और दश पिछले पुरुषोंका तथा अपना तारण करनेमें समर्थ होते हैं ॥ २१९ ॥

चक्रतीर्थं स्पृशन् शैलं नन्दनं नाम पर्वतम् ।
धनुर्द्विषष्टिमानश्च पश्चिमेनैव सुन्दरि ॥ २२० ॥

जिस शैलने चक्रतीर्थ स्पर्श किया है उसका नाम नन्दन पर्वत है उसका परिमाण बासठ धनु है । हे सुन्दरी ! उसके पश्चिममें ॥२२०॥

जनार्दनश्च देवेशं कलौ बौद्धस्वरूपिणम् ।
तं दृष्ट्वा मुच्यते पापैर्महाघोरैः सुदारुणैः ॥ २२१ ॥

देवेश्वर जनार्दन स्थित हैं । वह कलियुगमें बुद्धरूपी हैं उनका दर्शन करनेपर महाघोर दारुण पापसे छुटकारा मिलता है ॥ २२१ ॥

कर्कशं पौड्रवर्द्धश्च या शिलाचक्र उद्यता ।
मन्दरस्य च पाश्चात्ये शुभशैलस्य भाविनि ।
जनार्दनस्य चिह्नश्च रूपश्च परिकीर्त्तितम् ॥ २२२ ॥

चक्रतीर्थमें जो शिला प्रगट हुई है वही पौण्ड्रवर्द्ध हे भाविनी ! मन्दरके पाश्चात्य और शुभशैलके दक्षिणमें जनार्दनके रूपका चिह्न कहा गया है ॥ २२२ ॥

उत्तरे तस्य शैलस्य ऐशान्यां विरजा तथा ।
दक्षिणे गजशैलस्य पश्चिमे शैभ्रलिङ्गकः ॥ २२३ ॥

उत्तरकी ओर उसी शैलके ईशान कोणमें विरजा है, गजशैलके दक्षिण और पश्चिममें शैभ्रलिंगक है ॥ २२३ ॥

एतन्मध्यतमं क्षेत्रमागस्त्यं नाम वै मया ।
एवं शतमितं क्षेत्रं मत्सम्भवमुदाहृतम् ॥ २२४ ॥

इसका मध्यगत क्षेत्र आगस्त्य नामसे विख्यात है इस ओर इस प्रकार शतपरिमित क्षेत्र मत्संभव अर्थात् मुझसे उत्पन्न हुए जाने ॥ २२४ ॥

असंशयं विजानीयादन्यल्लोहितमुच्यते ।
तत्र पिण्डप्रदानेन पितॄणां परमा गतिः ॥ २२५ ॥

अन्य दिशामें लोहिततीर्थ है। वहां पिण्डदान करनेसे पितरोंको परमगति प्राप्त होती है । इसमें सन्देह नहीं ॥ २२५ ॥

जनार्दनस्य हस्ते च स्वाहापिण्डं समर्पयेत् ॥
एष पिण्डो मयादत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥ २२६ ॥
परलोकगतायाथ त्वं मे दाता भविष्यसि ।
कलिशेषस्य पूर्वे तु धनुरष्टप्रमाणतः ॥ २२७ ॥
सा शिला प्रेतभावेन पितॄणां तारणाय च ।
तत्र पिण्डप्रदानेन न प्रेतो जायते क्वचित् ॥ २२८ ॥

जनार्दनके हाथमें स्वाहापिण्ड समर्पण करे. हे जनार्दन ! मैं आपके हाथमें यह पिण्ड समर्पण करता हूं । मेरे परलोक जानेपर आप यह मुझको प्रदान करना कलिशेषके पूर्वमें अष्टधनुःपरिमाण वह शिला पितरोंको तारनेवाली होती है। वहां पिण्डदान करनेसे कोई भी प्रेतत्वको प्राप्त नहीं होता ॥ २२६ ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

चक्रवतीर्थस्य चाग्नेये धनुर्द्वन्द्वप्रमाणतः ।
लिङ्गंलौलं परं तीर्थं तिलदुग्धैः प्रतर्पयेत् ॥ २२९ ॥

चक्रतीर्थके अग्निकोणमें दो धनुःपरिमाण लौललिंगनामक परम तीर्थ है । तिलसे पूजा करके दुग्धसे उसकी तृप्ति साधन करै ॥२२९॥

जनार्दनं ततो वीक्ष्य मुच्यते वै ऋणत्रयात ॥ २३० ॥

तदनन्तर जनार्दनका दर्शन करनेपर तीनों ऋणसे मुक्त होता है॥२३०॥

कलिद्वापरयोः सन्धौ धनुरर्द्धप्रमाणतः ।
शुक्रेण स्थापितं लिङ्गं शुक्रेशं नामतः श्रुतम् ॥२३१॥
देवं शुक्रेश्वरं दृष्ट्वा को न मुच्यते बन्धनात् ।

गोलेश्वरं ततो दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ २३२ ॥
अङ्गारेशं च सिद्धेशं गयादित्यं गजं तथा ।
मार्कण्डेयेश्वरं दृष्ट्वा पितॄणामनृणो भवेत् ॥ २३३ ॥

कलि औरद्वापरके सन्धिकालमें शुक्रके द्वारा एक लिंग स्थापित हुआ है । इसी कारण इस लिंगका "शुक्रेशलिंग" यह नाम है । वहां शुक्रेश्वर देवका दर्शन करके किसने बन्धनसे मुक्ति लाभ नहीं की है ? फिर गोलेश्वरका दर्शन करनेपर ब्रह्महत्याके पापसे रक्षा होती है । तदन्तर अङ्गारेश सिद्धेश गयादित्य गज और मार्कण्डेयेश्वरका दर्शन करनेपर पितृऋणसे उद्धार होता है ॥ २३१ ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

गयागोलेश्वरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा देवं जनार्दनम् ।
एतन्न किमु पर्याप्तं नृणां संशुद्धिकारणम् ।
ब्रह्मलोकं प्रयान्तीह पुरुषाश्चैकाविंशतिः ॥ २३४ ॥

इसके पीछे गयामें गोलेश्वर और जनार्दनदेवका दर्शन करनेसे केवल पितृऋणही शोध नहीं होता बरन् इससे इक्कीस पुरुष पर्यन्त ब्रह्मलोकमें गमनकरते हैं ॥ २३४ ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रं सरांसि च ।
चक्रतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिनेदिने ॥ २३५ ॥

समुद्र, सरोवर इत्यादि पृथ्वीमें जो जो तीर्थ हैं । वह सब प्रतिदिन एक एक वार चक्रतीर्थमें जाते हैं ॥ २३५ ॥

पृथिव्यां च गयां पुण्यां गयायां कूपकं गया ।
कूपादष्टगुणं देवि श्रेष्ठा मातृगया शुभे ॥ २३६ ॥

पृथ्वीमें गया पुण्यतम है गयामेंभी कूपगया और हे देवि ! कूपसे मातृगयाको अष्टगुण श्रेष्ठ जानना चाहिये ॥ २३६ ॥

पुत्रो मातृगयां गत्वा ह्यनृणो भवति क्षणात् ।
गयायां पिण्डदानञ्च पितॄणामनृणो भवेत् ॥ २३७ ॥

पुत्रगण मातृगयामें गमन करके उऋण होते हैं। गयामें पिण्डदान करनेसे पितरोंका ऋण दूर होता है ॥ २३७ ॥

गयान्तं पिण्डदानञ्च गयान्तं तीर्थमेव च ।
पञ्चकान्तं कामरूपं पिच्छिलान्तं सरिच्छुभे ।
जनार्दनस्य हस्ते तु पिण्डं दद्यात्स्वकं नरः ॥ २३८ ॥

गयामें पिण्डदान करनेसे पिण्डदान शेष होता है। गयामें गमन करनेसे तीर्थगमन शेष होता है। कामरूपमें गमन करनेसे पंचक और पिच्छलामें गमन करनेसे सरित् शेष होता है। अन्यत्र गमन करना नहीं पड़ता। हे शुभे! मनुष्यगण जनार्दनके हाथमें निज पिण्ड प्रदान करै ॥ २३८ ॥

विरजे च तथा चाश्वे कर्णिवामे च सोमके ।
जीवन्पिण्डप्रदानेन त्वल्पायुर्जायते नरः ॥ २३९ ॥

विरज अश्वक्रान्त कीर्ण वाम और सोमकमें जीवित पिण्डप्रदान करनेसे मनुष्य अल्पायु होते हैं ॥ २३९ ॥

यत्रागस्त्ये महाक्षेत्रे दद्यात्पिण्डं स्वकं तु यः ।
मासद्वयाधिकं वर्षमायुषो वर्द्धते क्रमात् ॥ २४० ॥

जो मनुष्य अगस्त्य महाक्षेत्रमें निजपिण्ड प्रदान करता है। उसकी एक वर्षमें दो मास आयु बढती है ॥ २४० ॥

स्वहस्ते न वृषोत्सर्गं च करोत्यौर्द्धदैहिकम् ।
फलंपरत्रचाप्नोति न संदेहो महेश्वरि ।
बहुपुत्रे चैकपुत्रे पुत्रे वा योगसेविते ॥ २४१ ॥
क्षयं कुष्ठं गते पुत्रे त्रिपुत्रे वा महेश्वरि ।
चत्वारिंशत्परो देवि स्वयमात्मक्रियाञ्चरेत ॥ २४२ ॥

हे देवि ! जो मनुष्य अपने हाथसे अपना और्ध्वदैहिक वृषोत्सर्ग करते हैं वह परलोक जानेपर उसको प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं। हे महेश्वरि ! बहुपुत्र वा एकपुत्र अथवा योगसेवितपुत्र क्षयकृष्ण गतपुत्र वा तीन पुत्रोंके विद्यमान होनेपर चालीस वर्षकी आयुवाला मनुष्य दान और वृषोत्सर्गादि आत्मक्रियाका अनुष्ठान करे ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

दानञ्चैव वृषोत्सर्गं कुर्य्यान्नैव दशाहिकम्।
दम्पत्योर्जीवतोः कुर्य्याद्वृषोत्सर्गद्वयं सदा ॥ २४३ ॥

केवल दशाहिक (दशवां) कार्य न करे दम्पतीमें स्त्री और पुरुष दोनोंके बचे रहनेपर दो वृषोत्सर्ग करे ॥ २४३ ॥

एकत्र मण्डले कुण्डे वृषोत्सर्गं पृथक् चरेत्।
मृते कुर्य्यादेकगुणं जीवितोऽष्टगुणं फलम् ॥ २४४ ॥

एकत्र मण्डल और एक ही कुण्डमें पृथक् दो वृषोत्सर्ग करने चाहिये। मरेकी अपेक्षा जीवितके वृषोत्सर्गसे अष्टगुणा अधिक फल प्राप्त होता है ॥ २४४ ॥

परगोत्रकृतं चैव स्वल्पाल्पं फलमाप्नुयात् ॥ २४५ ॥

पराये गोत्रके निमित्त वृषोत्सर्ग करनेसे अल्प स्वल्प फल होता है ॥ २४५ ॥

उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा घृतेन तु।
विधाय कार्पटीवेषं ग्रामस्यास्य प्रदक्षिणम्।
कृत्वा ग्रामान्तरं कृत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ॥ २४६ ॥

गया जानेके लिये उद्यत होकर विधानपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये तदनन्तर ग्रामान्तर गमन करके श्राद्धशेषभोजन पूर्वक प्रदक्षिणा करनेके पीछे प्रतिग्रहहीन होकर गमन करे ॥ २४६ ॥

गृहाच्चारत्निमात्रञ्च आगस्त्यगमने सति।
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणान्तु पदेपदे ॥ २४७ ॥

आगस्त्य जानेके समय घरसे अरत्निप्रमाण स्थानकी प्रदक्षिणा करके गमन करना चाहिये । तो पद पदमें पितरोंके स्वर्गारोहण सोपान व्यवस्थित होते हैं ॥ २४७ ॥

दिवा च सर्वदा रात्रौ आगस्त्ये श्राद्धकृद्भवेत् ।
अश्वतीर्थे कृतं श्राद्धं नीलकूटे च पञ्चके ।
रामाश्रमे सोमकूटे पितॄञ्छ्राद्धं दिवं नयेत् ॥ २४८ ॥

आगस्त्यमें सदा ही दिन वा रात्रिमें श्राद्ध करे अश्वतीर्थ—नीलकूट पञ्चक वामाश्रम औंर सोमकूटमें श्राद्ध करनेसे पितृगण स्वर्गमें जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २४८ ॥

आगस्त्ये मुण्डनं कृत्वा दृष्ट्वा देवं जनार्दनम् ।
आरुह्य मन्दरं शैलं पुनाति कुलसप्तकम् ॥ २४९ ॥

आगस्त्यमें मुण्डनानन्तर जनार्दनदेवका दर्शन करके मन्दर शैलमें आरोहण करनेपर सात कुल पवित्र होते हैं ॥ २४९ ॥

साम्वत्सरं गयाश्राद्धं पार्वणं प्रतिपर्वणि ।
निरामिषं कृतश्राद्धं तथा च विषुवद्वये ॥ २५० ॥
सपिण्डाः पितरस्तस्य निराशाः सततं गताः ।
आमश्राद्धे आममांसं प्रदद्यादविचारतः ॥ २५१ ॥

प्रतिपर्वमें साम्वत्सर पार्वण गयाश्राद्ध और विषुवद्वय अयन संक्रांतिमें निरामिषश्राद्ध करनेसे उसके सपिण्डपितरगण और अन्यान्य पितरगण निराश होकर गमन करते हैं । हे प्रिये ! आमश्राद्धमें आममांस (कच्चामांस) प्रदान करना चाहिये इसमें विचार न करे ॥ २५० ॥ २५१ ॥

पितरोऽधोमुखगतास्तिष्ठन्ति न मम प्रिये ।
सामिषन्तु कृतं श्राद्धं यस्तु भुङ्क्ते निरामिषम् २५२

पितृगण अधोमुख होकर अवस्थान करते हैं । सामिषश्राद्ध करके जो मनुष्य निरामिष भोजन करता है ॥ २५२ ॥

तामिस्रं नरकं गच्छेत्पितृभिः सह नान्यथा ।
दीर्घं तनुमयं कुर्य्याद्गृहीत्वा मम शाङ्करि ॥ २५३ ॥

वह पितरोंके सहित तामिस्रनाम नरकमें जाता है । हे शाङ्करि ! इसलिये दीर्घतनुमयव्रत करै ॥ २५३ ॥

श्राद्धाचारं विना कुर्य्याद्व्रतमेतन्मम प्रिये ।
निरामिषः कृतीयेन कुर्य्याच्छ्राद्धं निरामिषम् ॥२५४॥
भोक्ता निरामिषं भुङ्क्ते सामिषं न कदाचन ।
सद्यो निमन्त्रयेच्छ्राद्धे कर्म कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ २५५ ॥

यह व्रत श्राद्धाचारके विना संपादन करै । जो निरामिषभोजी है । वह निरामिष श्राद्ध करें । वह निरामिष भोजन करै । कभी आमिष भोजन न करै । विचक्षणगण श्राद्धमें कर्म करके सद्यही निमंत्रण करै ॥ २५४ ॥ २५५ ॥

शूद्रेण निन्दितं विप्रं श्राद्धयज्ञादिकेषु च ।
ब्राह्मणं भोजयेद्यस्तु भुंक्ते विष्ठाश्च शाङ्करि ॥ २५६ ॥

श्राद्धयज्ञमें शूद्रनिन्दित ब्राह्मणको भोजन करानेसे वह विष्ठाभोजन करता है ॥ २५६ ॥

माहिषं बृहदाजश्च ऐणं वा चामरंतथा ।
गौधं कूर्मश्च शाल्वश्च शाशकं सौकरंतथा ।
वाराहश्च तथा मैषं श्राद्धे देयानि सर्वशः ॥ २५७ ॥

माहिष, बड़े बकरेका मांस, ऐण (मांसविशेष) चामर गोहका मांस कूर्म शाल्व कछुए और हिरणका मांस) खरगोशका मांस, सूकर मांस और वराहमांस तथा मेषमांस, यह सब श्राद्धमें देवे ॥ २५७ ॥

न कलौ तु गवां मांसं सारमेयञ्च तत्त्वतः ।
हीनेन्द्रियं छागलञ्च न वृष्यं तञ्च वर्जयेत् ॥ २५८ ॥

कलियुगके अतिरिक्त अन्ययुगमें नीलगोमांस और श्वानका मांस वर्जितहै । हीनेन्द्रिय छागल (छोटी बकरी) वर्जित है ॥ २५८ ॥

कृष्णच्छागस्य मांसेन पितॄन्यस्तु प्रतर्पयेत् ।
निराशाः पितरो यान्ति शापं दत्त्वासुदारुणम् २५९॥

जो काले बकरेके मांससे पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर दारुण शाप दे निराश होकर चले जाते हैं ॥ २५९ ॥

हीनेन्द्रियच्छागांसैः पितॄन्यस्तुप्रतर्पयेत् ।
महाभयंकरं प्रोक्तं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ २६० ॥

हीनेन्द्रिय छागमांसद्वारा पितृतर्पण करनेसे वह महाभयंकर होता है इस कारण उसको त्यागदेना चाहिये ॥ २६० ॥

माहिषेण द्वादशाब्दं तृप्तिर्भवति शाश्वती ।
साम्वत्सरन्तु चाजेन छागैः षट्शैलजेसमाः ॥२६१ ॥

पितरगण महिषमांसद्वारा बारह वर्ष, बकरेके मांससे एकवर्ष शैलेय छागमांससे छः वर्ष ॥ २६१ ॥

चामरेण शतं वर्षं साहस्रं गोधिकामिषैः ।
षण्मासञ्च वरारोहे कौर्मैर्वै मासमात्रकम् ॥ २६२ ॥

चामरके मांससे सौ वर्ष, गोहके मांससे हजार वर्ष, कछुएके मांससे केवल एक महीने ॥ २६२ ॥

वाराहेण तु षण्मासं शाशकेन नवैव तु ।
द्वाविंशन्मासकेनैव क्षुद्रवाराहकैस्तथा ।
शताब्दं चामरेणैव स्थूलमांसन्तु वर्जयेत् ॥ २६३ ॥

वराह मांससे छै महीने, खरगोशके मांससे नौ महीने और क्षुद्रवराहसे बाईस महीने, तृप्त रहते हैं चामरके मांससे १०० वर्षतक तृप्त रहते हैं पितृतर्पणमें स्थूल मांस वर्जित हैं ॥ २६३ ॥

यत्तु त्यक्तं भवेत्पुंभिश्चतुर्भिः षड्भिरेव च ।
अतिस्थूलमिति प्रोक्तं तदिदं पूर्वसूरिभिः ॥ २६४ ॥

दश मनुष्योंने जिसका निषेध किया हो उसको विद्वानोंने अतिस्थूल कहनेका निर्देश किया है सो इस अतिस्थूलका भी परित्याग कर देना उचित है ॥ २६४ ॥

माहिषस्य च गव्यस्य वाराहस्य मम प्रिये ।
मार्गस्य बृहदाजस्य स्थूलस्यापि हि शस्यते ॥२६५॥

महिष मांस (नीलगोमांस) वराहमांस, मृगमांस और बड़े बकरेका मांस स्थूल होनेपर भी प्रशस्त है ॥ २६५ ॥

खाङ्गं पाञ्चनखं भक्ष्यमभक्ष्यं खड्गसंयुतम् ।
चतुर्नखं वारिजातं वर्जयेच्च मम प्रिये ॥ २६६ ॥
गोधिकां स्वर्णखड्गञ्च चामरं कृष्णमेव च ।
वर्जयेत्कूर्मकं विद्वान्यदि चक्रेण चिह्नितम् ॥ २६७ ॥

गेंडेका मांस और पञ्चनख मांस भक्षण करना चाहिये । खड्गसंयुक्त मांस, चतुर्नख वारिजात मांस, वर्जित है यदि चक्रचिह्नसे चिह्नित हो, तो विद्वान्गण गोधिका स्वर्ण खड्ग (गेंडेकी जाति विशेष) चमर कृष्ण और कूर्म त्याग दें ॥ २६६ ॥ १६७ ॥

सिंहं शुभं रोहितञ्च राजीवं चित्रकन्तथा ।
महाशल्कं प्रौष्ठिकञ्च पार्वतीयं च मत्स्यकम् ॥२६८॥
बृहद्रोहितमत्स्यञ्च बृहत्प्रोष्ठीकमेव च ।
बृहच्छल्कञ्च चित्रञ्च श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ॥ २६९ ॥

बृहद्रोहितमत्स्य, सिंह, शुभ, बृहत्प्रौष्ठीमत्स्य (पाठीनमत्स्य) बृहत्शल्क और चित्रमत्स्य, श्राद्धमें यत्नसहित देवे ॥२६८॥२६९॥

मत्स्यांश्च शल्कहीनांश्च सर्पाकारांश्च वर्जयेत् ।
शल्कहीनस्य मध्ये तु प्रदेयं कचकद्वयम् ॥ २७० ॥
प्रेतोधानादिकं यच्च विकृताकारवच्च यत् ।
सर्पास्यान्पीवरांश्चैव रजनीश्च विवर्जयेत् ॥ २७१ ॥

सर्पाकार शल्कहीन (लम्बीजातकी पतली मछली) मत्स्य वर्जित हैं शल्कहीनमें दो कवच प्रदान करने चाहिये प्रेतोधानादिविकृताकार सर्पमुख (पुष्ट) और रजनीमत्स्य वर्जित हैं ॥ २७० ॥ २७१ ॥

जीवाशं सेलुकश्चैव पद्मकं कुङ्कुमन्तथा ।
स्वर्णकं ग्रन्थिवर्णश्च श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् ॥ २७२ ॥

जीवाश, सेलुय, (सिंघाडामछली) पद्मक (पद्माख) कुंकुम, स्वर्णक और ग्रंथिवर्ण यह सब श्राद्धमें यत्नपूर्वक वर्जनीय हैं ॥ २७२ ॥

धूम्रश्च पञ्चकदलं शर्कराकीटसंयुतम् ।
महिष्यास्तु घृतं क्षीरं तक्रं श्राद्धे विवर्जयेत् ॥२७३॥

धूम्र, पञ्चकदल, शर्करा, कीटसंयुक्त माहिषघृत, दूध और घृत यह सब श्राद्धमें वर्जित हैं ॥ २७३ ॥

नारिकेलश्च तालश्च खर्जूरं पीनसन्तथा ।
तक्रं घृतं विना क्षीरं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ २७४ ॥

नारियल, ताल, खजूर, पीनस (पिंडालू) तक्र (मट्ठा) घृत क्षीर को छोड़ यत्नपूर्वक अवश्य परित्याग करे ॥ २७४ ॥

प्रदीपं वर्जयेद्गन्धं वर्त्यां प्रत्यक्षतैलकम् ।
कुसुम्भं नालिकाशाकं मालतीकुसुमन्तथा ॥ २७५ ॥

वृद्धिश्राद्धे पंकजश्च करवीराणि वर्जयेत् ।
न प्रदद्यात्तु गाङ्गेयं पद्मं रक्तजलोद्भवम् ॥ २७६ ॥

छेदयुक्तदीप, प्रत्यक्ष तैल, कुसुम्भ, नालिकाशाक, मालतीकुसुम, पङ्कजद्रव्य और कनेर यह सब वृद्धिश्राद्धमें वर्जित हैं, गांगेय और लालकमल प्रदान नहीं करना चाहिये ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

विना वस्त्रेण यच्छ्राद्धं विना यज्ञोपवीतकैः ।
विना तिलेन देवेशि विना गव्येन निष्फलम् ॥२७७॥

वस्त्र, यज्ञोपवीत, तिल और गव्यके विना श्राद्ध करनेसे वह निष्फल होता है ॥ २७७ ॥

अभावे चैव वस्त्रस्य कुशमाल्यं निवेदयेत ।
अभावे यज्ञसूत्रस्य सूत्रयुग्मन्तु विन्यसेत् ॥ २७८ ॥

वस्त्रके अभावमें कुश माल्य यज्ञसूत्रके दो सूत्र निवेदन करै ॥ २७८ ॥

शूद्रश्राद्धे च स्त्रीश्राद्धे यज्ञसूत्रं विवर्जयेत ।
ताम्बूलेन कृतं श्राद्धं विना चूर्णेन शाङ्करि ।
अभावे जीवकं दद्यात्पायसं मधुसंयुतम् ॥ २७९ ॥

शूद्रश्राद्ध और स्त्रीश्राद्धमें यज्ञसूत्र वर्जित है चूर्णके विना तांबूल देवे अभावमें जीवक देना चाहिये श्राद्धमें मधुसंयुक्त खीर प्रदान करे ॥२७९॥

एकजातीयपात्रे तु दद्यादन्नं समाहितः ।
दैवतं प्रथमं दद्यात्पितृपात्रे निवेदयेत् ॥ २८० ॥

सावधान होकर एक जातीयपात्रमें निवेदन करना चाहिये पहिले दैव और फिर पितृपात्रमें निवेदन करै ॥ २८० ॥

पितृशेषन्तु दैवे तु पुनरन्नं कदाचन ।
आमश्राद्धे निरग्नेस्तु नान्नं प्रक्षालयेत्कचित ॥ २८१ ॥

पितृशेष कभी दैवमें प्रदान न करे, अग्निहीन आम श्राद्धमें कभी अन्न प्रक्षालन न करे ॥ २८१ ॥

वृद्धौ च क्षालयेदन्नं संक्रमे ग्रहणेषु च।
अष्टमुष्टिप्रमाणेन ब्राह्मणे चैककंक्रमात् ।
अतोधिकश्च न्यूनश्च न दद्याच्छ्राद्धकर्मणि ॥ २८२ ॥

वृद्धि ग्रहण और संक्रामणमें अन्नक्षालन करे ब्राह्मणको आठ मुष्टि प्रमाण अन्न देवे । श्राद्धकर्ममें इससे अधिक वा कम प्रदान न करे ॥ २८२ ॥

यः श्राद्धं पद्मपत्रे च करोति सुमनोहरे ।
वर्षाणान्तु शतं साग्रं तृप्तिर्भवति नान्यथा ॥ २८३ ॥

मनोहरपद्मपत्रमें श्राद्ध करनेपर सौवर्षतक पितरगण तृप्त रहते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २८३ ॥

अश्वत्थस्य छदे देवि ब्रह्मपात्रे च शाङ्करि ।
षण्मासं जायते तृप्तिरनन्तं वटपत्रके ॥ २८४ ॥

हे देवि शांकरि ! पीपलके पत्ते और ब्रह्मपात्रसे छै महिने तथा वट पत्रसे अनन्त तृप्तिलाभ करते हैं ॥ २८४ ॥

मासैकं ताम्रपात्रे च रुक्मपात्रे तु वत्सरम् ।
रौप्ये दशगुणं प्रोक्तं खड्गपात्रे शतोत्तरम् ॥ २८५ ॥

ताम्रपात्रसे एकमास, स्वर्ण पात्रसे एक वर्ष चांदीके पात्रसे इसकी अपेक्षा दशगुण और खड्ग पात्रसे शतगुण तृप्ति लाभ करते हैं ॥ २८५ ॥

एकजातीयपात्रे तु मृताहे श्राद्धकर्मणि ।
पार्वणे च तथा वृद्धौ पृथक् जातींश्च यो यजेत् ॥२८६॥

मरणदिन और श्राद्धकर्ममें एकजातीय पात्र, पार्वण और वृद्ध श्राद्धमें पृथक् जातीय पात्रकी योजना करे ॥ २८६ ॥

सम्वत्सरं भवेत्तावद्व्रीहींश्चैव नियोजयेत् ।
वर्षाद्भवति यो व्रीहिः प्रेतश्राद्धे तु तं त्यजेत् ॥२८७॥

एक वर्षकी व्रीहिप्रदान करनी चाहिये, किन्तु एक वर्षका व्रीहि प्रेत-श्राद्धमें वर्जित है ॥ २८७ ॥

धान्यं वर्षासमुद्भूतं चणकं तिलयावके ।
यज्ञादौ च तथा श्राद्धे द्विः स्विन्नं परिवर्जयेत् ॥२८८

वर्षामें उत्पन्न हुआ धान्य तिल यव और चने यह सब दो वार पक्क करके यज्ञादि तथा श्राद्धमें प्रदान न करे ॥ २८८ ॥

यष्टिधान्यं राजधान्यं बृहद्धान्यश्च वल्लभे ।
सोमधान्यं शिन्नधान्यं वाङ्गं वै रक्तशालिकम् ॥२८९॥
केतकी कलविङ्कश्च धान्यं नारायणन्तथा ।
माधवश्च प्रदीपश्च विष्णुधान्यं च वल्लभम् ॥ २९० ॥
भोग्यधान्यमशोकश्च नागाक्षं पञ्चकन्तथा ।
धान्यानि श्राद्धयोग्यानि वेदेषु कथितानिहि ॥२९१ ॥

यष्टिधान्य, राजधान्य, बृहद्धान्य, सोमधान्य, शिन्नधान्य, वंगधान्य (यह सब धान्योंकी संज्ञाविशेष है) रक्तशालि (सट्ठी) केतकी, कल-विंक, नारायणधान्य, माधवधान्य । प्रदीप विष्णुधान्य, वल्लभ भोग्य-धान्य, अशोक, नागाक्ष, पञ्चक यह सब धान्य योग्य कहकर वेदमें निश्चित हुए हैं इस कारण इनका श्राद्धकर्ममें व्यवहार करे २८९॥२९०॥२९१॥

गोधूमांश्च यवांश्चैव अपूपांश्च महेश्वरि ।
नीवारांश्च तथा श्राद्धे देवधान्यं तथापरम् ।
वसन्ते रोपितं धान्यं यत्नेन च विवर्जयेत् ॥ २९२ ॥

हे महेश्वरि ! गेहूं, जौ, अपूप (घृतपक्क) नीवारा (मुनिअन्न) और देवधान्यका श्राद्धमें व्यवहार करे । वसन्तकालमें लगाया हुआ धान्य यत्नपूर्वक परित्याग करे ॥ २९२ ॥

तदन्नभक्षणादेव पापं संक्रमते नृणाम् ।
भक्षणे श्रवणान्नस्य दरिद्रश्चाभिजायते ॥ २९३ ॥

वह अन्न भक्षण करनेसे पाप आक्रमण कर लेता है, श्रवणका अन्न भक्षण करनेसे मनुष्य दरिद्री होता है ॥ २९३ ॥

भक्षणे सोमधान्यस्य व्रतं चान्द्रायणञ्चरेत् ।
भक्षणे वृद्धधान्यस्य विभवो जायते किल ॥ २९४ ॥

सोम धान्य भक्षण करनेसे चान्द्रायणव्रतका अनुष्ठान करे और वृद्ध-धान्य भक्षण करनेसे विभव (धन) प्राप्त होता है ॥ २९४ ॥

राजधान्यं स्निग्धधान्यं भक्षणाद्विष्णुलोकभाक् ।
रक्तशाल्योदनं भुक्त्वा विजयं श्रियमाप्नुयात् ॥२९५

राजधान्य और स्निग्धधान्यं भक्षण करनेसे विष्णु लोकको प्राप्त होता है। रक्तशालि (सट्ठी) भक्षण करनेसे विजय और श्री प्राप्त होती है ॥ २९५ ॥

नारायणं माधवं च भोगञ्च मम सुन्दरि ।
धान्यन्तु यादवं भुक्त्वा नरः ख्यातिमवाप्नुयात्२९६

नारायण, माधव, भोग और यादव धान्य भक्षण करके मनुष्य ख्याति लाभ करते हैं ॥ २९६ ॥

निमन्त्रितं ब्राह्मणञ्च यदि श्राद्धे विवर्जयेत् ।
दारुणं नरकं गच्छेद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २९७ ॥

निमंत्रित ब्राह्मणको श्राद्धमें छोड़नेसे प्रलयकालपर्यन्त दारुण नरकमें जाता है ॥ २९७ ॥

निमन्त्रितो यः स्वगृहे भुङ्क्ते विप्रः कथञ्चन ।
स गच्छेत्कालसूत्रञ्च सौकरीं योनिमाविशेत् ॥२९८॥

यदि निमंत्रित ब्राह्मण कदाचित् अपने घर भोजन करे तो निर्म-

त्रण देनेवाले कालसूत्र नरक लाभ कर फिर शूकरकी योनिको प्राप्त होता है ॥ २९८ ॥

निमंत्रितो व्रतस्थश्च ब्रह्मचर्यं च वा पुनः ।
नातिक्रामेच्च तं श्राद्धे न दोषो मधुभक्षणे ॥ २९९ ॥

अतएव निमंत्रित, व्रतस्थ और ब्रह्मचारी ब्राह्मणका कभी त्याग न करे, श्राद्धमें मधुभक्षणसे दोष नहीं होता ॥ २९९ ॥

सद्यःकृतं सदाधान्यं मांसं तैलं तथैव च ।
व्रतस्थभक्षणे देवि न दोषः पितृयज्ञके ॥ ३०० ॥

व्रतस्थमनुष्यके पितृयज्ञमें सद्यः कृत (तत्काल सम्पन्न किया) धान्य मांस ओर तैल भक्षणसे दोष नहीं होता ॥ ३०० ॥

गयाश्राद्धे प्रेतपक्षे तथानुमरणे प्रिये ।
तीर्थश्राद्धे वै ग्रहणे न जिघ्रेत्पिण्डकं प्रिये ॥ ३०१ ॥

हे प्यारी ! गयाश्राद्धमें, प्रेत पक्षमें, अनुमरण अर्थात् एकके अनंतर दूसरेके मरणमें, ग्रहण और तीर्थ श्राद्धमें पिण्डको सूँघना उचित नहीं है ॥ ३०१ ॥

मुक्तितीर्थं विना विप्रा नानुगच्छेत्स्वकं पतिम् ।
पृथक्चितानानुगच्छेन्मुक्तिमार्गेषु सर्वदा ॥ ३०२ ॥

ब्राह्मणी मुक्ति तीर्थके अतिरिक्त अपने पतिका अनुगमन न करे । मुक्तिमार्गमें सदाही पृथक् चितासे अनुगमन न करके एक चितामें ही आरोहण करना चाहिये ॥ ३०२ ॥

क्रिया कार्या दशाहेचान्यत्र तु निवारकम् ।
उद्बन्धनमृतं चैव तथा जलगते शवे ॥ ३०३ ॥
शवे पर्य्युषिते चैव क्षयकुष्ठिशवे तथा ।
नानुगच्छेच्च ब्राह्मण्या मुक्तितीर्थादृते प्रिये ॥ ३०४ ॥

हे प्यारी ! ब्राह्मणी मुक्ति दायक अतिरिक्त बन्धन द्वारा मृतक शव, जलमें पड़ा हुआ मृतक शरीर, बासी शव और क्षयकुष्ट युक्त शवका अनुगमन न करे ॥ ॥ ३०३ ॥ ३०४ ॥

बहुपुत्रा सगर्भा च तथा चैव रजस्वला ।
पतिता कलहाढ्याचाप्यसती न कदाचन ॥ ३०५ ॥
ततोऽनुगमनार्थश्च एकाहं स्थापयेच्छवम् ।
अनुगच्छेत्परेद्युश्च दोषस्तत्र न जायते ॥ ३०६ ॥
विदेशमरणे चैव भर्त्तुर्यद्वस्तु विद्यते ।
तद्द्रव्यं हृदये कृत्वा क्षत्रादीनामनुव्रजेत् ॥ ३०७ ॥

बहुत पुत्रवाली, गर्भवती, रजस्वला, पतित और कलहरत, तथा असती नारी कभी अनुगमन न करे । अनुगमनके लिये शव एक दिन रक्षित हो सकता है, इसके पीछेवाले दिन अनुगमन करनेसे दोष नहीं होता क्षत्रिय इत्यादि तीनों वर्णकी यही विधि निर्दिष्ट है कि, यदि पतिका विदेशमें मरण हो तो पतिकी जो वस्तु निकट विद्यमान हो उसी वस्तुको हृदयमें धारण करके अनुगमन करे ॥३०५॥३०६॥३०७॥

भावानुरंजितावाथ सती शूद्रा भवेत्क्वचित् ।
तस्यानुमरणं कुर्य्याद्वैश्यस्य च विधिः स्मृतः॥३०८॥

शूद्र स्त्री यदि अन्तःकरणसे प्रेम करनेवाली होकर सती हो तो वह अनुमरण कर सकती है वैश्याकी भी यही विधि कही गई है ॥३०८॥

तृतीयायां मृतो भर्ता चतुर्थ्यां वाप्यनुव्रजेत् ।
भर्तुरेव तिथौ तस्याः कुर्य्यात्साम्वत्सरं बुधः ॥३०९॥

भर्ता यदि तीजमें मरा है तो चौथमें भी अनुसरण कर सकती है । जिस तिथिमें स्वामीकी मृत्यु हो, वर्ष दिनके पीछे उसी तिथिमें पिण्डदान करना चाहिये ॥ ३०९ ॥

एकत्र मरणे देवि पिण्डमेकत्र निर्वपेत् ।
युगपत्कारयेच्छ्राद्धं समाप्यैवं न दोषभाक् ॥ ३१० ॥

हे देवि ! एकत्र मरणमें एकत्र पिण्ड देवे और एक साथही श्राद्ध करना चाहिये इसमें हानि नहीं है ॥ ३१० ॥

दम्पत्योश्चैव पिण्डश्च वर्त्तुलं कारयेन्नरः ।
वस्त्रेण वरणं कुर्यान्मधुक्षीरं निपातयेत् ॥ ३११ ॥

पति पत्नीका पिण्ड गोलाकार करके उसे वस्त्रसे ढके, फिर उसके ऊपर शहत् और दूध डाले ॥ ३११ ॥

न पिण्डेन सह क्षीरं शुष्काम्रं न कदाचन ।
माहिष्याद्यं च न घृतं धात्री च लकुचं तथा ॥ ३१२ ॥
दाडिमं बीजपूरश्च ह्युर्व्वारुकफलन्तथा ।
जम्बूफलश्च पद्माक्षं कदलीं रामकं त्यजेत् ॥ ३१३ ॥

पिण्डके सहित दूध, सूखा आम, घृत, भैंसका घृत, आंवला लकुच, दाडिम, विजौरा नींबू ऊर्वारुक, जम्बूफल (जामन कच्ची) पद्माख, कदली और रामक कभी प्रदान न करै ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥

कशेरुश्च युगानश्च कपिलाक्षीरमेव च ।
तथा जम्बूफलं पक्वं श्राद्धे देयानि यत्नतः ॥ ३१४ ॥

कशेरु, युगान, कपिला गायका दूध, पकी हुई जामन, श्राद्धमें यत्न पूर्वक देवे ॥ ३१४ ॥

ब्रह्मण्यं समधुक्षीरं मूलकं करमर्दकम् ।
बिल्वश्च तिन्दुकश्चैव मधुकं मधुरी तथा ।
जम्बूफलश्च पद्माक्षं जीवन्तीश्च नियोजयेत् ॥ ३१५ ॥

सुपारी, मधु, क्षीर, मूली, करमर्दक, बेल तिन्दुक, मधु, सरभरी जामनका फल, पद्माख और जीया, यह सब निवेदन करै ॥ ३१५ ॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः श्राद्धं सुचवसोदितम् ।
कुलधर्मानुसारेण दातव्यं मन्त्रपूर्वकम् ॥ ३१६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीन वर्ण कुल धर्मानुसार गुरुब्राह्मणादिकी अनुमति लेकर मंत्रपूर्वक सुचवसोदित श्राद्ध करै ॥ ३१६ ॥

त्रिभिर्वर्णैर्वरैर्देयं शूद्रैर्विप्रानुशासनात् ।
मन्त्रवर्ज्जेश्च विधिवद्वह्निपाकविवर्जितः ॥ ३१७ ॥
पुष्करादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च ।
शिखरेषु गिरीन्द्राणां पुण्यदेशेषु शाङ्करि ॥ ३१८ ॥
सरित्सु पुण्यतोयेषु सरस्सु च नदेषु च ।
सङ्गमेषु नदीनाञ्च सागरेषु च सप्तसु ॥ ३१९ ॥
देवतायतने गोष्ठे धात्रीमूले तथैव च ।
दिव्यपादपमूलेषु तुलसीमध्यमेषु च ॥ ३२० ॥
दशार्णेषु कुमार्येषु मागधेषु कुशेषु च ।
विरजस्योत्तरे तीरे लोहितस्य च दक्षिणे ॥३२१॥
दक्षिणे नर्मदायाश्च आगस्त्यस्य च दक्षिणे ।
पूर्वेषु करतोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते ॥ ३२२ ॥

शूद्रगण ब्राह्मणोंकी आज्ञानुसार विधिपूर्वक मंत्रहीन और वह्निपाक-वर्जित अर्थात् कच्चे अन्नसे श्राद्ध करैं । शास्त्रके जाननेवालोंने कहा है कि, पुष्करादितीर्थ पवित्र गृह, पर्वतके शिखर, पुण्यदेश, समस्त सरित, पवित्र जलवाली नदी, सरोवर और नद, नदियोंके संगम, सप्त, सागर, देवगृह, गोष्ठ, धात्रीमूल, आँवलेकी जड, दिव्यपादप मूल, तुलसीके मध्यस्थल, दशार्णदेश, कुमारी, मगध और कुश विरजके उत्तर तीर, लोहितके दक्षिण नर्मदाके दक्षिण और आगस्त्यके दक्षिण तथा करतोयाकी पूर्वदिशामें श्राद्धदान न करै ॥ ३१७–३२२ ॥

श्राद्धं देयं वदन्तीह मासि मासि उपक्षये ।
पौर्णमासीषु च श्राद्धं कर्त्तव्यंत्वक्षगोचरे ॥ ३२३ ॥

पण्डितोंने कहा है कि, महीने महीने अमावस्यामें श्राद्ध करना चाहिये । पौर्णमासीको अक्षगोचरमें श्राद्ध करना चाहिये ॥ ३२३ ॥

नित्यं श्राद्धं सदैवञ्च मनुष्यैः सह गीयते ।
नैमित्तिकं सुरैः श्राद्धं नित्यं नैमित्तिकन्तथा ॥३२४॥
काम्यानि यानि श्राद्धानि प्रतिसम्वत्सरं द्विजैः ।
वृद्धिश्राद्धं च कर्त्तव्यमुक्तकर्मादिकेषु च ॥ ३२५ ॥

नित्यश्राद्ध दैवसहित नैमित्तिक श्राद्ध मनुष्यसहित और नित्यनैमित्तिक सुरसहित करना चाहिये । ब्राह्मणगण काम्य श्राद्ध प्रतिवर्ष करें और कर्मानुसार वृद्धि श्राद्ध करें ॥ ३२४ ॥ ३२५ ॥

तत्र स्नानं हि जानीहि मातृपूर्वं तु शंकरि ।
कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च ।
पार्वणेन विधानेन श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ३२६ ॥

हे शंकरि ! उसमें मातृपूर्व स्नान जानना चाहिये । सूर्यके कन्याराशिमें जानेपर पन्द्रहवें दिन पण्डितगण पार्वण विधानानुसार श्राद्ध करे ॥ ३२६ ॥

यो ददाति गुडैर्मिश्रान्तिलान्वा श्राद्धकर्मणि ।
मधुना मधुमिश्राणि चाक्षयं तत्प्रचक्षते ॥ ३२७ ॥

श्राद्धकर्ममें मन्त्रसहित गुडमिश्रित तिलदान करनेसे वह अक्षय होता है ॥ ३९७ ॥

कृत्तिकासु पितॄनर्च्य मुक्तिमाप्नोति मानवः ।
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्वितां लभेत्॥३२८

मघासु च प्रजा पुष्टिं सौभाग्यं फल्गुनीषु च ।
अन्येष्वपि च ऋक्षेषु कर्त्तव्यं कामचारतः ॥ ३२९ ॥

कृत्तिकामें पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। रोहिणीमें पूजा करनेसे अपत्य (सन्तान) लाभ, सौम्यमें पूजा करनेसे तेजस्विता, मघामें प्रजा, फाल्गुनीमें पुष्टि और सौभाग्य लाभ होता है अन्य नक्षत्रोंमें भी अपनी इच्छानुसार पितरोंका तर्पण करना चाहिये ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥

अपि ये पितरौ यस्य मृताः शस्त्रेण वाहवे ।
तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता ॥ ३३० ॥

जिसके पितृगण युद्धमें शस्त्रसे मरे हैं चतुर्दशीमें तर्पण करनेसे उनको विशेष तृप्ति लाभ होती है ॥ ३३० ॥

यदा पञ्चदशी श्राद्धं कर्त्तव्यं काम्यभावतः ।
चतुर्दश्यां समेतश्च षोडशश्राद्धमिष्यते ॥ ३३१ ॥

जब काम्यभावसे पन्द्रह श्राद्ध करे । चतुर्दशीमें समवेत प्रकार अर्थात् दोनों विधियोंसे संयुक्त सोलह श्राद्ध करें ॥ ३३१ ॥

दशम्यादिकमारभ्य पञ्चम्यादिकमेव च ।
तदा वर्ज्यं चतुर्दश्यां तिथौ दैवान्समाचरेत् ॥ ३३२ ॥

दशमी इत्यादिसे आरम्भ करके पञ्चमी इत्यादि वर्जित हैं, चतुर्दशी तिथिमें दैव श्राद्ध करना चाहिये ॥ ३३२ ॥

श्राद्धं कुर्वन्नमायां च मासि मासि तदा क्वचित् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति स नरः स्वर्गमश्नुते ॥ ३३३ ॥

प्रतिमहीनेकी अमावस्यामें श्राद्ध करनेसे मनुष्य समस्त कामनाको प्राप्त होकर स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं ॥ ३३३ ॥

नित्यश्राद्धे तर्पणे च सुरार्चानित्यपूजने ।
भोजने ब्राह्मणानाञ्च दक्षिणा न हि विद्यते ॥ ३३४ ॥

नित्यश्राद्धमें, तर्पणमें देवअर्चनामें, नित्यपूजामें और ब्राह्मणभोजनमें दक्षिणा नहीं है ॥ ३३४ ॥

श्राद्धाशक्तौ प्रेतपक्षे ब्रह्मणान्भोजयेत् प्रिये ।
देवेभ्योऽन्नं जलं दद्यादेवमन्यन्निवेदयेत् ॥ ३३५ ॥

हे प्रिये ! प्रेतपक्षके श्राद्धमें असमर्थ होनेपर ब्राह्मणभोजन करावे, देवताओंको अन्न जल देवे ॥ ३३५ ॥

पित्रोश्च जीवतोर्देवि यज्ञादौ श्राद्धवासरे ।
भोजयेद्भक्ष्यभोज्यैश्च फलैश्च विविधैरपि ॥ ३३६ ॥

हे देवि ! जीवित मातापिताके यज्ञआदिमें श्राद्धके दिन भक्ष्य भोज्य और विविधफल भोजन करावे । इसका आशय यह है कि, मातापिताके यज्ञवाले दिन जिसका हमें श्राद्ध करना है, ऐसे भ्राता आदिका श्राद्ध उपस्थित होजाय तो उसमें ब्राह्मणको विविधप्रकारके फलोंका भोजन करावै ॥ ३३६ ॥

अभोजिते हतो यज्ञः श्राद्धश्चापि हतं भवेत् ।
वृद्धिश्राद्धे पार्वणे च नित्यश्राद्धे विवर्जयेत् ।
ब्राह्मणानां बहूनां च भोजनं च महेश्वरि ॥ ३३७ ॥

भोजन न करानेसे यज्ञ और श्राद्ध समस्तही नष्ट होता है, वृद्धिश्राद्ध और पार्वणमें नित्यश्राद्ध तथा बहुत ब्राह्मणोंको भोजन कराना वर्जित है ॥ ३३७ ॥

राजसूयाश्वमेधाद्यैर्यदीच्छेद्दुर्लभं पदम् ॥ ३३८ ॥
गयां गंगां तथा गत्वा कुर्याच्छ्राद्धं विधानतः ।
अप्यंबुशाकमूलान्नैः सक्तुभिर्यवकन्दकैः ॥ ३३९ ॥

राजसूर्य अश्वमेधादि दुर्लभ पदकी इच्छा हो तो गंगा और गयामें जाकर शाक, मूल, अन्न, सत्तू और यवद्वारा विविधपूर्वक श्राद्ध करे ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

तावत्पितृपुरी शून्या यावद्विष्णोः प्रबोधनम् ।
प्रबोधे समतिक्रान्ते पित्रा वा दैवतैः सह ।
निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदुष्करम् ॥३४०॥

जबतक विष्णुका प्रबोधन न हो अर्थात् कार्तिकशुक्ला एकादशी नहीं आती, तबतक पितृपुरी शून्य रहती है । प्रबोधना होनेसे पितृ और देवता दारुण शाप देकर निश्वास परित्यागपूर्वक लौट जाते हैं ॥ ३४० ॥

गयाश्राद्धं गयास्नानं तथा च तिलतर्पणम् ।
खड्गपात्रेण देवेशि जीवत्पित्रा विवर्ज्यते ॥ ३४१ ॥

हे देवेशि ! जिसके पित्रिगण जीवित हों वह गयाश्राद्ध, गयास्नान और खड्गपात्रमें तिलतर्पण न करै ॥ ३४१ ॥

सोमवारे त्वमायां च मौनस्नानं विवर्जयेत् ॥ ३४२॥

सोमवार और अमावस्यमें मौनस्नान वार्जित है ॥ ३४२ ॥

यस्य माता मृता देवि तस्य मातुर्गया प्रिये ।
यदि प्रेतः पिता देवि पितृव्यमरणेऽपि च ।
मातापित्रोर्जीवतोरप्यविचार्य्य गयां व्रजेत ॥ ३४३ ॥

हे देवि ! जिसकी माता मरगई है, उसकी मातृगया होती है । हे देवि ! पिता यदि प्रेत हो वा पितृव्यका मरण हो तो गयामें जाय । पिता माताके जिवित होनेपर विनाविचार किये गयामें न जाय ॥ ३४३ ॥

पितुः पिण्डं प्रदद्यात्तु भोजयेच्च पितामहम् ।
प्रपितामहपिण्डंच ह्येवं शास्त्रेषु निश्चितम् ॥ ३४४ ॥

मृतेषु पिण्डं दातव्यं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥३४५॥

पितृपिण्ड, पितामहपिण्ड और प्रपितामहका पिण्ड देकर ब्राह्मण भोजन करावे. शास्त्रमें इस प्रकार निश्चित है कि, मरनेपर पिण्ड देना और ब्राह्मणभोजन करना चाहिये ॥ ३४४ ॥ ३४५ ॥

दक्षिणापूरणं सिद्धं विरिक्तं शुभलक्षणम ।
शुचिं देशं विरिक्तिं च गोमयेनोपलेपयेत् ॥ ३४६ ॥
पावके भूमिभागे च पितॄणां नैव निर्वपः ।
शयनीयगृहे देवि ! आगारश्च विवर्जयेत् ॥ ३४७ ॥

दक्षिणदिशाकी ओरसे परिपूर्ण शुभलक्षणयुक्त अतएव उत्तम और पवित्र एकान्त स्थानको गोबरसे लीपकर अग्निवेष्टनपूर्वक पितरोंकी स्थिति करे । हे देवि ! शयनागारमें पितरोंकी स्थापना करनी उचित नहीं है ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥

भिक्षुको ब्रह्मचारी च भोजनार्थमुपस्थितः ।
श्राद्धेषु तूपविष्टेषु यथाकामं प्रपूजयेत ॥ ३४८ ॥

भिक्षुक ब्रह्मचारी इत्यादिके भोजनार्थ उपस्थित होनेपर श्राद्ध करने वाला यथाकाम उनकी पूजा करे ॥ ३४८ ॥

सहक्रियां देशकालौ द्रव्यब्राह्मणसम्पदः ।
पश्चैते च पितॄन् हन्ति तस्याङ्गे हेतुविस्तरात् ॥३४९

क्रिया, देश, काल, द्रव्य और ब्राह्मणसम्पत्, यह पांचों पितरोंको निहत करते हैं उनके अंगमें विस्तारहेतु विद्यमान है ॥ ३४९ ॥

अपि वा योजयेद्देवं ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
भूयांसि देवि कार्याणि मानवश्च करोति यः ॥३५० ॥

न काममभवच्छ्राद्धं तन्त्रेणापि समापयेत् ।
वैश्वदेवस्य चारम्भे तत्तु श्राद्धं विवर्जयेत् ॥ ३५१ ॥

अथवा इसमें वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको नियुक्त करे । हे देवि ! मेरे कार्य बहुत हैं जो इस प्रकार मनमें समझता है, उसका श्राद्ध परिपूर्ण नहीं होता । ऐसा होनेसे तन्त्रद्वारा भी कार्यसमापन करना चाहिये वैश्वदेवकी पूजा आरम्भमें वह श्राद्ध वर्जित है ॥३५०॥३५१॥

प्रासादकरणे चैव यात्रायां गृहकर्मणि ।
न विद्यते श्यामपक्षे तन्त्रस्नानं विवर्जयेत् ॥ ३५२ ॥

स्थानका निर्माण करना, यात्रा और गृहकार्य तथा तन्त्र स्नान कृष्ण-पक्षमें नहीं करना चाहिये ॥ ३५२ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसाहस्रे कामरूपाधिकारे द्वितीयभागे भाषाटीकायां पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

द्वितीये सुदिने देवि यत्कृत्यं शृणु पार्वति ।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैर्विमुच्यते ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवि पार्वती! अब दूसरे दिन जो करना चाहिये, वह सुनो । मनुष्यगण चक्रतीर्थमें स्नान करके सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १ ॥

लोहित्यदक्षिणं गत्वा वायव्ये कोलपर्वतः ।
तस्य पश्चिमदिग्भागे महानाथो महाबलिः ॥ २ ॥

फिर लोहित्यके दक्षिणमें जाकर वायुकोणके कोलपर्वतमें जाय उसकी पश्चिमदिशामें महाबलि पाण्डुनाथ हैं ॥ २ ॥

तस्य वायव्यभागे तु धनुर्द्वादशकं सरः ।
ब्रह्मकुण्डमितिख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३ ॥

उसके वायुकोणमें बारह धनुः प्रमाण सब पापोंका नाश करनेवाला ब्रह्मकुण्डनामसे विख्यात सरस्तीर्थ है ॥ ३ ॥

किं जपैः किं तपोभिश्च किं दानैः किं सुतैरपि ॥
ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा सिद्धिं विन्दति तत्क्षणात् ॥४॥

जप, तप, दान और पुत्रसे क्या प्रयोजन है ? मनुष्य ब्रह्मकुण्डमें स्नान करके तत्काल सिद्धिलाभ कर सकते हैं ॥ ४ ॥

ईश्वरानुज्ञया पूर्वमुषितं ब्रह्मणा पुरा ।
स्नानार्थं संप्रधावन्ति तत्तीर्थं देवदानवाः ॥ ५ ॥
ऋषयः सिद्धगन्धर्वास्तीर्थानि च सरांसि च ।
माहात्म्यमुत्तमं तस्य ब्रह्मकुण्डस्य सुन्दरि ॥ ६ ॥

पूर्वकालमें ईश्वरकी आज्ञासे ब्रह्माजीने इसमें प्रथम वास किया था, फिर देव, दानव, ऋषि, सिद्ध और गन्धर्वगण इसमें स्नान करनेके लिये धावमान हुए थे ! सम्पूर्णतीर्थ और सब सरोवर इसमें स्थित रहते हैं. हे सुन्दरि ! इस ब्रह्मकुंडलतीर्थका माहात्म्य सर्वोत्तम जानना चाहिये ॥५॥६॥

स्नात्वा तारेण विधिवद्दानं दद्याद्यथाविधि ।
मणिकाञ्चनरत्नानि यथाविभवमात्मनः ॥ ७ ॥

वहां तारामन्त्रसे विधिवत् स्नान करनेके पीछे यथाविधि दान करे । अपने विभवके अनुसार मणि, रत्न, कञ्चन इत्यादिका दान करना चाहिये ॥ ७ ॥

सम्भवे सति यो मोहान्न स्नाति च नराधमः ।
पच्यते नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८ ॥

जो नराधम संभव होनेपर भी इस तीर्थमें स्नान नहीं करता, वह चौदह इन्द्रके कालपर्यन्त घोर नरकमें पडकर दुःख भोगता है ॥ ८ ॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे धनुः पञ्चप्रमाणतः ।
लौहित्यं नाम तत्तीर्थं स्नानान्नश्यति पातकम् ॥ ९ ॥

उसकी दक्षिणदिशाके विभागमें पांच धनुःप्रमाण लौहित्यनामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पातक नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

स्नानेन तीर्थराजस्य तथा सर्वाघसंक्षयम् ।
तीर्थराजसरः पुण्यं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ १० ॥

तीर्थराजमें स्नान करनेसे समस्त पाप क्षय होते हैं, तीर्थराज सरोवर पुण्यतीर्थ और सब तीर्थोंका फल देनेवाला है ॥ १० ॥

भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।
विशन्ति सर्वतीर्थानि सरितश्च सरांसि च ॥ ११ ॥

पृथ्वीतलमें जितने तीर्थ, सरित् और सरोवर हैं, वे सब तीर्थराजमें स्थित हैं ॥ ११ ॥

राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरितां पतिः ।
तस्मात्समस्ततीर्थेषु श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः ॥ १२ ॥

समुद्र जिस प्रकार समस्त नदियोंका पति है ऐसे ही यह तीर्थ समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ और कामनाओंका देनेवाला है ॥ १२ ॥

तमोनाशं यथा ज्योतिर्भास्करे ह्युदिते प्रिये ।
स्नानेन तीर्थराजस्य तथा सर्वाघसंक्षयम् ॥ १३ ॥

हे प्यारी ! जैसे सूर्यदेवके उदित होनेपर समस्त अन्धकारका नाश हो जाता है और ज्योति उदय होती है, इसी प्रकार तीर्थराजमें स्नान करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्यका उदय होता है ॥ १३ ॥

तीर्थराजसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
अधिष्ठानं सदा यस्य प्रभोर्नारायणस्य वै ।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं तीर्थराजस्य मे प्रिये ॥१४॥

हे प्रिये ! तीर्थराजके समान तीर्थ न हुआ न होगा, वहां नारायण देव सदाही वास करतेहैं । हे देवि ! तीर्थराजका गुणवर्णन करनेमें कौन समर्थ होसकताहै ? ॥ १४ ॥

त्रिनवत्ययुतानि यत्र तीर्थानि सन्ति वै ।
तस्मात्स्नानञ्च दानञ्च होमं जाप्यं सुरार्चनम् ।
यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं चाक्षयं भवति प्रिये ॥ १५ ॥

वहां तिरानवें हजार तीर्थ निरन्तर अवस्थान करते हैं, इस कारण उन तीर्थोंमें स्नान, दान, होम, जप, देवताओंका पूजन जो कुछ किया जाय, वह सब अक्षय फलदायक होताहै ॥ १५ ॥

नमस्ते ब्रह्मपुत्राय नमः शन्तनुसूनवे ।
त्रिजन्मजञ्च यत्पापं हर मे लोहितात्मक ॥ १६ ॥

हे ब्रह्मपुत्र ! हे शन्तनुकुमार ! मैं तुम्हें प्रणाम करताहूं तुम लोहितात्मा हो ! मेरा तीन जन्मका जो संचित पाप है उसको तुम हरण करो ॥ १६ ॥

इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नात्वार्घ्यं विनिवेदयेत् ।
पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन भामिनि ॥ १७ ॥
तीर्थराजवरं षष्ठं हंसं वामाक्षिसंयुतम् ।
शमनं हृदयं वह्नेः प्रियाध्रुववपुः सरः ॥ १८ ॥

इस मंत्रसे स्नान करके अर्घ्य निवेदन करे । हे भामिनि ! फिर "तीर्थ राजवरं षष्ठं हंसं वामाक्षिसंयुतम् । शमनं हृदयं वह्नेः प्रियाध्रुववपुः सरः" इस मंत्रसे परमभक्तिसहित पूजा करे ॥ १७ ॥ १८ ॥

तस्य दक्षिणतो भागे नातिदूरे च संस्थितम् ।
कुलं धान्वन्तरं यावद्विष्णुकुण्डमिति श्रुतम् ॥ १९ ॥

उसके दक्षिणभागमें थोड़ीही दूर विष्णुकुण्ड नामक विख्यात तीर्थ स्थित है ॥ १९ ॥

विष्णुकुण्डे नरः स्नात्वा वीक्षते पाण्डुशौनकम् ।
गुरुचारुशिलारूपमग्रे मंजु समन्वितम् ।
पञ्चानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २० ॥

विष्णुकुण्डमें स्नानकरके अग्रभागमें मंजुयुक्त गुरु चारु शिलारूप पाण्डुशौनकका दर्शन करनेसे मनुष्य पांच अश्वमेधके फलको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

प्राणस्थं सर्वभूतानां योनिश्च सरितां पतिः ।
विष्णुकुण्ड नमस्तेऽस्तु त्राहि मां सर्वकिल्बिषात्॥२१॥

हे विष्णुकुण्ड ! तुम सब प्राणियोंके प्राणरूपसे अधिष्ठित और सबके उत्पत्तिस्थान तथा सब नदियोंके स्वामी हो, मैं तुम्हें नमस्कार करताहूं, तुम सब पापोंसे मेरी रक्षा करो ॥ २१ ॥

स्नात्वानेन वरारोहे चैकादश्याश्च फाल्गुने ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः ॥ २२ ॥
वृन्दारकसमः श्रीमान् रूपयौवनगर्वितः ।
विमलेनार्कवर्णेन दिव्यगन्धर्वसेविना ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकञ्च गच्छति ॥ २३ ॥

इस मंत्रसे फाल्गुनके महीनेकी एकादशीमें स्नान करनेपर समस्त दुःख और पापोंसे मुक्त एवं देवतुल्य श्रीमान् और रूपयौवन संपन्न तथा विमल सूर्यके समान प्रभायुक्त और गंधर्वोंके द्वारा सेवित होकर इक्कीस कुलका उद्धार करके विष्णुलोकमें जाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

तस्य दक्षिणकाष्ठायां किञ्चिन्नैर्ऋत्यगोचरे ।
एकादशधनुर्मानं शिवकुण्डमिति श्रुतम् ॥ २४ ॥

उसके दक्षिणकी ओर कुछेक नैर्ऋतकोणमें ग्यारह धनुः प्रमाण विख्यात शिवकुण्ड है ॥ २४ ॥

तत्राभिषेकमात्रेण रुद्रलोकं स गच्छति ।
शिवकुण्डे चतुर्दश्यां मासि मासि मम प्रिये ।
स्नात्वारुणोदये काले न प्रेतो जायते भुवि ॥ २५ ॥

वहां स्नान मात्रसे ही रुद्रलोकमें जाता है. हे प्यारी ! प्रति महीनेकी चतुर्दशीको अरुणोदयकालमें शिवकुंडमें स्नान करनेसे उसको प्रेत होकर फिर पृथ्वीमें जन्म लेना नहीं पड़ता ॥ २५ ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं विष्णुस्नानसमुद्भवम् ।
सरित्पते नमस्तेऽस्तु त्राहि मां त्वं शिवप्रिये ॥ २६ ॥

हे सब तीर्थोंके परमतीर्थ ! विष्णुके स्नानसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है । हे नदियोंके अधिपति ! तुम महादेवके प्रीतिपात्र हो, इस कारण मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं, तुम मेरी रक्षा करो ॥ २६ ॥

स्नात्वा चानेन मन्त्रेण हंसेनार्घ्यं निवेदयेत् ।
ततो व्रजेत्पाण्डुशैलं गन्धतोयेन स्नापयेत् ।
पूजयेत्कमलैः श्वेतैः करवीरैः सितैः शुभैः ॥ २७ ॥

इस मन्त्रसे स्नान करके हंसमन्त्र द्वारा अर्घ्य निवेदन करे, तदनन्तर पाण्डुशैलमें जाकर सुगंधितजल द्वारा स्नान कराकर शोभायमान श्वेत कमल और श्वेत कनेरसे पूजा करे ॥ २७ ॥

विष्णवे पाद्माभाष्य पाण्डुनाथाय सत्पदम् ।
जपाद्यश्च नतिः पश्चादुद्धरेज्जनकादिषु ॥ २८ ॥

इसके उपरान्त मन्त्रोच्चारणपूर्वक पांडुनाथ विष्णुकी पूजा करके प्रणाम करनेसे जनकादि पितरोंका उद्धार होता है ॥ २८ ॥

चतुर्दशार्णो मन्त्रोयं शिखान्तं समुदीरितम् ।
नारदोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्री देवता हरिः ।
विनियोगश्च सर्वार्थे काम्येषु च विशेषतः ॥ २९ ॥

जिन सब मन्त्रोंका वर्ण चतुर्दश हैं, उनको शिखान्त उच्चारण करना चाहिये । उनके ऋषि नारद, छन्दः गायत्री, देवता हरि एवं सर्वार्थमें और विशेषकर काम्यार्थमें विनियोग होता है ॥ २९ ॥

श्वेतञ्च द्विभुजं विष्णुं शङ्खचक्रलसत्करम् ।
सर्वलोकेश्वरं देवं देवगन्धर्वसेवितम् ।
ध्यानं कृत्वार्चयेद्धीमान्पूर्वपात्रादितः क्रमात् ॥ ३० ॥

फिर बुद्धिमान् मनुष्य श्वेत वर्ण दो भुजवाले शंखचक्र जिनके हाथमें शोभित हैं, ऐसे सब लोकोंके ईश्वर वरदेनेवाले देवता और गन्धर्वोंसे सेवित विष्णुका ध्यान करके पूर्वपात्रादि क्रमसे पूजा करे ॥ ३० ॥

लक्ष्मीं सरस्वतीं गङ्गां यमुनां नर्मदां शिवाम् ।
बालाञ्च कमलाश्चैव तथा संकर्षणादिकम् ।
दिक्पतींश्च ग्रहांश्चैव विष्वक्सेनं प्रपूजयेत् ॥ ३१ ॥

इसके पीछे लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, यमुना, नर्मदा, शिवा, बाला, कमला और संकर्षणादि दिक्पतिगण ग्रहगण और विष्वक्सेन इन सबकी पूजा करे ॥ ३१ ॥

लोहिते विधिवत्स्नात्वा पाण्डुनाथं प्रपूजयेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ३२ ॥

फिर लोहित्यमें विधिपूर्वक स्नान करके पांडुनाथकी पूजा करनेपर संपूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग करता है ॥ ३२ ॥

मन्वन्तरगतं साग्रं जरामृत्युविवर्जितः ।
पुण्यक्षयादिहागत्य कुले सर्वगुणान्विते ॥ ३३ ॥
जन्मपरिग्रहं कृत्वा प्रेतो भवति वैष्णवः ।
मन्त्रं जप्यार्चयेद्देवमिष्टमन्त्रेण पूजयेत् ॥ ३४ ॥

इसके पीछे, जरा मृत्यु विवर्जित हो वह मनुष्य एक मन्वन्तरके कालपर्यन्त अवस्थित रहकर पुण्यक्षय होनेपर फिर इस लोकमें सर्वगुण युक्त सत्कुलमें जन्मग्रहणपूर्वक फिर प्रेत होकर वैष्णवपदको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

पाण्डुनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारक।
त्राहि मां सर्वलोकेश विष्णुरूप नमोऽस्तु ते ॥३५॥
निर्मलानन्दसंकाश नमस्ते पुरुषोत्तम ।
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पाण्डुनाथ नमोस्तु ते ॥ ३६ ॥
नमस्ते हेमगर्भाभ नमस्ते गरुडध्वज ।
ब्रह्मरूप नमस्तेऽस्तु नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥
नमस्तेऽञ्जनसङ्काश नमस्ते भक्तवत्सल ।
पाण्डुनाथ नमस्तेऽस्तु त्राहि त्राहि नमोऽस्तु ते ॥३८॥
नमस्ते विबुधावास नमस्ते विबुधप्रिय ।
नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम् ॥ ३९ ॥
नमस्ते विबुधश्रेष्ठ नमस्ते कमलोद्भव ।
चतुर्मुख जगद्धाम पाण्डुरूप नमोऽस्तु ते ॥ ४० ॥
नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रिदशार्चित ।
त्राहि विष्णो जगन्नाथ पाण्डुरूप नमोऽस्तु ते ॥ ४१ ॥
नरसिंह महावीर्य त्राहि मां दीप्तलोचन ।
विष्णुरूप नमस्तेऽस्तु पाण्डुनाथ नमोस्तु ते ॥ ४२ ॥

इन मन्त्रों द्वारा पांडुनाथकी अर्चना करके इस मन्त्रसे पूजा करे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

देवस्य नैर्ऋते भागे धनुः पञ्चप्रमाणतः ।
अश्वत्थचिह्नितं क्षेत्रं धर्मक्षेत्रं प्रकीर्त्यते ॥ ४३ ॥

पाण्डुनाथके नैर्ऋत कोणमें पंच धनुःप्रमाण अश्वत्थ चिह्नित क्षेत्र अवस्थित है । इसको धर्मक्षेत्र जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

संहितां प्रजपेत्तत्र गीतशास्त्रञ्च संजपेत् ।
चतुर्युग्मेन संजप्यं मन्त्रेणैव तु तत्फलम् ॥ ४४ ॥
लभते नात्र सन्देह एकावर्ते सहस्रकम् ।
क्षेत्रस्यारोहणाद्देवि कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ॥ ४५ ॥

वहां संहिताजप और गीतशास्त्रका जप करना चाहिये । चतुर्युग्म अर्थात् आठबार जप करनेसे सब मंत्र प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं वहां एकबार पाठ करनेसे अन्यत्र पाठका सहस्रगुण फल प्राप्त होता है, हे देवि ! इस क्षेत्रमें आरोहण करनेसे कुरुक्षेत्रके तुल्य फल मिलताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

देवस्य पूर्वभागे तु धनुरेकप्रमाणतः ।
स्वच्छाकृतिश्चारुशिला सा लक्ष्मीः परिकीर्त्तिता ॥४६

देवके पूर्व भागमें उतने धनुःप्रमाण स्वच्छाकृति एक मनोहर शोभायमान शिला प्रतिष्ठित है वही लक्ष्मी है ॥ ४६ ॥

श्रीबीजेन समभ्यर्च्य मालतीकुसुमैर्यजेत ॥ ४७ ॥

श्रीबीजसे मालतीकुसुमद्वारा उनकी पूजा करे ॥ ४७ ॥

विष्णुकुण्डे ततः स्नात्वा लक्ष्मी पूज्य विधानतः ।
पौर्णिमास्यां तुलार्के तु लक्ष्मीस्तस्याचला भवेत् ४८

विष्णुकुण्डमें स्नान करनेके पीछे विधिपूर्वक लक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये । जो मनुष्य तुलाके सूर्य और पौर्णमासीमें उनकी पूजा करता है उसकी लक्ष्मी अचल होती है ॥ ४८ ॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे नातिदूरे च शांकरि ।
कोलक्षेत्रं विजानीहि धनुरष्टप्रमाणकम् ॥ ४९ ॥

हे शांङ्करि ! उसकी दक्षिणदिशामें थोड़ीही दूर आठ धनुःप्रमाण कोलक्षेत्र जानना चाहिये ॥ ४९ ॥

अश्वत्थमूले देवेशं कृष्णचारुशिलामयम् ।
लोको दृष्ट्वार्चयेद्भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ५० ॥

जो मनुष्य पीपलकी जडमें स्थित मनोहर कृष्णशिलामय देवेश्वरका दर्शनकरके भक्तिपूर्वक पूजा करताहै वह विष्णुलोकमें जाता है ॥ ५० ॥

ब्रह्मकूटस्य धनदे श्रीकुण्डं नाम वै सरः ।
धनुर्युग्मप्रमाणेन तत्र स्नात्वा श्रियं लभेत् ॥ ५१ ॥

ब्रह्मकूटकी उत्तर दिशामें दो धनुःप्रमाण श्रीकुण्डनामक सरोवर है वहां स्नान करनेसे श्रीलाभ होती है ॥ ५१ ॥

चैत्रे शुक्लदशम्याश्च एकादश्यां सितेतरे ।
स्नात्वा मन्त्रेण श्रीतीर्थे गतिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥५२॥

चैत्रशुक्लदशमीके दिन और कृष्णपक्षकी एकादशीमें श्रीतीर्थमें स्नान करनेसे उत्तम गति प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥

श्रीरस्तु भगवच्छ्रेष्ठ आरोग्यविजयप्रद ।
श्रियं देहि यशो देहि पापं हर नमोऽस्तु ते ॥ ५३ ॥

श्रीरस्तु भगवच्छ्रेष्ठ ! आरोग्य ! और विजयके देनेवाले ! मुझको श्री और यश दो तथा मेरे पापोंको हरण करो; मैं आपको नमस्कार करताहूँ इस मंत्रसे श्रीकुण्डमें स्नान करै ॥ ५३ ॥

तस्य पूर्वे च द्वाविंशद्धनुर्मात्रप्रमाणतः ।
तीर्थं कनखलं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ ५४ ॥

उसके पूर्वमें बाईस धनुःप्रमाण कनखल नामक महापापोंका नाश करने वाला तीर्थ अवस्थित है ॥ ५४ ॥

वैशाखस्य तृतीयायां शुक्लपक्षे विशेषतः ।
दक्षिणामूर्तिमन्त्रेण स्नात्वा स्वर्गे महीयते ॥ ५५ ॥

वैशाखके महीनेकी शुक्ल तृतीयामें दक्षिणामूर्तिमंत्रद्वारा उसमें स्नान करनेसे स्वर्गलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग करता है ॥ ५५ ॥

सरिच्छ्रेष्ठ महाभाग देवगन्धर्वसेवित ।
दशजन्मार्जितं पापं हर तीर्थ नमोऽस्तु ते ॥ ५६ ॥

हे सरित्पति ! हे महाभाग ! हे देवता और गंधर्वोंसे सेवित ! हे तीर्थवर्य ! मेरे दश जन्मके संचित पाप हरण करो तुम्हें प्रणाम है इस मंत्रसे स्नान पूजा और प्रणामादि करै ॥ ५६ ॥

तस्य दक्षिणभागे तु पर्वते च मनोहरे ।
धनुर्वेदप्रमाणञ्च चम्पकेशं समर्चयेत् ॥ ५७ ॥

उसके दक्षिणभागके मनोहरपर्वतमें चार धनुःप्रमाण दूर स्थित चम्पकेश्वरकी पूजा करै ॥ ५७ ॥

उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कनखलं भावसंयुतः ।
मुच्यते सर्वपापैश्च ब्रह्मलोकं व्रजेद्यतः ॥ ५८ ॥

मनुष्यगण पवित्र भावयुक्त होकर कनखलमें स्नानादि समापन करने पर संपूर्ण पापोंसे छूट ब्रह्मलोकमें जाता है ॥ ५८ ॥

तस्य पूर्वे शुभे देवि धनुःसप्त प्रमाणतः ।
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ५९ ॥
पुष्करं सर्वपापाघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम् ।
मनसा संस्मरेद्यस्तु पुष्करन्तु महेश्वरि ।
मुच्यते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते ॥ ६० ॥

हे देवि ! उसकी पूर्वदिशामें सात धनुःप्रमाण त्रैलोक्य विख्यात परमेष्ठि ब्रह्माका पुष्करनामक तीर्थ है, यह तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला और मरेहुओंको मुक्ति देनेवाला है । जो मनुष्य मनमें भी पुष्कर तीर्थको स्मरण करता है. वह सब पापोंसे छूटकर इन्द्रके सहित आनन्दको भोगता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५९ ॥ ६० ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
उपासेत सिद्धसंघा ब्रह्माणं पद्मसम्भवम् ॥ ६१ ॥

देव, गन्धर्व, यक्ष उरग और राक्षसगण वहां आनकर पद्मयोनि ब्रह्माजी की उपासना करते हैं॥ ६१ ॥

तत्र स्नात्वा भवेन्मुक्तो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
पूजयित्वा हि वरदं ब्रह्माणञ्च प्रपश्यति ॥ ६२ ॥

वहां स्नान करनेसे मनुष्य मुक्ति पाते हैं. वहां परमेष्ठिकी पूजा करके वरदायक ब्रह्माजीका दर्शन करे ॥ ६२ ॥

तदाभिगम्य देवेशं पुरहूतमनिन्दितम् ।
सुरूपो जायते मर्त्यः सर्वान्कामान्समश्नुते ।
हे पुष्कर महाभाग नमस्ते च त्रिपुष्कर ॥ ६३ ॥
हुं हूं हौं सरितां नाथ पापं मे हर पुष्कर ।
अनेन स्नानं कुर्य्यात्तु त्वन्तेनार्घं निवेदयेत् ॥ ६४ ॥

तब अनिन्दित देवराज पुरन्दरका दर्शन करनेसे मनुष्य उन्हींके स्वरूपको प्राप्त होकर सर्वकामना भोगते हैं । "हे पुष्कर महाभाग नमस्ते च त्रिपुष्कर ! हुं हूँ हौं सरितां नाथ पापं मे हर पुष्कर" इस मन्त्रसे स्नान करके फिर अर्घ्य निवेदन करे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पुष्करस्य च नैर्ऋत्ये किञ्चिद्वामे मम प्रिये ।
धनुर्विंशतिमानेन तीर्थं बदरिकाश्रमः ॥ ६५ ॥

हे प्यारी ! पुष्करके नैर्ऋत कोणमें कुछेक वामभागको अट्ठाईस धनुः परिमित बदरिकाश्रम तीर्थ है ॥ ६५ ॥

तत्र गत्वार्चयेद्देवं नारायणमनामयम् ।
गोसहस्रफलं प्राप्य स्नात्वाभ्यर्च्य हरेर्दिने ॥ ६६ ॥
नारायणस्याश्रमे तु यः कुर्याद्रोहिणीव्रतम् ।
एकेन शतकोटीनां व्रतेन फलमाप्नुयात् ॥ ६७ ॥

वहां जाकर अनामय नारायणदेवकी पूजा करे । वहां हरिके दिन स्नान करनेके पीछे पूजा करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है । जो मनुष्य नारायणके आश्रममें रोहिणीव्रतका आचरण करता है, वह उसी एक व्रत द्वारा सौ करोड़ व्रतका फल पाता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

तत्र लिङ्गं महेशस्य विभाण्डकमिति श्रुतम् ।
समभ्यर्च्य प्रसादेन रुद्रत्वमधिगच्छति ॥ ६८ ॥
पञ्चगोदावरं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम् ।
पूजयित्वा तत्र रुद्रं प्रसन्नं परमेश्वरम् ॥ ६९ ॥
आराधयामास हरं पञ्चाक्षरपरायणम् ।
पूजयित्वा नमस्कुर्य्याद्गोशतानां फलं लभेत् ॥ ७० ॥

वहां विभाण्डक नामसे विख्यात महादेवका एक लिंग है, प्रसाद मंत्रसे उसकी पूजा करनेपर रुद्रत्व लाभ होता है । पञ्च गोदावर तीर्थ अत्युत्तम है । ब्रह्मादि देवता इसकी सेवा करते हैं, वहां प्रसन्न परमेश्वर रुद्रदेवकी पूजा करके पञ्चाक्षर मन्त्रसे हरिकी आराधना करे फिर नमस्कार करनेपर सौ गोदानका फल प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

पुष्करस्य च पूर्वे तु कुमारं नाम वै सरः ।
कुमारतीर्थे यः स्नायाद्गाणपत्यश्च विदन्ति ॥ ७१ ॥

पुष्करकी पूर्वदिशामें कुमारनामक सरोवर है, वहां स्नान करनेसे गाणपतित्व प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

कुमारतीर्थस्याग्नेये पञ्चाशद्धनुरायतम् ।
नरनारण्यकं देवि सर्वदेवगणैर्वृतम् ॥ ७२ ॥

कुमारतीर्थके अग्निकोणमें पचास धनुःप्रमाण नरनारण्यक तीर्थ है, हे देवि ! यह सदाही सब देवताओंसे घिरा रहता है ॥ ७२ ॥

कुमारेश पुरेवास विष्णो प्रेयस्थिते रतः ।
ॐ ओं ईं हूं जगद्व्यात पापं हर कुमारक ॥ ७३ ॥
अनेन मज्जनं कृत्वा सुरेशार्घ्यं निवेदयेत् ।

इसमंत्रसे मज्जन करके सुरेशार्घ्य निवेदन करै ॥ ७३ ॥

तत्र देवो महादेवः स्थाणुरित्यभिधीयते ।
तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते तत्क्षणान्नरः ॥ ७४ ॥

वहां देवदेव महादेव 'स्थाणु' इस नामसे अभिहित होते हैं मनुष्यगण उनका दर्शन करनेपर तत्काल सब पापोंसे छूटते हैं ॥ ७४ ॥

चम्पकेशस्य धनदे धनुर्द्विषष्टिमानतः ।
तद्वनं चम्पकं नाम सिद्धब्रह्मर्षिवन्दितम् ॥ ७५ ॥
पुण्यमायतनं विष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः ।
ब्रह्मकूटस्य धनदे शिलापञ्चकमध्यगम् ॥ ७६ ॥
दुर्गाकूपं महाकूपं सर्वतोद्वारमेव हि ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण स्नात्वा कामानवाप्नुयात् ॥७७॥

चंपकेश्वरके उत्तरमें बासठ (६२) धनुःपरिमाण चम्पकनामक वन है, सिद्ध और ब्रह्मर्षि सदा उसकी सेवा करते हैं, वह विष्णुका पवित्र गृह है, वहां पुरुषोत्तम वास करते हैं ब्रह्मकूटकी उत्तर दिशमें शिलापंचके मध्यगत दुर्गाकूप है, इसको एक महाकूप

जानना चहिये । इसके सब ओर दरवाजा है, दशाक्षरमंत्रसे उसमें स्नानकरनेपर संपूर्ण कामना प्राप्त होती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

दुर्गाकूपे तथाष्टम्यां स्नात्वा काममनुं जपेत् ।
त्रिः कृत्वा पञ्चमं वाथ कृष्णाविजयपुष्पकैः ।
पूजयित्वा नरस्तत्र पीलुश्रुतिधरो भवेत् ॥ ७८ ॥

अष्टमीको दुर्गाकूपमें स्नान करनेके पीछे काममंत्र जपनेसे और कृष्ण विजय पुष्पद्वारा तीनबार वा पांचबार पूजा करनेसे मनुष्यगण पीलुश्रुतिधर होता है ॥ ७८ ॥

काकवन्ध्या तु या नारी मृतापत्या च या भवेत् ।
सापि सन्ततिमाप्नोति शरत्काले विशेषतः ॥ ७९ ॥
वन्धूकैः पूजयेत्तत्र देवीं कामेश्वरीं यदि ।
बिल्वपत्रेण देवेशि शाश्वतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥८०॥

काकवन्ध्या वा मृतापत्या (जिसकी संतानमरजाती है) नारी यदि शरत्कालमें पूजा करै तो उनको संतान प्राप्त होती है, वहां कामेश्वरी देवीकी बन्धूक और बिल्वपत्र द्वारा पूजा करनेसे शाश्वती सिद्धि लाभ होती है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

साधयेदीप्सितान्कामांस्तत्र सिद्धिश्च विन्दति ॥८१॥

और समस्त अभिलषित कामना प्राप्त करके सिद्धि प्राप्त होती है ॥८१॥

कौलश्च विष्णुशैलश्च परमेशि च शङ्करः ।
ईशश्च पातिजातश्च कुमारश्च गणेश्वरः ।
नीलश्च श्वेतभुन्नीत उत्तरे ह्यचलाःस्थिताः ॥ ८२ ॥

हे परमेशि ! कोल पर्वत, विष्णु शैल, ईश, पारिजात कुमार, गणेश्वर, नील श्वेतभुन्नीत यह सब पर्वत उत्तरमें अवस्थित हैं ॥ ८२ ॥

मध्ये विष्णुस्तथा स्थाणुः पर्वतोऽथ बलस्तथा।
कमलश्च शिखा चैव कपोतो मरुताचलः ॥ ८३ ॥

मध्यमें विष्णु, स्थाणु, बल, कमल, शिखा, कपोत, मरुताचल ॥ ८३ ॥

पूर्वस्मिन्पातुकूपाद्रिः पर्वतः परिकीर्त्तितः।
आग्नेये चाचलो देवि हस्तिकर्णो विकर्णकः।
अमाचलो दक्षिणे तु मरुबकः प्रजेश्वरः ॥ ८४ ॥

पूर्वमें पातुकूपादि अचल हैं, हे देवि ! आग्नेयकोणमें हस्तिकर्ण और विकर्ण हैं दक्षिणमें अमाचल, मरुबक, प्रजेश्वर ॥ ८४ ॥

द्युमन्तः कनकश्चैव वायव्ये नीललोहितः॥
कामाह्वयो मानशैलो वह्निरिन्द्रः शतक्रतुः ॥ ८५ ॥

द्युमन्त और कनक है। वायुकोणमें नीललोहित, मानशैल, कामाह्वय, वह्नि, इन्द्र, शतक्रतु ॥ ८५ ॥

लोहितः कमलश्चैव नैर्ऋते निर्ऋतिस्तथा।
गन्धर्वो लाक्षणश्चैव पिशाचो विहगाचलः ॥ ८६ ॥

लोहितक और कमल है। नैर्ऋत कोणमें नैर्ऋति गन्धर्व लाक्षण पिशाच और विहगाचल है ॥ ८६ ॥

पश्चिमे ब्रह्मयूपश्च हयमेधो गिरीश्वरः।
उत्तरे उत्तरश्चैव तथा चोत्तरपाण्डुकः ॥ ८७ ॥

पश्चिममें ब्रह्मयूप हयमेध और गिरीश्वर है, उत्तरमें उत्तर उत्तरपाण्डुक ॥ ८७ ॥

आदित्यो वायुकोणे तु वायुर्भल्लातकस्तथा।
धनदश्च महीध्रश्च जनकश्च नलस्तथा ॥ ८८ ॥

और आदित्य हैं। वायुकोणमें वायु, भल्लातक, धनद, महीध्र, जनक और नल ॥ ८८ ॥

ऐशान्यां मण्डलश्चैव त्वश्वक्रान्तः सचन्द्रकः ।
यमश्चित्रवहश्चैव ग्रहश्चैव यथाक्रमात् ॥ ८९ ॥

ईशानकोणमें मण्डल, अश्वक्रान्त, चन्द्रक, यम, चित्रवह, और ग्रह हैं ॥ ८९ ॥

ततो गच्छेन्नीलशैलं मध्याह्ने परमेश्वरि ।
अष्टम्याश्च त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामथापि वा ॥ ९० ॥
विषुवे अयने वाथ रविसंक्रमणे तथा ।
पूर्वद्वारि यदा गच्छेदाप्नुयाद्विपुलं धनम् ॥ ९१ ॥

हे परमेश्वरि ! फिर मध्याह्नकालमें नीलशैलमें गमन करे, अष्टमी, तेरस, चौदस विषुव (संक्रांति पुण्यकाल) अयन वा संक्रमणमें पूर्वद्वारमें जानेपर विपुल धन प्राप्ति होता है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

उत्तरे मुक्तिकामस्तु राज्यकामस्तु पश्चिमे ।
यदा दक्षिणमार्गेण आरोहेन्नीलकूटकम् ।
हतराज्यो भवेद्राजा त्वन्येषां जायते क्षयः ॥ ९२ ॥

मुक्तिकी कामना करनेवाला मनुष्य उत्तर दिशा होकर, राज्यकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य पश्चिम दिशाके द्वारा और हतरास्य मनुष्य दक्षिण दिशाके द्वारा नीलकूटपर आरोहण करनेसे क्रमानुसार मोक्ष, राज्य और पुनर्वार राज्यको प्राप्त होता है, अन्य दिशाके द्वारा आरोहण करनेसे क्षयको प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥

ऐशाने तु यदा गच्छेद्विपुलां श्रियमाप्नुयात् ।
वायव्ये चाग्निनैर्ऋत्ये महद्भयकरं भवेत् ॥ ९३ ॥

यदि ईशान कोणके द्वारा आरोहण करे तो विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है । वायव्य, आग्नेय और नैर्ऋत्यमें आरोहण करनेसे महाभय उपस्थित होता है ॥ ९३ ॥

नीलं दशभुजं शान्तं मणिकुण्डलमण्डितम् ।
नागहारोत्तरीयाढ्यं वृषभस्थं विचिन्तयेत् ॥ ९४ ॥

नीलदेवकी दश भुज, शान्त, मणिकुण्डलमंडित नागहारोत्तरीय (सर्पोंकी माला और वस्त्र धारण करनेवाले) बैलपर स्थित जानकर भावना करे ॥ ९४ ॥

पूजयेद्वह्निबीजेन नमस्कृत्वा विधानतः ।
मन्त्रेणारोहयेच्छैलमश्वमेधफलं लभेत् ।
प्राग्द्वारेण गृहस्थस्तु आरोहेन्नीलपर्वतम् ॥ ९५ ॥

फिर वह्निबीजसे पूजा करनेके पीछे विधिपूर्वक नमस्कार करके मन्त्र द्वारा शैलपर आरोहण करनेसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है । गृहस्थ पूर्व-द्वारसे नीलपर्वतपर आरोहण करे ॥ ९५ ॥

नीलाचल महाबाहो धर्मकामार्थमोक्षद ।
आरोहामि त्वच्छिखरं प्रसीदाघं हराशु मे ॥ ९६ ॥

हे अव्यय नील ! हे महाबाहो ! हे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके देने-वाले ! मैं शिखरपर आरोहण करता हूं मेरे पापोंको हरो और प्रसन्न होओ ॥ ९६ ॥

दुर्गाकूपे तु पूर्वस्यां देवमाम्रातकेश्वरम् ।
धनुस्त्रयान्तरे देवि पूजयेत्केशवादिना ॥ ९७ ॥

हे देवि ! दुर्गाकूपकी पूर्वदिशामें तीन धनुःके अन्तरमें आम्रातकेश्वर केशवादिके सहित पूजा करे ॥ ९७ ॥

तस्य देवस्य याम्ये तु धनुरष्टान्तरे प्रिये ।
गजाननं कृष्णवर्णं पूजयेद्गणनायकम् ॥ ९८ ॥

हे प्यारी ! उसकी दक्षिण दिशामें आठ धनुःके अन्तरमें स्थित गजाकार कृष्णवर्ण गणनायककी पूजा करनी चाहिये ।

तस्य पूर्वेणैव धनुः प्रमाणे स्यात्त्रिविक्रमः ।
तं प्रणम्य नरो भक्त्या सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥९९॥

उसके एक धनुःप्राण पूर्वभागमें त्रिविक्रम देव स्थित है, मनुष्य भक्ति· पूर्वक उनकी पूजा करनेसे संपूर्ण कामनाओंको प्राप्त होते हैं ॥ ९९ ॥

तस्यांशपञ्चकं यावत् धनुषो हि प्रमाणतः ।
चत्वारिंशद्धनुर्मानं सौभाग्यं नाम वै सरः ॥ १०० ॥
क्रीडापुष्करिणी सा तु कामाख्यायाः सुरेश्वरि ।
शक्रेणोपासितः पूर्वं सहदेवैः प्रजापतिः ॥ १०१ ॥

वह धनुःप्रमाण स्थान उनके पञ्चमांशमें अवस्थित है तदनन्तर चालीस धनुःप्राण सौभाग्य नामक सरोवर है । हे सुरेश्वरी ! वही कामाख्या देवीकी क्रीडापुष्करिणी है, वहां पहिले इन्द्रने देवताओंके सहित मिलित होकर प्रजापतिकी पूजा करी थी ॥ १०० ॥ १०१ ॥

तस्य पश्चिमतीरे तु स्नात्वा तत्र च मण्डलम् ।
कृत्वा सम्यग्विधानेन उपवासं समाचरेत् ॥ १०२ ॥

उसके पश्चिमतटमें स्नान करनेके पीछे प्रदक्षिणा करके विधिपूर्वक वहां उपवास करे ॥ १०२ ॥

पञ्चकेऽह्नि तथा प्राप्ते जले स्नात्वा विधानतः ।
क्रीडापुष्करिणीं गत्वा कामेशीं यस्तु पूजयेत् ।
पितॄन्सन्तारयत्याशु देवीलोके प्रमोदते ॥ १०३ ॥

अन्य दिन पंचकके जलसे विधिपूर्वक स्नान क्रीड़ा, पुष्करिणी गमन करनेके पीछे कामेश्वरीकी पूजा करनेपर मनुष्य पितरोंको तार देवीलोकमें जाकर आनन्द प्राप्त करता है ॥ १०३ ॥

सौभाग्यसरिदावर्त्ते विमले मानसप्रिये ।
नमोङ्कारौ वषट् स्वाहा पापं हर नमोस्तु ते ।
मन्त्रेण मज्जनं कृत्वा कामेनार्घ्यं निवेदयेत् ॥ १०४ ॥

सौभाग्यसरिदावर्त्ते विमले मानसप्रिये । नमोङ्कारौ वषट् स्वाहा पापं हर नमोस्तुते " इस मन्त्रद्वारा मज्जन करनेके पीछे काममंत्रसे अर्घ्य निवेदन करना चाहिये ॥ १०४ ॥

ऐशान्ये तस्य कूपस्य लोहित्यो नाम वै सरः ।
स्नात्वा ध्रुवेण देवेशि मुच्यते भवबन्धनात् ॥ १०५ ॥

इस कुण्डके ईशानकोणमें लोहित्यनामक सरोवर है, हे देवेशि ! वहां ध्रुवमंत्रसे स्नानकरनेपर मनुष्य संसारके बंधनसे छूट जाता है ॥ १०५ ॥

अग्निकुण्डं कालहस्तं यामलं नाम वै सरः ।
तत्र स्नात्वा च पार्श्वेन रूपवान् जायते भुवि ॥१०६

तदनन्तर अग्निकुण्ड, कालहस्त और यामल नामक सरोवर है. वहां पार्श्वमन्त्रसे स्नान करनेपर पृथ्वीमें रूपवान् होकर जन्मग्रहण करता है ॥ १०६ ॥

पञ्चहस्तं तु नैर्ऋत्ये सौभाग्ये परमेश्वरि ।
गङ्गासारं विजानीयात्सर्वतीर्थोद्भवं जलम् ॥ १०७ ॥

हे देवि ! उसके नैर्ऋत्यकोणमें पंचकहस्त गंगासरोवर है, उसमें सर्व तीर्थसंभूत जल विद्यमान है ॥ १०७ ॥

कोलामध्यगतं कुण्डं सौभाग्यं परिकीर्त्तितम् ।
तिस्रःकोटयर्द्धकोटी च दिवि भुव्यन्तरिक्षके ॥१०८॥
सौभाग्ये तानि सर्वाणि मन्दीभूते दिवाकरे ।
तस्मात्समाचरेत्स्नानं कर्त्तव्यं मकरे रवौ ॥ १०९ ॥
तुलाविषुवसंक्रान्त्यादिषु यः स्नानमाचरेत् ।
अभार्यो लभते भार्यां देवीलोके प्रमोदते ॥ ११० ॥

कोलाके बीचवाले तीर्थका नाम सौभाग्य कहागया है, स्वर्ग, आकाश और पृथवीमें साढेतीन करोड कुण्ड हैं, उन सबकोही सौभाग्य जाने। सूर्यदेवके मकरगत होने और दिवाकरके मन्द होनेपर उनमें स्नान करना चाहिये। तुला विषुव संक्रमण (अयनसंक्रान्ति) में वहां स्नानकरनेसे भार्याहीन मनुष्य भार्या प्राप्तकरके देवीलोकमें गमनपूर्वक अनान्द भोगते हैं ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥

गोधिकाकररूपेण व्यक्ताव्यक्तशिला च या
अनन्ताख्यं विजानीयात्कुण्डं तस्योपरि प्रिये ॥१११॥

हे प्रिये ! गोधिकाकाररूपा (गोयके आकार) जो व्यक्ताव्यक्त शिला है, वही अनन्ताख्य कुण्ड है ॥ १११ ॥

अनन्तात्पश्चिमे पार्श्वे पूर्वे कृष्णशिला च या।
वराहं तं विजानीयात्सर्वतीर्थोद्भवं जलम् ॥ ११२ ॥

उसके ऊपरिभाग और पूर्वपार्श्वदेशमें जो कृष्णवर्ण शिला है, वही वराहकुण्ड है उसमें सर्वतीर्थसंभूत जल विद्यमान है ॥ ११२ ॥

तुलायां वाथ कन्यायां शुक्लाष्टम्यां विशेषतः।
स्नात्वा संवीक्षयेद्देवीमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ११३ ॥

तुला वा कन्यामें और विशेषकर शुक्लाष्टमीमें स्नान करनेके पीछे देवीका दर्शन करनेसे अग्निष्टोमयज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ ११३ ॥

तर्पयेत्पितृदेवांश्च काम्यानन्यांश्च तर्पयेत्।
सर्वतीर्थेषु देवेशि न कुर्यात्काम्यतर्पणम् ॥ ११४ ॥

वहां पितरोंका तीर्पण और अन्यान्य काम्यतर्पण करना चाहिये। हे देवेशि ! सब तीर्थोंमें काम्यतर्पण न करै ॥ ११४ ॥

कुण्डेत्र चाश्वक्रान्ते चाप्यगस्त्ये च प्रयागके।

वाराणसीह्रदे चैव भार्गवे मेरुपुष्करे ।
गङ्गाह्रदे ब्रह्मसरे दुर्गाकूपे च भावयेत् ॥ ११५ ॥

इस कुण्डमें, अश्वतीर्थ, आगस्त्य प्रयाग वाराणसीह्रद, भार्गव मेरु पुष्कर, गंगाह्रद, ब्रह्मसर और दुर्गाकूपमें काम्यतर्पण करना चाहिये ॥ ११५ ॥

पृथ्वीप्रदक्षिणे यच्च फलं प्रोक्तं महर्षिभिः ।
तत्फलं प्राप्यते तस्य कुण्डस्यैव प्रदक्षिणे ॥ ११६ ॥

हे देवि ! महर्षियोंने पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेका जो फल कहा है, इस कुण्डकी प्रदक्षिणा करनेसे वही फल प्राप्त होता है ॥ ११६ ॥

कुण्डस्याग्नेयभागे च तुलादूरे व्यवस्थितम् ।
कुम्बलाख्यं शिवं दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥११७॥

कुण्डके अग्निकोणमें तुलापरिमित (एक प्रकारकी नाप) दूरमें अवस्थित कम्बलाख्यशिवका दर्शन करनेपर मनुष्य संसारबन्धनसे छूट जाता है ॥ ११७ ॥

स्वरेण भावयुक्तेन नत्यन्तेन प्रपूजयेत् ।
नमो नमस्ते देवेश मन्त्रविद्भिः सुपूजित ।
लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु अनन्त पुरुषोत्तम ।
देवदानवगन्धर्वैः सदार्चितपदाम्बुज ।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥ ११९ ॥

भावयुक्त चित्त द्वारा काममंत्रसे प्रणाम पूर्वक पूजा करनी चाहिये हे देवाधिदेव ! आप मन्त्रोंसे पूजित और आभूषणोंसे अलंकृत हैं. हे पुरुषोत्तम ! आप लक्ष्मीके पति और अनन्त हैं देवता दानव गंधर्व आपके चरणोंकी पूजा करते हैं, आप कमलनाभ और कमलाके पति, मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

कृष्णाकृतिं विष्णुरूपं नमस्कृत्वा मम प्रिये ।
स्तुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा ततो देवीगृहं व्रजेत् ॥१२०॥

इस मंत्रसे कृष्णाकृति विष्णुरूपको नमस्कार स्तुति और प्रदक्षिणा करके फिर देवीगृहमें गमन करे ॥ १२० ॥

कृत्वा शवासनं जप्त्वा वीक्षेत्तारेण शाङ्करि ।
स्पृष्ट्वा मदनप्रायेण नमः कामेन शाङ्करि ॥ १२१ ॥
पञ्चामृतेन तोयेन स्नापयेत्सुशुभैर्ज्जलैः ।
मूलमन्त्रेण चाचम्य मंत्रेण च विमार्ज्जयेत ॥ १२२ ॥

हे शाङ्करी ! वहां जाय, शवासनमें जाय, जपकर तारामंत्रसे वीक्षण (देखना) और मदनप्राय मंत्रसे स्पर्श और काममंत्रसे नमस्कार करके पञ्चामृत जल और शुद्ध वारि द्वारा स्नान करावे फिर मूल मंत्रसे आचमन और पत्रमंत्रसे मार्जन करके ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

कामतन्त्रं कुशीतेन लिखेद्दक्षो मम प्रिये ।
वामे कामं लिखित्वा तु तत्र पूजां समाचरेत् ॥१२३॥

दक्षिण भागमें कुशीत (लालचन्दन) द्वारा कामतंत्र लिखना चाहिये वाममें कामतंत्र लिखकर वहां पूजा करे ॥ १२३ ॥

देव्यङ्गे चित्रके पुष्टिमणौ खड्गे च शांकरि ।
श्मशाने च महालिङ्गे प्रतिमायां जले तथा ।
शालग्रामे यन्त्रतन्त्रे मण्डलञ्च विसर्जयेत् ॥१२४॥

देवीके अंगमें, चित्रपटमें, पुष्टिमणिमें, खड्गमें, श्मशानमें, महालिंगमें, प्रतिमामें, जलमें, मंत्रमें, तंत्रमें, शालग्राममें, मंडल वर्जित है ॥१२४॥

महाहोमे मण्डलकृन्महापातकमाप्नुयात् ।
न गृह्णाति च तत्पूजां पदं त्यक्त्वा व्रजेत्पुरम् ॥१२५॥

महामोहमें मंडल करनेसे महापातक प्राप्त होता है उसमें मंडल करनेपर वह स्थान छोड़कर अपने घरको चला जाय ॥ १२५ ॥

न च योन्यन्तरगतं श्मशानस्य च पूर्वतः।
महामण्डलकं देव्याः संस्थितं तत्र पूजयेत् ॥ १२६ ॥

अन्ययोनिमें भी मंडल न करे श्मशानके पूर्वभागमें देवीका महामंडल स्थित है, वहां पूजा करे ॥ १२६ ॥

सप्ताशीतिधनुर्मानलक्षरक्तशिला च या।
अष्टहस्तं सपुलकं लिङ्गं लक्षार्द्धसंयुतम् ॥ १२७ ॥
चतुर्हस्तसमं क्षेत्रं पश्चिमे योनिमण्डलम्।
बाहुमात्रमितश्चैव प्रस्तारे द्वादशांगुलम्।
आपातालं जलं तत्र योनिमध्ये प्रतिष्ठितम् ॥१२८॥

सत्तासी (८७) धनुः परिमाण जो लक्ष रक्तशिलायुक्त और सपुलक (आठ हाथ परिमित दिव्य) लिंगयुक्त चतुर्हस्तसम क्षेत्र पश्चिममें अवस्थित है वही योनिमंडल है. वह योनिमध्ये बाहुमात्र परिमित है, विस्तार में बारह अंगुल जल पातालपर्यंत प्रतिष्ठित है ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

उर्वशी यमुनाधारा कावेरी च सरस्वती।
ब्रह्मकुण्डे समुद्भूतं मणिकूटे च निर्मलम् ॥ १२९ ॥
याति नास्त्यत्र सन्देहो गत्वा वाराणसीह्रदे।
प्लावित्वा मण्डलं देव्या व्यक्तं ब्रह्मसरे प्रिये ॥१३०॥

उर्वशी, यमुनाधारा, कावेरी और सरस्वतीने ब्रह्मकुण्डसे निकलकर मणिकुण्डमें गमन किया है, इसमें संदेह नहीं। तदनन्तर वाराणसी ह्रदमें जानेके पीछे देवीका मण्डल प्लावित (धोय) करके ब्रह्मसरोवरमें प्रगट हुई हैं ॥ १२९ ॥ १३० ॥

मासत्रयाधिके षष्टिवर्षे शुष्कवला भवेत् ।
द्विमासं त्रिदिनश्चैव निर्विघ्नं तिष्ठति ध्रुवम् ।
षण्मासं सुस्थिते देवि महाविपत्करी स्मृता ॥१३१॥

साठ वर्ष तीन महीनेमें शुष्कवला (जिसका रजोबल विनष्ट होगया हो) होती है वह दोमास तीनदिन निर्विघ्न अवस्थित होती है छैमास अवस्थिति करनेपर विपत्कारी हो जाती है इसमें सन्देह नहीं ॥ १३१ ॥

कुल्यधारा यदा शुष्का विण्मूत्रं सन्त्यजेद्बहिः ।
वर्षे वर्षे शुष्कधारा यदा भवति शंकरि ॥ १३२ ॥
बाह्यदेशे च दुर्भिक्षं रोगो भवति निश्चितम् ।
गर्भे शुष्के राज्यनाशः सर्वशुष्के फलं शृणु ॥ १३३ ॥

जब कुल्य (नहर) की धारा सूखती है. तब बाहर मलमूत्र त्यागना चाहिये । हे शंकरि ! जब वर्ष वर्षमें शुष्कधारा होती है, तब बाह्य देशमें दुर्भिक्ष और रोग होता है इसमें सन्देह नहीं । गर्भ शुष्क होनेपर राज्यनाश और सर्वशुष्क होनेपर उसका फल सुनो ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

राज्यभ्रष्टो भवेद्राजा परराष्ट्रसमागमः ।
एवं बहुविधा दोषा सम्भवन्ति वरानने ॥ १३४ ॥
शान्तिं कुर्याद्विधानेन दोषप्रशमनाय वै ।
घृतप्लुतैः करवीरैः द्विलक्षं होममाचरेत् ।
पायसै रक्तपद्मैर्वा ह्यथवा श्रीफलैः सुधीः ॥ १३५ ॥

उससे राजा राज्यभ्रष्ट और परराष्ट्रसमागम अर्थात् अपने राज्यमें दूसरे राजाका अधिकार होता है । इस प्रकार अनेक भाँतिके दोष संघटित होते हैं उनमें शान्ति करनी चाहिये बुद्धिमान् घृतप्लुत करवीर (घृतमें मिलाकर कनेरके फूलों) से दो लक्ष होम करे । अथवा लाल कमल, खीर, वा श्रीफल ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

किम्वा त्रिमधुभिर्भद्रे गोधामांसैर्द्विलक्षकम् ।
त्रिमधुर्मेलनाद्यस्याच्छर्करामधुसर्पिषाम् ॥ १३६ ॥

किम्वा त्रिमधुद्वारा वा गोधामांस (गोयकामांस) द्वारा यह दो लक्ष होम करे। शर्करा, मधु और घृत यहां तीन मिलनेसे इनको त्रिमधु कहते हैं ॥ १३६ ॥

आवर्जितेन क्षीरेण घृतयुक्तेन होमयेत् ॥ १३७ ॥

घृतयुक्त आवर्जित क्षीरद्वारा होम करै ॥ १३६ ॥

अनन्तस्य पश्चिमे च असिनाम्ना स्थिता नदी ।
तस्या धारा पश्चिमे या सा भवेद्वरुणा नदी ।
तस्याः स्वच्छोदकं पीत्वा न पुनर्जायते भुवि ॥१३८॥

फिर अनन्तकी पश्चिम दिशामें असिनामक एक नदी है, उसके पश्चिममें जो धारा है उसका नाम वरुणा नदी है, उसका स्वच्छ जल पीनेसे फिर पृथ्वीमें जन्म लेना नहीं पड़ता ॥ १३८ ॥

सिद्धेश्वरं कोटिलिङ्गं हेरुकं मुक्तिमण्डलम् ।
तथा वाराणसीक्षेत्रं देव्या ह्यन्तर्गृहं स्मृतम् ॥ १३९ ॥

सिद्धेश्वर, कोटिलिंग, हेरुक, मुक्तिमण्डल, वाराणसी क्षेत्र, यह सब देवीके अन्तर्गृह कहे गये हैं ॥ १३९ ॥

पुस्तके प्रतिमायां च स्थण्डिले च महेश्वरि ।
पादुकायां चित्रपटे तथा खड्गेऽनले जले ॥ १४० ॥

पुस्तक, प्रतिमा, स्थण्डिल, पादुका, चित्रपट, खड्ग, अनल, जल॥१४०

लौहित्ये चैव गङ्गायां सागरे तीर्थसङ्गमे ।
प्रतिपीठे बिल्वमूले लिङ्गस्थां देविमर्चयेत् ॥ १४१ ॥
कथ्यते या कालशिला तत्पीठं मणिपूरकम् ।
अन्तर्गृहे महापीठे तदेव मणिपीठकम् ॥ १४२ ॥

लौहित्य, गङ्गा, सागर, तीर्थसंगम, प्रतिपीठ, बिल्वमूल और बिल्वमुखमें लिंगस्था देवीकी पूजा करनी चाहिये । जिसको कालशिला कहते हैं, वही मणिपूरक पीठ, अन्तर्गृह महापीठ और वही मणिपीठ कही गयी है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

शिलायां पर्वताग्रे च तथा पर्वतगह्वरे ।
नित्यञ्च पूजयेद्देवीं नरो भक्तिसमन्वितः ।
वाराणस्यां पूर्णफलं द्विगुणं पुरुषोत्तमे ॥ १४३ ॥

मनुष्यगण भक्तियुक्त होकर शिलामें, पर्वताग्रमें, पर्वतके गह्वरमें नित्य ही देवीकी पूजा करैं । वाराणसीमें देवीकी पूजा सम्पूर्ण फल-दायिनी और पुरुषोत्तममें उससे दूना फल प्रदान करती है ॥ १४३ ॥

सर्वक्षेत्रे च तीर्थे च कालगिरिसमं फलम् ।
कौमारेऽष्टगुणं प्रोक्तं चौहारे तत्समं फलम् ॥ १४४ ॥

समस्त क्षेत्र और तीर्थमें पूजा करनेसे कालगिरिकी समान फल होता है कौमारमें अष्टगुण और चौहारमें उसीके समान फल होता है ॥१४४॥

आर्यावर्त्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्त्ते श्रीहट्टके ।
मणिपूरसमं देवि पूजिता फलदायिनी ॥ १४५ ॥

हे देवि ! आर्यावर्त, मध्यदेश, ब्रह्मावर्त्त और श्रीहट्टमें मणिपूरको समान फलदायिनी होती हैं ॥ १४५ ॥

आगस्त्ये चाश्वमेधिके चतुर्गुणफलं भवेत् ।
तस्य चतुर्गणं देवि जल्पेश्वरे च निश्चितम् ॥१४६॥

आगस्त्य और आश्वमेधिकमें उससे चतुर्गुण और जल्पेश्वरमें उससे चतुर्गुण फल निर्दिष्ट है ॥१४६॥

विराजते यत्र योनिः फलं दशगुणं स्मृतम् ।
तस्य चतुर्गुणं देवि एकाम्रे परमेश्वरि ॥ १४७ ॥

जहां योनि विराजित है, वहां उससे दशगुणफल प्राप्त होता है। हे परमेश्वरि ! एकाम्रमें उससे चतुर्गुण ॥ १४७ ॥

मणिकूटे शतगुणं मणिशैले सहस्रकम्।
जले स्थले चाश्वतीर्थे ह्युक्तं दशगुणं फलम् ॥ १४८ ॥

मणिकूटमें उससे शतगुण, मणिशैलमें उससे सहस्रगुण, अश्वतीर्थमें जलमें वा स्थलमें उससे दशगुण फल कहा गया है ॥ १४८ ॥

जले स्थले काम्यरूपे पूजनाच्च समं फलम्।
कामरूपे यथा विष्णुः सर्वश्रेष्ठो महेश्वरि।
कामरूपे तथा देविपूजा सर्वोत्तमा स्मृता ॥ १४९ ॥

कामरूपके जलस्थलमें सर्वत्र पूजासे समानफल प्राप्त होता है। हे महेश्वरि ! जिस प्रकार विष्णु सर्वश्रेष्ठ और लक्ष्मी सर्वोत्तम हैं ऐसे ही कामरूपमें देवीकी पूजा सर्वोत्तम होती है ॥ १४९ ॥

कामरूपं देविक्षेत्रं कुत्रापि तत्समं न च।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ॥ १५० ॥

कामरूप देवीक्षेत्र है, उसकी समान अन्यत्र कहीं नहीं है, देवी अन्यत्र विरला हैं, किन्तु कामरूपमें घरघर विराजमान हैं ॥ १५० ॥

कामाख्यायां महामायां यः पूजयति मानवः।
सर्वकाममिह प्राप्य परलोके शिवो भवेत ॥ १५१ ॥

जिस मनुष्यने कामाख्यामें माहामायाकी पूजा की है उसनेही इसलोकमें सर्व काम और परलोकमें शिवका स्वरूप लाभ किया है इसमें सन्देह नहीं ॥ १५१ ॥

न हि तत्सदृशं कार्यमन्यत्र भुवि विद्यते।
वाञ्छितार्थं नरो लब्धा चिरायुर्भवति ध्रुवम् ॥ १५२ ॥

उसके समान कार्य अन्यत्र और कहीं भी नहीं है, उससे मनुष्य वांछि·
·तार्थ प्राप्त करके चिरायु हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १५२ ॥

स्नानकाले चार्द्धरात्रे महापूजासमापने ।
सान्निध्यं महामायायाः नैवः गच्छेत्स्पृशेन्न च ॥१५३

सिद्धिकी कामना करनेवाला मनुष्य स्नानकाल आधीरात और महापूजाके अवसान समयमें महामायाके निकट गमन वा स्पर्श न करै ॥ १५३ ॥

कुमारणे महाष्टम्यां निशायाञ्च दिनक्षये ।
युगादौ कार्त्तिके मासि देवीं पश्येन्न वै नरः ॥ १५४ ॥

कुमारणमें, महाष्टमीमें, रात्रिमें दिनक्षय अर्थात् सायंकालमें युगादिमें और कार्त्तिकमासमें देवीका दर्शन न करै ॥ १५४ ॥

देव्या नीराजनं शूद्रो ह्यारतिं वा प्रपश्यति ।
रूपवान् स भवेद्देवि सद्गतिं लभते ध्रुवम् ।
विधवा ब्राह्मणी पश्येन्महामायाञ्च सर्वदा ॥ १५५ ॥

जो शूद्र देवीको नीराजन वा आरतियुक्त दर्शन करते हैं, वह रूपवान् होकर सद्गति प्राप्त करते हैं विधवा ब्राह्मणी सदाही महामायाका दर्शन करै ॥ १५५ ॥

स्नानकाले च मध्याह्ने निर्माल्यस्य विसर्जने ।
न पश्येच्च स्त्रियो देवीं युवत्यश्च विशेषतः ॥ १५६ ॥

स्नानके समय, मध्याह्नमें, निर्माल्य विसर्जनके समय स्त्रीगण और विशेष कर युवतीगण देवीका दर्शन न करै ॥ १५६ ॥

पौषाष्टम्यां नवम्याञ्च त्रयोदश्यां तथैव च ।
न गच्छेत्पार्वतीगेहं कर्कटाद्यदिनत्रये ।
कालेष्वेतेषु स्पृष्टायां शापश्चायुःक्षयं लभेत ॥ १५७ ॥

पौषके महीनेकी अष्टमीमें, नवमी और त्रयोदशीमें, कर्कटे आदि तीन दिन, पार्वतीके गृहमें गमन करै। इन सब कालमें स्पर्श करनेसे शाप प्राप्त और दर्शन करनेसे आयुः क्षय होती है ॥ १५७ ॥

दीक्षितस्यार्च्चना शस्ता नादीक्षितस्य चैव हि ।
अत एव च दीक्षार्थी रक्ताम्बरधरस्तथा ॥ १५८ ॥
रक्तचन्दनभूषाढ्यः नागजैस्तिलकक्रियः ।
मृदुचर्मण्युपाविश्य दीक्षां गृह्णाति भक्तितः ॥ १५९ ॥

दीक्षितमनुष्यकेही पक्षमें पूजादि प्रशस्त है अदीक्षितके पक्षमें यह सब प्रशस्त नहीं है। इस कारण दीक्षाप्रार्थी मनुष्य भक्तिभावसे लाल वस्त्र पहर और लालचन्दनसे विभूषित हो नागज (नागकेशर) का तिलक धारणकर कोमल आसन पर बैठे ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पापबन्धनात् ।
अतो दीक्षेति नाम्ना च ख्यायते तत्त्वचिन्तकैः॥१६०

परमज्ञान देती है और पापबन्धनक्षय अर्थात् छेदन करती है, इसीकारण तत्त्वचिंतक ऋषियोंने इसका (दीक्षा) यह नाम प्रसिद्ध किया है ॥१६०

मनसा क्रियया वाचा यच्च पापमुपार्जितम् ।
निःशेषं नाशयित्वा च परं ज्ञानं प्रदास्यति ।
अतो दीक्षेति लोकेऽस्मिन् कीर्त्यते शास्त्रकोविदैः १६१॥

मन कर्म और वचनसे जो पाप उपार्जन किया है. वह निःशेषरूपसे नष्ट करती है और परमज्ञान देती है. इसी कारण शास्त्र जाननेवालोंने लोकमें इसका 'दीक्षा' यह नाम कहाहै ॥ १६१ ॥

विज्ञानफलदा चाद्ये द्वितीये लयकारिणी ।
तृतीये मुक्तिदा प्रोक्ता ततो दीक्षेति गीयते ॥ १६२ ॥

प्रथम विज्ञान फलकी देनेवाली, दूसरे लय करनेवाली और तीसरे मुक्ति देनेवालीहै, इसी निमित्त लोकमें 'दीक्षा' यह नाम गाया जाताहै ॥ १६२ ॥

द्विधा दीक्षा च साधारा निराधारा तथैव च ।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये यस्यां चैवाधिकारिता॥१६३॥

दीक्षा दो प्रकारकी है, साधारा और निराधारा नित्य नैमित्तिक और काम्यमें जिसकी अधिकारिता है ॥ १६३ ॥

साधारा चैव सा प्रोक्ता निराधारा च मुक्तिदा ।
निर्मला सा च विज्ञेया कथ्यते तत्त्वचिन्तकैः ॥१६४॥
कुण्डश्च मण्डलं कृत्वा सत्पात्रेभ्यः प्रदीयते ।
ततो दीक्षा फलवती ह्यन्यथा विफला भवेत् ॥१६५॥

(वही साधाराहै) जो मुक्तिदा है, अतएव निर्मलाको निराधारा जानो । कुण्ड और मण्डलकी रचना करके सत्पात्रमें दीक्षाप्रदान करनेसे वह फलवती होती है, अन्यथा विफल होती है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

अपात्रेभ्यः प्रदत्ता च दीक्षा सापि महेश्वरि ।
मनोव्यापारमात्रेण निर्वीर्या भवति ध्रुवम् ॥ १६६ ॥

अपात्रमें दीक्षाप्रदान करनेसे मनके व्यापारमात्रसेही (मनो योग पूर्व विचार करनेसे) वह निर्वीर्य होजाताहै, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६६ ॥

अपुत्रो मृतपुत्रश्च कुण्डो वा वामनस्तथा ।
कुनखो श्यावदन्तश्च त्वधिकाङ्गः स्त्रियाजितः ।
आचार्यो यो भवेद्देवि तत्सकाशात्कदाचन ॥ १६७ ॥

हे देवि ! अपुत्र, मृतपुत्र, कुण्ड (संज्ञाविशेष) वामन (बौना) कुनखी, श्यावदन्त अधिकाङ्ग स्त्रीजित (स्त्रीके वशीभूत रहनेवाला) आचार्यके निकटसे दीक्षा ग्रहणकरनी उचित नहीं है ॥ १६७ ॥

सुमूर्तिश्च कुलीनश्च ज्ञानाचारो गुणैर्युतः ।
समयाचारविच्चैव मन्त्रं दद्याद्विचक्षणः ॥ १६८ ॥

सुमूर्ति, कुलीन, ज्ञानाचार, गुणवान् और समयाचारका जाननेवाला भी दीक्षा प्रदान करे ॥ १६८ ॥

न गृह्णीयाद्देवि दीक्षां सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
मातामहात्पितुश्चैव मन्त्रं न गृह्णीयान्नरः ।
स्वप्नलब्धं स्त्रीप्रदत्तं संस्कारेणैव शुध्यति ॥ १६९ ॥

पिता और मातामहके निकटसे मंत्र ग्रहण करना उचित नहीं है । स्वप्नलब्ध और स्त्रीका दिया मन्त्र संस्कार द्वारा शुद्ध होता है ॥१६९ ॥

स्वप्नलब्धमन्त्रसिध्यै गुरोः प्राणं निवेशयेत् ।
वटपत्रे कुंकुमेन लिखित्वा ग्रहणं तथा ।
ततः शुद्धिमवाप्नोति अन्यथा विफलं भवेत् ॥१७०॥

स्वप्नलब्ध मन्त्र सिद्ध करना हो तो कलशमें गुरुका प्राण निवेशित करे । तदनन्तर वटपत्रपर रोलीसे लिखकर ग्रहण करे, इसीसे मन्त्र शुद्ध होता है, नहीं विफल हो जाता है ॥ १७० ॥

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
रवेः संक्रान्तिदिवसे युगादौ च सुरेश्वरि ॥ १७१ ॥
मन्वन्तरासु तिथिषु चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
महापूजादिने वापि शिष्यशुद्धिदिनेषु च ।
गृह्णीयात्प्रयतो भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ १७२ ॥

भक्ति श्रद्धायुक्त मनुष्य संयत (एकाग्र) मनहोकर अयनमें विषुवमें चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें, रविकी संक्रान्तिके दिन, युगादिमें, मन्वन्तरमें, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिमें महापूजा वा शिष्य शुद्धिके दिन दीक्षा ग्रहण करे ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

देवीपूजाविधौ यस्तु मनुष्यो भक्तितत्परः ।
स एव दीक्षां नान्यस्तु सर्वशास्त्रार्थतत्परः ॥ १७३ ॥

जो मनुष्य देवीकी पूजामें भक्तितत्पर होता है । उस सर्वशास्त्रार्थ-तत्पर मनुष्यको दीक्षा ही सकल जाननी चाहिये ॥ १७३ ॥

चैत्रे दुःखाय दीक्षा स्याद्वैशाखे सर्वसिद्धिदा ।
ज्येष्ठे मृत्युप्रदा सा स्यादाषाढे बहुवत्सका ॥ १७४ ॥

चैत्रमें दीक्षा दुःखदायक, वैशाखमें सर्वसिद्धिदेनेवाली ज्येष्ठमें मृत्यु देने-वाली, आषाढमें बहुवत्सदायिनी ॥ १७४ ॥

श्रावणे बहुहानिः स्याद्भाद्रे च दुःखदा मता ।
आश्विने सर्वसिद्धयै सा कार्त्तिके ज्ञानवृद्धिदा॥१७५॥

श्रावणमें बहुत हानिकरनेवाली, भाद्रमें दुःखदायिनी, आश्विनमें सर्वसिद्धि देनेवाली और कार्तिकमें ज्ञानकी वृद्धि देती है ॥ १७५ ॥

शुभकृन्मार्गशीर्षे च पौषे ज्ञानविनाशिनी ।
माघे च मेधावृद्धिः स्यात्फाल्गुने सर्वसस्यकृत ॥१७६

अगहनमें शुभकारी, पौषमें ज्ञाननाशिनी, माघमें मेधा (बुद्धि) की वृद्धि करनेवाली और फाल्गुनमें सर्वसस्य (धान्य) दायिनी होती है ॥ १७६ ॥

ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निश्चयः ।
गयायां भास्करक्षेत्रे विरजे चन्द्रपर्वते ॥ १७७ ॥
कोङ्कणे च मतंगे च तथा कन्याश्रमेषु च ।
न गृह्णीयात्ततो दीक्षां तीर्थेष्वेतेषु पार्वति ।
कर्तव्यं दीक्षितैः शिष्यैर्गुरोः शासनमुत्तमम् ॥ १७८॥

ग्रहण और महातीर्थमें कालनिर्णय नहीं हैं, गयामें, भास्करक्षेत्रमें, विरजमें, चन्द्रपर्वतमें, कोङ्कणमें, मतंगमें और कन्याश्रममें इन सब

र्थोंमें दीक्षाग्रहण न करै दीक्षित शिष्य गुरुकी उत्तम आज्ञा प्रतिपालन रै ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

देवताहृदयो यः स्याद्गुरुपूजापरायणः ॥
पुरश्चरणचारी स्याद्विशुद्धात्मा जितेन्द्रियः ॥ १७९ ॥

जो शिष्य इष्टदेवताको हृदयमें रखकर गुरुपूजापरायण पुरश्चरणकारी शुद्धात्मा और जितेन्द्रिय होता है ॥ १७९ ॥

मन्त्रयन्त्रपुराणानि भारतञ्च गयादिषु ।
गच्छत्यधीते विधिवद्गुरुणाऽऽज्ञापितः सदा ॥१८०॥

वही यथार्थ शिष्य है वह गुरुकी आज्ञाग्रहण करके मंत्र, यन्त्र पुराणादि ध्ययन और भारतादिपाठ तथा गयागमनादि सभी कार्य करता ॥ १८० ॥

न स्त्रीहिंसा च कर्त्तव्या प्रसङ्गं च महेश्वरि ॥ १८१ ॥

हे महेश्वरि ! स्त्रीहिंसा और स्त्रीप्रसंग उसको नहीं करना चाहिये १८१

सयवं चक्रवाकश्च क्रौञ्चं पारावतं तथा ।
नीलशैलादि शैलश्च सदा तस्य प्रियो भवेत् ॥१८२॥

यव, चक्रवाक, क्रौंच, पारावत और नीलशैलादि पर्वत उसके प्रिय होते हैं ॥ १८२ ॥

इत्येवं दीक्षिते लोकैः कर्त्तव्यं कर्म नित्यतः ।
रात्रौ सुखेन भोक्तव्यं ध्यात्वा संपूज्य यत्नतः ॥१८३

दीक्षितमनुष्य इसप्रकार दिनकी विधि समापन करके पूजा ध्यान करता हुआ रात्रिमें यत्नसहित भोजन करै ॥ १८३ ॥

ततोपि पूर्वदिवसे हविष्यं वा निरामिषम् ।
भुक्त्वा परस्मिन्दिवसे हविष्याशनमाचरेत् ॥१८४॥

उसके पूर्वदिनमें हविष्य निरामिष भोजन करके दूसरे दिन हविष्य करै ॥ १८४ ॥

चरुं पक्त्वा तु भागार्द्धं देवतायै निवेदयेत् ।
तदर्द्धं गुरवे दद्याच्छिष्टं तु स्वयमेव हि ॥ १८५ ॥

चरु पकनेके पीछे देवताको अर्द्धभाग निवेदन करके उसका अर्द्ध भाग गुरुको दे अवशिष्ट स्वयं गुरुके सहित भोजन करै ॥ १८५ ॥

भुञ्ज्याच्च गुरुणा सार्द्धं सर्वदीक्षास्वयं विधिः ।
मन्त्रं दत्त्वा गुरुश्चैवाप्युपवासी यदा भवेत् ॥ १८६ ॥
मोहान्धकारनरके कृमिर्भवति नान्यथा ।
दीक्षां कृत्वा यदा मन्त्री तूपवासं चरेद्यदि ।
तस्य देवः सदा रुष्टः शापं दत्त्वा व्रजेत्पुरम् ॥१८७॥

सर्वदीक्षामेंही यह विधि है । गुरु मन्त्र देकर यदि उपवास करै तो वह मोहान्धकार नरकमें कृमि होकर वास करते हैं और शिष्य यदि दीक्षाग्रहण करके उपवास करै तो देवता उससे रुष्ट हो उसको शाप देकर अपने स्थानको चले जाते हैं ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चतुर्विंशतिसाहस्रे
द्वितीयभागे भाषाटीकायां षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शोभने निर्ज्जने देशे निगूढे शुभमण्डपे ॥
पुष्पप्रकरसंकीर्णे गन्धपुष्पादिवासिते ॥ १ ॥
तृतीयवर्जिते देशे पशुदृष्टिविवर्जिते ॥
फलिकादौ ततो मन्त्री मन्त्रं सम्यक्समुद्धरेत् ॥२॥

श्रीभगवान् बोले—तदनन्तर मन्त्री शिष्य शोभायमान, निगूढ, निर्जन, तृतीयवर्जित, पशुदृष्टिरहित अर्थात् जहां पशुकी दृष्टि न

पड़ती हो पुष्पोंसे समाकीर्ण, गंधपुष्पादिसे सुगंधित प्रदेशमें, सुभमण्डप और फलिकादि तीर्थ आदिमें मंत्रका उद्धार करै ॥ १ ॥ २ ॥

समुद्धारं विना यन्त्रमत्यल्पफलदं मतम् ।
यन्त्रे समुद्धरेन्मन्त्रं सम्पूर्णफलदं स्मृतम् ॥ ३ ॥

यंत्रके विना उद्धार करनेसे अल्पसेभी अल्पफल होता है और यंत्रमें समुद्धार करनेसे संपूर्ण तथा पूरित फल प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

न भूमौ विलिखेद्वर्णं पुस्तके तु समालिखेत ।
न भूमौ पुस्तकं स्थाप्यमाहरेड्डाकिनी यतः ॥ ४ ॥
भूकम्पे ग्रहणे चैव त्वक्षरं वाथ पुस्तकम् ।
भूमौ संस्थाप्य देवेशि स मूर्खो जन्मजन्मनि ।
परं भवति देवेशि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५ ॥

भूमिमें वर्ण न लिखकर पुस्तकमें लिखै, पुस्तक भूमिमें न रक्खै, ऐसा होनेसे डाकिनी हरण करती है । हे देवेशि ! भूकम्पमें, ग्रहणमें पुस्तक वा अक्षर भूमिमें रखनेसे जन्म जन्ममें मूर्खता प्राप्त होती है इस कारण हे देवेशि ! कदाचित् ऐसा कार्य न करै ॥ ४ ॥ ५ ॥

वंशेन न लिखेद्वर्णं तस्य हानिर्भवेद्ध्रुवम् ।
ताम्रसूच्या हि विभवं भजते त्वक्षयं नरः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य बाँसकी लेखनीसे वर्ण लिखता है, उसकी निश्चयही हानि होती है, तांबेकी सुईसे लिखनेपर अक्षय विभव मिलता है ॥६॥

महालक्ष्मीप्रदा चैव सुवर्णस्य शलाकिका ॥
बृहन्नलस्य सूच्या वै मतिवृद्धिश्च जायते ॥ ७ ॥

सुवर्णकी सलाईसे महालक्ष्मी लाभ और बृहत् नलकी सूचीसे मतिकी वृद्धि होती है ॥ ७ ॥

तथैवाग्निमये देवि पुत्रपौत्रधनागमः।
रैत्येन विपुला लक्ष्मीः कांस्येन मरणं भवेत् ॥ ८ ॥

हे देवि ! अग्नि मय (सुवर्ण आदि) से पुत्रपौत्रलाभ और धनागम और पीतल द्वारा विपुल लक्ष्मीलाभ होती है, कांसीद्वारा मरण होता है॥८

अष्टांगुलप्रमाणेन दशाङ्गुलमितेन वा ।
चतुरङ्गुलसूच्या वा यो लिखेत्पुस्तकं शुभे ।
तत्तदक्षरसंख्याने स्वल्पायुर्याति वै दिने ॥ ९ ॥

आठ अंगुल वा दश अंगुल या चार अंगुल सूचिद्वारा पुस्तक लिखने पर उसके अक्षरोंकी संख्यानुसार दिनदिन अल्पायु होती है ॥ ९ ॥

मानं वक्ष्ये पुस्तकस्य शृणु देवि समासतः ।
मानेनापि फलं विन्द्यादमाने श्रीर्हता भवेत् ॥ १० ॥

हे कल्यणी ! पुस्तकका परिमाण संक्षेपसे कहताहूं सुनो । परिमाणके अनुसार पुस्तक लिखनेसे फललाभ और विना परिमाण करके पुस्तक लिखनेसे लक्ष्मी नष्ट होती है ॥ १० ॥

हस्तमात्रं मुष्टिमात्रमाबाह्यं द्वादशाङ्गुलम् ।
दशाङ्गुलं तथाष्टौ च ततो हीनं न कारयेत् ॥ ११ ॥

हस्त मात्र और मुष्टिमात्र बहिःपर्यन्त द्वादशांगुल (बारह अंगुल) अथवा दशअंगुल और आठअंगुल, इससे कम न करै ॥ ११ ॥

वेधद्वयं मुष्टिहस्ते बाहुमात्रे चिरन्तनम् ।
समभागे महेशानि हस्तादावुपबन्धकम् ॥ १२ ॥

अष्टाङ्गुलं परित्यज्य मध्ये वेधं च कारयेत् ।
प्रादेशादौ भवेद्राजा द्व्यङ्गुले वा समाचरेत् ॥१३॥

मुष्टि हाथ अथवा बाहुमात्रके मध्यमें वेध करे । यह वेध बीचमें आठ अंगुल छोड़के करना कर्त्तव्य है, तथा समभागमें उसका बन्धन नियत करे अथवा बारह अंगुलमें बंधनका स्थान बनावे । इस प्रमाणसे पुस्तक बनाकर पूजन करनेसे राज्यलाभ होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

आद्यंतयोः पुस्तकस्य यस्तु वेधं न कल्पयेत् ।
भार्याहानिर्भवेदाशु धनानां वा क्षयो भवेत ॥ १४ ॥

जो मनुष्य पुस्तकका आदि अन्त वेध न करता है उसकी तत्काल भार्याहानि वा धन क्षय होता है ॥ १४ ॥

भूर्ज्जे वा तेजपत्रे वा ह्यथवा तालपत्रके ।
नात्यंतं गुरु देवेशि पुस्तकं कारयेत्प्रिये ॥ १५ ॥

भोजपत्र वा तेजपत्रपर अथवा तालपत्रपर किंचित् गुरु करके भी पुस्तक करावे ॥ १५ ॥

सम्भवे स्वर्णपत्रे च ताम्रपत्रे च शांकरि ।
अन्यवृक्षत्वक्षु देवि तथा केतकिपत्रके ॥ १६ ॥
मृत्ताम्रपात्रे रौप्ये वा वटपत्रे वरानने ।
अन्यपत्रे बहुदले लिखित्वा यः समभ्यसेत् ॥ १७ ॥

हे प्रिये ! सम्भव हो तो स्वर्णपत्र वा ताम्रपत्रपर पुस्तक लिखनी चाहिये । अन्य वृक्षकी छालपर, केतकीपत्रपर, मृत्पत्रपर, ताम्रपत्र, रौप्य (चांदी) पत्रपर, वा वटपत्रपर, या अन्य बहुत दलवाले पत्रपर लिखकर जो अभ्यास करता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

स दुर्गतिमवाप्नोति धनहानिर्भवेद्ध्रुवम् ।
देवस्य लिखनं कृत्वा यः पठेद्ब्रह्महा भवेत् ॥ १८ ॥

उसकी निःसन्देह धनहानि होती है वह दुर्गतिको प्राप्त होता है देवको लिखकरके जो पाठ करता है वह ब्रह्मघाती होता है ॥ १८ ॥

पुस्तकं वा गृहे स्थाप्यं वज्रपातो भवेद्ध्रुवम् ।
दग्धरन्ध्रे भवेत्पीडा वर्त्तुलं शुभदं भवेत् ।
चतुष्कोणे विप्लवस्तु त्रिकोणे मरणं भवेत् ॥ १९ ॥

यह पुस्तक घरमें रखनेसे उसमें वज्रपात होता है, दग्ध करके रन्ध्र करनेसे पीडा होती है अर्थात्–किसी शलाकाको गरमकर उसको पुस्तक में छेदनेसे अतिशय दुःखकी प्राप्ति होती है । गोलाकार रंध्र ही शुभदायक है । चतुष्कोणमें विप्लव (लूटमार आदि) और त्रिकोण रन्ध्रमें मृत्यु होती है ॥ १९ ॥

सत्येऽक्षरे स्थितः शम्भुः शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
प्रजापतिर्द्वापरे च त्रेतायां सूर्य एव च ।
कृते युगे पिनाकी च कलौ लिप्यक्षरे हरिः ॥ २० ॥

सत्ययुगमें अक्षरमें शूलपाणि त्रिलोचन शंभु, द्वापरमें प्रजापति, त्रेतामें सूर्य, कृतयुगमें पिनाकधारी और कलियुगके बीच लिप्यक्षरमें हरि अधिष्ठित हैं ॥ २० ॥

आरम्भे च समाप्तौ च लिखितं प्रतिपूजयेत् ।
हरिश्च गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रैश्च सुमनोहरैः ॥ २१ ॥
यावदक्षरसंख्यानं प्रतिपत्रे च शाङ्करि ।
भवेद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके वसेच्चिरम् ॥ २२ ॥

लिखनेके आरम्भ और समाप्तमें मनोहर गन्ध पुष्प वस्त्रादिद्वारा हरिकी पूजा करनेसे प्रतिपत्रमें जितनी अक्षर संख्या है, उतने ही सहस्रयुग स्वर्गलोकमें वास करता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

वेतनं यश्च गृह्णीयाल्लिखित्वा लेखनस्य च ।
यावदक्षरसंख्यानं तावच्च नरके वसेत् ॥ २३ ॥

पुस्तक लिखकर वेतन ग्रहण करनेसे जितने अक्षर पुस्तकमें विद्यमान रहते हैं. उतनेही काल पर्यन्त नरकमें वास करना पडता है ॥ २३ ॥

व्यञ्जनं क्षतमारूढं वामनेत्रेन्दुसंयुतम् ।
महाबीजं विजानीयाज्जपान्मुक्तिमवाप्नुयात ॥ २४ ॥

चन्द्रबिन्दुसंयुक्त "क्षाँ" यह महाबीज समझना चाहिये, इसका जप करनेसे मुक्तिलाभ अवश्य होता है ॥ २४ ॥

प्रणवात्प्रणवं वक्ष्ये वषडन्ते च ठद्वयम् ।
स्वयं वदेत्स्वरान्ते च नातिश्चैव प्रदात्मकम् ॥ २५ ॥
आद्यमेव गृहस्थस्य प्रणवं सर्वमन्त्रके ।
आद्यन्तयोस्तु प्रणवो ह्यात्मज्ञानविवृद्धये ॥ २६ ॥

प्रवण (ओंकार) के पीछे प्रणव उच्चारण करै, फिर वषट् इसके पीछे ठ द्वयका उच्चारण करके हृदयात्मक मन्त्रसे नमस्कार करै । गृहस्थके सब मन्त्रोंके आदिमें ओंकार लगावे । आदिमें और अन्त्यवर्णके पीछे ओंकारका उच्चारण करना आत्मज्ञानकी वृद्धिके निमित्त होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

मन्त्रविद्याविभागे तु द्विविधं जायते प्रिये ।
मन्त्राः पुंदेवताः प्रोक्ता विद्याः स्त्रीदेवताः स्मृताः२७॥

महाविद्या विभक्त होकर दो प्रकार होती है, पुंदेवताके उद्देशसे जो प्रयुक्त (जो पुरुष स्वरूप देवताके निमित्त प्रयोग किया जाय) होता है. वही मन्त्र और स्त्रीदेवताके उद्देश्यसे जो प्रयुक्त होता है वही विद्या है ॥ २७ ॥

पुंमन्त्रा हुँ फडन्ताः स्युः द्विठान्ताश्च स्त्रियो मताः ।
नपुंसका नमोऽन्ताः स्युर्मनवश्च त्रिधा मताः ॥ २८ ॥

पुंदेवताके मन्त्रान्तमें हुं फट कहा जाता है और स्त्री देवताके मन्त्रान्तमें ठद्वय कहा जाता है, नपुंसक मन्त्रके अन्तमें नमः यह पद कहा जाता

है । इस प्रकार विभक्त होनेके कारण मन्त्र तीन प्रकारके जानने चाहिये ॥ २८ ॥

एतच्छून्या भवेद्विद्या महाशब्देन कीर्त्तिता ।
परमेष्ठी ऋषिश्छन्दो गायत्र्याः समुदाहृतम् ।
देवता त्रिपुराख्याता सर्वार्थे विनियोजयेत ॥ २९ ॥

यह शून्यविद्या महाशब्दसे कही जाती है । परमेष्ठी ऋषि, गायत्री इसका छन्द, देवता त्रिपुराख्या और इसका सर्वार्थमें विनियोग है ॥२९॥

विधिना स्थापयेद्देवीं पाणिना प्रथमं प्रिये !
मुखप्रक्षालनं कृत्वा पुनः स्नानं समाचरेत् ॥ ३० ॥

हे प्यारी ! देवीको विधिपूर्वक स्थापित करके प्रथम हाथसे मुख प्रक्षालनपूर्वक पुनर्वार स्नान करावै ॥ ३० ॥

दिनद्वयान्तरे देवि उत्थायाष्टदिनान्तरे ।
तैलेनोद्वर्त्तनं कुर्यात्कषायेनातिरुक्षयेत् ॥ ३१ ॥

हे देवि ! फिर दो दिनके अन्तरसे उठकर आठ दिनके पीछे तैल द्वारा उद्वर्त्तन करके कषायद्वारा अतिरुक्ष करै ॥ ३१ ॥

पक्षान्ते चैव मासान्ते महास्नानं समाचरेत् ।
मूलबीजेन देवेशि द्रव्यमन्त्रेण वा प्रिये ॥ ३२ ॥
वैदिकेनाथ मन्त्रेण मायया वा समाचरेत् ।
कलशैः स्नापयेत्पश्चादर्घ्यस्नानमनन्तरम् ॥ ३३ ॥

पक्षके अन्तमें और महीनेके अन्तमेंभी देवीको महास्नान कराना चाहिये । हे देवि ! मूल बीजमन्त्रसे वा द्रव्यमन्त्रसे अथवा दैनिक मन्त्रसे या मायामन्त्रसे देवीको स्नान करावे । फिर कलशसे स्नान कराकर अर्घ्यसे स्नान करावै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अर्घ्यस्नानं ततः कृत्वा पुनः स्नानं करोति च ।
देवीलोकाच्च्युतिर्भूयाद्धनहानिश्च जायते ॥ ३४ ॥

अर्घ्य स्नान करानेके पीछे फिर स्नान करानेपर वह देवीलोकसे गिरता है और उसके धनकी हानि होती है ॥ ३४ ॥

वारिणा प्रथमं स्नानं क्षीरेण तदनन्तरम् ।
दधिघृतस्य पिण्डे द्वे शर्कराश्च गुडं मधु ।
तिलक्षीरैर्दधितिलैर्मधुक्षीरेण स्नापयेत् ॥ ३५ ॥

जलसे प्रथम स्नान, फिर दूधसे, इसके पीछे दहीसे, फिर दो घीके पिण्ड, शर्करा, गुड, मधु, तिल, क्षीर, दधि, तिल और मधु, क्षीरसे क्रमशः स्नान करावे ॥ ३५ ॥

उष्णोदकं फलञ्चैव तथा चैव कुशोदकम् ।
गन्धोदकञ्च रत्नानामुदकं पुष्पतोयकम् ।
बिल्वोदकं सप्तपत्रं रक्तपुष्पोदकं तथा ॥ ३६ ॥
स्वर्णशङ्खोदकञ्चैव ताम्राधारमनन्तरम् ।
घटोदकं कुशश्चैव अर्घ्यस्नानं समाचरेत् ॥ ३७ ॥

फिर उष्णजल, फल, कुशजल, सुगंधितजल, रत्नजल, पुष्पोदक, विल्वोदक, सप्तपत्र, रक्त पुष्पोदक, स्वर्णशंखोदक, ताम्राधार, घटोदक (घड़ेका जल) और कुशद्वारा क्रमानुसार अर्घ्य स्नान कराना चाहिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पञ्चगव्येन यो देवीं तथा दुग्धकुशोदकैः ।
स्नापयेद्विविधैर्मन्त्रैर्ब्रह्मस्नानं हि तत्स्मृतम् ॥३८॥

पञ्चगव्य द्वारा, दुग्ध कुशयुक्त जल द्वारा, अनेक मन्त्रोंसे देवीका स्नान करानेपर वही ब्रह्म स्नान कहा जाता है ॥ ३८ ॥

कपिलापञ्चगव्येन तथा क्षीरयुतेन च ।
स्नानं शतगुणं प्रोक्तं तथा चेक्षुरसेन च ॥ ३९ ॥

हे देवि ! क्षीरयुक्त कपिला पंचगव्य द्वारा और इक्षु (गन्ना) के रससे स्नान करानेपर शतगुण फल प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

क्षीरेण स्नापयेद्यस्तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
कामाख्यां विधिवद्देवि सुरलोके महीयते ॥ ४० ॥

हे देवि ! जो मनुष्य श्रद्धा भक्तियुक्त होकर क्षीरसे कामाख्या देवीको स्नान कराता है, वह देवलोकमें पूजाको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥

घृताभ्यंगेन देवांगं घृतेन विधिवत्प्रिये ।
दशपूर्वान्दशपरानात्मानञ्च विशेषतः ।
भवार्णवात्समुद्धृत्य दुर्गालोके महीयते ॥ ४१ ॥

हे देवि ! घृत द्वारा विधिपूर्वक देवीके अङ्गमें अभ्यङ्ग (उबटन) कराने पर पूर्व दशपुरुष और पीछेके दशपुरुष तथा अपनेको संसार सागरसे उद्धार करके दुर्गालोकमें जाता है ॥ ४१ ॥

स्नापयेद्विधिवद्यस्तु दध्ना दूर्वाक्षतेन च ।
राजतेन विमानेन शिवलोके महीयते ॥ ४२ ॥

जो मनुष्य दधि और अक्षतसे देवीको विधिपूर्वक स्नान कराता है वह विमानमें विराजित होकर शिवलोकमें जाता है ॥ ४२ ॥

कामाख्यां स्नापयेद्यस्तु नवीनेक्षुरसेन च ।
गरुडेन विमानेन विष्णुना सह मोदते ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य नवीन इक्षुरससे देवीको स्नान कराता है वह गरुडके विमानमें चढ़कर विष्णुके संग प्रमोद करता है ॥ ४३ ॥

स्नापयेच्चैव यो दुर्गां गन्धचन्दनवारिणा ।
चन्द्रांशुनिर्मलः श्रीमांश्चन्द्रलोके महीयते ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य गंध चन्दनके जलसे दुर्गादेवीको स्नान कराता है, वह चन्द्रांशुतुल्य निर्मल और श्रीमान् होकर चन्द्रलोकमें जाता है ॥ ४४ ॥

सुगन्धिपुष्पतोयेन स्नापयित्वा नरः क्वचित ।
नागलोकं समासाद्य क्रीडते सह पन्नगैः ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य सुगन्धित पुष्पोंके जलसे देवीको स्नान करानेसे नागलोकमें जाकर पन्नगोंके सहित क्रीडा करते हैं ॥ ४५ ॥

स्नापयित्वा तु कामेशीं द्रुतं यो हेमवारिणा ।
सौवर्णयानमारूढो मोदते वसुभिः सह ॥ ४६ ॥

जो मनुष्य परिश्रुत (जिसमें कि सुवर्ण गरमकरके बुझाया गया हो, अथवा जो मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित हो) हेमजलसे कामाख्या देवीको स्नान कराते हैं, वह सुवर्णविमानमें चढकर वसुगणोंके सहित प्रमोदको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

रत्नोदकेन विधिवत्स्नापयेद्यस्तु मानवः ।
स दिव्ययानमारुह्य मोदते हरिणा सह ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य रत्नोदकद्वारा विधिपूर्वक देवीको स्नान कराते हैं, वह दिव्य विमानमें आरोहण करके हरिके संग आनंद भोगते हैं ॥ ४७ ॥

द्रोणपत्रं बिल्वपत्रं करवीरोत्पलानि च ।
स्नानकाले प्रयोज्यानि देवीप्रीतिकराणि च ॥४८॥

स्नानके समय द्रोणपत्र (दोनावृक्षके पत्ते) बेलपत्र, कनेर और कमल प्रदान करनेसे वह देवीकी उत्तम प्रीति करानेवाले होते हैं ॥ ४८ ॥

एषामेकतमं स्नानं दत्त्वा वै श्रद्धयान्वितः ।
भगवत्यै नरो भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ ४९ ।

मनुष्य श्रद्धायुक्त और भक्तिमान् होकर इन सब स्नानोंमेंसे एक प्रकारका स्नान करानेपरभी विष्णुलोकमें गमनपूर्वक पूजित होता है ॥ ४९ ॥

स्नापयेद्यस्तु वै देवीं नरः कर्पूरवारिणा ।
स याति परमं स्थानं यत्र कामेश्वरी स्थिता ॥ ५० ॥

जो मनुष्य कपूरके जलसे देवीको स्नान कराता है वह कामेश्वरीके अधिष्ठित परमस्थानमें जाता है ॥ ५० ॥

पितॄनुद्दिश्य यो देवीं क्षीरेण मधुनाथवा ।
स्नापयेद्विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५१ ॥

जो मनुष्य पितरोंके उद्देश्यसे क्षीर (दुग्ध) वा मधुद्वारा भक्तिपूर्वक देवीको विधिवत् स्नान कराता है, उसके पुण्यका फल सुनो ॥ ५१ ॥

तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्य वर्षशतद्वयम् ।
पञ्चामृतस्य प्रत्येकं फलानाञ्च शतं शतम् ॥
शतञ्च वारिकुम्भानां महास्नाने नियोजयेत् ॥५२॥

उसके पितर उसके द्वारा दो सौ वर्षतक तृप्त रहते हैं । पञ्चामृतका एक एक शत शत फल शत वारिकुम्भ (जलके घड़े) महास्नानमें नियोजित करै अर्थात् जलके कई सौ कलशद्वारा स्नान करानेसे जो पुण्य लाभ होता है वह फल पञ्चामृतके किञ्चिन्मात्र स्नान करानेसेही प्राप्त हो जाता है ॥ ५२ ॥

अपां कुम्भशतेनैव तैलस्यापि त्रिभिः पलैः ।
मांजिष्ठं तु महास्नानमेवमाहुर्मनीषिणः ॥ ५३ ॥

सौ घड़े जल, और तिन पल (चार तोले) तेल और मंजीठसे स्नान करानेपर मनीषिगण उसीको महास्नान कहते हैं ॥ ५३ ॥

मध्यमं तु तदर्द्धेन स्नानं यत्र विधीयते ।
तदर्द्धं तु कनिष्ठं स्यादतो हीनं न कारयेत् ॥ ५४ ॥

उससे आधे द्वारा मध्यम स्नान और उससे आधे द्वारा स्नान करानेपर कनिष्ठ स्नान होता है, इससे कम कराना उचित नहीं है ॥ ५४ ॥

एवं यः कारयेत्स्नानं नरः कश्चित्कदाचन।
सप्तजन्मकृतात्पापात्तत्क्षणादेव हीयते ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य कभी ऐसा स्नान कराता है, वह तत्काल सात जन्मके किये पापोंसे छूटजाता है ॥५५॥

आयुर्बलं यशो वर्चः सौभाग्यं पुष्टिरेव च।
स्नापयित्वा तु कामाख्यां लभते नात्र संशयः ॥५६॥

कामाख्या देवीको स्नान कराकर मनुष्य आयु, बल, यश कान्ति, सौभाग्य और पुष्टिलाभ करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५६ ॥

एवं यस्तु महास्नानं करोति भक्तिमान्नरः।
शरीरारोग्यमायुष्यं प्राप्नोति श्रियमुत्तमाम् ॥ ५७ ॥

जो मनुष्य भक्तिमान् होकर इस प्रकार महास्नान कराते हैं, वह शारीरिक, आरोग्य, आयु और उत्तम स्त्री प्राप्त करते हैं ॥ ५७ ॥

दशतोलकमानेन द्रव्याणां तु पृथक्पृथक्।
चतुस्तोलिकया चाथ हीनस्नानं विधीयते ॥ ५८ ॥

प्रत्येकमें दश तोले भर पृथक् द्रव्यसे अथवा और स्थानमें प्रत्येक चार तोले भर पृथक् द्रव्यसे हीनस्नान कहाता है ॥ ५८ ॥

मुखमष्टाङ्गुलं तस्य एकविंशाङ्गुलोदरम्।
अरत्निमात्रकोत्सेधं मणिकुण्डं तदुच्यते ॥५९॥

जिसका मुख आठ अंगुल, उदर इक्कीस अंगुल और जिसका अरत्नि मा उत्सेध (विस्तार) है, उसकोमणिकुंड कहते हैं ॥ ५९ ॥

गवाक्षमार्गे सूर्यस्य या रश्मिः सा हि लेखिका।
लेखिकाष्टौ भवेद्धूलिर्धूलिरष्टौ च सर्षपः ॥ ६० ॥

खिडकीके मार्गमें जो सूर्यकी किरणें जाती हैं वही लेखिका है, आठ लेखिकामें एक धूलि, आठ धूलिमें एक सरसों ॥ ६० ॥

सर्षपाणां चतुष्केण रक्तिकेत्यभिधीयते ।
रक्तिकानां विंशकन्तु पादकं परिकीर्त्तितम् ॥ ६१ ॥

चार सरसोंमें एक रत्तिका और बीस रत्तिकामें एक पादक कहा गया है ॥ ६१ ॥

तोलिकैका चतुष्पादैः प्रसृतिस्तच्चतुष्टयात् ।
प्रसृती द्वे कर्षकं च द्वे कर्षे तु पलं भवेत् ॥ ६२ ॥

चार पादमें एक तोलिका चार तोलिकामें एक प्रसृती दो प्रसृतीमें एक कर्षक (आठ तोले) दो कर्षकमें एक पल ॥ ६२ ॥

पलार्द्धेन भवेन्मुक्तिर्द्विमुक्तिर्गुडकं मतम् ।
एवं स्नानं ततः कृत्वा गात्रं सम्मार्ज्जयेत्सुधीः ॥६३॥

आधे पलमें एक मुक्ति और दो मुक्तिमें एक गुडक होता है । इस प्रकार स्नान कराकर बुद्धिमान् मनुष्य गात्रमार्जन करै ॥ ६३ ॥

चन्दनेन सुगन्धेन कारयेत्तिलकं सुधीः ।
कटिसूत्रं च वस्त्रञ्च यज्ञसूत्रं निवेदयेत् ॥ ६४ ॥

तदनन्तर सुगन्धित चन्दनसे तिलक करदेनेपर कटिसूत्र, वस्त्र और यज्ञसूत्र निवेदन करै ॥ ६४ ॥

मयूरपिच्छसङ्काशां स्निग्धचारुसुकेशिकम् ।
लम्बोष्ठीं चिन्तयेद्देवीं रक्तनेत्रां सुवाससम् ॥ ६५ ॥

मोरके पूंछके समान कान्तिवाली स्निग्ध (चीकने) शोभायमान केशसम्पन्न लम्बोष्ठी (लम्बे होठवाली) उत्तम वस्त्र युक्त देवीकी

यच्च वै लोहितं चास्यं सुव्यक्तं कज्जलप्रभम्।
त्रिपुरेशि समाख्यातं त्रैलोक्यनिलयं परम् ॥ ६६ ॥

सम्भुक्तं नरकेशेन पूर्ववक्त्रमनुत्तमम्।
मृत्तिकायां महेशानि लक्ष्मीकामो विभावयेत् ॥६७॥

हे त्रिपुरेश्वरि ! जो लोहित और सुव्यक्त कज्जलप्रभ है अर्थात् जिनके मुखकी आभा श्यामवर्ण है, वह त्रिलोकिके निवासस्थानरूप वक्त्र नामसे विख्यात है। इस अति उत्तम वक्त्रको पहिले नरकेश्वरने सम्भोग किया था हे देवेशि ! लक्ष्मीकी कामना करनेवाला मनुष्य इस मृत्तिकास्थित वक्त्रकी पूजा करै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

करालं यत्तु वै वक्त्रं कृष्णं दक्षिणगोचरम्।
कामाख्येति च विख्यातं दिव्यदंष्ट्रासमन्वितम् ॥६८

सर्वसिद्धिप्रदश्चैव सर्वार्थस्य च साधकम्।
देवस्य दक्षिणेनैव पीतवक्त्रं विचिन्तयेत् ॥ ६९ ॥

दक्षिण दिशामें दिव्य दाढोंसे युक्त कराल कृष्ण वक्त्र है, वह कामाख्या वक्त्र नामसे विख्यात है वह सर्वसिद्धिदायक और सर्वार्थसाधक है हे देवके दक्षिणभागमें पीतवक्त्रकी चिन्ता करै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

कौबेरीनिलयं यच्च वदनं श्यामलं शिवम्।
शतवीताङ्गाभिधं यदद्भुतं भुवनेश्वरि ॥ ७० ॥

अव्यक्तं रुचिरं दिव्यं कुब्जिकावदनोत्तमम्।
नरकेशेन सम्भुक्तं ध्येयं विजयकांक्षिभिः ॥ ७१ ॥

हे भुवनेश्वरी ! उत्तर दिशामें जो श्यामल कल्याणकारी अद्भुत वदन है, उसीको शतवीताङ्ग नामसे विख्यात जानना चाहिये, विजयकी इच्छा

करनेवाले मनुष्य अव्यक्त, रुचिर दिव्य और उत्तम नरकेशकर्तृक सम्भुक्त कुब्जिकावदनका ध्यान करै ॥ ७० ॥ ७१ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं ताम्बूलार्द्रं मनोहरम् ।
सर्वज्ञानमयं ज्ञेयं कालं वागीश्वरीमुखम् ॥ ७२ ॥

शुद्धस्फटिकके समान प्रभासंपन्न, सर्वज्ञानमय, काल वागीश्वरीके मुखको तांबूल और अदरक संयुक्त जानना चाहिये ॥ ७२ ॥

वृषभांकेण भृङ्गेण निपीतं मधुसञ्चयम् ।
ईशानं वदनं देव्याश्चिन्त्यं सर्वज्ञतार्थिभिः ॥ ७३ ॥

वृषभके अंकवाले भौंरेद्वारा जिसका मधुपान किया गया है उस ईशान नामक देवीके मुखकी सर्वज्ञाभिलाषी मनुष्य सदा चिन्ता करै ॥ ७३ ॥

सूर्यकोटिसहस्रांशु यद्वक्त्रं तूर्द्धजं प्रिये ।
पीठं कामेश्वरं तद्धिज्ञेयं परमं महत् ॥ ७४ ॥

हे प्यारी ! करोड सूर्यके समान प्रकाशमान अगाड़ीवाला जो वक्त्र है, उसको परम महत् पीठ कामेश्वरीका मुख जानना चाहिये ॥ ७४ ॥

परं ज्योतिर्मुखं भद्रे नरकेशेन चुम्बितम् ।
भवाम्बुधिविनाशाय केवलं तद्धिभावयेत् ॥ ७५ ॥

हे कल्याणी ! नरकेश्वरके चुंबन किये परम ज्योतियुक्त मुखका ध्यान करनेपर मनुष्य संसारबन्धनसे छूट जाता है ॥ ७५ ॥

त्रिपुरा देवता चास्य कामाख्यास्य गणाम्बिके ।
एता मण्डलसंस्थाश्च देव्यः शक्तिसमन्विताः ॥७६॥

हे गणमाता ! कामाख्याका देवता त्रिपुरा है, यह सब शक्तियुक्त देवियें कामाख्या मंडलमें स्थित हैं ॥ ७६ ॥

सिंहचर्मोत्तरासंगा कामाख्या विपुलोदरी ।
वैयाघ्रचर्मवसना तथा चैव हरोदरी ॥ ७७ ॥

परमानन्दसम्भूता साट्टहासा महोत्सवा ।
सुनन्दालोकनप्रीता व्यक्ताष्टादशलोचना ॥ ७८ ॥

चारुमाणिक्यसंपूर्णकुण्डलद्वयशोभिता ।
रौद्राकारैस्तथा रौद्री भृंगालियुतमालिका ॥ ७९ ॥

मुकुटाग्रस्थशुभ्रांशुः कमलज्योतिराजिता ।
नानामणिगणाकीर्णकण्ठभूषणधारिणी ॥ ८० ॥

मृणालकोमलैः स्निग्धा युक्ता द्वादशबाहुभिः ।
अस्थिरत्नांचितैर्दिव्यैः पद्मकर्दममालिभिः ॥ ८१ ॥

कर्त्तृकाशवदम्भोलिसूत्रचक्रांशुमांस्तथा ।
षड्भिश्च बाहुभिर्धत्ते दक्षिणैर्बाहुभिः शृणु ॥ ८२ ॥

कोदण्डमुण्डखट्वांगमृणालनलिनीव्रजम् ।
कपालं पुस्तकं घण्टां मुण्डमालानिवीतिनीम् ॥८३॥

तुलाकोटिपराक्रान्ता पादपद्मचराश्रिता ।
सिंहासनोर्द्ध्वे संसुप्ता शवासनकृताश्रया ॥ ८४ ॥

मणिप्रभाविधानेन शिवेन परमेष्ठिना ।
नवक्लेशेन संश्लिष्टा कामाख्या परमेश्वरी ॥ ८५ ॥

कामाख्या देवी सिंह चर्मका परिधान करनेवाली एवं बड़े उदरवाली हैं, उनका वस्त्र व्याघ्रचर्मनिर्मित है तथा वह सबका भक्षण करती हैं, आनन्द-मूर्ति अनेक उत्सवोंसे युक्त, अतएव अट्टहास्य करनेवाली हैं, उनके अष्टा-दश नेत्र हैं, उनके दोनों कुण्डल उत्तम मणियोंसे जटित हैं, रौद्र आका-रवाली भृङ्गाक्षकी माला धारण करती हैं, अनेक मुकुटोंकी ज्योतिसे अलं-कृत तथा कमलोंकी ज्योतिसे सुशोभित हैं, अनेक प्रकारकी मणियोंसे जड़े हुए आभूषणोंको कण्ठमें धारण करती हैं, कमलके समान कोमल उनकी

बारह भुजा हैं, मनोहर केश है तथा मुण्डमाला हृदयमें विराजमान है, सिंहासनके ऊपर आसीन और शयन करते हुए शवके ऊपर अधिष्ठित हैं एवं वोह कामाख्या परमेश्वरी तेजस्वी महादेवसे आलिंगित हैं और उनके चरणोंकी पूजा प्रभावशाली देवता करते हैं और उनके वक्षःस्थलमें दिव्य कमलोंकी माला लंबायमान होकर शोभा विस्तार करती है, तथा वे दक्षिण भाग और वामकी छः भुजाओंमें धारण करती हैं, सो सुनो । कोदण्ड, मुण्ड, खट्वांग, मृणालनाल, नीरज, कपाल और पुस्तिका, घंटा, मुण्डमाला मालिका और धनुर्बाण वर और अभय यह सब धारण करके शोभा पाती हैं ॥ ७७–८५ ॥

एवं ध्यानं न्यसेद्देवि मातृकां परमेश्वरीम् ।
सनामग्रहनक्षत्रं श्रीकण्ठन्यासपूर्वकम् ।
पीठन्यासं कलान्यासं मन्त्रन्यासं समाचरेत् ॥८६॥

इस प्रकार मातृका परमेश्वरीका ध्यान करै । नामग्रह, नक्षत्रयुक्त श्रीकण्ठन्यासपूर्वक कलान्यास, पीठन्यास और मंत्रन्यास करके ॥ ८६ ॥

यंत्रं संस्थाप्य दशधा संस्कृत्य च यथाविधि ।
विकिरान्विकिरेत्तत्र पीठपूजां समाचरेत् ॥ ८७ ॥

दश प्रकारसे यंत्रस्थापनपूर्वक यथाविधि संस्कार करके तथा विकिर· द्रव्य प्रक्षिप्त करके पीठ पूजा संपादन करे ॥ ८७ ॥

पूर्वादिक्रमयोगेन गणेशञ्च गणाधिपम् ।
गणनाथं गडक्रीडं गदी सर्गान्तिको मनुः ॥ ८८ ॥
पूर्वे श्रियं पूजयेच्च गोवटं तदनन्तरम् ।
मन्त्रान्तरेण दीर्घेण तारयुक्तेन चार्चयेत् ॥ ८९ ॥

अनन्तर पूर्वादिक्रमसे गणेश, गणाधिप, गणक्रीडकी सर्गान्तिक मंत्र द्वारा पूजा करे । पूर्वमें श्रीदेवीकी और फिर गोवटकी पूजा करनी चाहिये । तारयुक्त दीर्घ मंत्रान्तर द्वारा यह पूजा करै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

क्रीडासरो दक्षिणे तु मन्दरं वामनेत्रकम् ।
रश्मिबिन्दुसमायुक्तं लोहजङ्घन्तु पश्चिमे ।
नारसिंहेन बीजेन क्षेत्रेशं परिपूजयेत् ॥ ९० ॥

दक्षिणमें क्रीडासरोवर, मन्दर और वामनेत्रक हैं पश्चिममें रश्मिबिन्दु संयुक्त लोहजंघ है । नारसिंह मन्त्रसे क्षेत्रेश्वरकी पूजा करै ॥ ९० ॥

उत्तरे भूतनाथश्च मन्दरेण समन्वितम् ।
गौरीपुत्रश्च बटुकं तथा समयपुत्रकम् ॥ ९१ ॥

ज्ञानपुत्रं समयपुत्रं पूर्वादिषु च वै क्रमात् ।
हंसेत्यनेन मन्त्रेण ध्यात्वा रक्तेन चार्चयेत् ॥ ९२ ॥

उत्तरमें पूर्वादिक्रमसे मन्दरयुक्त भूतनाथ गौरीपुत्र, बटुक, समयपुत्रक, ज्ञानपुत्र और समयपुत्र हैं । 'हंस' इस मंत्रद्वारा इनका ध्यान करके रक्त-मन्त्रसे पूजा करै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

शान्तिकानां द्वारपालं तथा बिन्दुकला परा ।
निवृत्तिश्च कला पश्चात्प्रतिष्ठा च कला ततः ॥ ९३ ॥

मायाबीजेन पूर्वादिं तत्र वै हेतुकादिकम् ।
हेतुकं त्रिपुरघ्नश्च अग्निवेतालकं तथा ॥ ९४ ॥

वायव्यादिक्रमेणैव कालश्चैव करालकम् ।
एकपादं तथा भीमं चतुर्णां गगनं मनुः ॥ ९५ ॥

असिताङ्गादयश्चैव ब्राह्मीसिद्ध्यादिसंयुताः ।
चर्चिकादशकं पूज्यं षट्कोणे भूभगादितः ॥ ९६ ॥

फिर शान्तिगणोंके द्वारपाल और परमा बिन्दुकला फिर निवृत्तिकला और इसके पीछे प्रतिष्ठा कला है मायाबीजद्वारा वहां इन सबकी और

हेतुकादिक हेतुक, त्रिपुरघ्न और अग्निवेतालककी पूजा करै । फिर वायव्या दिक्रमसे काल, करालक, एकपाद और भीम चार देवताओंकी गगनमंत्रसे पूजा करै । तदनंतर समस्त षट्कोणमें भागादि क्रमसे असिताङ्गादि और सिद्धियुक्त ब्रह्मादि चर्चिक और दशककी पूजा करै ॥ ९३–९६ ॥

षट्कोणाग्रे च मदनं रतिपुत्रीं सुपार्श्वयोः ।
पञ्चबाणांस्तथा चाग्रे ग्रहांश्चैव च दिक्पतीन् ॥ ९७ ॥

षट्कोणाग्रमें मदन, रतिपुत्री, दो सुपार्श्वमें पंचबाण अग्रमें ग्रहगण और दिक्पतिगण इन सबका ॥ ९७ ॥

आसनं पूजयित्वा चाप्युपर्युपरि भावतः ।
ध्यात्वा चारोपयेद्देवीमिमं मन्त्रमुदाहरेत ॥ ९८ ॥

ध्यान करनेके पीछे आसनकी पूजा करके ऊपरके भावसे आरोपण करै । फिर देवीके प्रति यह मंत्र उच्चारण करना चाहिये ॥ ९८ ॥

एह्येहि परमेशानि सान्निध्यमिह मण्डले ।
कुरुष्व जगतां मातः संसारार्णवतारिणी ॥ ९९ ॥
महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
शब्दब्रह्ममयि स्वच्छे कामेश्वरि प्रसीद मे ॥ १०० ॥

हे परमेश्वरि ! तुम आओ और इस मण्डलमें सन्निधि करो, हे जगत्की माता ! तुम संसारसागरसे तारनेवाली हो, महाकमल वनमें तुम्हारी स्थिति है, तुम्हारा शरीर आनन्द देनेवाला है. हे स्वच्छ कामेश्वरी ! तुम शब्द-ब्रह्मस्वरूपिणी हो सो तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

आवाहयामि कामेशमिति मन्त्रेण शाङ्करि ।
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ॥ १०१ ॥
पशूनां पतये चैव सर्वानन्दात्मने सदा ।
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे ॥ १०२ ॥

त्रिनेत्राय त्रिकालाय त्रिपुरघ्नाय वै नमः ।
नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वदण्डधराय च ॥ १०३ ॥
लोहिताय च धूम्राय नीलकण्ठाय वै नमः ।
नमस्त्रिपुररूपाय विरूपाय नमो नमः ।
सूर्याय सूर्यपतये सिद्धनाथाय वै नमः ॥१०४ ॥

इस मंत्रमें जो नाम हैं उनके साथ नमः शब्दका उच्चारण कर उक्त मन्त्र द्वारा कामेश्वरका आवाहन करै ॥ १०३–१०४ ॥

तस्मादरण्योत्तरतो नातिदूरे व्यवस्थिता ।
खर्वा श्वेता कृष्णवर्णा गोधिकायाः शिला यतः ।
पश्चिमे तु शिवस्तस्य पूर्वपूर्वं विजानत ॥ १०५ ॥

उस वनके उत्तरमें थोड़ी ही दूर खर्व श्वेत कृष्ण वर्ण गोधिकाकी शिला है. उसके पश्चिममें शिव हैं, इस प्रकार पूर्व पूर्वमें व्यवस्थित जानो ॥ १५० ॥

गयातीर्थश्चाप्युदरे चोत्तरे परिकीर्तितम् ।
चतुर्वर्गप्रमाणेन शीर्षे चैव गयाशिरः ॥ १०६ ॥
शीर्षपार्श्वे रामगया रामपिण्डन्तु दक्षिणे ।
पुच्छे तु मानसं तीर्थं दक्षिणे तु महानदी ॥ १०७ ॥

उदरमें उत्तर भागमें गयातीर्थ है, चतुर्वर्गप्रमाणसे शीर्ष (मस्तक) में गयाशिर, पार्श्वमें रामगया, दक्षिणमें रामपिण्ड और पुच्छमें मानस तीर्थ है। दक्षिणमें महानदी है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत विधिपूर्वेण कर्मणा ।
तस्योत्तरे त्विषुक्षेपयुगस्यैवान्तरे प्रिये ॥ १०८ ॥
तीर्थप्रेतशिलाख्यश्च श्राद्धे स्वर्गं नयेत्पितॄन् ।

महानद्यां कृते श्राद्धे पितरः स्वर्गमाप्नुयुः ॥ १०९ ॥
तथाक्षयवटे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।
गयातीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११० ॥

यहां विधिपूर्वक कर्म करके स्नान करै। उसके उत्तरमें दो गजोंके रखने योग्य लंबी भूमिमें प्रेतशिलाख्य तीर्थ है, वहां श्राद्ध करनेसे पितरोंको स्वर्ग प्राप्त होता है। महानदीमें श्राद्ध करनेसे पितर स्वर्गमें जाते हैं, अक्षयवटमें श्राद्ध करनेसे पितृगण ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं, मनुष्य गयातीर्थ में स्नान करके सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥ १०८–११० ॥

आत्मयोनिर्महेशानि गयायान्तु तिलैर्विना ।
पिण्डनिर्वपणं शेषमपि कुर्वन्ति मानवाः ॥ १११ ॥

हे महेशानि ! आत्मसम्बन्धी मनुष्य गयामें तिलके विना शेष पिण्ड (दान) करै ॥ १११ ॥

पश्चिमे वासुदेवस्य धनुरष्टादशान्तरे ।
दीर्घाकारं पञ्चकोणमुत्तरं मुनिसंस्कृतम् ॥ ११२ ॥

वासुदेवके पश्चिममें अठारह धनुके अन्तरपर दीर्घाकार मुनिसंस्कृत पञ्चकोण उत्तर ॥ ११२ ॥

उत्तरे मानसे श्राद्धी न भूयो जायते नरः ।
दक्षिणे कोटिलिङ्गस्य चतुष्कोणश्च यः शिवः ॥११३॥
दक्षिणं मानसं तद्धि सर्वपापप्रणाशनम् ।
दक्षिणे मानसे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ११४॥

उत्तर मानसमें श्राद्ध करनेसे मनुष्योंको फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। कोटिलिंगके दक्षिणमें चतुष्कोण जो शिव हैं, वही सब पापोंका नाशक दक्षिण मानस है। दक्षिणमानसमें श्राद्ध करनेसे पितरोंको ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

महानद्यां कृते श्राद्धे ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।
श्राद्धी रामह्रदे देवि ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ११५ ॥

महानदीमें श्राद्ध करनेसे पितर ब्रह्मलोकमें जाते हैं, रामह्रदमें श्राद्ध करनेसे पितर ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ११५ ॥

गयाशिरे पिण्डदानाद्गयापुच्छे तथोत्तरे
त्रिदिनं पातयेत्पिण्डं कुलञ्चैव समुद्धरेत् ॥ ११६ ॥
कांक्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकाद्भयभीरवः ।
गयां गच्छति यः कश्चिन्नरोऽस्मान्तारयिष्यति ॥११७॥

गयाशिरमें और उत्तरमें, गयापुच्छमें यदि तीन दिन पिण्डदान और पिण्डपातन करै, तो अपने कुलका उद्धार करसकता है । पितरगण नरकके भयसे भीत होकर पुत्रोंकी कामना करते हैं कि, उनमें कोई एक गयामें जाकर हमारा उद्धार करसकता है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

पश्चिमे कामनाथस्य सप्तधन्वन्तरे स्थिताम् ।
दृष्ट्वा दिर्घेश्वरीं देवीं सर्वकामफलप्रदाम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि देववद्भुवि मोदते ॥ ११८ ॥

कामनाथके पश्चिम सात धनुके अन्तरमें स्थित सर्वकामफलप्रद दीर्घेश्वरी देवीका दर्शन करनेपर साठ हजार वर्षतक देवतुल्य होकर पृथ्वीमें महाआनंदसे समय बिताता है ॥ ११८ ॥

मायाबीजेन देवेशीमष्टम्यां प्रति पूजयेत् ।
सर्वविद्यामवाप्नोति वंश्यानामग्रणीर्भवेत् ॥ ११९ ॥

हे देवेशि ! मायाबीजमंत्रद्वारा अष्टमीमें पूजा करनेसे सर्व विद्या प्राप्त होकर बहुत मनुष्योंका अग्रणी होता है ॥ ११९ ॥

कल्पवृक्षं ततो गत्वा तिन्तिडीसंज्ञकं तरुम् ।
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ १२० ॥

ओं नमो व्यक्तरूपाय सर्वदेवस्तुताय च ।
शिवाधिष्ठानरूपाय तिन्तिडीवृक्षरूपिणे ॥ १२१ ॥

फिर तिन्तिड़ी नामक कल्पवृक्षके निकट जाय और तीनवार प्रदक्षिणा करके "ओं नमो व्यक्तरूपाय सर्वदेवस्तुताय च । शिवाधिष्ठानरूपाय तिन्तिडीवृक्षरूपिणे" इस मंत्रसे पूजा करै ॥ १२० ॥ १२१ ॥

प्रशस्तः सर्वमन्त्रेषु काम्ये मोक्षे च दक्षिणे ।
वामहस्तस्य संस्पर्शो मालायां ग्रहणे तथा ॥ १२२ ॥

उक्त मंत्र काम्य मोक्ष और दक्षिणमें सब कार्योंमें ही श्रेष्ठ है । वाम हस्तसे स्पर्श करके माला ग्रहण करनेपर ॥ १२२ ॥

भूगतश्च परैः स्पृष्टश्छिन्ने सम्वत्सरान्तरे ।
संस्कुर्यान्मालिकां देवि ताम्रपात्रे निवेशयेत ॥१२३॥

पृथ्वीमें गिरनेपर दूसरेसे छुई जानेपर छिन्न होजानेपर अथवा एक वर्षकी पुरानी होनेपर मालाका संस्कार करना चाहिये । हे देवि ! यदि मालाका संस्कार करना हो तो प्रथम इस मालिकाको तांबेके पात्रमें रखकर॥१२३॥

गायत्र्या प्रथमं प्रोक्ष्य पञ्चगव्यैरनन्तरम् ।
पश्चात्तेनैव मन्त्रेण हुं सिध्यै नम इत्युत ॥ १२४ ॥

गायत्रीद्वारा प्रक्षालनपूर्वक पंचगव्य प्रदान करके फिर उसी मंत्रसे और 'हुं सिध्यै नमः' ॥ १२४ ॥

गन्धोदकेन तत्पश्चाद्गन्धपुष्पैः पृथग्विधैः ।
कुम्भत्रयेण संस्थाप्य रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥ १२५ ॥

इस मन्त्रद्वारा गंधोदक (सुगंधितजल) में फिर पृथक् प्रकारसे रक्त गन्ध पुष्पमें तीन घटके ऊपर स्थापन करके रक्तपुष्पसे पूजा करै ॥१२५॥

यवक्षारबलिं दत्वा देवप्राणं निवेशयेत् ।
तदानीयस्पृशेन्मालामन्तरिक्षेषु विन्यसेत ॥ १२६ ॥

अनन्तर यवक्षारकी बलि देकर देवप्राण निवेशित करै, तब माला लाय स्पर्श करके आकाशकी ओर लंबायमान रक्खै ॥ १२६ ॥

आनीय रात्रौ पीठे च स्थापयेन्मालिकां ततः ।
गन्धचन्दनकं दत्वा तथा दूर्वाक्षतानि च ।
पुनर्देवस्य पीठे च तद्रात्रे च निवेशयेत ॥ १२७ ॥

इसके उपरान्त रात्रिकाल माला लाकर पीठमें स्थापन करै, फिर गन्ध-चन्दन और दूर्वाक्षत प्रदान करके उसी रात्रिको फिर देवपीठमें निवेशित करै ॥ १२७ ॥

शतं साहस्रकश्चैव अयुतं नियुतं तथा ।
लक्षश्चैव तथा कोटिं जपहोमस्य मानकम् ॥ १२८ ॥
प्रतिमाने चाष्टहस्तं सर्वपर्वणि संजपेत् ।
अथवा चाष्टभिर्बीजैस्त्रीणि तत्रापि योजयेत् ॥१२९॥

फिर शत, सहस्र, अयुत, नियुत, लक्ष वा करोड जप होम करना चाहिये । यह माला परिमाणमें आठ हाथ होगी । सर्व पर्वमें ही आठ अथवा तीन बीज संयोग करके जप करै ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

माले माले महामाले सर्वत्रैकस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तन्माले सिद्धिदा भव ॥१३०॥
पुष्करीसक्षिबीजस्त्वं सूक्ष्मं सूक्ष्मान्वितं तथा ।
आकाशशशिसंयुक्तं सिध्यै हृदय संज्ञकम् ॥ १३१ ॥

हे महामाले ! माले ! तुम सर्वस्वरूपिणी हो, तुम्हारे विषे धर्म, अर्थ काम, मोक्ष यह चारोंवर्ग अधिष्ठित है, इस कारण तुम सिद्धि प्रदानके

तुम अतिसूक्ष्म पुष्करिबीजसे निर्मित हो आकाश और शशियुक्त हो अतः सिद्धि प्रदान करो ॥ १३० ॥ १३१ ॥

एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो मालायाः परिकीर्त्तितः ।
ग्रहणे स्थापने चैव पूजने विनियोजयेत् ॥ १३२ ॥

यही मालाका पञ्चाक्षर मन्त्र कहा गया है । ग्रहण स्थापन और पूजनमें इसका विनियोग करै ॥ १३२ ॥

शिवं जपादौ विन्यस्य जपान्ते तु स्तुतिं पठेत् ।
बलिदानं ततः कुर्य्याद्दद्याद्विभवमात्मनः ।
अनुलोमविलोमेन मूलमन्त्रेण पूजयेत् ॥ १३३ ॥

जपके, आरम्भमें शिवको स्थापन करके जपके अन्तमें स्तुतिपाठ करना चाहिये । फिर अपने विभवके अनुसार पूजोपहार बलि इत्यादि देवे । फिर अनुलोम विलोमके क्रमसे अर्थात् प्रथम क्रमानुसार पश्चात् विपरीत विधिसे मूलमन्त्र द्वारा पूजा करै ॥ १३३ ॥

अम्बे अम्बिके मन्त्रेण तथा पौराणिकेन च ।
जय कामेशि चामुण्डे जय भूतापहारिणि ॥ १३४ ॥

फिर अम्बे अम्बिके इस पौराणिक मन्त्रसे पूजा करके स्तुति पाठ करै । स्तुति यथा, हे कामेशी ! हे चामुण्डे ! तुम्हारी जय हो ! हे भूतापहारिणी ! ॥ १३४ ॥

जय सर्वगते देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ।
विश्वमूर्त्ते शुभे शुद्धे विरूपाक्षि त्रिलोचने ॥ १३५ ॥

तुम्हारी जय हो ! हे सर्वगते देवि ! तुम्हारी जय हो ! हे कामेश्वरि ! तुमको प्रणाम करता हूं ! हे विश्वमूर्त्ते ! हे शुभे ! हे शुद्धे ! हे विरूपाक्षि ! हे त्रिलोचने ॥ १३५ ॥

भीमरूपे शिवे विद्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ।

हे रुधिरासवपानाढ्यवदने भुवनेश्वरि ! हे महीषासुरकाविनाशिनी ! हे देवि कामेश्वरि ! मैं तुमको प्रणाम करताहूं ॥ १४१ ॥

छागतुष्टे महाभीमे कामाख्ये सुरवन्दिते ।
जय कामप्रदे तुष्टे कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥ १४२ ॥

हे महाभीमे ! छागतुष्टे ! हे सुरवन्दिते ! हे कामाख्ये ! तुम्हारी जय हो । हेकामप्रदे ! हे तुष्टे ! हे कामेश्वरि ! मै तुमको नमस्कार करताहूं॥१४२॥

भ्रष्टराज्यो यदा राजा नवम्यां नियतः शुचिः ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां उपवासी नरोत्तमः ॥ १४३ ॥
संवत्सरेण लभते राज्यं निष्कंटकं पुनः ।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या तव देवि समुद्भवम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ॥ १४४ ॥

इस प्रकार कामाख्याकी स्तुति करनेसे संपूर्ण अभिलाषा पूर्ण होती है जब राजा राज्य भ्रष्ट हो, तो नियम धारणपूर्वक पवित्र होकर अष्टमी, नवमी और चतुर्दशीमें उपवास करनेसे एक वर्षमेंही निष्कण्टक राज्यको फिर प्राप्त होता है । हे देवि ! यह तुम्हारी उत्तम स्तुति जो मनुष्य भक्तिसे सुनता है, वह सब पापोंसे छूटकर परम निर्वाण लाभ करता है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

कामेश्वरी देवि सुरासुरप्रिये
प्रकाशिताम्भोजनियन्त्रिते नमः ।
सुरारितेजोवधतुष्टमानसे
त्रयीमये देवि नमामि तुभ्यम् ॥ १४५ ॥

हे सुरासुरप्रिये ! हे देवि कामेश्वरी ! हे प्रकाशितमुखाम्भोजे ! हे नियन्त्रिते देवि ! मैं तुमको नमस्कार करताहूं । हे सुरारितेजोवधतुष्ट मानसे ! हे त्रयीमये देवि ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं ॥१४५॥

सितासिते रक्तपिशङ्गविग्रहे
रूपाणि यस्यास्तव भान्ति सर्वतः ।
करे कपाले कविकल्पितानि
शुभाशुभानामयिते नमामि ॥ १४६ ॥

हे सितासिते ! हे शोणितपिशङ्गविग्रहे ! अर्थात् रक्तके समान शरीरकी आभावली देवि ! तुम्हारे अनेकरूप प्रति भात होते हैं, एवं कर और कपालमें शुभाशुभका विकलल्पित रूप (प्रकाशित) होता है, हे देवि कामेश्वरि ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं ॥ १४६ ॥

कामरूपसमुद्भूते कामपीठावतंसके ।
विश्वाधारे महामाये कामेश्वरि नमोऽस्तुते ॥ १४७ ॥

हे कामरूपसमुद्भूते ! हे कामपीठावतंसरूपिणी ! हे विश्वाधारे ! हे महामये ! हे कामेश्वरि देवि ! मैं तुमको प्रणामकरताहूं ॥ १४७ ॥

अव्यक्तविग्रहे शान्ते सन्तते कामपूरिते ।
कालगम्ये परे श्रान्ते कामेश्वरि नमोऽस्तुते ॥ १४८ ॥

हे अव्यक्तविग्रहे ! हे शान्ते ! हे सन्तते ! हे कामरूपिणी ! हे कालगम्ये परमे ! हे श्रान्ते हे कामेश्वरि मैं तुमको नमस्कार करता हूं ॥१४८॥

त्वं सुषुम्नान्तरालस्था चिन्त्यसे ज्योतिषानघे ।
प्रणतोऽस्मि परां वीरां कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥१४९॥

जो सुषुम्नाके अन्तरालमें स्थित ज्योतिरूपीणी होकर योगियोंके द्वारा चिन्तित होती है अर्थात् योगीजन जिनकी चिन्ता करते हैं उन परमा वीर कामेश्वरी देवीको मैं प्रणाम करता हूं ॥१४९॥

दंष्ट्राकरालवदने मुण्डमालोपशोभिते ।
सर्वतः सर्वगे देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

हे कामेश्वरि ! मैं तुमको नमस्कार करताहूं । हे दंष्ट्राकरालवदने ! हे मुण्डमालासुशोभिते ! हे सर्वतः सर्वगे ! ॥ १५० ॥

प्रत्यूषे स्नानकाले च भोजने दन्तधावने ।
तथा विगतवस्त्रे च दशनं नैव संस्पृशेत् ॥ १५१ ॥

हे देवि ! कामेश्वरि ! मैं तुमको प्रणाम करताहूं, इस प्रकार कामेश्वरी की स्तुति और नमस्कार करना चाहिये स्नानकालमें, प्रातःकालमें भोजन और दन्तधावनमें, वस्त्र बदलनेमें दांतोंको स्पर्श न करै ॥ १५१ ॥

चैत्रमासे त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वृषस्य च ।
न स्त्री देवीं स्पृशेज्जातु त्यजेत्स्पृष्टेह्नि दर्शनम् ॥ १५२

चैतके महीनेकी त्रयोदशीमें और वृष अर्थात् ज्येष्ठके महीनेकी चतुर्दशीमें स्त्रियें देवीको स्पर्श न करै और इन दिनोंमें दर्शनभी न करै ॥ १५२ ॥

दर्शने भयदं विद्याच्छापः पतति मूर्द्धनि ।
एवं ज्येष्ठसिताष्टम्यां कुमारैर्नावलोक्यते ॥ १५३ ॥

दर्शन करनेसे भय उपस्थित और मस्तकपर शाप पडता है । इसी प्रकार ज्येष्ठके महीनेकी शुक्लाष्टमीमें कुमारगण दर्शनभी न करैं ॥१५३॥

कुमार्यश्च सुरूपाश्च साधको न कदाचन ।
न रात्रौ संस्पृशेन्नारीं बलिं वै न स्पृशेत्क्वचित् ।
लिङ्गस्थाश्च महादेवीं कदाचिदपि न व्रजेत् ॥१५४॥

और सुरूपा कुमारीगण देवीका दर्शन न करैं साधकभी रात्रीकालमें नारीका स्पर्श न करै, और पूजाके द्रव्यका स्पर्श न करावै । लिंगस्थिता महादेवीके निकट कभी गमन न करै ॥ १५४ ॥

विप्राणां क्षीरवलयः शाल्यन्नं वाथ पायसम् ।
घृतप्लुतं चर्व्यफलं पुष्पं तस्य घृतान्वितम् ॥१५५॥

दद्यात्क्षीरञ्च दुग्धान्नं भक्तान्नं वा निवेदयेत ।
शाल्यन्नं वाथ समधु कृसरं खण्डमोदकम् ॥ १५६ ॥

क्षीरभोग, शालिअन्न, खीर, घृतप्लुत चर्व्यफल (तली हुई खिचरी) और घृतयुक्त पुष्प, क्षीर, दुग्धान्न, भक्तान्न (भात) मधुसहित कृसर (तिलयावक) और खंडमोदक यह सब द्रव्य ब्राह्मण निवेदन कर सकते हैं ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

राज्ञां हि पशवः शस्ता वैश्यानां व्रीहयस्तथा ।
क्षौद्रं वृषलजातीनां सर्वेषां पशवोऽथवा ॥ १५७ ॥

राजाओंको पशु प्रदान, वैश्यगणको व्रीहिदान और सब शूद्रोंको मधु-दान वा पशुप्रदान करना चाहिये ॥ १५७ ॥

निवेदयेच्छोणतुण्डं मानुषं वा लुलायकम् ।
वाराहं वा छागलं वा चामरं वरुणं तथा ।
मेषश्चाथ वराहञ्च गोधिकाञ्च निवेदयेत ॥ १५८ ॥

अथवा शूद्रगण शोणतुण्ड (वानर) मनुष्यबलि वा महिषबलि या वराह, छागल, चामर, वरुण किंवा मेषके सह वराह वा गोधिका (गोय) निवेदन करैं ॥ १५८ ॥

चामरणाञ्च दशकांच्छागलैकं विशिष्यते ।
दशाभिश्छागलैरेव कूर्म एकः प्रशस्यते ॥ १५९ ॥

दश चामरसे एक छागल विशेष होता है और दश छागलकी अपेक्षा एक कूर्म प्रशस्त होता है ॥ १५९ ॥

कूर्मस्य च शतेनापि शशकैकं विशिष्यते ।
शशकानां सहस्रात्तु वराहस्तु विशिष्यते ॥ १६० ॥

सौ कूर्मसे शशक (खरगोश) प्रशस्त और हजार शशकसे एक वराह श्रेष्ठ होता है ॥ १६० ॥

द्विसहस्रवराहेभ्यो माहिषं श्रेष्ठमुच्यते ।
द्वे सहस्रे लुलायस्य खड्गमेकं विशिष्यते ॥ १६१ ॥

दो हजार वराहसे एक महिष श्रेष्ठ और दो हजार महिषसे एक गेंडा श्रेष्ठ है ॥ १६१ ॥

खड्गिनां तु सहस्रात्तु मानुषं चातुलं फलम् ।
द्विसहस्रमनुष्येषु शोणतुण्डः प्रशस्यते ॥ १६२ ॥

हजार गेंडेकी अपेक्षा एक मनुष्यसे अतुल फल होता है और दो हाजर मनुष्योंसे एक शोणतुंड (बानर) श्रेष्ठ है ॥ १६२ ॥

द्वे शते शोणतुण्डेभ्यः श्वेतग्रीवः प्रशस्यते ।
श्वेतग्रीवशताच्चापि गोधिकैका वरा मता ॥ १६३ ॥

दो सौ शोणतुण्डकी अपेक्षा एक श्वेतग्रीव श्रेष्ठ है और हजार श्वेतग्रीवकी अपेक्षा एक गोधिका (गोय) श्रेष्ठ है ॥ १६३ ॥

गोधिकानां शताद्देवि नरस्य च कुमारकः ।
पशूनाञ्चैव षण्मासात्परतोपि बलिर्भवेत् ॥ १६४ ॥

शतगोधिकासे एक नरकुमारको श्रेष्ठ जानना चाहिये । पशुगणकी आयु छै मासकी होनेपर ही बलिके योग्य होती है ॥ १६४ ॥

श्वेतो वा छागलः कृष्णो द्विवर्षात्परतो यदि ।
संजाते गुग्गुलुश्राद्धे शोणाख्यं जम्बुकं तथा ॥१६५॥
स्नानं गन्धमृगञ्चैव छागं वै पार्वतीयकम् ।
मूषकञ्च करालञ्च क्षुद्रमार्जारमेव च ॥१६६॥

कृष्णश्वेत छाग, दो वर्षका होनेपर और शोणाख्य जंबुक, स्नानगन्ध, मृग, पार्वतीय छाग, यह सब गुग्गुलुश्राद्ध होनेपर बलिके योग्य होते हैं । मूषक, कराल, क्षुद्रमार्जार ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

काकोलं कालविङ्कश्च राजहंसश्च शारिकम् ।
कोकिलं शुकगृध्रं च मयूरं चित्रकं तथा ॥ १६७ ॥

काकोल, (द्रोणकाक) कलविंक (चटक) राजहंस, शारिक, शुका । गृध्र, कोकिल मयूर, चित्रक ॥ १६७ ॥

अश्वश्च वेणुपृष्ठश्च कृष्णपारावतन्तथा ।
बृहत्कपोतकश्चैव खञ्जरीटं तथैव च ॥ १६८ ॥
बकश्चैव बलाकश्च प्रयत्नेन विवर्ज्जयेत ।
संहारे बलिदानेन स्त्रियं तु न विचारयेत् ॥ १६९ ॥

अश्व, वेणुपृष्ठ. कृष्ण पारावत (काला कबूतर) बृहत् कपोत (बड़ा) कबूतर) खञ्जरीट (ममोला) बक, बालक, इन सबका यत्नपूर्वक त्याग करै बलिदानमें स्त्रीप्रदान करनेसे उसके पापका विचार करना नहीं पड़ता ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

मिथुने दीयमाने तु न दोषो जायते प्रिये ।
श्मशाने महिषं दद्याद्देवकस्य च सन्निधौ ॥ १७० ॥

मिथुन प्रदान करनेसे उसमें दोष नहीं होता है, हे प्यारी ! श्मशानमें देवताके समीप महिष प्रदान करना चाहिये ॥ १७० ॥

स याति ब्रह्मलोकश्च शिववद्भुवि मोदते ।
अन्तर्गृहे तु यो हन्यात्स याति ब्रह्मशाश्वतम् ॥१७१॥

ऐसा होनेसे वह ब्रह्मलोकमें जाता है और पृथ्वीमें शिवकी तुल्य प्रमोद करता है, अन्तर्गृहमें मारता है, उसको शाश्वत ब्रह्मपद प्राप्त, होता है ॥ १७१ ॥

अद्यापि दृश्यते ब्रह्म यस्तु दक्षिणतः प्रिये ।
यतते नात्र सन्देहो ज्ञानदाता सदाशिवः ॥ १७२ ॥

हे प्रिये ! अब भी दक्षिणदिशामें ब्रह्म दिखाई देता है, वहां शिवकी उपासना करनेसे अवश्य ज्ञान देते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥१७२॥

तस्माद्दक्षिणकर्णेन भूमौ पतति वै नरः ।
महापातकयुक्तोऽपि युक्तो वाप्युपपातकैः ॥ १७३ ॥

इसी कारण दक्षिण कर्णमें मनुष्य भूमिपतित होते हैं, महापातकयुक्त हो वा उपपातकयुक्त हों ॥ १७३ ॥

श्मशाने बलिदाने तु मुक्तो गच्छेच्छिवालयम् ।
अकामो वा सकामो वा प्राणांस्त्यजति तत्र वै ।
त्यक्तदेशोपि भवति स्वयमेव गणेश्वरः ॥ १७४ ॥

श्मशानमें बलिदानसे मुक्त होकर शिवालयमें जाते हैं, अकाम हो वा सकाम हो, वहां प्राण त्याग करके उस देशके परित्याग करनेपर स्वयं गणेश्वर होते हैं ॥ १७४ ॥

परदेशार्ज्जितं वाथ कृत्वा दत्वा बलिं नृपः ।
महापातकिनं चौरं मूर्खं वा चैकवीरकम् ।
ब्रह्मद्विषं स्त्रीजितं च प्रयत्नेन न योजयेत् ॥ १७५ ॥

राजागण परदेशसे आये हुए महापातकी, चोर, मूर्ख, वा वंशके एक मात्र वीर, स्त्रीजित, ब्रह्मद्वेषी, इन सबको यत्नपूर्वक परित्याग करै ॥१७५॥

मणिमुक्तासुवर्णादि देवे दत्तं तु यद्भवेत् ।
न निर्माल्यं द्वादशाहं ताम्रपात्रं तथैव च ॥१७६॥

मणि, मुक्ता, प्रवाल (मूंगा) सुवर्णादि और ताम्रपात्र, देवताको दिया जानेपर बारह दिनतक निर्माल्य न करै अर्थात् देवस्नानसे अन्यत्र न ले ॥ १७६ ॥

पट्टी शाटी च षण्मासं नैवेद्यं दत्तमात्रतः ।
मोदकं कृसरश्चैव यामार्द्धेन महेश्वरि ॥ १७७ ॥

पट्टी (रेशम और साटी (साडी) की छः महीने देवस्थानमें रक्षा करनी चाहिये । नैवेद्य (केवल दानमात्र) मोदक तथा कृसर (खिचड़ी) अर्द्धप्रहर रह सकता है ॥ १७७ ॥

पट्टवस्त्रं त्रिमासाच्च यज्ञसूत्रमहः स्मृतम् ।
यावदुष्णं भवेदन्नं परमान्नं तथैव च ॥ १७८ ॥

रेशमीन वस्त्र तीन महीने. यज्ञसूत्र एकाह (केवल एक दिन) अन्न और परमान्न जबतक उष्ण रहे, (इसके पीछे निर्माल्य करै) ॥१७८॥

मस्तकं रुधिरश्चैव अर्धरात्रेण पार्वति ।
मुहूर्त्तं दधि दुग्धश्च आज्यं यामेन शांकरि ॥ १७९ ॥

मस्तक और रुधिर आधीरात पीछे, दही और दूध मुहूर्त्तकालपीछे आज्य (घृत) एक प्रहर पीछे ॥ १७९ ॥

करवीरमहोरात्रं बिल्वपत्रं तथैव च ।
जपाबन्धूकमाल्यश्च निर्माल्यं सार्द्धमासकम् ॥१८०॥

कनेर और बेलपत्र अहोरात्रमें जपामाल्य और बन्धूकमाल्य डेढ महीने पीछे ॥ १८० ॥

माल्यं वै करवीरस्य पद्मानां विल्वकस्य च ।
मासार्धेन महेशानि तांम्बूलं दत्तमात्रतः ॥ १८१ ॥

करनेकी माला, पद्मकी माला, महीनेके अन्तमें और बेल्की माला, आधा महीनेके अन्तमें, और तांबूल केवल देते ही निर्माल्य करै ॥१८१॥

खर्जूरं पनसं द्राक्षां मातुलुङ्गञ्च शावकम् ।
कदलीं नागरंगञ्च तथा जांबूफलानि च ।
शालूकं मधुकञ्चैव प्रयत्नेन निवेदयेत् ॥ १८२ ॥

खजूर, पनस, दाख, मातुलुङ्ग, शावक, कदली, (केला) नागरङ्गम, जंबूफल, शालूक और मधुक यह सब यत्नपूर्वक निवेदन करे ॥ १८२ ॥

फलं बिल्वस्य दाडिम्बं जयन्ती कर्कटीं तथा ।
त्रिपुरश्चैव वार्त्ताकी देवीप्रीतिकराणि च ॥ १८३ ॥
न निर्माल्यश्च दाडिम्बं तथा बिल्वफलं प्रिये ।
सौगन्धिकश्चैव दलं प्रयत्नेन नियोजयेत् ॥ १८४ ॥

बिल्वफल, दाडिमी, जयन्ती, (नादेई) ककड़ी, त्रिपुर, वर्त्ताकी (बतिया) यह सब देवीकी प्रसन्नता करनेवाले हैं । हे प्रिये ! दाडिमी और बेल निर्माल्य नहीं है । सौगंधिक दल यत्नपूर्वक नियोजित करै ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

कदलीं बीजपूरश्च दुग्धं पक्वं निवेदयेत् ।
कन्दुपक्वं कशेरुश्च जम्बवालं प्रियं भवेत् ॥ १८५ ॥

बिजौरा निंबूका दल दूधमें पकाकर निवेदन करना चाहिये कन्दु-पक्व- कशेरु और जंबवाल (फल विशेष) देवीकी प्रसन्नता करानेवाले हैं ॥ १८५ ॥

आर्द्रकं लवणश्चैव जीरकं पिप्लीयकम् ।
जातीकोषं तिन्दुकश्च देव्याः प्रियतरं महत् ॥ १८६ ॥

अदरक, लवण, जीरा, पीपल, जीया और तिन्दुक देवीको महाप्रियकर हैं ॥ १८६ ॥

रामरम्भाफलं पुष्पं कदलीं धूम्रतापिताम् ।
न योजयेन्महादेव्यै उत्पलस्य च बीजकम् ।
धान्यं श्रावणकं मर्त्य द्विःस्विन्नश्च विवर्जयेत् ॥१८७॥

रामरम्भाफल (शरीफा) पुष्प, कदली और उत्पलबीज धुएमें तपाकर देवीको प्रदान न करै। दोवारमें पकाये श्रावणके धान्य और मत्स्य वर्जित है ॥ १८७ ॥

नारिकेलं सुवर्णाभं नारिकेलञ्च वामकम् ।
निवेदयेन्महादेव्यै तोयं तस्य विशेषतः ॥ १८८ ॥

नारियल और भूरानारियल, वामक और विशेषतः नारियलका जल महादेवीको निवेदन करै ॥ १८८ ॥

नारिकेलञ्च भाण्डीरं दैवश्राद्धे विवर्जयेत् ।
वकुलस्य फलं पक्वं पद्मस्य च फलं तथा ॥ १८९ ॥
नियोजयेन्महादेव्यै चान्द्रायणफलं लभेत् ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुष्पाध्यायं समासतः ॥१९०॥

दैवश्राद्धमें नारियल और पिण्डखजूर वर्जित हैं महादेवीको पका हुआ वकुलका फल और पद्मफल प्रदान करनेसे चान्द्रायण व्रतका फल प्राप्त होता है हे देवि ! संक्षेपसे पुष्पाध्यायका विवरण कहता हूं सुनो ॥ १८९ ॥ १९० ॥

ऋतुकालोद्भवैश्चैव मल्लिकाजातिपुष्पकैः ।
सितरक्तैस्तथा पुष्पैर्नीलैः पद्मैश्च पाण्डुरैः ॥ १९१ ॥
किंशुकैस्तगरैश्चैव जपाकनकचम्पकैः ।
वकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरण्टकैः ॥ १९२ ॥

यथा ऋतुसमुत्पन्न, चमेली, जाति, सफेद और लालपुष्प और नील पाण्डुरपद्म, किंशुक, तगर जपा, कनक; चम्पक, बकुल मन्दार कुन्दपुष्प कुण्टक ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

धत्तूरकादियुक्तैश्च बन्धूकागस्त्यसम्भवैः ।
मदनैः सिन्धुवारैश्च दूर्वाङ्कुरदलैस्तथा ॥ १९३ ॥

धतूरा, गुलदुपैरी, अशोक, मदन, निर्गुण्डी, कोमल दूर्वांकुर॥१९३॥

पत्रैश्च तुलसीनाञ्च बिल्वपत्रैः सुकोमलैः ।
करवीरस्य माध्यस्य सहस्राणि ददाति यः ।
सकामान्प्राप्य चाभीष्टान्देवीलोके महीयते ॥१९४॥

तुलसीपत्र और अत्यन्त कोमल बेलपत्रसे देवीकी पूजा करनी चाहिये जो मनुष्य हजार कनेर और कुन्दपुष्प देवीको प्रदान करता है वह संपूर्ण अभीष्ट और कामनाको प्राप्त होकरदेवीके लोकमें जाताहै ॥ १९४ ॥

एकं स्यात्करवीरं तु पद्मानां द्विसहस्रवत् ।
निर्माल्यं न ऋते दद्यात्पुष्पाणि वनजानि च॥१९५॥

एक कनेरका पुष्प दो हजार कमलके समान है, वनके पुष्प विना उत्सर्ग किये कभी देवीको प्रदान न करै ॥ १९५ ॥

न शक्नुवन्ति वै देव्याः संगृहीतुं समुद्यताः ।
एकैकं कुसुमं यक्षा रक्षन्ति दश वै यतः ॥ १९६ ॥
तथा यक्षाङ्गनाः पञ्च सर्वतः कुसुमावृताः ।
तस्मादाहृत्य कुसुमं दद्याद्देवान्पितॄनपि ॥ १९७ ॥

क्योंकि देवियें इस पुष्पके आकर्षण करनेमें उद्यत होकर समर्थ नहीं होतीं । दश दश यक्ष और पांच पांच यक्ष स्त्रियां एक एक कुशुमकी रक्षा करती हैं, इस कारण कुसुम लाकर देवता और पितरोंको प्रदान करै ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

कुर्य्यात्पुष्पगृहं तत्र कामाख्योपरि शंकरि ।
इह कामानवाप्नोति दुर्गालोकेमहीयते ॥१९८॥

हे देवि ! वहां एक पुष्प गृह बनाना चाहिये । इस प्रकार पुष्प प्रदान करके इस लोकमें संपूर्ण कामनाको प्राप्त हो दुर्गालोकमें जाकर आनन्द उपभोग करता है ॥ १९८ ॥

करवीरसजातीयं पूजयेद्यस्तु शाङ्करि ।
अग्निष्टोमफलं लब्ध्वा सूर्यलोके महीयते ॥ १९९ ॥

हे शंकरि ! जो मनुष्य कनेर और तज्जातीय पुष्प द्वारा पूजा करता है वह अग्निष्टोमके फलको प्राप्त होकर सूर्यलोकमें जाता है ॥१९९॥

पूजयित्वा नरो भक्त्या चण्डिकां पद्ममालया ।
ज्योतिष्टोमफलं प्राप्य सूर्यलोके महीयते ॥ २०० ॥

मनुष्यगण भक्तिपूर्वक पद्ममालासे चण्डिकाकी पूजा करके ज्योतिष्टोमके फलको प्राप्त होते हैं और सूर्यलोकमें जाकर पूजाको प्राप्त होते हैं ॥ २०० ॥

बकपुष्पसजातीयं तथा रुद्रजटस्य च ।
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा ॥२०१॥

बकपुष्प और तज्जातीय पुष्प तथा रुद्रजटासे पूजा करनेपर बाजपेय यज्ञका फल मिलता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २०१ ॥

सर्वेषामेव पुष्पाणां प्रवरं नीलमुत्पलम् ।
नीलोत्पलसहस्रेण यस्तु मालां प्रयच्छति ।
दुर्गायां विधिवद्देवि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०२ ॥

नील कमल सब पुष्पोंमें श्रेष्ठ है, जो मनुष्य सहस्र नील कमलोंकी माला दुर्गादेवीको विधिपूर्वक प्रदान करता है उसका पुण्यफल सुनो २०२॥

वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ।
देव्यास्त्वनुचरो भूत्वा रुद्रलोके महीयते ॥ २०३ ॥

वह सौ करोड और हजार करोड वर्ष देवीका अनुचर होकर रुद्रलोकमें पूजित होता है ॥ २०३ ॥

वक्रधान्योद्भवं यच्च सूक्ष्मधान्योद्भवंतथा ।
राजधान्योद्भवश्चैव रक्तधान्योद्भवं तथा ॥ २०४ ॥

शस्तं तण्डुलमक्षुण्णं सप्ताष्टनवसंख्यया ।
दूर्वाङ्कुरसमेतञ्च भगवत्यै निवेदयेत् ।
अष्टम्यां वा नवम्यां वा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥२०५॥

वक्रधान्योत्पन्न, सूक्ष्मधान्योत्पन्न, राजधान्योत्पन्न और रक्तधान्यो- त्पन्न (साबत चावल) प्रशस्त है, उनके सप्त अष्ट नवसंख्यक तण्डुल दूर्वांकुरके सहित अष्टमी नवमीमें प्रदान करनेसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

गन्धानुलेपनं दत्त्वा ज्योतिष्टोमफलं लभेत् ॥ २०६ ॥

देवीको गन्धानुलेपन प्रदान करनेसे ज्योतिष्टोम यज्ञका फल मिलता है ॥ २०६ ॥

कुंकुमेन विलिप्यार्घ्यं गोसहस्रफलं लभेत् ।
चन्दनागुरुकर्पूरैः शुक्लपुष्पैः सकुंकुमैः ।
विलिप्तां पूजयेद्दुर्गामग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २०७ ॥

और कुंकुमविलेपित अर्घ्यदान करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है । चन्दन, अगर, कपूर और कुंकुम विलिप्त शुक्ल पुष्पद्वारा दुर्गादेवीकी पूजा करनेसे अग्निष्टोमका फल प्राप्त होता है ॥ २०७ ॥

निम्बपत्रञ्च कुन्दञ्च तमालामलकीदलम् ।
कह्लारं तुलसीञ्चैव पद्मञ्चाहानिपुष्पकम् ॥ २०८ ॥

निम्बपत्र, कुन्द, तमालदल, आमलकी दल, कह्लार, तुलसी, पद्म और अहानिपुष्प, यह सब पुष्प ॥ २०८ ॥

एतत्पर्युषितं न स्याद्यच्चान्यत्कलिकात्मकम् ।
न दूष्येच्छिन्नभिन्नञ्च जातीपुष्पञ्च शाङ्करि ॥ २०९ ॥

और अन्यान्य कलिकात्मक पुष्प पर्युषित (बासी) नहीं होते । हे शाङ्करि ! छिन्न भिन्न जाती पुष्प ॥ २०९ ॥

पद्मं दूर्वाङ्कुरश्चैव तुलसीदलमेव च ।
आशु पर्य्युषितं न स्यात्कुसुमं चैव शाङ्करि ॥ २१० ॥

पद्म दूर्वांकुर और तुलसीदल दूषित नहीं होते । हे शाङ्करि ! कुसुम शीघ्र ही बासी नहीं होते ॥ २१० ॥

नार्चयेज्झिण्टिपुष्पेण पीतेन तगरेण च ।
श्वेतौड्रेण च कृष्णेन विजयेन न चार्चयेत् ॥ २११ ॥

झिण्टी पुष्प, पीततगर, श्वेत ओड्र और कृष्ण वर्णके विजय पुष्पसे पूजा करै ॥ २११ ॥

त्रिलक्षं प्रजपेन्मन्त्रं पुरश्चरणसिद्धये !
न्यासश्च तर्पणश्चैव होमं पंक्त्यष्टकं चरेत् ।
जितेन्द्रियो महेशानि सोऽग्निष्टोमफलं लभेत् ॥२१२॥

पुरश्चरणसिद्धिके निमित्त तीन लक्ष मन्त्रजप, न्यास, तर्पण, होम और पंक्त्यष्ट (एक सौ आठ) का अनुष्ठान करनेसे वह जितेन्द्रिय मनुष्य अग्निष्टोमके फलको प्राप्त होता है ॥ २१२ ॥

शुक्लपक्षे नवम्यां चाप्यष्टम्यां परमेश्वरीम् ।
त्रिकालं पूजयेद्यस्तु चतुर्दश्यां मम प्रिये ॥ २१३ ॥

हे प्यारी ! जो मनुष्य शुक्लपक्षकी अष्टमी नवमी और चतुर्दशीको तीनों कालमें परमेश्वरीकी पूजा करता है ॥ २१३ ॥

स गच्छति परं स्थानं यत्र देवी व्यवस्थिता ।
संक्रीड्य तत्र सुचिरं राजा भवति भूतले ॥ २१४ ॥

वह मनुष्य देवीके अधिष्ठित परमस्थानमें जाता है, और वह चिरकालक्रीडा करके पृथ्वीमें राजा होकर जन्म लेता है ॥ २१४ ॥

स्नात्वोपवासनियमः पूजाजागरमार्ज्जनैः ।

सर्वकालेषु सर्वेषु कामेशीं यस्तु पूजयेत ॥ २१५ ॥
विमानवरमारुह्य ध्वजमालाकुलं तथा
ब्रह्मलोकं नरो याति मोदते शाश्वतीः समाः॥२१६॥

जो मनुष्य सदा ही स्नान उपवास और नियमपरायण होकर पूजा जागरण और मार्जनादि द्वारा कामेश्वरीकी पूजा करता है वह ध्वजा-मालासे शोभायमान विमानपर चढकर ब्रह्मलोकमें जाय सदा आनन्द भोगता है ॥ २१५ ॥ २१६ ॥

सदा भक्तिरतो भूत्वा तस्माद्विभवविस्तरैः ।
पूजयेत्सततं दुर्गां महापुण्यफलेच्छया ॥ २१७ ॥

इस कारण सदा भक्तिनिरत होकर वैभवविस्तारके अनुसार महाफल प्राप्त होनेकी इच्छासे दुर्गादेवीकी पूजा करे ॥ २१७ ॥

अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखे प्रिये ।
मासैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं विधिनाऽऽपूज्य चण्डिकाम् ।
तत्फलं लभते देवीं नवम्यां कार्त्तिकस्य च ॥ २१८ ॥
मासि चाश्वयुजे देवीं शुक्लपक्षे महेश्वरीम् ।
नवम्यां पूजयेद्यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१९ ॥

हे षडशीतिमुख अर्थात् छियासी मुखवाली प्रिये ! अयन, विषुव (पुण्यकाल) और चार मासमें विधिपूर्वक चण्डिकाकी पूजा करके जो फल मिलता है, कार्तिकके महीनेकी नवमीमें देवीकी पूजा करनेसे वही फल मिल जाता है, आश्विनमासके शुक्लपक्षकी नवमीमें देवीकी पूजाका फल सुनो ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
तत् फलं समवाप्नोति नात्र किंचित् प्रपद्यते ॥२२०॥

हजार अश्वमेध और सौ वाजपेयका जो फल है वही फल प्राप्त होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २२० ॥

हनूमत्तश्चोत्तरे च एकविंशद्धनुर्मितम् ।
मुक्तिमण्डपिकं नाम स्थानं परमदुर्लभम् ॥ २२१ ॥

हनूमत् तीर्थके उत्तरमें इक्कीस धनुःप्रमाण मुक्तिमण्डपिनामका एक परम दुर्लभ स्थान है ॥ २२१ ॥

स्थित्वा तु प्रजपेत्तत्र परां गतिमवाप्नुयात् ।
ततः कृताञ्जलिर्मुद्रां कृत्वा देवीं प्रसादयेत ॥२२२॥

वहां स्थित होकर जप करनेसे परमगति प्राप्त होती है। फिर हाथ जोड़कर मुद्राद्वारा देवीको प्रसन्न करावे ॥ २२२ ॥

नमस्ते सर्व देवेशि भक्तानां भयहारिणि ।
संसारसागरे मग्नं त्राहि मां परमेश्वरि ॥ २२३ ॥

हे सर्व देवेशि ! हे भक्तोंका भय हरनेवाली ! मैं तुमको नमस्कार करताहूं । मैं संसार सागरमें मग्न हूं । हे परमेश्वरि ! मेरी रक्षा करो२२३॥

एवं प्रसाद्य तां देवीं दण्डवत्प्रणिपत्य च ।
ततोऽर्चयेद् गुरुं भक्त्या पुष्पगन्धानुलेपनैः ॥ २२४ ॥

इस प्रकार देवीको प्रसन्न कराकर दण्डवत् प्रणाम करे । फिर भक्तिसहित, पुष्प, गंध और अनुलेपन द्वारा गुरुकी पूजा करके ॥२२४॥

कुमारीं भोजयेत्तत्र जागरं कारयेन्निशि ।
माहात्म्यञ्च महादेव्याः गीतिकांश्चापि कारयेत्॥२२५

वहां कुमारी भोजन कराय रात्रिमें जागरण करे । महादेवीके माहात्म्यका पाठ और गीत गवावै ॥ २२५ ॥

ध्यायंस्तुवन्परां देवीं निनयेद्रजनीं बुधः ।
मासि मासि तथाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः ॥२२६॥

गोधूलिसमये देवीं नयेत्कामेश्वरालयम् ।
रथे वा शिविकायां वा दृष्ट्वा तत्र कदाचन ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोके महीयते ॥ २२७ ॥

इस प्रकार ध्यान और स्तवादि द्वारा बुद्धिमान् मनुष्य देवीको प्रसन्न करे प्रति महीनेकी अष्टमीमें और विशेषकर चतुर्दशीको गोधूलि समयमें रथ वा पालकीपर चढाकर महादेवीको कामेश्वरालयमें लेजाय । वहां देवीका दर्शन करनेपर संपूर्ण पापोंसे छूटकर देवीलोकमें जाता है ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

मुक्तिमण्डपिकां नीत्वा पूजयेद्यस्तु शाङ्करि ।
दशाश्वमेधे यत्पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ २२८ ॥

जो मनुष्य देवीको मुक्तिमण्डपमें लेजाकर पूजा करते हैं, वह दशाश्वमेधके पुण्य फलको प्राप्त होते हैं. इसमें सन्देह नहीं ॥ २२८ ॥

न कुर्याद्दिवसे यात्रां न च रात्रौ महानिशि ।
शरत्कालस्य सप्तम्यां गच्छेन्नगरदक्षिणे ।
सायंकाले महेशानि सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ २२९ ॥

दिनमें, रात्रिमें, महानिशामें देवीको लेकर यात्रा न करे । शरत्कालकी सप्तमीको संध्याके समय नगरके दक्षिण भागमें देवीको ले जाकर पूजा करनेसे सब यज्ञोंका फल मिल जाता है ॥ २२९ ॥

अष्टम्यां पूजयित्वा च नवम्यां स्रोतसो जले ।
यश्चैव स्नापयेद्देवीं दिवसे च न दुष्यति ॥ २३० ॥

अष्टमीमें पूजा करके नवमीमें स्रोतके जलसे देवीको स्नान करावे । दिनमें स्नान करानेसे दोषका निमित्त नहीं होता ॥ २३० ॥

ततः स्पृष्ट्वा रथे देवीं न शोको जायते भुवि ।
स्कन्धे देवीं वहेद्यस्तु अश्वमेधः पदेपदे ।
तस्मात् प्रयत्नतो गुर्वीं शिबिकां कारयेद्बुधः ॥ २३१ ॥

तदनन्तर रथमें स्थित देवीको स्पर्श करनेसे पृथ्वीमें फिर शोककी प्राप्ति नहीं होती जो शिबिकास्थित देवीको कंधेपर लेजाता है, उसको पद पद पर अश्वमेधका फल प्राप्त होता है, अतएव यत्नपूर्वक देवीकी पालकी बड़ी बनावे ॥ २३१ ॥

त्रिंशद्धन्वन्तरे देव्याः स्नानार्थं पर्वतन्तथा ।
पश्येत् कामेश्वरं देवं भूमिपीठे व्यवस्थितम् ॥ २३२ ॥

तीस धनुके अन्तरमें देवीके स्नानार्थ पर्वत अवस्थित है, वहां भूमिपीठमें अवस्थित कामेश्वर देवका दर्शन करै ॥ २३२ ॥

तस्योत्तरे कामसरो भानुहस्तप्रमाणतः ।
तत्र कामासनं जप्त्वा स्नात्वा कामानवाप्नुयात् २३३

उसके उत्तरमें बारह हस्त प्रमाण कामसरोवर स्थित है, वहां स्नान करनेके पीछे काम और आसन मंत्रका जप करनेसे संपूर्ण कामना प्राप्त कर सकता है ॥ २३३ ॥

कामकुण्डे नरः स्नात्वा यःपश्येत् काममीश्वरम् ।
न तस्य पुनरावृत्ती रुद्रलोके महीयते ॥ २३४ ॥

जो मनुष्य कामकुण्डमें स्नान करके कामेश्वरका दर्शन करता है उसको फिर पुनरावृत्ति करनी नहीं पड़ती, वह रुद्रलोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ २३४ ॥

चतुर्भुजं शूलहस्तं खट्वाङ्गञ्च वराभयम् ।
पद्मस्थं पूजयेद्देवं सर्वपापप्रणाशनम् ।
दक्षिणामूर्त्तिमन्त्रेण पूजयेच्च प्रसादयेत् ॥ २३५ ॥

चतुर्भुज, शूल हस्त खट्वाङ्ग वराभयधारी पद्मस्थित देवकी पूजा करनेसे संपूर्ण पाप नष्ट होता है। दक्षिणामूर्तिमंत्रसे कामेश्वरीदेवकी पूजा और उनको प्रसन्न करै ॥ २३५ ॥

ओं नमःशिवाय तन्निशामयाय नमः
शिवाय शिवार्चिताय तुभ्यं कृपापराय
नमो मायागहनाश्रयाय नमोऽस्तु
शेषाय महान्धकाराय नमः शरण्याय
नमो गणाय नमोऽस्तु भीमगणानुगाय
नमोऽस्तुनानाभुवनादिकर्त्रे ॥ २३६ ॥

साक्षात् काल रात्रिरूपसर्वपूजित परमकृपालु मायाके अधिपति और शेषस्वरूप अथवा महाअन्धकाररूपी शरणागतोंका उद्धार करनेवाले गणाधिपति और अनेक लोकोंका विधान करनेवाले ऐसे श्रीमहादेवजीको नमस्कार है ॥ २३६ ॥

स्नापयित्वा घृतक्षौद्रैर्गन्धैर्दीपैश्च पूजयेत् ।
कनकैर्बिल्वपत्रैश्च रक्तरुद्रजटैरपि ।
जयशब्दैस्तवैश्चैव नानानैवेद्यवेदनैः ॥ २३७ ॥

इस मंत्रसे स्नान कराकर घृत, मधु, गंध, दीपादि द्वारा पूजा करै कनक, बिल्वपत्र, लाल रुद्रजटासे एवं जयशब्द स्तव और नाना प्रकारकी नैवेद्य निवेदन करके ॥२३७॥

चैत्रे मासि त्रयोदश्यां शुक्लायां काममीश्वरम् ।
ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं ते यान्ति परमं पदम् ॥ २३८ ॥

चैतके महीनेकी शुक्लत्रयोदशीमें पूजा करके मनुष्य सुरेश्वर कामेश्वरका दर्शन करता है वह परम पदको प्राप्त होता है ॥ २३८ ॥

अष्टम्याञ्च निशाभागे नयेत् कामेश्वरीगृहम् ।
अत्र संपूजयेद्देवं देव्यासहविशेषतः ।
अग्निष्टोमफलं तस्य लभते नात्र संशयः ॥ २३९ ॥

अष्टमीकी रात्रिमें कामेश्वर देवको कामेश्वरी गृहमें लेजाकर वहां देवीके सहित उनकी पूजा करनेसे अग्निष्टोमका फल प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २३९ ॥

दर्शनात् फलमाप्नोति दृष्ट्वा कामेश्वरीं ततः ।
यं यं प्रार्थयते तत्र तत्तदेव न संशयः ॥ २४० ॥

वहां कामेश्वरीका दर्शन करनेसे जिस जिस फलकी प्रार्थना करता है, उस सबको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २४० ॥

कम्बलस्यत्ववामे च देवीदेवेन सङ्गता ।
धनुरष्टान्तरे भद्रे यजेत् कोटीश्वरीं पराम् ॥ २४१ ॥

कम्बलके दक्षिणमें अष्टधनुके अन्तरमें कोटीश्वरी देवी देवके सहित एकत्र वास करती हैं, वहां परमा देवी कोटीश्वरीकी पूजा करनी चाहिये ॥ २४१ ॥

दृष्ट्वा च न स्पृशेद्देवीं पुत्रार्थी न कदाच न ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ॥ २४२ ॥

पुत्रकी कामना करनेवाला मनुष्य वहां देवीका दर्शन करै, स्पर्श कभी न करै । इस प्रकार वहां देव और देवी कोटीश्वरीकी पूजा करनेपर सब पापोंसे छूट, रुद्रलोकमें जाकर पूजाको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २४२ ॥

इति योगिनीतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चतुर्विंशतिसाहस्रे
द्वितीयभागे भाषाटीकायां सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ततोऽस्मिन् दिवसे देवि प्रायादाकाशवाहिनीम् ।
लोकचक्षुरिति ख्यातां सर्वपापहरां शुभाम् ॥ १ ॥
देव्या दक्षिणतश्चैव इक्षुक्षेपद्वयान्तरे ।
त्रिधारा दृश्यते तत्र मध्यधारा सरस्वती ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवि ! अन्तर इसी दिन सब पापोंका नाश करनेवाली कल्याणदायिनी लोकचक्षु इस नामसे विख्यात आकाशवाहिनीमें गमन करै वहां देवीके दक्षिणकी ओर इक्षुक्षेपद्वयान्तर (जितने स्थानमें दो गन्ने रक्खे जांय) में त्रिधारा दिखाई देती है, उसकी मध्य धाराका नाम सरस्वती है ॥ १ ॥ २ ॥

दक्षिणे वारुणा धारा उत्तरे यामुना स्मृता ।
यामुने च कृते स्नाने मुच्यते घोरकिल्बिषात् ॥३॥

दक्षिणमें वारुणाधारा उत्तरमें यमुनाकी धारा बहती है, यमुनाकी धारामें स्नान करनेपर मनुष्य घोर पापोंसे छूट जाता है ॥ ३ ॥

सरस्वत्यां कृतस्नानो विष्णुलोके महीयते ।
वारुणायां कृतस्नानो मुक्तिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥४॥

सरस्वतीकी धारामें स्नान करनेसे विष्णुलोकमें पूजाको प्राप्त होता है । वारुणामें स्नान करनेसे उत्तम मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

त्रिधारासङ्गमो यत्र अनन्तः परिदृश्यते ।
आकाशगङ्गा सा देवी महापातकनाशिनी ॥ ५ ॥

जहां त्रिधारा अन्तरूपमें दिखाई देती है, उसीको महापातक नाशिनी देवी आकाशगंगा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

नमो देवि सहस्राक्षे भवबन्धप्रणाशिनि ।
नीलशैलस्थिते भद्रे पापं मे हर जाह्नवि ।
स्नानं चानेन कृत्वा तु शब्दबीजेन पूजयेत् ॥ ६ ॥

हे देवि सहस्राक्षे ! तुमको नमस्कार है । तुम्ही संसारबंधनका नाश करनेवाली हो, हे कल्याणी ! जाह्नवी ! तुम्ही नीलशैलमें स्थित हो । मेरे पापोंको हरो, इस मंत्र द्वारा स्नान करके शब्दबीज मंत्रसे पूजा करै ॥ ६ ॥

तस्याः कौबेरदिग्भागे नातिदूरे व्यवस्थितः।
शुभ्राकृतिश्चारुरूपो वासुदेवः प्रकीर्त्तितः॥ ७॥

उसकी उत्तर दिशामें थोड़ी दूर शुभ्राकृति मनोहररूप वासुदेव अवस्थित हैं॥ ७॥

स्मरेण पूजयेल्लिङ्गं गन्धाद्यैः पायसैरपि।
द्वादश्यां कार्त्तिके मासि दृष्ट्वा मुक्तिश्च विन्दति।
रात्रौ जागरणादत्र मुच्यते सर्वपातकम्॥ ८॥

स्मरमंत्रसे गंधपुष्पादि और खीर द्वारा लिंगकी पूजा करे। कार्त्तिकके महीनेकी द्वादशीमें उसका दर्शन करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। यहां रात्रिमें जागरण करनेपर समस्त पातकोंसे छुटकारा मिलता है॥ ८॥

दक्षिणे चैव गङ्गायाश्चतुर्धन्वन्तरे स्थितः।
महाश्मशाने भगवान् क्रीडते स्त्रीगणैः सह॥ ९॥

गंगाके दक्षिण चार धनुके अन्तरमें अवस्थित भगवान् महाश्मशानमें स्त्रियोंके सहित क्रीडा करते हैं॥ ९॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सहचारणाः।
प्रसादनार्थं देवस्य नित्यमायान्ति चादृताः॥ १०॥

देवता, गंधर्व, ऋषि और चारणगण देवकी प्रसन्नताके अर्थ सदा ही आदरसे आते हैं॥ १०॥

तत्राराध्य महादेवं भावभूतैर्गणेश्वरम्।
प्राप्तवान् गाणपत्यं हि देवानामपि दुर्लभम्॥ ११॥

वहां भक्तिभावसे महादेव गणपतिकी आराधना करनेपर देवदुर्लभ गाणपत्य प्राप्त होता है॥ ११॥

अद्यापि दृश्यते तत्र प्रत्यहं महदद्भुतम्।
निःक्षिप्य मानुषास्थीनि भस्मीभूतः प्रजापतिः॥१२॥

अब भी वहां महत् अद्भुत दिखाई देता है। मनुष्योंकी अस्थि डालनेसे भस्मीभूत होकर प्रजापति होते हैं ॥ १२ ॥

तत्र गत्वा महादेवं यः पूजयति मानवः ।
दिव्यलोकमवाप्नोति भिन्नदेहो न संशयः ॥ १३ ॥

जो मनुष्य वहां जाकर महादेवजीकी पूजा करता है, वह अन्यदेहमें दिव्यलोकको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥

कार्तिके मासि शुक्लायां चतुर्दश्यां विशेषतः ।
संपूज्य तत्र देवेशं सर्वप्रीतं पितामहम् ।
भवेत्प्रीत्या तु सर्वेषां रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ १४ ॥

कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें विशेषकर चतुर्दशीमें सर्वप्रीत पितामह देवेश्वरकी पूजा करनेपर उनकी प्रीतिसे रुद्रका अनुचर होता है ॥ १४ ॥

त्र्यंशश्च दृश्यते तत्र उत्तराङ्गं हरं श्रुतम् ।
पश्चिमाङ्गं हेरुकञ्च विष्णुरूपिणमव्ययम् ॥ १५ ॥
भैरवी दक्षिणांशश्च त्रिपुरेत्यभिधीयते ।
प्रदानेन तु मन्त्रेण पूजयेत्परमेश्वरम् ।
वाजिमेधस्य यज्ञस्य लभते फलमुत्तमम् ॥ १६ ॥

महादेवके वहां तीन अंश दृष्टिगत होते हैं उत्तरांग हर, पश्चिमांग अविनाश नित्यबुद्ध विष्णु अथ च दक्षिणांश भैरवीको जानै प्रदानमन्त्र द्वारा महादेव परमेश्वरकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञके उत्तम फलकी प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

कुलाद्येन त्रिकुण्डेन पूजयेद्भक्तिमान्नरः ।
महाविद्यामवाप्नोति पूजनान्नात्र संशयः ॥ १७ ॥

भक्तिमान् मनुष्य कुलादि त्रिकुण्डमंत्रसे पूजा करनेपर पूजाके फलसे महाविद्याको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १७ ॥

हेरुकं दशवर्णेन वासुदेवस्वरूपिणम् ।
सर्वलोकेश्वरो याति जातिश्रेष्ठोभिजायते ॥ १८ ॥

वासुदेवरूपी हेरुककी द्वादशवर्णमन्त्रसे पूजा करनेपर सर्वलोकोंका ईश्वर और जाति श्रेष्ठ होकर जन्म ग्रहण करता है ॥ १८ ॥

रुधिरैर्मांसमद्यैश्च पूजयेत्परमेश्वरीम् ।
रजन्यां संप्रदद्यात्तु कूर्ममांसं कदाचन ॥ १९ ॥

रुधिरमांस और मद्य द्वारा परमेश्वरीकी पूजा करे रात्रिमें कूर्मका मांस कभी प्रदान न करै ॥ १९ ॥

चामरं मद्गुरं मत्स्यं प्रयत्नेन विसर्जयेत् ।
चिञ्चां मुक्त्वा नीलशैवं विशाकं वा प्रमादतः ।
महाभयंकरं विन्द्यात्स्पृष्ट्वा शापं प्रयच्छति ॥ २० ॥

चामर और मद्गुर मत्स्य यत्न पूर्वक त्याग दे मूलसे भी नीलशैव (शाकविशेष) वा चिञ्चाशाक भोजन करनेसे महाभय उपस्थित होता है-इससे देवता शाप देते हैं ॥ २० ॥

न स्पृशेत्सप्तरात्रश्च शाकं कामेश्वरि प्रिये ।
चान्द्रायणत्रयं कृत्वा ततः शुद्धिर्भविष्यति ॥ २१ ॥

हे प्रिये कामेश्वरी ! सात रात्रि शाकस्पर्श न करे ऐसा होनेसे तीन चान्द्रायण व्रत करके तब शुद्ध हो सकता है ॥ २१ ॥

राजीवं रजनीं चैव शाकं चामरसम्भवम् ।
मुक्त्वा प्रमादतो देवि तदेवं व्रतमाचरेत् ॥ २२ ॥

राजीव, रजनी और चामर संभव शाक मूलसेभी भोजन करनेपर तीन चाद्रायण व्रत करै ॥ २२ ॥

कर्कन्धुं शर्करायुक्तं दम्भशाकं तथैव च ।
कूष्माण्डं पार्वतीश्चैव दूरतः परिवर्ज्जयेत् ॥ २३ ॥

अष्टम्याञ्च नवम्याञ्च त्रयोदश्यां विशेषतः ।
एकविंशतिसूत्रेण तथा त्रिगुणितेन च ॥ २४ ॥
त्रिगुणेत्येकयोगेन पदे तु त्रिंशकं मतम् ।
कोशतः पट्टसूत्रेण अभावे रक्तकं न्यसेत् ॥ २५ ॥

कर्कन्धू और शर्करायुक्त दम्भशाक तथा पार्वतीय कूष्माण्ड (पहाडी पेठा) विशेषतः अष्टमी नवमी और त्रयोदशीमें यत्नपूर्वक त्याग दे इक्कीस सूत्रके तीन गुण मिलनेपर त्रिंशकमला होती है। कोषके रेशमीन डोरेसे और इसके अभावमें रक्तक सूत्र (लाल सन) से माला गूथें ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

अन्यं न दर्शयेन्मालां न स्पृशेद्वामपाणिना ।
वानप्रस्थो यतिश्चैव ब्रह्मचारी तथा प्रिये ।
विष्णुमन्त्रस्य जाप्ये तु सुमन्त्रस्यापि च प्रिये ॥२६॥
वामहस्ते ततो धृत्वा सप्तबीजाक्षरं प्रिये ।
सञ्जपेद्दक्षिणेनैव प्रतिबीजं वरानने ॥ २७ ॥

दूसरेको वह माला न दिखावै और उसको बायें हाथसे स्पर्श न करे। बानप्रस्थ, यती और ब्रह्मचारी विष्णुमंत्रका जपपूर्वक बायें हाथसे पकडकर सप्तबीजाक्षर जप करनेके पीछे दक्षिणहाथसे प्रति बीजका जप करै ॥ २६ ॥ २७ ॥

वरदाय गृहद्वारे तिन्तिडीकाय वै नमः ।
सहस्रान्मुच्यते पापाज्जीर्णत्वचमिवोरगः ॥ २८ ॥

'गृहद्वारे वरदाय तितिन्डीकाय वै नमः, इस मंत्रका हजारवार जप करनेपर पुरानी त्वक् (कैंचली) से सर्पके समान पापोंसे मुक्त होता है ॥२८॥

कामेश्वरस्य पृष्ठे तु यावत्सिद्धेश्वरः स्थितः ।
तदन्तर्गतखण्डं च छायारुद्रः प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥

कामेश्वरके पश्चात् भागमें जहां सिद्धेश्वरस्थान 'छायारुद्र' नामसे कहा गया है ॥ २९ ॥

स्थाने चात्र सदाच्छाया जायते च महेश्वरि ।
यः करोति वृषोत्सर्गं तस्मिन्क्षेत्रे वरानने ।
अग्निष्टोमशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ३० ॥

छाया इस स्थानको कभी नहीं छोड़ती । हे वरानने ! उस क्षेत्रमें वृषोत्सर्ग करनेसे शतअग्निष्टोमका फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं॥३०॥

माघे मासि महेशानि च्छायारुद्रे तिलैर्विना ।
पिण्डनिर्वापणं कृत्वा पितॄणामनृणो भवेत् ॥ ३१ ॥

हे महेशानि ! छाया रुद्रक्षेत्रमें माघमासमें तिलके अतिरिक्त पिण्ड प्रदान करके मनुष्य पितृऋणसे मुक्त होते हैं ॥ ३१ ॥

ततो विन्ध्याचलं गत्वा कृष्णा रक्ता च या शिला ।
विन्ध्येशी सा समाख्याता प्रजयेत्कमलादिना ॥३२॥

फिर विंध्याचलमें जाकर जिस रक्तवर्ण शिलाका दर्शन करेगा, वही विन्ध्येश्वरी नामसे विख्यात है कमलादिद्वारा उसकी पूजा करनेके पीछे ॥ ३२ ॥

कामेश्वर्याश्च मन्त्रेण सा पूज्या परमेश्वरि ।
गवामयुतदानेन यत्फलं यत्र पार्वति ।
तत्फलं लभते सत्यं विन्ध्येशीदर्शनेन च ॥ ३३ ॥

कामेश्वरी मंत्रसे फिर पूजा करे । हे परमेश्वरि ! हे पार्वती ! अयुत (दशहजार) गोदान करनेसे जो फल होता है, विंध्याचलमें विंध्येशीका दर्शन करनेसे वही फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥

तस्याः पूर्वोत्तरे देशे इक्षुक्षेपशताधिके ।
आकाशगङ्गा चिह्ने तु या शिला सुरदीर्घिका ॥३४॥

दक्षिणेन च तस्याग्रं किंचिदुच्चे च संस्थिता ।
या ख्याता ललिता कान्ता ब्रह्महत्यापहारिणी ॥३५॥

उसके पूर्व उत्तर देशमें शतइक्षुक्षेप जितने स्थानमें सौ गन्ने रक्खे जा सके) के अन्तरमें आकाशगंगाचिह्नित जो सुरदीर्घिका शिला है, दक्षिणमें उसका अग्रभाग कुछेक ऊंचेमें स्थित रहताहै उस मनोहर ब्रह्महत्याका पाप निवारण करनेवाली शिलाका नाम ललिता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अश्वत्थं नन्दिरूपश्च मूले कूर्माकृतिः शिला ।
दृष्ट्वा नरश्च तं देवं न पश्यत्येव पातकम् ॥ ३६ ॥

वहां नन्दिरूप अश्वत्थ है उनके मूलमें कूर्माकृति शिला अवस्थित है मनुष्यगण उन देवका दर्शन करनेपर सब पातकोंसे छूट जाते हैं ॥३६॥

तत्र योनिगतं लिङ्गं चतुर्हस्तप्रमाणतः ।
ततः प्रदीपिकाकारं कुण्डं सर्वाघनाशनम् ।
तत्र व्यासेश्वरं देवं दृष्ट्वा निर्याति पातकम् ॥ ३७ ॥

वहां चार हस्त प्रमाण योनिगत लिङ्ग और प्रदीपाकार सब पापोंका नाश करने वाला एक कुण्ड है, वहां व्यासेश्वर देवका दर्शन करनेपर मनुष्य पापोंसे छूटजाता है ॥ ३७ ॥

व्यासतीर्थे नरः स्नात्वा ललिता योभिपूजयेत् ।
अश्वमेधसहस्रस्य तत्फलं लभते महत् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य व्यासतीर्थमें स्नान करनेके पीछे ललिताकी पूजा करता है वह हजार अश्वमेधके महाफलको प्राप्त होता है ३८ ॥

विंशद्धन्वन्तरे प्राच्यां वनदो नाम दाडिमः ।
पद्मपत्राकृतिदलो निर्यासेनोपचिह्नितः ॥ ३९ ॥
तस्य मूले स्थिता देवी उच्चावरणरूपिणी ।
तस्याः सम्पूजनादेव ग्रहदोषैर्न लिप्यते ॥ ४० ॥

उसके पूर्वकी ओर बीसधनुके अन्तरमें वनदा नामक निर्यासपरिचिह्नित (अर्थात् किसी अमोघा चिह्नविशेषसे युक्त) पद्मपत्राकृति पत्र युक्त एक दाडिम्ब वृक्ष है उसके मूलदेशमें उच्चारणरूपिणी देवी स्थित है, उनकी पूजा करनेसे मनुष्य ग्रहदोषसे लिप्त नहीं होता ॥ ३९ ॥ ४० ॥

वृक्षं स्पृष्ट्वा भक्तिमती वन्ध्या गर्भधरा भवेत् ।
छिन्नहस्तो लभेद्धस्तं कालेनाङ्गं लभेत्पुनः ॥ ४१ ॥

वंध्या स्त्री भक्तिमती होकर उस वृक्षका स्पर्श करनेसे गर्भवती होती है, छिन्नहस्तको हस्तलाभ और कालक्रमसे अन्य हीनाङ्ग भी लाभकर सकता है ॥ ४१ ॥

दाडिमस्य च पूर्वे तु नातिदूरे प्रतिष्ठितम् ।
नवहस्तमितं रन्ध्रं तद्देवं भुवनेश्वरम् ।
पूजयेत्कामबीजेन विजयी जायते नरः ॥ ४२ ॥

दाडिम्बकी पूर्वदिशामें थोड़ी ही दूर नव हाथकी बराबर रंध्र प्रतिष्ठित है वहां भुवनेश्वर देव अवस्थित हैं, कामबीज मंत्रसे उनकी पूजा करनेपर मनुष्य विजय प्राप्त करते हैं ॥ ४२ ॥

तस्य वायव्यभागे तु अगस्त्यस्याश्रमे शुभे ।
देवं गदाधरं तत्र पूजयेत्कुसुमादिना ॥ ४३ ॥

उसके वायुकोणमें अगस्त्यके शुभकर आश्रममें गदाधर देव अवस्थित हैं कुसुमादि द्वाराउनकी पूजा करे ॥ ४३ ॥

नातिदूरे तु देवस्य या शिलाश्वेतमुज्ज्वलम् ॥
जल्पेशं तं महालिङ्गं पूजयेत्तावदुच्चरन् ॥ ४४ ॥
सौभाग्ये विधिवत्स्नात्वा जल्पेशं यस्तु पूजयेत् ।
अग्निष्टोमफलं तस्य भविष्यति मम प्रिये ॥ ४५ ॥

उसके थोड़ीही दूर जो श्वेतवर्ण उज्ज्वल शिला है वही जल्पेश महालिंग है मंत्रोच्चारणपूर्वक उनकी पूजा करे। सौभाग्यसे विधिपूर्वक स्नान करनेके पीछे जल्पेशकी पूजा करनेपर उसको अग्निष्टोमका फल प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

पश्चिमे तस्य पातालभुवनाधिपचिह्नितम् ।
एकविंशतिभूभागे स्थितस्तत्र सदाशिवः ॥
तं प्रणम्य नरो भक्त्या न भूयो जायते क्वचित्॥४६॥

हे प्यारी ! उसके पश्चिममें पातालभुवनाधिप नामक सदाशिव हैं मनुष्य भक्तिपूर्वक यदि उनकी पूजा और प्रणाम करे तो फिर उनको कभी जन्म लेना नहीं पड़ता ॥ ४६ ॥

तस्य देवस्य भूभागे शङ्करी कालहस्तके ।
गोविन्दपर्वते रम्ये शुक्लवर्णेन या शिला ॥ ४७ ॥

हे शंकरि ! उन देवके कालहस्तक भूभागमें मनोहर गोविन्दपर्वतमें शुक्लवर्ण जो शिला है ॥ ४७ ॥

गोविन्दं तं विजानीयात्पूजयेद्धरिवासरे ।
तस्य पूर्वे नवधनुर्या शिला शोणसन्निभा ॥
शरणेशी समाख्याता महापातकनाशिनी ॥ ४८ ॥

उसको गोविन्द जानना चाहिये हरिवासर (एकादशीविशेष) में उसकी पूजा करे। उसके पूर्वमें नवधनुःपरिमित शोणवर्ण जो शिला है वह पातकनाशिनी शरणेशीके नामसे विख्यात है ॥ ४८ ॥

शिवाचले च तुङ्गे च प्रकटाख्या परा शिवा ।
तांश्च संपूज्य यत्नेन महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥

उच्चतर शिवाचलमें प्रकट नामक परमा शिवा है यत्नपूर्वक उनकी पूजा करनेसे महती लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥

विन्ध्याचलस्योत्तरे च इषुक्षेपनवान्तरे ।
महालक्ष्मीः स्थिता तत्र सितपुष्पेण पूजयेत् ॥५०॥

विन्ध्याचलके उत्तरकी ओर नव इक्षुक्षेप (नौ गन्नेके प्रमाणकी बराबर) के अन्तरमें महालक्ष्मी अवस्थित है श्वेतपुष्पोंसे उनकी पूजा करे ॥५०॥

श्रीपर्वते महेशानि श्रीकुण्डे स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वा कुण्डे ध्रुवे नाम पौर्णमास्यां तथाश्विने ॥
दृष्ट्वा सम्पूजयेद्भक्त्या धरण्यामीश्वरो भवेत् ॥ ५१ ॥

हे महेशानि ! श्रीपर्वतके श्रीकुण्डमें स्नान करके आश्विनमासकी पौर्णमासीको ध्रुवकुण्डमें स्नान करनेके पीछे भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे धरणीश्वर होता है ॥ ५१ ॥

गौतमस्याश्रमं गत्वा संपूज्य वृषभध्वजम् ।
नरो न निरयं गच्छेत्पापस्यात्र क्षयो भवेत् ॥ ५२ ॥

गौतमके आश्रममें जाय वृषभध्वजकी पूजा करनेसे मनुष्योंको फिर नरक भोगना नहीं पड़ता । उनके सब पाप क्षय होजाते हैं ॥ ५२ ॥

पश्चिमादुत्तरं तावद्यावद्दक्षिणमानसम्
तदन्तरगते क्षेत्रे नातिदूरे च शाङ्करि ।
गत्वा तत्र समभ्यर्च्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात ॥ ५३ ॥

हे शांकरि ! उसके थोड़ीही दूर पश्चिम और दक्षिण मानसमें एक क्षेत्र है वहां जाकर पूजा करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

तत्रैव सरसस्तीरे हंसतीर्थमनुत्तमम् ।
द्वादशादित्यमभ्यर्च्य उत्तमां दीप्तिमाप्नुयात ॥५४॥

उसी सरोवरके तीरमें अतिउत्तम हंसतीर्थ है वहां द्वादशादित्य (बारह सूर्य) की पूजा करनेसे उत्तम दीप्ति प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥

तस्याग्रतो ब्रह्मयोनिं गत्वा तन्मन्त्रमुच्चरन् ।
ब्रह्मयोनिं विशेयस्तु न पुनर्योनिमाविशेत् ॥ ७६ ॥

इस मंत्रसे पूजादि करे। उसके अग्रभागमें ब्रह्मयोनि है, वहां गमन पूर्वक मंत्रोच्चारण करके पूजा करनेसे फिर योनिमें प्रविष्ट होना नहीं पड़ता ॥ ७६ ॥

तिर्यग्योनिं न गच्छेत्तु ब्रह्मणः पदमाविशेत् ।
शिववल्लभदेशे तु मोक्षमार्गनिबोधके ॥ ७७ ॥
प्रसन्नोदेवदेवेश त्राहि मां योनिसङ्कटात् ।
निःसृतो ब्रह्मयोनेस्तु गणेशं द्वारि पूजयेत् ॥ ७८ ॥
महाकायं शिलोच्छ्रेष्ठ मन्त्रेणानेन साधकः ॥ ७९ ॥

वह कभी तिर्यग् (कीट पतंगादि) की योनिको प्राप्त नहीं होता, वह निःसन्देह ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। ब्रह्म योनिसे निकल कर साधक मोक्षमार्गका बोधक और शिववल्लभ देशमें (जहां शिव विद्यमान है) 'प्रसन्नो भव देवेश त्राहि मां योनिसङ्कटात्' इस मंत्रसे द्वार स्थित शिलोच्छ्रेष्ठ महाकाय गणेशकी पूजा करे ॥ ७७–७९ ॥

नमो लम्बोदर श्रेष्ठ देवानामिष्टदायक ।
अखिलाख्य प्रभो नाथ नमस्ते योनिसङ्कट ॥ ८० ॥

हे लम्बोदर ! आपका सुन्दररूप है, आप देवताओंके अभीष्टको सिद्ध करते हैं, हे अखिलेश्वर ! हे योनिसंकट ! आपको नमस्कार है ॥८०॥

ततो गच्छेन्मुक्तिमार्गं शक्रस्याभिमुखे यदि ।
वामदक्षिणपार्श्वे द्वे युगे वै सत्यसम्भवे ॥ ८१ ॥
ऊर्द्ध्वं कृतयुगश्चैव पार्श्वे त्रेता च द्वापरः ।
वलिवक्त्रे स्थितं लिङ्गं गुप्ताख्यभुवनेश्वरम् ॥
तं प्रणम्य नरो भक्त्या प्राप्नुयादैश्वरं पदम् ॥ ८२ ॥

(इस मंत्रसे उनको प्रणाम करे) फिर इन्द्रके निकट जाकर मुक्तिमार्गमें जाता है। वामपार्श्व और दक्षिणपार्श्वमें सत्य सम्भव दो युग हैं. ऊर्ध्वमें कृतयुग, पार्श्वमें त्रेता और द्वापर है। बलिवक्त्र स्थित गुप्ताख्य भुवनेश्वर लिंगको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके मनुष्य ईश्वरके पदको प्राप्त होते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

चतुर्युगं नमस्कृत्य स्पृष्ट्वा देवं कपर्दिनम् ।
न जायते पुनर्गर्भे युगदोषैर्न लिप्यते ॥ ८३ ॥

चारों युगको नमस्कार और कपर्दिदेवको स्पर्श करके मनुष्योंको फिर गर्भमें जन्मग्रहण करना और युगदोषमें लिप्त होना नहीं पड़ता ॥ ८३ ॥

युगानामधिपः सो हि जगज्ज्जातिस्वरूपधृक् ।
तद्युगे यत्कृतं पापं त्राह्यतः परमेश्वर ॥ ८४ ॥

संभृतिर्भृतिपर्य्याप्तः त्रेतायुग नरेश्वरः ।
तद्युगे यत्कृतं पापं तद्व्यपोहतु भूमिजम् ॥ ८५ ॥

सत्यसाधन सत्यश्च नरनारायणात्मकः ।
हेतुभूतः कृतादीनां सत्यधर्म नमोऽस्तु ते ॥ ८६ ॥

जो जगज्जातिस्वरूपधारी युगाधीश्वर हैं, वही भरण पोषणमें पर्याप्त और त्रेतायुगके नरेश्वर हैं—वही सत्यसाधनमें सत्य और नरनारायणात्मक हैं वही कृतादिके हेतुभूत हैं हे परमेश्वर ! तुम मेरी रक्षा करो। हे ईश्वर ! तुम्हीं मेरे उन उन युगोंके किये भूमिज पाप नष्ट करो. हे सत्यधर्म तुम्हें प्रणाम है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

विजयादौ चार्च्य राज्ञां युगचक्रावलीश्वर ।
नमामि सततं भक्त्या पापं हर नमोऽस्तु ते ॥ ८७ ॥

हे युगचक्रावलीश्वर ! आपही विजयादिमें राजाओंके द्वारा उपासित होते हैं, मैं आपको भक्तिसे प्रणाम करता हूं मेरे पाप हरो ॥ ८७ ॥

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेच्च कपर्दिनम् ।
राजसूयाश्वमेधस्य तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार स्तुति और प्रणाम करके पंचाक्षरमंत्रसे कपर्दिदेवकी पूजा करनेपर मनुष्य राजसूय और अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होते हैं ॥८८॥

कामधेनुं ततो दृष्ट्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
पूजयित्वा नमस्कृत्य ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ ८९ ॥

तदनन्तर काधेनुका दर्शन करके मनुष्य सर्वकामनाओंको प्राप्त होते हैं। उसकी पूजा और नमस्कार करके फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ८९ ॥

सौरभेयि नमस्तुभ्यं किमगे कामचारिणि ।
धेनुरूपा च सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ ९० ॥

हे गोरूपा देवि ! तुम सुरभी और अपनी इच्छानुसार विचरनेवाली हो, हम तुम तुम्हें प्रणाम करते हैं, तुम हमारे पापोंका नाश करो ॥ ९० ॥

सन्दिष्टा च कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
तुलापुरुषदानेन यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं समवाप्नोति कामधेनोश्च दर्शने ॥ ९१ ॥

(इस मंत्रसे प्रणाम और वन्दना करे) कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय तुलापुरुषदान करनेपर जो फल होता है, कामधेनुका दर्शन करनेपरभी वही फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ९१ ॥

दक्षिणां गुरवे दद्यात्सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ॥
शान्तिं कृत्वा ततो देव्या आसनं विदधीत च ॥९२॥

हे देवि ! फिर गुरुको दक्षिणा देकर सूर्यको अर्घ्य देवे । इसके पीछे शान्ति करके एकाग्रचित्तसे आसन करै ॥ ९२ ॥

उत्थाय सूर्यं संवीक्ष्य पठेन्मन्त्रद्वयं प्रिये ।
नमोऽस्तु काल्यै गिरिजायै कामेश्वर्यै नमोऽस्तु ते॥९३

फिर उठकर सूर्यका दर्शन पूर्वक दो मंत्र पढे "नमोऽस्तु काल्यै गिरिजायै कामेश्वर्यै नमोऽस्तु ते" ॥ ९३ ॥

"नमोऽस्तु देव्यै गिरिसम्भवायै
नमोऽस्तु गौर्य्यै वृजिनान्तकायै ।
अतीर्थे तीर्थनिष्ठेभ्यो व्यासादिभ्यो नमो नमः ।
गणेभ्यो रक्षकेभ्यश्च क्षत्रेशेभ्यो नमो नमः ।
पौंड्रविघ्न नमस्तेऽस्तु नमस्ते कालभैरव ॥
नमस्ते दक्षिणामूर्ते दण्डपाणे नमोऽस्तु ते" ॥

"हे कालि ! हे गिरिजा ! तुम सब कामनाओंकी पूर्ण करनेवाली हो, इसलिये हम तुम्हें नमस्कार करते हैं । गौरि ! तुम पापियोंका विनाश करनेवाली हो, तीर्थोंकी प्रतिष्ठा करनेवाले व्यास आदि महर्षियोंको भी नमस्कार करते हैं, अथ च गणोंके अधिपति और संरक्षकोंको भी नमस्कार है. हे दण्डपाणि ! हे कालभैरव ! आप दक्षिणमूर्त्ति हैं । और दुष्टोंके कार्यमें विघ्नकर्त्ता हैं अतएव आपको नमस्कार है" ॥

तीर्थं गत्वोपवासश्च श्राद्धं च जपकर्म च ।
करिष्यतीति विश्वास एतत्सिद्धेस्तु लक्षणम् ॥ ९४ ॥

तीर्थमें जाकर उपवास, श्राद्ध, जपकर्म और विश्वास करै । यही सब सिद्धिके लक्षण है ॥ ९४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

यो नरः पापकर्मा च क्षेत्रेऽस्मिन्निवसेत्सदा ॥
सुरादिपातकाद्धोरात्स किं मोक्षं गमिष्यति ॥ ९५ ॥

श्रीदेवीजी बोलीं—जो मनुष्य पापकर्मा होकर इस क्षेत्रमें वास करता है, वह मनुष्य क्या उन घोर पातकोंसे मोक्ष पासकता है ? ॥९५॥

ईश्वर उवास ।

पुण्यक्षेत्रे स्थितो यो वै पातके तु रतः सदा ।
तिर्य्यग्योनिं प्रविश्याथ वर्षाणामयुते वसन् ॥ ९६ ॥

ईश्वर बोले—जो मनुष्य सदा पापकर्ममें रत होकर पुण्यक्षेत्रमें वास करता है, वह दशहजारवर्ष तिर्यक्योनिमें प्रवेश करके ॥ ९६ ॥

पुण्येपुरे च तत्रैव ज्ञानं सम्पद्यते ततः ।
मोक्षं प्राप्नोत्येव सोऽपि गुह्यमेतन्ममप्रिये ॥ ९७ ॥

तदनन्तर, उत्तमपुरमें वास करनेके पीछे वहां ज्ञानको प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है. हे प्रिये ! यह मेरा गुह्य विषय जानना चाहिये ॥ ९७ ॥

सुलभोऽन्यत्र लौहित्ये पञ्चस्थानेषु दुर्लभः ।
अगस्त्यतीर्थे लौहित्ये मणिकर्णह्रदे तथा ।
अपुनर्भवे चन्द्रकुण्डे स्थानपञ्चकमीरितम् ॥ ९८ ॥

हे देवि ! अन्यत्र वास सुलभ है, किन्तु लौहित्य, अगस्त्य तीर्थ, मणिकर्ण ह्रद अपुनभर्व और चन्द्रकुण्ड इन पांच स्थानोंमें वास दुर्लभ है ॥ ९८ ॥

अक्षतेन विशेषेण शतमार्गसहस्रकैः ।
क्षेत्रबाह्यस्थितैः शून्यैः गणैश्चैवाभिरक्षिताः ॥ ९९ ॥

तीर्थके शतसहस्र मार्गमें, क्षेत्रके बाहर और शून्य मार्गमें अक्षत शरीर से अवस्थित होकर रक्षकगण विशेषरूपसे तीर्थ करते हैं ॥ ९९ ॥

कालाख्यो रणभद्रश्च सौरभश्च महाबलः ।
वेतालश्च विकण्टश्च एते पूर्वे स्थिता गणाः ॥१००॥

काल, रणभद्र, महाबल सौरभ, वेताल, विकंट यह गण पूर्वदिशामें अवस्थित हैं ॥ १०० ॥

एकजंघोनलश्चैव कर्दमालिप्तविग्रहः ।
घण्टाकर्णस्ततोर्द्ध्वश्च दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ॥१०१॥

एकजंघ, नल, कर्दमालिप्तविग्रह, घण्टाकर्ण, यह गण ऊर्ध्व और दक्षिण पार्श्वमें स्थित हैं ॥ १०१ ॥

बलनाशो भीषणश्च पश्चिमायां व्यवस्थितः ।
पञ्चमो लोहिताक्षश्च नन्दनश्च तथा मतः ॥ १०२ ॥

बलनाश और भीषम पश्चिम दिशामें अवस्थित हैं । पञ्चम, लोहिताक्ष, नन्दन ॥ १०२ ॥

केशवश्चक्रपाणिश्च धनदस्योत्तरा गणाः ।
मधुनो मधुकश्चैव जयन्तश्च मधुश्रियः ॥ १०३ ॥

केशव चक्रपाणि यह उत्तरमें अवस्थित हैं । मधुन, मधुक, और मधुश्रीक जयन्त ॥ १०३ ॥

अविशेषेण रक्षन्ति त्रयः कामेश्वरीं स्थिताः ।
गणेशः कालदन्तश्च विकर्णश्च कपिध्वजः ।
द्वारं रक्षति वै सर्वं मण्डपञ्च स्वयं हरः ॥ १०४ ॥

यह तीन जन कामेश्वरीके समीप रहकर तीर्थरक्षा करते हैं । गणेश, कालदन्त, विकर्ण और कपिध्वज यह सब द्वारकी रक्षा करते हैं, स्वयं महादेवजी मण्डपकी रक्षा करते हैं ॥ १०४ ॥

कन्दर्पो मकरन्दश्च प्रबलश्चानुदोधरः ।
सोमश्च विपुलश्चैव अश्वतीर्थे स्थिता गणाः ॥ १०५ ॥

कन्दर्प, मकरन्द, प्रबल, अनुदोधर, सोम और विपुल यह गण अश्व-तीर्थमें स्थित हैं ॥ १०५ ॥

शतसाहस्रयक्षिण्यो मुक्तिद्वारस्य रक्षकाः ।
दशसाहस्रकश्चैव अन्तर्गेहस्य रक्षकम् ॥ १०६ ॥

शतसहस्र यक्षिणीगण मुक्तिद्वारकी रक्षा करती हैं । दशसहस्र यक्षिणी अन्तर्गेहकी रक्षा करती हैं ॥ १०६ ॥

कुब्जतीर्थं ततो ह्यष्टौ सहस्रैर्दशभिर्युतैः ।
तीर्थे प्रसादकरणे धर्मारम्भे विशेषतः ।
व्रतयज्ञसमारम्भे विघ्नानि निवसन्ति वै ॥ १०७ ॥

दशसहस्रयक्षिणी कुब्जतीर्थकी रक्षा करती हैं, तीर्थमें, प्रसादकरणमें विशेषकर धर्मारम्भमें व्रत और यज्ञारम्भमें विघ्न उपस्थित होते हैं ॥१०७॥

तेषां संपूजनं चादौ बलिभिर्मोदकादिभिः
अन्यथा जायते विघ्नमिति जानीहि मे प्रिये ॥१०८॥

उनकी मोदकादि बलिद्वारा प्रथम पूजा करनी चाहिये, अन्यथा होनेपर विघ्न उपस्थित होता है ॥ १०८ ॥

अथापराणि विघ्नानि शरीरे निवसन्ति वै ।
ज्ञानघ्नानि मनःस्थानि शृणु तानि मम प्रिये ॥१०९॥

हे प्यारी ! अन्य सब विघ्न शरीरमें वास करते हैं सब विघ्न ज्ञाननाशक हैं वह तुम सुनो ॥ १०९ ॥

कश्चिन्निवर्त्तको देवि तथा कश्चित्प्रवर्त्तकः ॥ ११० ॥

हे देवि ! कोई निवर्त्तक कोई प्रवर्त्तक ॥ ११० ॥

सन्निकर्ष विदूरं वा सहस्रं लक्षमेव वा ।
पापानुस्मरणञ्चैव आलस्यञ्चापि दूषणम् ॥ १११ ॥

सन्निकर्ष और विदूर सहस्र और लक्षवार पापानुस्मरण, आलस्य, परदूषण ॥ १११ ॥

शोकमोहजराव्याधिस्तारुण्यं धननाशकम् ।
कलहं भार्यया सार्द्धं दुर्भिक्षं गृहसंकटम् ॥ ११२ ॥

शोक, मोह, जरा, व्याधि, तारुण्य धननाश, भार्याके संग कलह, दुर्भिक्ष, गृहसंकट ॥ ११२ ॥

नानाव्रतसमाकीर्णे धार्मिकोऽस्मीति मानसः ।
प्राप्तशोकं त्वधर्मस्य करणे हीनपातकम् ॥ ११३ ॥

बहुव्रतानुसरणमें धार्मिक इस प्रकार बुद्धि, प्राप्त शोकत्व (मनो ग्लानि आदि) अधर्म करनेमें पापहीनताका ज्ञान ॥ ११३ ॥

वृक्षपत्रञ्च तुलसीं धात्रीं वृक्षफलं तथा ।
शालग्रामशिलाखण्डं प्रतिमां दारुजां तथा ॥ ११४ ॥

तुलसीको वृक्षपत्र, धात्रीको वृक्षफल जानना, शालग्रामको शिला खण्ड जानना प्रतिमामें काष्ठबुद्धि ॥ ११४ ॥

मानुषं ब्राह्मणञ्चैव स्वयम्भुं वर्तुलं शिवम् ।
शंखं शम्बूकभेदञ्च खड्गं मांसादिसम्भवम् ॥ ११५ ॥

ब्राह्मणको मनुष्य जानना, स्वयम्भू शिवमें वर्त्तुलत्व (गोलपिण्ड) बुद्धि, शंखमें शम्बूक विशेषत्व ज्ञान (जीव विशेष) गेंडेमें मांससंभव ज्ञान ॥ ११५ ॥

दृष्ट्वा परंभवेदेवं तीर्थजातं जलं तथा ।
गंगायां वा नदीरूपं पुण्यक्षेत्रञ्च भूमिका ॥ ११६ ॥

तीर्थमें जलबुद्धि, गंगामें नदी बुद्धि, पुण्यक्षेत्रमें भूमिबुद्धि ॥ ११६ ॥

इत्येतानि च विघ्नानि संयान्ति च पुनः पुनः ।
मन एवात्र नित्यं स्यान्मान एवात्र कारणम् ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ ११७ ॥

यह सब विघ्न वारम्बार उपस्थित होते हैं । मनही नित्य, मनही उसमें कारण और मनही मनुष्योंके बंधमोक्षका हेतु है ॥ ११७ ॥

तन्निष्ठं तत्परं जातं तन्मुख्यं दुःखकारणम् ।
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थे स्नाने निषिध्यते ॥ ११८ ॥

मनस्थित दुष्टभावमें निष्ठा, तत्परता और (समीप) होनेपर वह दुःखका कारण होता है, मनस्थित दुष्टभाव तीर्थस्नान करनेमें निषेध करता है ॥ ११८ ॥

पठेद्यः शृणुयाद्वापि भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कीर्त्यर्थी कीर्त्तिमाप्नुयात ॥११९॥

जो मनुष्य इसको पढ़ता है वा सुनता है, वह भोग और मोक्ष दोनोंही पाता है. पुत्रका चाहनेवाला पुत्र, कीर्त्तिकी इच्छा करनेवाला कीर्त्ति प्राप्त करता है ॥ ११९ ॥

विद्यार्थी लभते विद्यां जयार्थी लभते जयम् ।
ब्रह्महत्यादिपापश्च निर्मूलं नाशमाप्नुयात् ॥ १२० ॥
वन्ध्यापि लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् ।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं भोगार्थी भोगमाप्नुयात्॥१२१॥
काव्यार्थी च कवित्वञ्च सारं निःसार आप्नुयात् ।
ज्ञानार्थी लभते ज्ञानं सर्वसंसारमुद्गरम् ॥ १२२ ॥
इदं स्वस्त्ययनं धन्यं योगिनीनाम तन्त्रकम् ।
नाकाले मरणं तस्य श्लोकमेकं तु यः पठेत् ।
श्लोकार्द्धपठनादस्य ग्रहदोषक्षयो भवेत् ॥ १२३ ॥

विद्यार्थी विद्या, जयकी इच्छा करने वाला जय, वंध्या पुत्र, कन्या-सत्पति, मोक्षकी कामना करनेवाला मोक्ष, भोगकी अभिलाषा करनेवाला भोग, काव्यार्थी अर्थात् कविताकी इच्छा करनेवाला सारात्सार कविता, तथा ज्ञानकी चाहना करनेवाला सर्व संसारमुद्धर ज्ञानको प्राप्त होता है और ब्रह्महत्यादिके पाप करनेवाले उन सब पापोंसे छूटजाते हैं। यह योगिनीतन्त्र स्वस्त्ययन और धन्य है, इसका केवल एक श्लोकमात्र पाठ करनेसे अकालमें मृत्यु नहीं होती। आधा श्लोकमात्र पढ़नेसे दुष्टग्रह क्षय होते हैं ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रेसर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चतुर्विंशतिसाहस्रे
द्वितीयभागे भाषाटीकायां अष्टमः पटलः ॥८॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि निर्मलं भुवि दुर्लभम् ।
लिङ्गैः शताष्टकैर्युक्तं हरिक्षेत्रसमं शुभम् ॥ १ ॥
विष्णुपुष्करकं क्षेत्रं तीर्थाष्टशतसंयुतम् ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम् ॥ २ ॥
विद्वन्निकरभूयिष्ठं धनधान्यादिसंयुतम् ।
गृहाणां गोपुरैर्युक्तं भुवि प्राकारभूषितम् ॥ ३ ॥
नानामणिगणाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ।
पुराट्टालकसंकीर्णं वीथीभिः समलंकृतम् ॥ ४ ॥
राजहंसनिभैः शुभ्रैः प्रासादैरुपशोभितम् ।
स ततोपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचिः ॥ ५ ॥
यदि वसति गुहायां पर्वताग्रे चिरं वा ।
यदि धरति त्रिदण्डं भस्म वाच्छादनं वा ।

यदि पठति पुराणं वेदसिद्धान्ततत्त्वं ।
यदि हृदयमशुद्धं सर्वमेतद्विरुद्धम् ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले-हे देवि ! सुनो । पृथ्वीमें दुर्लभ अत्यन्त निर्मल हरिक्षेत्रके समान शुभकर आठ सौ (८००) लिंगयुक्त और आठ सौ (८००) तीर्थसमन्वित विष्णुपुष्करनामक एक पुण्य क्षेत्र है । इस स्थानमें हृष्ट पुष्ट मनुष्य भरे हुए हैं । वहां दिव्य कान्ति नर नारी और बहुतसे विद्वान् वास करते हैं । यह स्थान धनधान्य और चौराहों द्वारा सुशोभित घरोंसे परिपूर्ण और अनेक प्रकारके रत्न तथा मणियोंसे शोभायमान है । इसस्थानमें अटारियोंसे युक्त बाजार और जलसे धुले हुएकी सदृश सफेद आकारवाले प्रासाद (महल) शोभा पाते हैं । यदि मन शुद्ध हो तो सभी स्थानोंमें पुण्यजनक होता है और यदि मन अशुद्ध हो तो सुरा (शराब) के पात्रके समान सदाही अशुद्ध रहता है । यदि मनुष्य पर्वताग्रमें, वा पर्वतकी गुहामें वास, त्रिदण्ड धारण, भस्मलेपन, एवं वेदसिद्धान्ततत्त्व और पुराणका पाठ करें, किन्तु (तो भी) मनके अशुद्ध होनेपर यह सब कार्य निष्फल और विरुद्ध होते हैं ॥१-६॥

न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः ।
दुष्टाशयो दुष्टरतिः प्रणष्टो व्याधितो यथा ॥ ७ ॥

उनके तीर्थ, दान, व्रत, आश्रम सब निष्फल हैं । दुष्ट आशा और दुष्ट रति (प्रीति) मनुष्योंको व्याधिके समान नष्ट करती है ॥ ७ ॥

इन्द्रियाणि वशीकृत्य यत्र तत्र वसेन्नरः ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं गया ॥ ८ ॥

इस कारण इन्द्रियोंको वशीभूत करके जिस किसी स्थानमें मनुष्य वास करे, वही उसको कुरुक्षेत्र, प्रयाग और गयास्वरूप है ॥ ८ ॥

न लंघयेत्पानधर्मं देशधर्मं न लंघयेत् ।
यस्मिन्पीठे य आचारः स आचारो विधिः स्मृतः॥९॥

(पानधर्म) जो सदासे चला आया हो और देशधर्म उल्लंघन न करे, जिस पीठमें जो आचार निर्दिष्ट है उस पीठमें वही विधि है ॥ ९ ॥

स्पृष्टास्पृष्टं योनिदोषाः पानदोषो न गण्यते ।
विवाहव्यत्ययस्तत्र परिवित्तिर्न दुष्यति ॥ १० ॥
शयनञ्चैव शेषं तु स्त्रीजनासक्तितो भवेत् ॥ ११ ॥

स्पृष्टास्पृष्ट (स्पर्श किया और न किया) और योनिदोष तथा पान दोष गिनने योग्य नहीं है विवाह व्यत्यय और परिवित्ति अर्थात् बडेके रहते छोटेका विवाहदोषका निमित्त नहीं होता । स्त्रियोंके निकट स्थित होनेपर कथोपकथन शयनादि दूषणीय नहीं है ॥ १० ॥ ११ ॥

जालन्धरे महेशानि दूषयेन्मत्स्यमांसकम् ।
पादुकायां विशुद्धिश्च शुभ्रं तक्रञ्च गर्हितम् ॥ १२ ॥

हे महेशानि ! जालन्धरमें मत्स्य, मांस और पैरोंमें पादुका पहरना तथा शुभ्र तक्र गर्हित है ॥ १२ ॥

पूर्णसन्ध्या सुधर्मेण कालधर्मो न विद्यते ।
सर्वेशो योगिनीपीठे धर्मः कैरातजो मतः ॥ १३ ॥

पूर्णसन्ध्या और कालधर्म नहीं है । सर्वेश योगिनीपीठमें किरात धर्म प्रचलित है ॥ १३ ॥

कामरूपेण संन्यासस्तथा दीर्घं मतं प्रिये ।
न त्यजेत्सामिषं देवि ब्रह्मचर्यमतो न च ॥ १४ ॥

कामरूपमें दीर्घतम संन्यास है. हे देवि ! हे प्रिये ! वहां आमिष (मांस) परित्याग न करे सुतरां ब्रह्मचर्य मत नहीं है ॥ १४ ॥

संसर्गात्पातकं नैव स्त्रीधर्मे धर्ममाश्रय ।
न शुक्रदर्शनं स्त्रीणां ताम्बूलाशा सदा भवेत् ॥ १५ ॥

स्त्रियोंके धर्मकर्ममें पातकका संसर्ग नहीं है, स्त्रियोंके पक्षमें शुक्र दर्शन नहीं है वह सदा पान चाबै ॥ १५ ॥

हंसपारावतं भक्ष्यं कूर्मवाराहमेव च ।
कामरूपे परित्यागाद्दुर्गतिस्तस्य सम्भवेत् ॥ १६ ॥

कामरूपमें हंस, पारावत, कूर्म (कछुआ) और वराह (सूअर) भक्षण करे, इन सबका त्याग करनेसे वहां दुर्गति प्राप्त होती है ॥१६॥

हीनाचारस्तु सौमारे सर्वाशी सर्वविक्रयी ।
तत्र नारी सदा रुद्धा तत्र राजा सुपुण्यवान् ॥ १७ ॥

सौमारमें मनुष्य हीनाचार, सर्वभक्षी और सर्वविक्रयी है वहांकी स्त्रियें सदा निरुद्ध (परतन्त्रतासे नियमित) और राजाको पुण्यवान् जानना चाहिये ॥ १७ ॥

कोलवपीठे जातिधर्मान्स्वजात्युक्तेन वर्त्तयेत् ।
धर्माधर्मविचारेण स्वरूपं स्वनिरूपकम् ॥ १८ ॥

कोलवपीठमें अपनी जातिके कहे मतसे जातिधर्म प्रवर्तित होता है । धर्माधर्म आचारमें वह स्वयं निरूपण और आचरण करते हैं ॥ १८ ॥

महेन्द्रे चैव योगी च ब्रह्मज्ञानी सुबुद्धिमान् ।
श्रीहट्टे पानवैपुल्यं न चान्नस्य परिक्रियः ॥ १९ ॥

महेंद्रमें श्रेष्ठ बुद्धिवाले ब्रह्मज्ञानी योगी वास करते हैं । श्रीहट्टपान बहुल (जहां लक्ष्मीकी अधिकता हो) वहां अन्नपरिक्रिय नहीं है अर्थात् अन्नप्राप्तिके लिये किसी प्रकारकी चिन्ता करनेका अवसर नहीं है॥१९॥

एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं हि त्वयाधुना ।
नाशिष्ये च प्रदातव्यं देवब्राह्मणनिन्दके ॥ २० ॥

पिशुने नैव दातव्यं वेदभक्तिविवर्जिते ।
दातव्यं भक्तियुक्ताय स्वधर्मनिरताय च ॥ २१ ॥

हे देवि! इस समय तुमने जो पूछाथा, वह मैंने सब वर्णन किया। यह ब्राह्मण निन्दक, अशिष्य, खल, वेदभक्तिरहित मनुष्योंको कभी प्रदान न करे. भक्तियुक्त और स्वधर्ममें निरत मनुष्यको देवे ॥२०॥२१॥

नीलै रक्तैस्तथा शुभ्रैः प्रासादैरुपशोभितम्।
रक्षितं शस्त्रसंघैश्च परिखाभिरलंकृतम् ॥ २२ ॥

हे देवि! नील रक्त और सफेदवर्णके प्रासादमण्डल (महलोंके समूह) से शोभायमान, शस्त्रोंसे रक्षित, परिखा (खाई) से अलंकृत ॥ २२ ॥

सितै रक्तैस्तथा पीतैः कृष्णैश्चान्यैश्च वर्णकैः।
धूम्रैः समीरणैर्धूमैः पताकैश्च स्वलंकृतम् ॥ २३ ॥

सफेद, लाल, पीली, काली और धूम्रादि विविध वर्णकी पताकाओंसे शोभायमान ॥ २३ ॥

नित्योत्सवप्रमुदितं नानावादित्रनिःस्वनम्।
वीणावेणुमृदङ्गैश्च क्षेपणीभिरलंकृतम् ॥ २४ ॥

अनेक बाजोंकी ध्वनिसे शब्दायमान, नित्योत्सवसे प्रमोदित, वीणा, वेणु, मृदंग, और क्षेपणी (पट्टी) से अलंकृत ॥ २४ ॥

देवतायतनैर्दिव्यैः प्रकृष्टोद्यानमण्डितैः।
पूजावैचित्र्यरचितैः सर्वतः समलंकृतम् ॥ २५ ॥

दिव्य देवतायतनयुक्त, अनेक उद्यानोंसे मंडित, विविधपूजोपकरण (पूजाकी सामग्री) से सर्वत्र शोभायमान ॥ २५ ॥

स्त्रियस्तत्र प्रमुदिता दृश्यन्ते तनुमध्यमाः।
हारभारांचितग्रीवाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥ २६ ॥

अपुनर्भवनामक एक मनोहर पुण्यप्रद तीर्थ क्षेत्र है, वहांकी स्त्रियें मध्यमतनु और सदा प्रमुदित दिखाई देती हैं, इन आयतलोचना स्त्रियों की ग्रीवा मनोहर हारसे शोभायमान हैं ॥ २६ ॥

पीनोन्नतकुचद्वन्द्वाः पूर्णचन्द्रसमाननाः ।
स्थिरालकाः कपोलाढ्याः काञ्चीनूपुरनादिताः॥२७॥
सुकल्पचारुजघनाः कर्णान्तायतलोचनाः ।
नानाजलाशयैश्चान्यैः पद्मिनीशतमण्डितैः ॥ २८ ॥
सरोवरैर्मनोज्ञैश्च प्रसन्नसलिलैस्तथा
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥ २९ ॥
कदम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ।
कारण्डवोत्करैर्हंसैस्तथैव स्थलचारिभिः ॥ ३० ॥

उनके दोनों कुच पीन और उन्नत मुख पूर्णचन्द्रमाके समान कपोल मनोहर अलकावली स्थिर जघनदेश अत्यन्त शोभायमान और मनोहर तथा दोनों नेत्र कानोंतक विस्तृत हैं उनकी कांची और नूपुरकी ध्वनिसे शब्दा यमान होकर यह स्थान मनुष्योंका मन हरण करता है और यह स्थान सैकड़ों कमलोंसे शोभायमान निर्मल जलवाले जलाशय सरोवरोंसे अत्यन्त मनोहर है यह जलाशय कुमुद पुंडरीक नील कमल इत्यादि शोभायमान कमलोंसे और कदंब, चक्रवाक, जलमुर्गा वा कारण्डव हंस इत्यादि मनोहर कलकंठ जलचरगणोंसे अलंकृत रहते हैं ॥ २७-३० ॥

एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुण्यैर्नानाविधै रवैः ।
नानाजलाशयैश्चान्यैः शोभितं तत्समन्ततः ॥ ३१ ॥

यह सब जलाशय तटस्थ विविधकलकंठ पक्षियोंसे शब्दायमान और नवीन फूले हुए वृक्षोंसे शोभायमान हैं, तथा यह स्थान अन्यान्य अनके जलाशयोंसे अलंकृत रहता है ॥ ३१ ॥

आस्ते तत्र स्वयं देवो हयग्रीवो जनार्दनः ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कुण्डाश्च सागराः ॥३२॥

वहां स्वयं देव जनार्दन हयग्रीव वास करते है । पृथ्वीतलमें जो कुछ तीर्थ, सरित्, सरः और पुष्करिणी, तडाग, वापी, कुण्ड और समुद्र है ॥ ३२ ॥

तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलानि च पृथक्पृथक् ।
सर्वलोकहितार्थाय रुद्रः सोमो गणैः सह ॥ ३३ ॥

उनमेंसे पृथक्पृथक् जल लाकर सर्वलोकोंके हितार्थ सर्व गणसहित रुद्र और सोम इस स्थानमें वास करते हैं ॥ ३३ ॥

तीर्थं पुनर्भवो नाम तस्मिन्क्षेत्रे वरानने ।
चकार कामिभिः सार्द्धं तत्पुनर्भवमुच्यते ॥ ३४ ॥

हे वरानने ! उस अपुनर्भवतीर्थक्षेत्रमें काम्यवस्तुओंको भोग करके भी वास करनेसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता, इसीकारण इस स्थानका नाम अपुनर्भव हुआ है ॥ ३४ ॥

अस्मिंश्च विपुले क्षेत्रे माघे मासि मम प्रिये ।
यस्तत्र यात्रां कुरुते विपुले विजितेन्द्रियः ।
विधिवत्सरसि स्नात्वा ततः श्रद्धासमन्वितः ॥३५॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्सन्तर्पयेत्ततः ।
तिलोदकेन विधिवन्नामगोत्रविधानतः ।
स्नात्वैवं विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३६ ॥

हे प्यारी ! माघके महीनेमें जितेन्द्रिय होकर जो मनुष्य इस विपुल तीर्थ क्षेत्रमें यात्रा करता है और श्रद्धा भक्तियुक्त होकर सरोवरके जलमें विधिपूर्वक स्नान करनेके पीछे देवता, ऋषि, मनुष्य और पितरोंका तर्पण तथा विधिपूर्वक नाम गोत्र विधानसे तिलोदक स्नान करता है उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

ग्रहोपरागे विषुवे संक्रान्त्यामयने तथा ।

युगादौ षडशीत्याञ्च तथान्यस्मिञ्छुभे तिथौ ॥३७॥
यस्तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छति धनादिकम् ।
अन्यतीर्थाच्छतगुणं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३८ ॥

ग्रहण, विषुव, संक्रान्ति, अयन, षडशीति युगादि (छियासी युगादि तिथियों) में और अन्यान्य शुभ तिथिमें जो मनुष्य वहां ब्राह्मणोंको धनादि दान करता है वह अपरापर तीर्थोंकी अपेक्षा शत-गुण फल पाता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

पिण्डं तत्र प्रयच्छन्ति स्वपितृभ्यः सरस्तटे ।
पितॄणामक्षयां तृप्तिं तत्कुर्वन्ति न संशयः ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य वहां सरोवरके किनारे पितरोंको पिण्ड देता है, उनके द्वारा उसके पितरोंकी अक्षय तृप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥

धनुषाष्टप्रमाणञ्च कुण्डमानं प्रकीर्त्तितम् ।
वराहकामयोर्मध्ये तत्तीर्थं सर्वकामदम् ॥ ४० ॥

वराह और कामरूपके मध्यस्थित सर्व कामदायक उस कुंडका परि-माण आठ धनु है ॥ ४० ॥

पुनर्न भवनं यस्मादपुनर्भवनामकम् ॥
तत्र स्नात्वा नरो याति भास्करस्यालयं प्रति ॥४१॥

उसमें स्नानादि करनेसे पुनर्भव अर्थात् पुनर्जन्म नहीं होता, इसी कारण उसका नाम अपुनर्भव है, वहां स्नान करके मनुष्य सूर्यसदनमें जाता है ॥ ४१ ॥

न पुनर्जायते जन्तुर्यस्मात्त्वयि निमज्जनात् ।
अतः स्नामि महातीर्थं पापं हर नमोऽस्तु ते ।
कर्णाटनेन स्नानं यः पश्येदेव त्रिलोचनम् ॥ ४२ ॥

हे तीर्थराज ! तुम्हारे जलमें स्नान करनेसे फिर जन्म नहीं होता, इसी कारण मैं तुम्हारे जलमें स्नान करता हूं. तुम मेरे पापोंको दूर करो. इस मन्त्रसे स्नान करके त्रिलोचन देवका दर्शन करे ॥ ४२ ॥

गोकर्णश्च विकर्णश्च योगीशं सर्वकामदम् ।
गोकर्णं वृषभाकारं विकर्णं पुरुषाकृतिम् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर गोकर्ण सर्वकामप्रद योगीश और विकर्ण हैं । गोकर्णका आकार बैलके समान और विकर्णका आकार पुरुषके सदृश है ॥ ४३ ॥

अधस्ताच्चैव योगानां योगज्ञानं ततः परम् ।
उत्तरे च सरस्तीरे पर्वते भद्रकाशके ॥ ४४ ॥

इस स्थानमें योगीशका दर्शन करनेसे योगियोंको परमयोग ज्ञान प्राप्त होता है । सरोवरके उत्तरीयतटमें भद्रकाश पर्वतके ऊपर ॥ ४४ ॥

या शिला पौत्रवित्ता च मध्ये शोणच्युतिः प्रिये ।
पञ्चधन्वन्तरे यावत्क्षेत्रं स्याद्धरवीथिकम् ॥ ४५ ॥

पौत्रवित्ता शिला और मध्यभागमें शोणच्युति शिला है, उसके पंच धनुः अन्तरमें हरवीथि नामक विख्यात क्षेत्र है ॥ ४५ ॥

तस्याः शैवाशिलायास्तु स्वभागे देवतात्रयम् ।
सम्पाद्य विधिवद्भक्त्या गन्धैः पुष्पैः पृथग्विधैः ।
चतुर्दश्याश्च मिथुने मृते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

उस शैवशिलाके नियमित भागमें यह तीन देवता है ! भक्तिपूर्वक आषाढके महीनेमें गंधपुष्पादिसे पूजा करनेपर मोक्ष प्राप्त होता है, तथा चतुर्दशीके दिन मृत्यु होनेसे भी मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥

त्रिशूलाभयहस्ताय जटाभारविधारिणे ।
वृषध्वजाय देवाय गोकर्णाय नमो नमः ॥ ४७ ॥
युगरूपाय देवाय चन्द्रहस्ताय विष्णवे ।

गदाशार्ङ्कहस्ताय विकर्णाय नमो नमः ॥ ४८ ॥
महेशाय वृषस्थाय ज्ञानरूपाय ज्ञानिने ।
धर्मज्ञाय सुरूपाय योगीन्द्राय नमोस्तु ते ॥ ४९ ॥

गोकर्णका प्रणाम यथाः—'त्रिशूलाभयहस्ताय जटाभारविधारिणे । वृषध्वजाय देवाय गोकर्णाय नमो नमः" । विकर्णका प्रणाम यथाः— "युगरूपाय देवाय चन्द्रहस्ताय विष्णवे । गदाशार्ङ्कहस्ताय विकर्णाय नमोनमः" योगीन्द्रका प्रणाम यथाः "महेशाय वृषस्थाय ज्ञानरूपाय ज्ञानिने । धर्मज्ञाय सुरूपाय योगीन्द्राय नमोऽस्तु ते ॥४७॥४८॥४९॥

अपुनर्भवपूर्वे तु नवधन्वन्तरात्परम् ।
सप्तधन्वन्तरं यावत्कुण्डं वाराणसीयकम् ।
तत्र स्नात्वा महेशानि मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥५०॥

अपुनर्भवके पूर्वभाग नवधनुके अन्तरपर सात धनुः पर्यन्त विस्तृत वाराणसीयक कुंड है. हे महेशानि ! वहां स्नान कर मरनेसे मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

चैत्रे कामत्रयोदश्यां स्नानेनानेन यत्नतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥ ५१ ॥

चैतके महीनेकी कामत्रयोदशीमें मंत्रपूर्वक वहां स्नान करनेपर सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

सर्वतीर्थेषु यैः स्नानं कृतं वर्षशतैरपि ।
सकृद्वाराणसीकुण्डे तत्फलं लभते क्षणात् ॥ ५२ ॥

सब तीर्थोंमें सौ वर्ष स्नान करनेसे जो फल होता है, वाराणसीकुंडमें एकवार स्नान करके तत्काल वही फल मिलता है ॥ ५२ ॥

तस्य पूर्वे पञ्चधनुर्दैर्घ्यमानेन शाङ्करि ।
मार्कण्डेयह्रदो नाम तत्र स्नात्वा व्रजेच्छिवम् ॥५३॥

हे शांकरि ! उसके पूर्वमें पांच धनुके अन्तरपर मार्कंडेय ह्रद है, वहां स्नान करनेसे शिवत्व लाभ होता है ॥ ५३ ॥

उत्तरे सरस्तीरे मार्कण्डेश्वरसंज्ञितम् ।
ये वा पश्यन्ति च स्नात्वा कुण्डे माहेश्वरं ततः ॥५४॥
आदित्यमर्चितं तत्र देवदेवं त्रिलोचनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः ॥ ५५ ॥
गीयमानोथ गन्धर्वैः शिवलोकं व्रजेत्तु वै ।
तिष्ठत्यत्र प्रमुदितः कल्पमेकं वरानने ॥ ५६ ॥

सरोवरके उत्तर तटमें मार्कंडेय नामक महेश्वर हैं। इस सरोवरमें स्नान करके देवदेव त्रिलोचन और आदित्यकी पूजा करनेपर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है और उत्तम विमानमें बैठ गन्धर्वोंके द्वारा उपगीयमान होकर शिवलोकमें जाता है, हे वरानने ! वहां प्रमुदित चित्तसे एककल्प वास करता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

मार्कण्डेयो मुनिश्रेष्ठस्तपस्तेपे महामतिः ।
मार्कण्डेयह्रदो नाम पापं मम ह्रदो हर ॥ ५७ ॥

मार्कण्डेय महामुनिने प्रथम तपश्चर्याका आचरण किया था, ऋषिश्रेष्ठ महामुनि मार्कण्डेय वहां तप करनेसे उसका मार्कण्डेय ह्रद नाम हुआ है. हे सरोवर ! तुम हमारे हृदयके पापोंको हरो ॥ ५७ ॥

अनेन मज्जनं कृत्वा कुर्यान्मुण्डस्य मुण्डनम् ।
श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन चोपवासं समाचरेत् ॥ ५८ ॥

इस मंत्रसे मज्जन करके मस्तक मुंडन करावे उसी स्थानमें यत्नसहित श्राद्ध और उपवास करना चाहिये ॥ ५८ ॥

ततः प्रभाते विमले नित्यं निर्वर्त्य साम्प्रतम् ।
गोकर्णस्य विकर्णस्य नातिदूरे महेश्वरि ॥ ५९ ॥

हे महेश्वरि ! तदनन्तर विमल प्रातःकालमें नित्यकर्म समापनपूर्वक गोकर्ण और विकर्ण थोड़ी ही दूर अवस्थित हैं ॥ ५९ ॥

कुण्डं ब्रह्मसरो नाम एकविंशतिमानतः ।
तत्र स्नात्वा श्रमहरं न पुनर्भवमादिशेत् ॥ ६० ॥

इक्कीस धनु प्रमाण ब्रह्मसरोवर नामक एक तीर्थ है, उस पापहरनेवाले तीर्थमें स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ६० ॥

मुक्तये सर्वपापानां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
ब्रह्मकुण्ड महाभाग त्राहि मां भवसागरात् ॥ ६१ ॥

समस्तपातकोंसे मुक्तिलाभ होनेके लिये ब्रह्माजीने प्रथम इसको निर्माण किया था अतएव ब्रह्मकुंड नामक सरोवर ! तुम संसारसागरसे हमारी रक्षा करो ॥ ६१ ॥

स्नात्वा चानेन मन्त्रेण सरसोऽस्यैव पश्चिमे ।
कृष्णाख्यशैलरूपश्च वराहो नाम नामतः ॥ ६२ ॥

इस मंत्रसे वहां स्नान करे । इसी सरोवरके पश्चिममें स्थित कृष्णाख्य शैलरूप वराहनामक देवता है ॥ ६२ ॥

तं प्रणम्य नरो भक्त्या विष्णुलोके प्रमोदते ॥ ६३ ॥

उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें जाकर आनन्द लाभ करता है ॥ ६३ ॥

पिशंगरोमाञ्चिततूलकाय दंष्ट्राग्रभागे च धराधराय
नीलाचलोद्भासिकलेवराय महावराहाय नमो नमस्ते ६४

जिनके रोम पिशङ्ग वर्ण हैं जिनके दांतोंके अग्रभागके ऊपर भूमंडल विराजित है, नीलाचलके समान जिनका शरीर है ऐसे वराहको नमस्कार है इस मंत्रसे उनको प्रणाम करे ॥ ६४ ॥

गोकर्णस्य तदैशान्यामिक्षुक्षेपत्रयान्तरे ।
सदने पर्वते रम्ये गत्वा पश्येच्च शङ्करम् ॥ ६५ ॥

गोकर्णके ईशान कोणमें, जितने स्थानमें तीन गन्ने रक्खे जासकें इतने अन्तरपर रम्यपर्वतमें जाकर मन्दरस्थित शंकरका दर्शन करे ॥ ६५ ॥

केदाराख्यं महादेवं सर्वदेवनमस्कृतम्।
तं लिङ्गमव्ययं दृष्ट्वा श्रद्धया सुसमाहितः॥ ६६ ॥
पूजयित्वा तु तं भक्त्या गन्धैः पुष्पैर्मनोहरैः।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नमस्कारैस्तथा स्तवैः॥ ६७ ॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा।
संपूज्य तं विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः॥ ६८ ॥

वही सर्वदेवनमस्कृत केदाराख्य महादेव हैं उस अव्ययलिंगका दर्शन करनेपर श्रद्धा भक्तियुक्त और सावधान हो भक्तिपूर्वक मनोहर गंध, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तव, नृत्य, गीत और प्रणामादि द्वारा यथा विधि उनकी पूजा करनेसे मनुष्य शिवलोकमें जाता है ॥६६॥६७॥६८॥

मदन सागरश्रेष्ठ सुखसौभाग्यदायक।
आरोहयामि शिखरं पापं हर नमोऽस्तु ते॥ ६९ ॥

हे सागर श्रेष्ठ मदन! तुम सुख और सौभाग्यके देनेवाले हो! मैं तुम्हारे शिखरपर आरूढ होता हूँ, तुम हमारे पापका विनाश करो तुम्हें प्रणाम है ॥ ६९ ॥

पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा गत्वा कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
क्षणेनैव समुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति॥ ७० ॥

इस मन्त्रद्वारा पूर्वाभिमुख हो प्रदक्षिणा करनेपर सब पापोंसे रक्षा पाकर शिवलोकमें जाता है ॥ ७० ॥

शिवं शुक्लवर्णं श्वेतवृषभारूढं पद्मासनस्थं।
श्वेतनागयज्ञोपवीतिनं वरदाभयहस्तं।

सोमसूर्याग्निचक्षुषं जटामुकुटचन्द्रशेखरम् ॥
सितभस्मांगलेपनं अर्द्धनारीश्वरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं ।
सद्योजातवामदेवतत्पुरुषाघोरेशानाभिधम् ।
पश्चिमे डमरुखङ्गादिधारिणं खङ्गगो-
क्षीरयोर्वर्णमुत्तरे वामदेवकम् ।
शंखचक्रधारिणं तप्तहेमाभवर्णं पूर्वे-
तत्पुरुषं गदापद्मधरं परं स्वच्छ-
सिन्दूराभं दक्षिणेऽघोरं त्रिशूलधरं
कपिलविटङ्कदंष्ट्रं नीलमेघाञ्जनोपम ॥ ७१ ॥

केदाराख्य शिव शुक्लवर्ण, सफेद बैलपर चढे, पद्मासनस्थ श्वेतनाग यज्ञोपवीतधारी वरदाभयहस्त अर्थात् हाथोंमें वर और अभय लिये सोम सूर्याग्नि चक्षुः जटामुकुट चन्द्रशेखर, श्वेतभस्मानुलेपन, अर्द्धनारीश्वर, पंचवक्त्र, त्रिनेत्र, तत्पुरुष, वाम, ईशान, सद्यःपश्चिम, शंख चक्रधारी, खड्ग गोक्षीर वर्ण उत्तर. वामदेव, डमरू खड्गादिधारी, तपे हुए सुवर्णके समान वर्ण, पूर्व, गदा पद्मधारी, परमस्वच्छ सिन्दूराभ. दक्षिण, अघोर त्रिशूल, कपिल. विटंकदंष्ट्र और नीलमेघाञ्जनोपम हैं ॥ ७१ ॥

एवं केदाराख्यं शिवं ध्यात्वा शिवतन्त्रोक्तेन मार्गेण
पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा तन्मन्त्रेण पूजयेत् ॥ ७२ ॥

इस प्रकार केदाराख्य शिवका ध्यान करके शिवतन्त्रोक्त मंत्रद्वारा पुष्पाञ्जलि ग्रहणपूर्वक प्रतिमंत्रसे पूजा करे ॥ ७२ ॥

नमश्चन्द्रार्द्धचूडाय नमः खट्वांगधारिणे ।
नमोऽस्तु शूलहस्ताय केदाराय नमो नमः ॥ ७३ ॥

जिनके मस्तकके ऊपर अर्धचन्द्रमा विराजमान है जो खट्वांग धारण कर रहे हैं और जिनके हाथमें त्रिशूल है ऐसे केदारजीको नमस्कार है ॥ ७३ ॥

सर्वलोकेश्वरं देवं मोक्षकारणमव्ययम्।
निष्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि पुरातनम् ॥ ७४ ॥

सर्वलोकेश्वर, देव, मोक्षकारण, अव्यय, निष्कल, परमपुरातन देवको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ७४ ॥

सर्वेषामेव गोप्तारं नमस्ते शम्भुमव्ययम्।
शब्दातीतं गुणातीतं नमस्ते शम्भुमव्ययम् ॥ ७५ ॥

सबके रक्षा करनेवाले अव्यय शंभुको नमस्कार है। शब्दातीत गुणातीत अव्यय शंभुको नमस्कार है ॥ ७५ ॥

इति प्रसादनं कृत्वा केदारस्य च पश्चिमम्।
गत्वा ब्रह्मवटं वृक्षमच्छिद्रमवधारयेत् ॥ ७६ ॥

इस प्रकार स्तुति और प्रणामद्वारा उनको प्रसन्न करे। तदनन्तर केदारकी पश्चिमदिशामें ब्रह्मवट वृक्षके समीप जाकर अच्छिद्रावधारण करना चाहिये ॥ ७६ ॥

केदारञ्च नमस्कृत्य कल्पवृक्षं ततः पुनः।
दशजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ७७ ॥

इस प्रकार केदार और कल्पवृक्षको नमस्कार करनेसे दश जन्मके इकट्ठे पाप तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ७७ ॥

नमोऽव्यक्तस्वरूपाय महामलयवासिने।
महेन्द्रस्योपरिष्ठाय न्यग्रोधाय नमो नमः ॥ ७८ ॥

हे अव्यक्तरूपवान्! हे महामलयाचलके ऊपर निवासकरनेवाले! हे महेन्द्रोपरि स्थित! न्यग्रोध! मैं तुम्हें प्रणाम करताहूं। इस मन्त्रसे बटवृक्षको नमस्कार करे ॥ ७८ ॥

केदारस्य च कौबेर इक्षुक्षेपत्रयान्तरे ।
पौष्पके नगरे क्षेत्रे कमलाक्षहरं भजेत् ॥ ७९ ॥

केदारकी उत्तरदिशामें तीन इक्षुक्षेपके अन्तरपर पौष्पकनगर क्षेत्रमें कमलाक्ष हरको भजन करे ॥ ७९ ॥

संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम् ।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोस्तु ते ॥ ८० ॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ।
त्रिपुरारे नमस्तेऽस्तु कमलेश नमोऽस्तु ते ॥ ८१ ॥

हे त्रिपुरारि ! पापद्वारा ग्रसेहुए अतएव संसारसागरमें निमग्न हुए अचेतनकी रक्षा करो हे शान्तमूर्ति शिव ! तुम सब पापोंका नाशकरनेवाले हो. हे त्रिपुरारि ! हे कमलेश्वर ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं इसमंत्रसे उनकी पूजा और प्रणाम करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥

दक्षिणे कल्पवृक्षस्य इक्षुक्षेपान्तरे प्रिये ।
छत्राकारो गिरिर्योऽसौ स गिरिः पारियात्रकः ।
तस्यारोहणमात्रेण न पुनर्जायते भुवि ॥ ८२ ॥

अनन्तर कल्पवृक्षके दक्षिणमें एक इक्षुक्षेपके अन्तरपर छत्राकार जो गिरि वह पारियात्रक गिरि है, इसपर आरोहण करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ८२ ॥

अष्टषष्टिषु शैलेषु मध्ये ह्यत्युन्नतो गिरिः ।
मन्दराख्यं तु तं शैलं गत्वा तत्र समाहितः ॥ ८३ ॥
पूर्वभागे च शैलस्य स्थितो मधुरिपुर्हरिः ।
दर्शनात्तस्य देवस्य कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ८४ ॥

यह अडसठ शैलोंमें ऊँचा है । फिर मन्दराख्यशैलमें जाय, सावधान होउसके पूर्वभागस्थित मधुरिपु हरिका दर्शन करनेसे सौ कुलोंका उद्धार होता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

केदारमुदकं पीत्वा कामधेनुं स्पृशेद्यदि ।
पूजयेत्केशवं भक्त्या न भूयो जायते क्वचित् ॥८५॥

केदारोदकपान कामधेनुको स्पर्श, और भक्तिपूर्वक केशवकी पूजा करनेसे फिर कभी जन्म लेना नहीं पड़ता ॥ ८५ ॥

अनुत्तमोत्तमं क्षेत्रं शैलं मन्दरकं प्रिये ।
ककुदेश्वरं हरं दृष्ट्वा स याति परमां गतिम् ॥ ८६ ॥

हे प्यारी ! मन्दारक शैल अति उत्तम क्षेत्र है, वहां ककुदेश्वर हरका दर्शन करनेसे परम गति प्राप्त होती है ॥ ८६ ॥

ब्रह्मेश्वरश्च तत्रैव होममध्ये प्रतिष्ठितः ।
ब्रह्मेश्वरं नमस्कृत्य ब्रह्मज्ञानमवाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

वही ब्रह्मेश्वर होममें प्रतिष्ठित है ब्रह्मेश्वरको नमस्कार करनेसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होताहै ॥ ८७ ॥

भावभूतेश्वरं दृष्ट्वा कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
मुच्यते पापसंघैश्च शिवलोके महीयते ॥ ८८ ॥

फिर भावभूतेश्वर देवका दर्शन और प्रदक्षिणा करनेपर सब पापोंसे छूटजाता है तथा शिवलोकको प्राप्त होताहै ॥ ८८ ॥

संपूजयेच्छिवं यस्तु मन्दरे क्षेत्रपर्वते ।
तस्य जन्मार्जितं पापं दर्शनाद्याति संक्षयम् ॥ ८९ ॥

जो मनुष्य मन्दर और क्षेत्रपर्वतमें शिवकी पूजा करता है, केवल दर्शनमात्रसे उसके जन्मार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं ॥८९॥

प्रयागे सङ्गमे स्नात्वा यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं लभते चाग्र्यं सहस्रगुणमेव हि ॥ ९० ॥
धर्मेश्वरस्य देवस्य कूपस्तिष्ठति चाग्रतः ।

तत्र स्नानेन देवेशि पिण्डनिर्वपणेन च ।
गोसहस्रफलं सम्यक् लभते च वरानने ॥ ९१ ॥

मनुष्यगण प्रयागके संगममें स्नान करके जो फल प्राप्त करते हैं, वह अग्रभागमें धर्मेश्वरका कूप प्रतिष्ठित है, उसमें स्नान और पिण्डदान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

पारियात्रस्योत्तरतो धनुर्विंशान्तरे प्रिये ।
कपिलस्याश्रमे रम्ये संपश्येत्कपिलेश्वरम् ॥ ९२ ॥

हे वरानने ! पारियात्रके उत्तरमें वीस धनुषके अन्तरपर मनोहर कपिलाश्रममें कपिलेश्वरका दर्शन करके ॥ ९२ ॥

तं संपूज्य वरो भक्त्या विष्णुलोके महीयते ।
पारियात्रे स्थितं देवं सर्वाघभयनाशनम् ।
नास्ति किञ्चिद्भयं तस्य घोरे संसारसागरे ॥ ९३ ॥

भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनेसे विष्णुलोकमें पूजाको प्राप्त होता है। पारियात्रस्थित सर्वपापनाशक देवका दर्शन करनेसे उस मनुष्यको घोरसंसारसागरसे भी कुछ भय नहीं रहता ॥ ९३ ॥

पिशाचमोचनं नाम तीर्थं तस्य च पूर्वतः ।
धनुरेकादशान्ते च तत्रास्ते कालभैरवः ॥ ९४ ॥

उसके पूर्वकी ओर ग्यारह धनुके अन्तरमें पिशाचमोचननामक तीर्थ है, वहां कालभैरव अवस्थित हैं ॥ ९४ ॥

कृष्णं गौरवृषाकारं पूर्वभागगतं प्रिये ।
पिशाचमोचने तीर्थे पूजयामास शूलिनम् ॥ ९५ ॥

इस पिशाचमोचननामक तीर्थके पूर्वभागस्थित वृषभाकृति कृष्ण गौर शूलि महादेवकी पूजा करे ॥ ९५ ॥

इत्थं देवस्य तल्लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम्।
पूजनीयं प्रयत्नेन स्तोतव्यं विविधैः स्तवैः॥ ९६॥

इसी प्रकार उनका कपर्दीश्वरनामक उत्तम लिंग है यत्नपूर्वक विविध स्तवोंसे उसकी पूजा करे॥ ९६॥

"व्याघ्रेश्वरस्य देवस्य दक्षिणे वरवर्णिनि।
स्वयम्भूस्तत्र लिङ्गं वै देवानामपि दुर्लभम्"॥
लिङ्गं पूर्वमुखं तत्तु श्रेष्ठस्थानमुदाहृतम्।
कृत्तिवासेश्वरं प्राप्य संसारे विगतज्वरः॥ ९७॥

हे वरवर्णिनि! व्याघ्रेश्वरके दक्षिणस्थित देवताओंको भी दुर्लभ स्वयंभू-लिंग पूर्वमुखमें प्रतिष्ठित हैं, इस स्थानको अत्यन्त श्रेष्ठ जानना चाहिये कृत्तिवासेश्वर देवका दर्शन करनेसे संसारज्वर दूर होता है॥ ९७॥

संसारभयनिर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः!
सुखेन मुक्तिमायान्ति यथार्हन्ते यतस्तथा॥ ९८॥

संसारभय और सब पापोंसे छूटकर सुखसहित यथायोग्य मुक्ति प्राप्त करते हैं॥ ९८॥

व्याघ्रेश्वरस्य चैशान्ये धनुर्दशकमानतः।
कृत्तिवासेश्वरं प्राप्तलिंङ्गयोनिप्रतिष्ठितम्।
कृत्तिवासेश्वरं देवं दृष्ट्वा चैव पुनःपुनः॥ ९९॥
यदीच्छेत्तारकं ज्ञानं शाश्वतं चामृतं पदम्।
एतत्सर्वैश्च कर्त्तव्यं यदीच्छेत्परमात्मनः॥ १००॥

व्याघ्रेश्वरके ईशानकोणमें दश धनुःप्रमाण कृत्तिवासेश्वरकी लिंग योनि प्रतिष्ठित है। मनुष्य यदि आत्माके तारनेवाले शाश्वत अमृतपद स्वरूप

ज्ञानकी कामना करे तो कृत्तिवासेश्वर देवका वारंवार दर्शन करे। यह सब कार्य सभीको करने चाहिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥

मदलाचलस्येशाने इषुक्षेपत्रयान्तरे ।
बाणेश्वरस्तु विख्यातः सप्तपातालभेदकः ॥ १०१ ॥

मदलाचलके ईशानकोणमें तीन इक्षुक्षेपके अन्तरपर सप्तपाताल भेदक विख्यात बाणेश्वरलिंग प्रतिष्ठित है ॥ १०१ ॥

वत्सरं तत्तु लिङ्गानां सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।
तत्प्रणम्य नरो भक्त्या वत्सरान्मुच्यते परम्॥१०२॥

यह वत्सरलिंग सबसे उत्तमोत्तम है, इसको भक्तिपूर्वक प्रणाम करनेसे मनुष्य एक वर्षमेंही मुक्त होता है ॥ १०२ ॥

तस्य देवस्य वायव्ये नानावर्णा तु या शिला ।
गरुडाख्यं महालिंगं पूजयेद्गरुडं नरः ॥ १०३ ॥

उन देवके वायुकोणमें नानावर्णकी जो शिला है, वही गरुडाख्य महालिंग है, मनुष्य गरुडदेवकी पूजा करें ॥ १०३ ॥

दर्शनात्तस्य देवस्य गोशतस्य फलं लभेत् ॥ १०४ ॥

उन देवका दर्शन करनेसे सौ गोदानका फल प्राप्त होता है ॥१०४॥

नमस्ते पक्षिराजेन्द्र वासुदेवहिते रत ।
अनुज्ञां देहि पक्षीश त्वमेतद्दर्शनं प्रति ॥ १०५ ॥

वासुदेव विष्णु भगवान्के हितकर्त्ता हे पक्षिराज ! मैं तुम्हें प्रणाम करताहूं तुम इसका दर्शन करनेके लिये मुझे आज्ञा दो ॥ १०५ ॥

प्रणिपत्य पठेन्मन्त्रं पश्चिमस्यान्तरे महत् ।
विष्णोरायतनं प्राप्य नरः शिवजले शुभे ।
स्नात्वाचमुण्डनंकृत्वाध्यात्वाविष्णुंक्षपेन्निशाम्॥१०६

इस मंत्रको पढ़कर प्रणाम करे, फिर पश्चिमकी ओर विष्णुके मन्दिरमें जाय स्नान करनेपर मुण्डनपूर्वक विष्णुका ध्यान करके रात्रि बितावे ॥ १०६ ॥

ततः प्रभाते देवेशि मणिकूटस्य चोत्तरे ।
वल्लभाख्या नदी पुण्या सर्वपापप्रमोचनी ॥ १०७ ॥

हे देवि ! फिर प्रभातकालमें, मणिकूटके उत्तरकी ओर सब पापोंका नाश करनेवाली वल्लभा नदी बहती है ॥ १०७ ॥

तत्र स्नात्वा चतुर्दश्यां माघे वा फाल्गुनेथ वा ।
वल्लभायाश्च देवेशि महापातकनाशनम् ॥ १०८ ॥

उस पवित्र नदीमें माघ वा फाल्गुनके महीनेकी चतुर्दशीमें स्नान करनेसे महापातक नष्ट होते हैं ॥ १०८ ॥

वल्लभायां नरः स्नात्वा नीलकण्ठस्य दर्शनात् ।
न स्पृशन्तीह पापानि सप्तजन्मकृतान्यपि ॥ १०९ ॥

वल्लभामें स्नान करनेके पीछे नीलकंठका दर्शन करनेसे मनुष्योंके सात जन्मकृत पाप नष्ट होते हैं ॥ १०९ ॥

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा सादरमाधवम् ।
यत्र तत्र स्थितो वापि संसारे न पुनर्विशेत् ॥ ११० ॥

उस तीर्थमें स्नान करनेके पीछे आदरपूर्वक माधवका दर्शन करनेपर वह जिस किसी स्थानमें क्यों न रहे, उसको फिर संसारमें प्रवेश करना नहीं पड़ता ॥ ११० ॥

संसारे सर्वतस्तस्य गङ्गा त्वायतनं भवेत् ॥ १११ ॥

संसारके सब स्थानही उसको गंगायतन (देवलोक वा गंगातट) स्वरूप होते हैं ॥ १११ ॥

वराहविवरं दृष्ट्वा नरव्रज्या महानदी ।
अशोककमलसञ्जाता कोलदण्डविनिःसृता ॥११२॥

फिर वराहविवरका दर्शन करे । तदनन्तर महानदी नरव्रज अशोक कमलसंजाता यह कोलदण्डसे निकली हैं ॥ ११२ ॥

नन्दिनी पङ्कजा चैव नदी मधुमती परा ।
मणिकूटे च संयाता तस्य तत्राधिकं फलम् ॥११३॥

फिर नन्दिनी, पंकजा, और परमोत्तम मधुमती नदी है, यह नदी मणिकूटसे उत्पन्न है उसमें स्नान करनेसे अधिकतर फल लाभ होता है ॥ ११३ ॥

नमोऽस्तु ते पुण्यजले नमः सागरगामिनि ।
नमस्ते पापविमले नमो देवि शिवप्रदे ॥ ११४ ॥

तुम्हारा जल पवित्र है, तुम्हारी गति सागरपर्यन्त है, तुम पापोंका नाश कर निर्मल बनाके कल्याणदेती हो इस कारण तुम्हें प्रणाम है ॥११४

अपुनर्भवजले स्नात्वा विशेद्गोकर्णमीश्वरम् ।
स्वर्गद्वारं च तत्रैव इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ११५ ॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सर्वदेवैर्निरूपितः ।
स्वर्गद्वारं महापुण्यं समारोहेत्सुदुर्लभम् ॥ ११६ ॥

इस मंत्रसे अपुनर्भवजलमें स्नान करके ईश्वर गोकर्णमें प्रवेश करै । उसी स्थानमें स्वर्गका द्वार है, यह ब्रह्मा विष्णु और रुद्रादि सब देवताओंने निरूपण किया है । उस महापवित्र दुर्लभ स्वर्गद्वारमें आरोहण करना चाहिये ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

दशलक्षणयुक्ताय चतुष्पादाय चारवे ।
अर्घ्यं ददामि धर्माय स्वर्गद्वारनिवासिने ॥ ११७ ॥

वहां यह मंत्र उच्चारण करै कि, जिनमें धर्मके दश लक्षण विद्यमान हैं जो चतुष्पाद और पवित्र विग्रहवान् हैं और जिनका निवास स्वर्गद्वारमें है ऐसे धर्मके निमित्त मैं अर्घ्य प्रदान करता हूं ॥ ११७ ॥

तत्र गत्वा युग्महस्तं नमस्कुर्यादतन्द्रितः ।
ह्रदे वाराणसीये च मार्कण्डेयसरे तथा ।
स्नात्वा कामेश्वरं दृष्ट्वा कल्पवृक्षं नमेत्ततः ॥ ११८ ॥
स्नात्वा पश्चाद्दुर्लभायां ततो हरिगृहं व्रजेत् ।
योऽर्चां तीर्थे च विधिवत्करोति नियतेन्द्रियः ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ११९ ॥

इस मंत्रसे अर्घ्य दे हाथ जोड़कर नमस्कार करे फिर वाराणसीके ह्रद और मार्कण्डेय सरोवरमें स्नान करके कामेश्वरका दर्शन करे और कल्पवृक्षको प्रणाम करके फिर दुर्लभामें स्नानकर हरिगृहमें जाय। जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस तीर्थमें पूजा करताहै, वह इक्कीस कुलका उद्धार करके विष्णुलोकको प्राप्त होताहै ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

मणिकूटस्य पूर्वे तु नातिदूरे महेश्वरि ।
विष्णुपुष्करकं नाम सर्वतीर्थोद्भवं जलम् ॥ १२० ॥

हे महेश्वरि ! मणिकूटके पूर्वमें थोड़ीही दूर विष्णुपुष्करनामक सर्वतीर्थोंके जलसे परिपूर्ण एक तीर्थ है ॥ १२० ॥

तत्र स्नात्वा वरारोहे विपुलां लभते श्रियम् ।
पुष्कराकारमास्थाय स्थितोऽसौ वसुधातले ॥ १२१ ॥

हे वरारोहे ! वहां स्नान करनेसे विपुल श्री प्राप्त होतीहै और वह पुष्कर अर्थात् पद्मतुल्य रूप धारण करके पृथ्वीतलमें स्थित है ॥ १२१ ॥

मर्त्यलोकहितार्थाय पापं मे हर पुष्कर ।
स्नात्वा चानेन मन्त्रेण वारुणं तत्र संजपेत् ॥ १२२ ॥

मर्त्यलोकहितार्थाय पापं मे हर पुष्कर " इस मंत्रसे स्नानपूर्वक वारुण मंत्रका जप करे ॥ १२२ ॥

" दद्यादर्घ्यञ्च विधिवदारोहेदपि कूटकम् ।
मणिकूटाचले विष्णुर्हयग्रीवस्वरूपधृक् " ।
शतबाहुप्रमाणञ्च अचलाऽष्टसहस्रकम् ।
मन्त्रेणारोहयेद्देवि पीतपुष्पेण पूजयेत् ॥ १२३ ॥

फिर विधिवत् अर्घ्यप्रदानपूर्वक कूटारोहण करे विष्णु मणिकूटाचलमें हयग्रीवका रूप धारण करके अवस्थित हैं । वहां शतबाहुप्रमाण आठ सहस्र पर्वत हैं, मंत्रोच्चारणपूर्वक उनमें आरोहण करके पीले पुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये ॥ १२३ ॥

ततः स विष्णुदेहं द्वारिकं तत्र प्रसादयेत् ॥ १२४ ॥

फिर वह मनुष्य विष्णुदेह द्वारिक (द्वारपालको) प्रसन्न करे ॥१२४॥

दण्डहस्त महाबाहो कालदैत्यनिषूदन ।
द्वारपाल नमस्तेऽस्तु प्रवेशं देहि मे सदा ॥१२५॥

हे दण्डहस्त महाबाहो ! काल दैत्यनिषूदन द्वारपाल ! मैं तुमको नस्मकार करता हूं, तुम मुझको द्वारप्रदान करो ॥ १२५ ॥

पीतञ्च द्विभुजं शान्तं मणिकुण्डलमण्डितम् ।
चक्रबाणधरं शुक्लं समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ १२६ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं मणिशैलं त्रिलोचनम् ।
ध्यात्वा तत्पीठके मन्त्रमारोहेच्छिखरं तदा ॥ १२७ ॥

पीतवर्ण, द्विभुज, शान्तमूर्ति मणिकुण्डलमण्डित, चक्रबाणधारी, शुक्ल, चारोंओर परिवेष्टित, सर्वलक्षणसम्पन्न, मणिशैल, त्रिलोचनका ध्यान करके उनकी पीठमें मंत्रपाठ करके शिखरपर आरोहण करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

मणिकूट गिरिश्रेष्ठ पीतवर्ण त्रिलोचन ।
त्वदद्यारोहणं कृत्वा द्रक्ष्यामि भवनं तथा ॥ १२८ ॥

हे गिरिश्रेष्ठ मणिकूट ! तुम्हारा पीतवर्ण और तीन नेत्र हैं अब हम तुम्हारे ऊपर आरोहण करके मंदिरोंका दर्शन करते हैं ॥ १२८ ॥

तं पूर्वाभिमुखेनैव उत्तराभिमुखेन वा ।
आरोहेन्मणिशैलश्च वर्जयेदन्यदिङ्मुखम् ॥ १२९ ॥

पूर्वकी ओर मुखकरके और उत्तरकी ओर मुखकरके मणिशैलमें आरोहण करे, अन्यदिशामें मुखकरके आरोहण न करे ॥ १२९ ॥

गत्वा विन्ध्याचलं पश्चात्कृत्वा तं त्रिःप्रदक्षिणम् ।
प्रविश्य संयतो भूत्वा धौतवासा जितेन्द्रियः ।
मूलेन स्नापयेद्देवं सौगन्धिकजलैः शुभैः ॥ १३० ॥
कर्पूरवासितैः स्निग्धैः सुगन्धिकुसुमादिभिः ॥
चन्दनागुरुपद्मानि यानि काम्यानि कानि चित् ।
कृत्यानि कुण्डमालिख्य तज्जले स्नानमाचरेत् ॥१३१॥

अनन्तर विन्ध्याचलमें जाकर तीनबार प्रदक्षिणा करे । फिर धुलेवस्त्र पहर जितेन्द्रिय और एकाग्रचित्तहोकर मूलमंत्रद्वारा कपूर वासित सुगंधित-जलसे देवताको स्नान कर चन्दन अगर पद्मादिद्वारा काम्य कार्य समापन पूर्वक कुण्ड लिखकर उस जलसे स्नान करावे ॥ १३० ॥१३१ ॥

सितामलजलैश्चैव तोयैः कोष्णोदकेन च ।
उष्णेन वारिणा चैव क्रमात्पञ्चामृतेन च ॥ १३२ ॥

शुभ्रामलजल (मलहीनजल) कुछेक उष्ण जलसे, उष्णजल और पंचामृतसे ॥ १३२ ॥

त्रिसितेन त्रिगन्धेन त्रिजलेन मम प्रिये ।
प्रीत्यर्थं तस्य देवस्य स्नानं देवि समाचरेत् ॥१३३॥

त्रिसित, त्रिगंध और त्रिजलसे स्नानकरावे प्रिये ! इसके द्वारा देवता अत्यन्त प्रसन्न होता है ॥ १३३ ॥

त्रिसितं चन्दनं पद्मं उशीरं परिकीर्त्तितम् ।
नित्यं मलयजं मर्त्यं त्रिगन्धं सुमनोहरम् ॥ १३४ ॥

चन्दन, पद्म और खस इन तीनोंके मिलनेका नाम त्रिसित है नित्य-गंध, मलयजगंध और मर्त्यगंध इनका नाम त्रिगंध है ॥ १३४ ॥

तीर्थोदकं गाङ्गतोयं कर्पूरस्योदकं तथा ।
त्रिजलञ्च महेशानि स्नापयेदन्यरान्तरे ॥ १३५ ॥

तीर्थोदक, गंगाजल और कर्पूरोदक इनका मिलानाही त्रिजल है । इन तीनोंसे एकके अनन्तर दूसरेसे स्नान करावे ॥ १३५ ॥

स्नापयित्वा यथोक्तेन तथा स्नानं समाचरेत् ।
अर्द्धस्नानं ततः कुर्याद्विधिज्ञः परमेश्वरि ॥ १३६ ॥

इस प्रकार यथोक्तक्रमसे स्नान कराकर स्नानाचरण करे । हे परमेश्वरि ! इसके पीछे विधिका जाननेवाला मनुष्य अर्धस्नान करावे ॥ १३६ ॥

अष्टोत्तरसहस्रैस्तु सुवर्णघटितैर्घटैः ।
तण्डुलैः स्नापनं कुर्यात्कर्पूरादिविमिश्रितम् ॥ १३७ ॥

इसके उपरान्त सुवर्ण निर्मित घटसे एक सौ आठ तण्डुलयुक्त कर्पूरादि-मिश्रित स्नान करावे ॥ १३७ ॥

अशक्तस्तु शतं कुर्याद्दशधा सुरसुन्दरि ।
ताम्रैर्वा राजतैर्वापि अथवा सति सम्भवे ।
मार्त्तिकैर्वा घटैः स्नानमशक्तस्तु समाचरेत् ॥१३८॥

असमर्थ मनुष्य दशबार स्नान करावे । जो मनुष्य सुवर्णनिर्मित घटसे स्नान करानेमें असमर्थ है वह चांदी, तांबा वा सभव होनेपर भी मिट्टीके घटसे भी स्नान करासकता है ॥ १३८ ॥

स्नानात्पूर्वं महेशानि तीर्थं गत्वा महेश्वरि ।
तस्माच्च जलमाहृत्य कुम्भे कृत्वा विधानवित ॥१३९

हे महेशानि ! स्नानके पहिले तीर्थमें जाय उसका जल लाकर घटमें रक्खे ॥ १३९ ॥

गन्धं पुष्पं ततो दत्त्वा पुनर्मन्त्रं जपेत्ततः ।
अमृतीकरणं कुर्यान्मुद्रां तत्र च दर्शयेत् ॥ १४० ॥

फिर गंधपुष्पादिप्रदानपूर्वक यथाविधि मंत्र जपकर अमृतीकरण और मुद्राप्रदर्शन करे ॥ १४० ॥

षडङ्गं विन्यसेत्तत्र अवगुण्ठ्य ततोऽर्चयेत् ।
महोत्सवं ततः कृत्वा स्नानार्थं देवदक्षिणे ।
स्थापयेत्स्नानशेषे तु देवबुद्ध्या क्षिपेत्तनौ ॥१४१॥

फिर षडङ्गविन्यास और अवगुंठन (आवेष्टन) प्रदानपूर्वक अर्चना करनेके पीछे महोत्सव करके स्नानार्थ देवको दक्षिणमें रक्खे इसके पीछेही स्नान करावे। स्नानशेष होनेपर देवताके शरीरमें जलनिक्षेप करना चाहिये ॥ १४१ ॥

उद्वर्त्तनं प्रतिदिनं कर्त्तव्यश्च दिनान्तरे ।
दिनत्रयान्तरे वापि सर्वकाले विशेषतः ॥ १४२ ॥

प्रतिदिन दिनान्तरमें उद्वर्त्तन (चिकने द्रव्यादिका मलना) अर्थात् उबटन करना चाहिये । विशेषकर सदाही तीन दिनके अन्तरसे उद्वर्त्तन करे ॥ १४२ ॥

तिलोद्भवेन तैलेन सुगन्धेन मम प्रिये ।
पलेन च पलार्द्धेन तदर्द्धेनापि यत्नतः ।
स्नेहैर्वा रजनीभिश्च तण्डुलोद्वर्त्तनादिभिः ॥ १४३ ॥

संस्थाप्य देवदेवेशं विल्वपत्रेण शांकरि ।
संघृष्टगात्रं पत्रैर्वा अपामार्गस्य मूलकैः ।
गुच्छकैर्नलपुष्पस्य कूर्च्चं कुर्यान्महेश्वरि ॥ १४४ ।

हे प्यारी ! पल, पलार्द्धपरिमित सुगन्धित तिलके तेलसे अथवा चिकने तण्डुलादिद्वारा देवदेवको बेलपत्रमें स्थापन करके उद्वर्त्तन करे । चिर-चिरेके पत्ते वा जडसे अथवा नलपुष्पकी कूर्चक (कूंची) द्वारा कूर्चन (कूंचा) करे ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

कुशेन चामरेणाथ गोवालेन विशेषतः ।
उशीरं कूर्चकं दत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४५ ॥

कुश, चामर, गोवाल (तन्तुविशेष) और विशेषकर खसकी कूर्चक प्रदान करके सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १४५ ॥

दत्त्वा गोवालकं कूर्चं सर्वान्पापान् व्यपोहति ।
दत्वा च चामरं कूर्चं श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥१४६॥

गोवालक (तन्तु विशेष) की कूर्चक (कूंची) दान करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं । चामर कूर्चकप्रदान करनेसे अत्युत्तम श्री मिलती है॥१४६॥

न वराहस्य रोमेण न वंशेन कदाचन ।
गवयस्य तथाश्वस्य रोमन्तु परिवर्जयेत् ॥१४७॥

वराहरोम, वंशगवय (गौके समान मृगविशेष) रोम, तथा अश्वरोम वर्जित है ॥ १४७ ॥

लिङ्गे वा प्रतिमायां वा शालग्रामे तथैव च ।
न कूर्चयेत्प्रतिदिनं पञ्चाहे सप्तमे तथा ॥ १४८ ॥

हे प्यारी ! लिंग वा प्रतिमा अथवा शालग्राममें प्रतिदिन कूर्च नहीं करना चाहिये । पांच वा सात दिनके पीछे ॥ १४८ ॥

मासान्ते वाथ पक्षान्ते कूर्चयेन्मम सुन्दरि ।
अयने विषुवे चैव भौमवारे दिनक्षये ॥ १४९ ॥

महीने वा पक्षके अन्तमें कूर्चन करे। अयनमें, विषुव (संक्रान्ति पुण्यकाल) में, मंगलवारमें दिनक्षयमें ॥ १४९ ॥

द्वादश्यां राहुग्रस्ते च तैलस्नानं न कारयेत् ॥१५०॥

द्वादशी और ग्रहणमें तैलस्नान न करावे ॥ १५० ॥

नैव तं कूर्चयेद्देवि न वराङ्गे मुखे ततः ।
नासिकान्ते तथा गुह्ये लिङ्गे च पुलकेषु च ॥ १५१ ॥

हे देवि ! वराङ्ग (मस्तक) मुख, नासिकान्त, गुह्य, लिंग वा पुलकमें कूर्चन न करे ॥ १५१ ॥

वस्त्रेण मार्जयेद्देवि कार्पासेनाथ चन्दनैः ।
रक्तवस्त्रे भवेत्कुष्ठी पांडुव्याधिमवाप्नुयात् ॥ १५२ ॥

हे देवि ! कार्पासवस्त्र वा चन्दनद्वारा मार्जन करे। लालवस्त्रसे मार्जन करनेपर कोढी और पाण्डुरोगसे ग्रसित होता है ॥ १५२ ॥

पट्टैश्चक्षुषमाप्नोति नीलरक्तैः क्षयं व्रजेत् ।
परिधाप्य ततो वस्त्रं स्वर्गसूत्रद्वयं तथा ॥ १५३ ॥
कटिवेष्टनकं दद्यान्नानारत्नादिभूषणम् ।
परिधानं विधायैवं स्नानं यः कुरुते नरः ॥ १५४ ॥
पूजाकाले भोजने च स्नाने चैव विशेषतः ।
सोपि नाशमवाप्नोति धननाशं तथैव च ॥ १५५ ॥

रेशमीन वस्त्रद्वारा मार्जन करनेसे चाक्षुष्य (निर्मलदृष्टि) लाभ होती है, और नीले वा लाल पटद्वारा मार्जन करनेसे क्षयको प्राप्त होता है फिर वस्त्र पहिरानेके पीछे स्वर्गसूत्रद्वय (बहुमूल्य दो वस्त्र) और कटि-

वेष्टन तथा रत्नादिभूषण प्रदान करे । इस प्रकार पहराकर वा पूजाकाल, भोजन और विशेषकर स्नानके समय जो मनुष्य स्नान करता है वह नाशको प्राप्त और उसका धन नष्ट होता है ॥ १५३ ॥ १५४॥ १५५ ॥

मलयोक्षेन गन्धेन गोपीचन्दनकेन वा ।
बिल्वकाष्ठोद्भवेनाथ तुलसीकाष्ठकेन वा ॥ १५६ ॥
पद्मकेन तमालेन तथा रोचनयाथ वा ।
विधाय तिलकं देवि श्रेष्ठमेव क्रमेण च ॥ १५७ ॥

फिर मलयजगंध, अथवा गोपीचन्दन, बिल्वकाष्ठोद्भव चंदन, वा तुल· सीकाष्ठोद्भव चंदन, या पद्मक, तमाल, वा (गोरोचन) द्वारा तिलक करावे इनमें पूर्वपूर्वको श्रेष्ठ जानना चाहिये ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

चतुःसमश्चातिसमं द्विसमश्च सुरेश्वरि ।
अत्रालिप्य ततोदेहं अयनेन विसर्जयेत् ॥ १५८ ॥

हे सुरेश्वरी ! चतुःसम (बराबर चार वार) वा (बराबर दो वार) देवताकी देहको लेपन करे । अयनकालमें यह आलेपित वर्जित जानना चाहिये ॥ १५८ ॥

शीते रात्रौ पुनः स्नाननानुलिप्य सुगन्धिभिः ।
ललाटे तु विशेषेण वराङ्गे न कदाचन ॥ १५९ ॥

शीतकालकी रात्रिमें पुनः स्नानके समय सुगंधि अनुलेपन अनुचित है, विशेषरूपसे ललाटदेश वा उत्तमांगमें कभी अनुलेपन उचित नहीं है ॥ १५९ ॥

चतुः समश्च त्रिसमं द्विसमश्च सुरेश्वरि ।
पादे पृष्ठे तथा नेत्रे न दद्यादनुलेपनम् ॥ १६० ॥

हेसुरेश्वरी ! चतुःसम (चारवार बराबर) वा त्रिसम (तीन वार बराबर) वा द्विसम (दो वार बराबर) रूपसे चरण पृष्ठ और नेत्रमें लगावे ॥ १६० ॥

चक्षुर्लग्ने हतालक्ष्मीः मुखलग्ने हतश्रिकः।
दरिद्रः करलग्ने च पदलग्ने धनक्षयः॥ १६१॥

नेत्रोंमें लगानेसे लक्ष्मीनाश, मुखमें लगानेसे श्री (श्रेष्ठता) नाशकर (हस्त) में लगानेसे दरिद्र और पैरमें लगानेसे धनक्षय होता है॥१६१॥

लिंगस्य पुलकान्ते तु न दद्याच्चन्दनं प्रिये।
पद्मपत्रे बिल्वपत्रे करवीरदले तथा।
तत्र दद्याच्चन्दनञ्च लिंगे च सति सम्भवे॥ १६२॥
नेत्राणि नाञ्जयेद्देवि कज्जलैश्च विशेषतः।
मालतीपत्रसम्भूतं तिलतैलेन चायसे।
तापयेत्पातयेद्देवि कज्जलं तत्प्रकीर्तितम्॥ १६३॥

हे प्रिये! लिंगके पुलकान्तमें चन्दन प्रदान करना उचित नहीं है हे देवि! लिंग और तत्पुलकमें संभव होनेपर पद्मपत्र, बिल्वपत्र वा कनैरके दलमें चन्दन दान करे। हे देवि! नेत्रांजन विशेषकर कज्जलद्वारा नहीं करना चाहिये। मालतीके पत्तोंका बना वा लोहनिर्मित पात्रमें तिल तैलद्वारा तापित करके निक्षेप करनेसे वही कज्जल कहा गया है॥ १६२॥ १६३॥

नीराजनेन यः पूजां करोति वरवर्णिनि।
अमृतं प्राप्नुयात्सोऽपि इह लोके परत्र च॥ १६४॥

हे वरवर्णिनि! नीरांजनद्वारा जो पूजा करता है, वह इस लोक और परलोकमें अमृत (मुक्ति) प्राप्त करता है॥ १६४॥

अथ शुद्धजलं यस्तु यो न कुर्य्यात्सुरार्चिते।
सोऽपि मूढो भवेद्रोगी क्षिप्रं वा नाशमाप्नुयात्॥१६५

हे सुरार्चिते देवि! जो मनुष्य देवपूजामें जल शुद्धि नहीं करता वह रोगी होकर शीघ्रही विनाशको प्राप्त होता है॥ १६५॥

लिङ्गे वा प्रतिमायां वा पूर्वमेव मम प्रिये ।
नरैः संमार्जयेद्यन्त्रं कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ॥ १६६ ॥

हे प्यारि ! लिंग वा प्रतिमाके प्रथमही जलद्वारा यंत्र मार्जन करके प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥ १६६ ॥

संस्पृशेत्प्रतिमां भद्रे माञ्च लिंगस्वरूपिणम् ॥ १६७ ॥

हे कल्याणी ! प्रतिमा और लिंगरूपी मुझको स्पर्श करे ॥ १६७ ॥

नमो नारायणायेति ये वदन्ति मनीषिणः ।
किं कार्यं बहुमंत्रैर्वा मन्त्रैर्विभ्रमकारकैः ॥ १६८ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य "नमोनारायणाय" यह मंत्र उच्चारण करता है उसको विभ्रमकारक बहुत मंत्रोंसे क्या प्रयोजन है ॥ १६८ ॥

नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।
यजंस्तेनैव मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण वा ॥ १६९ ॥

"नमो नारायणाय" यह मंत्र सत् और सर्वार्थ साधक है । इस मंत्र वा वा पुरुष सूक्तमंत्रसे यजन करे ॥ १६९ ॥

द्वादशाक्षरबीजेन कृष्णबीजेन पूजयेत् ।
व्यस्तेन च समस्तेन अनुलोमविलोमकैः ॥
प्रयुक्तैर्बहुभिर्मन्त्रैर्विष्णुमन्त्रेण चैव हि ।
तत्रार्कचन्द्रवह्नीनां मण्डलानि विचिन्तयेत ॥ १७० ॥
ततो विचिन्त्य हृदयमोङ्कारं ज्योतिरूपिणम् ।
कर्णिकायां समासीनं ज्योतिरूपस्वरूपिणम् ।
अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं प्रवदन्ति यथाक्रमम् ॥ १७१ ॥

द्वादशाक्षर बीज और कृष्णबीज मंत्रसे पूजाकरे । व्यस्त समस्त अनुलोम और विलोमद्वारा विहित बहुत मंत्र और वैष्णवमंत्रसे पूजा

करनी चाहिये। उस मणिकूटमें चन्द्र सूर्य और अग्निमण्डलकी चिन्ता करके हृदय मंत्र और ज्योतिरूपी ओंकार मंत्र तथा कर्णिकामें समासीन ज्योतिरूपस्वरूप अष्टाक्षरमंत्र यथाक्रमसे उच्चारण करे ॥ १७० ॥ १७१ ॥

केशवादि पुरः कृत्वा द्वादशाक्षरकं न्यसेत।
चतर्भुजं महासत्त्वं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १७२ ॥
चिन्तयित्वा ततो योगं ज्योतीरूपं सनातनम्।
तत आवाहयेन्मन्त्रैः क्रमशोधितमानसः ॥ १७३ ॥

फिर केशवादिका पुरस्कार (संस्करण) करके द्वादशाक्षर मंत्र न्यास करे तदनन्तर क्रमानुसार शुद्धमन होकर चतुर्भुज महासत्व करोडसूर्यके समान प्रभाशील योग ज्योतिरूप सनातनकी चिन्ता करके आवाहनमंत्र उच्चारण करे ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

मीनरूपो वराहश्च नारसिंहोथ वा पुनः।
आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः ॥ १७४ ॥
सुमेरोः पादपीठे च पद्मकल्पितमासनम्।
सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन ॥ १७५ ॥

मीन, वराह और नरसिंह, यह देवता नारायणरूप आगमन करे और समस्त जीवों (प्राणियों) के हितके निमित्त पधारकर हे मधुसूदन! सुमेरुपर्वतके ऊपर पद्मासनमें आप विराजित होकर अभीष्टसिद्धिकरिये यही आवाहनका मंत्र है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

त्रैलोक्यपतीनां पतये देवदेवाय।
अर्घ्योऽयं हृषीकेशाय विष्णवे नमः ॥ १७६ ॥

इत्यर्घ्यम्।

त्रिलोकीके स्वामियोंके भी स्वामी देवादिदेव ऐसे हे हृषीकेश! हे विष्णो! हम आपको प्रणाम करते हैं आप इस अर्घ्यको ग्रहण करें। इस मंत्रसे अर्घ्य देना चाहिये ॥ १७६ ॥

स्वपाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन ।
विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन ॥ १७७ ॥

इति पाद्यम् ।

हे विष्णु ! अपने चरणकमलोंसे उत्पन्न हुए पाद्यको, हे कमलनेत्र ! हे पद्मनाभ ! हे अविनाशिन् ! आप ग्रहण करे। इस मंत्रसे पाद्य देना चाहिये ॥ १७७ ॥

मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम ॥ १७८ ॥

इति मधुपर्कम् ।

हे पुरुषोत्तम भगवन् ! ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा यह मधुपर्क आपके निमित्त कल्पना किया गया है । सो हे महादेव ! आप इसे ग्रहण करें ! इस मंत्रसे मधुपर्क देवे ॥ १७८ ॥

मन्दाकिन्यास्तु ते वारि शुभं पीत्वा हराशुभम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥१७९॥

इत्याचमनीयम् ।

पापोंका हरनेवाला मन्दाकिनीका निर्मल जल भक्तिभावपूर्वक आपके आचमनके लिये हम निवेदन करते हैं आप ग्रहण करें, इस मंत्रसे आच मनप्रदान करे ॥ १७९ ॥

त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वह्निरेव च ।
लोकसम्वित्तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥१८०॥

इति स्नानम् ।

आप जल, पृथिवी, ज्योतिः (प्रकाश) और अग्निस्वरूप हैं; केवल सदाचार करनेहीके लिये हम शुद्धजलसे आपको स्नान कराते हैं, इस मन्त्रसे स्नान करावे ॥ १८० ॥

बहुचित्रसमायुक्ते यज्ञसूत्रविभूषिते
स्वर्णसूत्रप्रभेदेन वाससी तव केशव ॥ ८१ ॥

बहुमूल्य एवम् यज्ञसूत्रसे समलंकृत सुवर्ण अर्थात् कलावत्‌के कामसे युक्त ऐसे दो वस्त्र हे केशव ! मैं आपके निमित्त प्रदान करता हूं इस मन्त्रको पढकर दो वस्त्र देने चाहिये ॥ १८१ ॥

शरीरं ते लेपयामि चेष्टास्चैव च केशव ।
मया निवेदितान् गन्धान्प्रतिगृह्यानुमन्यताम्॥१८२॥

इति विलेपनम् ।

हे केशव ! मैं उत्तमोत्तम सुगन्धित द्रव्योंसे तुम्हारे शरीरका लेपन करता हूं, अतएव मेरे दियेहुए इन सुगन्धित द्रव्योंको ग्रहण करके तुम अपने शरीरमें लेप करो । इससे उवटन दान करे ॥ १८२ ॥

ऋग्वेदादिगमन्त्रेभ्यः शोधितं पद्मयोनिना ।
सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीतमनक्षतम् ।
सूर्यश्चन्द्रश्च विद्युच्च त्वमेवाग्निस्तथैव च ।
त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥१८३॥

ऋग्वेदोक्त मन्त्रोंसे ब्रह्माजीके द्वारा शुद्ध कियेहुए, खण्डरहित सावित्रीकी ग्रन्थिसे युक्त इस दीपकको तुम ग्रहण करो हे देव ! तुम्हीं सूर्य चन्द्रमा पृथ्वी विद्युत् (बिजली) तथा अग्निरूप हो अथ च तुम्हीं सब ताराओंके अधिपति हो । इस मन्त्रको पढ़कर दीपदान करना कर्त्तव्य है ॥ १८३ ॥

अन्नं पञ्चविधञ्चैव रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव ॥ १८४ ॥
इति नैवेद्यम् ।

हे केशव ! छः प्रकारके रसोंके स्वादसे युक्त पांच प्रकारके अन्नसे निर्माण किये हुए नैवेद्यको मैं भक्तिपूर्वक निवेदन करता हूं इसे आप ग्रहण करे । इससे नैवेद्य प्रदान करे ॥ १८४ ॥

पूर्वे चैव वसेद्देवो याम्ये संकर्षणो वसेत् ।
प्रद्युम्नः पश्चिमे चैव तथैशान्ये त्रिविक्रमः ॥ १८५ ॥

पूर्वमें देव, दक्षिणमें संकर्षण, पश्चिममें प्रद्युम्न तथा ईशानकोणमें त्रिविक्रम वास करते हैं ॥ १८५ ॥

तथा च वासुदेवस्य गरुडं पुरतो न्यसेत् ।
तथा महागदाश्चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे ॥ १८६ ॥
ततस्तु वेदधनुषी न्यसेद्देवस्य वामतः ।
दक्षिणे वसुधा देवो वाङ्मयं तत्र विन्यसेत् ॥ १८७ ॥

और गरुड वासुदेवके आगे वास करते हैं । तदनन्तर महागदा दक्षिणमें, वाममें वेद और धनुः वासुधादेवी और धर्मकी इस प्रकार चिन्ता करके न्यास करे ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

श्रीस्तु दक्षिणतः स्थाप्या पुष्टिं स्वोत्तरतो न्यसेत् ।
वनमालाश्च पुरतः श्रीवत्सं कौस्तुभं ततः ।
विन्यसेद्धृदयादीनि विन्यसेच्च चतुर्दिशम् ॥१८८॥

लक्ष्मीको दक्षिण दिशामें रखकर पुष्टिको अन्य दिशामें न्यास करके प्रथम वनमाला फिर श्रीवत्स कौस्तुभ और हृदयमें चारों ओर विन्यास करे ॥ १८८ ॥

ततोऽपि देवदेवस्य कोणेनैव तु विन्यसेत् ।
ईशानं पूजयेत्पीठे तच्छक्तीरपि बाह्यतः ॥ १८९ ॥

तदनन्तर देवदेवको कोणमें विन्यास करके पीठेशान और उनकी सब शक्तियोंकी बाहिरी भागमें पूजा करके ॥ १८९ ॥

ग्रहांश्च दिक्पतींश्चैव दद्यात्पुष्पबलित्रयम् ।
एवं संपूज्य देवेशं मण्डपस्थं जनार्दनम् ॥ १९० ॥

ग्रह और दिक्पालोंका तीन पुष्पबलिप्रदान करे । इस प्रकार मण्डपस्थ जनार्दन देवकी पूजा करनेपर मनुष्यगण अभिलषित कामनाको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १९० ॥

अनेनैव विधानेन मण्डपस्थं हयाननम् ।
पश्येत्तु पूजितं यस्तु न विघ्नं विष्णुमव्ययम् ॥ १९१ ॥

जो मनुष्य इस प्रकारके विधानसे मण्डलस्थ अव्यय विष्णु हयग्रीव देवकी पूजा और उनका दर्शन करताहै, उसको कोई विघ्न नहीं होता ॥ १९१ ॥

सकृदप्यर्चितो येन विधिनानेन केशवः ।
जन्ममृत्युजराभीतः सः विष्णोः पदमाप्नुयात् १९२

इस विधानद्वारा केशवदेवकी केवल एकहीवार पूजा करनेसे वह मनुष्य जन्म जरा (बुढापा) और मृत्युको भयसे हीन होकर विष्णुके पदको प्राप्त होता है ॥ १९२ ॥

यः स्मरेत्सततं भक्त्या हयग्रीवमतन्द्रितः ।
द्वे सन्ध्ये अन्वहं तस्य श्वेतद्वीपः प्रकल्पितः ॥१९३॥

जो मनुष्य भक्तिमान् और सावधान होकर सदा हयग्रीव देवको स्मरण करता है मैं उसके लिये दो संध्याको चिन्ता करके श्वेतद्वीप निर्माणकर रखता हूं ॥ १९३ ॥

ॐकारादिसमायुक्तो नमस्कारप्रदीपितः ।
सारश्च सर्वतत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥ १९४ ॥

जो ओंकारादिसंयुक्त, नमस्कारादियुक्त, सब तत्त्वोंका सार हो उसीको मंत्र कहाजाता है ॥ १९४ ॥

अनेनैव विधानेन मण्डपस्थं हयाननम् ।
पूजयित्वा तु देवेशि गन्धं पुष्पं निवेदयेत ॥ १९५ ॥

हे देवेशि ! इस विधानसेही गंध पुष्प प्रदानपूर्वक यथोक्तक्रमसे मण्डपस्थ हयानन देवकी पूजा करे ॥ १९५ ॥

एवमस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टक्रमेण तु ।
मुद्रां तत्र निबध्नीयाद्यथोक्तक्रमयोगतः ॥ १९६ ॥
जपश्चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।
अष्टाविंशतिरष्टौ वाथाष्टोत्तरशतं तथा ॥ १९७ ॥

तदनन्तर कहे हुए क्रमसे मुद्राबंधन और मूल मंत्रसे जप करना चाहिये आठ, अट्ठाईस वा एकसौ आठबार ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

काम्ये चैवाधिकं कुर्याल्लक्षकोट्यधिकं प्रिये ।
श्रीवत्सं पद्मशङ्खे च गदा गरुडमेव च ॥ १९८ ॥
चक्रं चन्द्रं च शार्ङ्गं च ह्यष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः ।
अर्चनीयं न जानन्ति हरेर्मन्त्रान् यथोदितान् ॥१९९॥
हिरण्यगर्भमन्त्रेण पूजयेत्परमेश्वरम् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण परमेशं समर्चयेत् ॥ २०० ॥

और काम्यकर्ममें लक्षजप, करोड़ जप करना चाहिये। हे प्यारी ! पद्म, चक्र, श्रीवत्स, गदा, गरुड, चंद्र, शंख और शारंग यह आठ प्रकारकी मुद्रा जाननी चाहिये। यदि कोई अर्चनाका मंत्र नहीं जानता हो तो वह 'हिरण्यगर्भ' इस मंत्रसे परमेश्वरकी पूजा करे वक्ष्यमाण मंत्रसे परमेश्वरकी अर्चना करनी चाहिये ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ २०० ॥

नमोऽस्त्वनन्ताय विशुद्धचेतसे नमःस्वरूपाय सहस्रबाहवे ।
सहस्ररश्मिप्रवणाय वेधसे हयास्यरूपाय नमो नमस्ते॥२०१

जिनकी अनन्त मूर्ति हैं, जिनका चित्त अतिशय निर्मल है जिनकी भुजा सहस्र हैं स्वयं विधाता और सहस्रों किरणोंके धारण करनेवाले हैं सुन्दर मूर्ति ऐसे हयग्रीवको मैं प्रणाम करताहूं ॥ २०१ ॥

विशालदेहाय विशुद्धकर्मणे
समस्तविश्वार्त्तिहराय शम्भवे ।
नमोऽस्तु सूर्यानलतीक्ष्णतेजसे
हयास्यरूपाय नमो नमस्ते ॥ २०२ ॥

हे विशालदेह ! हे विशुद्धकर्मन् ! हे समस्त विश्वका दुःख हरनेवाले ! हे शंभो ! हे सूर्याग्निके समान तीक्ष्ण तेजवाले ! हे हयास्य रूप ! मैं तुमको वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ २०२ ॥

अनादिदेवाचलशेखर प्रभो नमो विभो भूतपते महेश्वर ।
मरुत्पते सर्वपते जगत्पते नमो नमस्तेभगवन्महेश्वर २०३

हे अनादिदेव ! हे अचलशेखर ! हे प्रभो ! हे भूतपते ! हे विभो ! हे महेश्वर ! हे मरुत्पते ! हे सर्वपते हे जगत्पते ! हे भगवन् ! हे महेश्वर ! मैं तुमको निरन्तर नमस्कार करता हूं ॥ २०३ ॥

जलेश नारायण विश्वशङ्कर
क्षितीश विश्वेश्वर विश्वलोचन ।
शशाङ्कसूर्यायतविश्वमूर्तये
हयास्यरूपाय नमो नमस्ते ॥ २०४ ॥

हे जलेश ! नारायण ! हे विश्वके कल्याणकर्ता ! हे क्षितीश ! हे विश्वेश्वर ! हे विश्वलोचन ! हे शशांक सूर्य समायतमूर्ते ! हे हयास्यरूप ! मैं तुमको वारम्वार प्रणाम करता हूं ॥ २०४ ॥

श्वेताय भक्ताभयकारणाय विद्याक्षिणे चैव चतुर्भुजाय ।
लौहित्यकर्त्रे विबुधेश्वराय तुरङ्गकण्ठाय नमो नमस्ते२०५

हे श्वेतरूप ! हे भक्तोंको अभय दान देनेवाले ! हे लोहित्यकारी ! हे समस्त देवताओंके अधीश्वर ! हे हयग्रीव ! मैं तुमको वारम्वार प्रणाम करता हूं ॥ २०५ ॥

शक्राय चैव मणिपर्वतमन्दिराय
पीताक्षपक्षिसहिताय च मुक्तिदाय ।
भक्तोस्मि ते पुस्तकधारिणेऽह
पितॄन्त्समभ्युद्धर देवदेव ॥ २०६ ॥

शक्रके निमित्त मणिपर्वतमें मन्दिर करनेवालेके निमित्त पीताक्ष पक्षिसे सहितके निमित्त मुक्तिदाताके निमित्त पुस्तकधारिके निमित्त नमस्कार है. हे पितरोंके उद्धार करने वाले ! देवदेव मैं आपका एकान्त भक्त हूं मेरे पितरोंका उद्धार करो (मैं तुमको प्रणाम करता हूं) ॥ २०६ ॥

शुद्धाय मुक्तादिविभूषिताय प्रलम्बबाह्वे कमलासनाय ।
ततो घनाशाय पुरांतकाय हयास्यरूपाय नमोनमस्ते २०७

हे शुद्ध ! हे मुक्त ! हे, मणिरंजित ! हे प्रलम्बबाहो ! हे कमलासन ! हे पापोंका नाश करनेवाले ! हे पुरघातक ! हे हयास्यरूप ! मैं तुमको वारम्बार प्रणाम करता हूं ॥ २०७ ॥

जयति वरदपाशः पुस्तकव्यस्तहस्तो
विधृतसितसरोजो मोक्षदोनन्तमूर्त्तिः ।
शशधरशुभमूर्तिर्भुक्तिमुक्तिप्रदायी
प्रणतसुरनरेभ्यो वाजिवक्त्रो मुरारिः ॥ २०८ ॥

जिनके समस्त हाथ पाश पुस्तक ग्रहण वरदेने सितसरोजधारण और मोक्ष देनेमें व्यग्र रहते हैं। जिनकी मंगलमय मूर्ति चन्द्रमाके सदृश है। जो भोग मोक्ष देते हैं। जिनको सुरनरादिक सभी प्रणाम करते हैं उन वाजिवक्त्र मुरारिकी जय हो ॥ २०८ ॥

इडासुर हयग्रीव मुरारे मधुसूदन ।
मणिकूटकृतावास हयग्रीव नमोऽस्तु ते ॥ २०९ ॥

हे इडासुर ! हे हयग्रीव ! हे मुरारे ! हे मधुसूदन ! हे मणिकूटमें वास करनेवाले ! हे हयग्रीव ! मैं तुमको नमस्कार करता हूं ॥ २०९ ॥

जन्मकोटिकृतं पापं कल्पकोटिकृतं तथा ।
हयास्यदर्शनादेव नेयाद्भास्करजाद्भयम् ॥ २१० ॥

सैकडों करोड कल्प और करोड जन्ममें किये समस्त पापोंसेही मैं हयग्रीवका दर्शन करके छूट गया अब मैं सूर्यपुत्र शनैश्चरका भय नहीं करता ॥ २१० ॥

स्तुतेः पाठं सप्तवारं पठित्वा तत्र भक्तितः ।
प्रदक्षिणात्रयं कुर्यात्पद्माकारं नमेत्ततः ॥ २११ ॥

हे देवि ! यह स्तोत्र सातवार पढनेके पीछे तीन वार प्रदक्षिणा करके पद्माकारको प्रणाम करे ॥ २११ ॥

दक्षिणादुत्तरं गत्वा देवस्य च महेश्वरि ।
हस्तांजलिं ततो बद्धा भ्रामयित्वा नमेत्ततः ॥ २१२ ॥

हे महेश्वरि ! दक्षिणसे जाकर हाथ जोड भ्रमणपूर्वक नमस्कार करना चाहिये ॥ २१२ ॥

प्रत्येकं प्रणमेद्देवि दण्डवत्प्रणिपातयेत् ।
न यो नमेद्भ्रमित्वा च ह्यपराधो भवेत्तदा ॥ २१३ ॥

हे देवि ! प्रत्येकप्रणाममें दण्डवत् प्रणिपात करे । जो मनुष्य भ्रमण करता हुआ प्रणाम नहीं करता है, उससे अपराध होता है ॥ २१३ ॥

अबद्धाञ्जलिना यस्तु नमस्कारं करोति सः ।
मोहान्धकारनरके पच्यते नात्र संशयः ॥ २१४ ॥

जो मनुष्य विना हाथजोडे प्रणाम करता है, वह घोरतर मोहान्धनरकमें गिरकर दुःख भोगता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २१४ ॥

पत्रान्तरे च प्रणमेन्मूर्द्धा न च क्षितिं स्पृशेत् ।
शपन्ति देवतास्तस्य विफलं परिकीर्त्तितम् ॥ २१५ ॥

जो मनुष्य मस्तकसे पृथ्वीका विना स्पर्श किये पत्रान्तरमें (किसी आवरणके ऊपर) प्रणाम करता है, देवता उसको शाप देते हैं और उसका सब कुछ निष्फल होता है ॥ २१५ ॥

प्रणामो देवदेवस्य यावत्यो मूर्त्तिकाः प्रिये ।
शरीरे वा महेशानि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१६ ॥

हे प्यारी महेशानि ! वहां देवदेवकी जितनी मूर्त्ति हैं, उनको प्रणाम करनेसे जो पुण्यफल होता है, सो सुनो ॥ २१६ ॥

यावन्तो रेणवस्तस्य यावत्तिष्ठति तत्र वै ।
तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥ २१७ ॥

उसका परिमाण यह है कि, रेणु जितने काल अवस्थित होते हैं, उतनेही सहस्रवर्षतक वह ब्रह्मलोकमें जाकर ऐश्वर्य भोगता है ॥ २१७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

ब्रूहि मे देवदेवेश मम कान्त जगत्पते ।
मणिकूटे स्वयं विष्णुः स्थापितः केन वै पुरा ॥२१८॥

श्रीदेवी बोली—हे देवदेवेश ! हे मेरे कान्त ! हे जगत्पते ! पूर्व कालमें किस मनुष्यने मणिकूटमें इस विष्णुको स्थापित किया था ? यह मुझसे कहिये ॥ २१८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु देवि महाभागे आगमं वेदसन्निभम् ।
कथयामि पुरावृत्तं प्रतिमायाश्च सम्भवम् ॥ २१९ ॥

श्रीभगवान् बोले- हे महाभागे देवि ! वेदसन्निभ आगम स्वरूप प्रतिसम्भवशास्त्रद्वारा प्रतिष्ठापित अर्थात् शास्त्रोंका सिद्धान्त प्राचीन वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥२१९॥

प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे देवनिर्मिते ।
चिन्तयार्त्तो महीपालः प्रतिमार्थमहर्निशम् ॥ २२० ॥

देवनिर्मित प्रासादमें यज्ञके आरम्भ होनेपर महीपाल प्रतिमाके लिये दिन रात चिन्ता करने लगे ॥ २२० ॥

केनोपायेन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम् ।
सर्गस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥ २२१ ॥

महाराज इन्द्रद्युम्नने मनमें विचारा कि, मैं किस उपायसे उन देवेश्वर सर्वेश्वर लोकपावन सृष्टि स्थिति संहारकारी पुरुषोत्तमका दर्शन पाऊंगा ? ॥ २२१ ॥

चिन्तादुःखमयो राजा न शेते स्म दिवानिशम् ।
नभुङ्क्ते विविधान्भोगान्न च स्नानं प्रसाधनम्॥२२२॥

इस प्रकार चिन्ताकुल राजाने दिनरात शयन विविधभोगोंका भोगना भोजन स्नान और मण्डन प्रसाधनादि (अलंकारकी क्रिया) छोड़कर चिंता करी ॥ २२२ ॥

शैलशृङ्गस्तरुर्वापि प्रशस्तो वा महीतले ।
विष्णोः प्रतिमयोग्याय सर्वलक्षणलक्षितः ॥ २२३ ॥

कि, पर्वतका शृंग हो वा वृक्षही हो विष्णुकी प्रतिमाके निमित्त पृथ्वी तलमें जो सर्वलक्षणसम्पन्न और प्रशस्त होगा ॥ २२३ ॥

एतैरेव प्रमाणन्तु दयितं यत्सुरार्चनम् ।
तत्केन वा करिष्यामि चाज्ञापयतु मे प्रभो ॥२२४॥

वही देवपूजामें प्रिय और प्रमाणसिद्ध होगा. वह मैं किस प्रकार सम्पादन करूंगा प्रभु मुझको आज्ञा दीजिये ॥ २२४ ॥

कुशानास्तीर्य सुप्त्वा च इन्द्रद्युम्नो महाबलः ।
हरिध्यानपरो भूत्वा सुष्वाप नियतेन्द्रियः ॥ २२५ ॥

यह विचार महाबल इन्द्रद्युम्न कुश बिछाय नियतेंद्रिय और हरिके ध्यानमें रत होकर सोगये ॥ २२५ ॥

सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगद्गुरुः ।
आत्मानं दर्शयामास सुप्ते तस्मै च चक्रभृत् ॥२२६॥

राजाके सोजानेपर जगद्गुरु चक्रधारी वासुदेवने उनको दर्शन दिया२२६

ददर्श स तु भूपालो देवदेवं जगद्गुरुम् ।
शङ्खचक्रधरं देवं गदापद्माग्रपाणिनम् ॥ २२७ ॥
युगान्तादित्यवर्णाभं नीलवैडूर्यसन्निभम् ।
सुवर्णपृष्ठमासीनं षोडशार्द्धभुजं शुभम् ॥ २२८ ॥

उस भूपालने जगद्गुरु शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, युगान्तकालीन सूर्यके समान प्रभायुक्त नील वैडूर्य वर्ण, गरुडकी पीठपर चढे. आठ भुजायुक्त मंगलमय देवदेवका दर्शन किया ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

क्रतुनानेन दानेन धिया भक्त्या च ते नृप ।
तुष्टोस्मि ते महीपाल भवान्किमनुशोचति ॥२२९॥

नारायणने कहा--हे नृप ! हे महीपाल ! मैं तुम्हारे इस यज्ञ, बुद्धि और भक्तिसे संतुष्ट हुआ हूं, तुम अब शोच मत करो ॥ २२९

यदत्र प्रतिमां राजञ्जगत्पूज्यां सनातनीम् ।
स्थापयिष्यसि हे धीर तस्योपायं ब्रवीमि ते ॥२३०॥

हे राजन् ! हे धीर ! इस स्थानमें जो जगत्पूज्य सनातनी प्रतिमा स्थापन करोगे, उसका उपाय मैं तुमसे कहता हूं सुनो ॥ २३० ॥

सागरस्य जलस्यान्ते नानाद्रुमविभूषिते ।
वीचीभिर्हन्यमानस्तु न चासौ कम्पते द्रुमः ॥२३१॥

सागरके नानाद्रुमविभूषित जलान्तभागमें तरंगोंके द्वारा हन्यमान होकर भी जो वृक्ष कम्पित न हो ॥ २३१ ॥

गत्वा परशुहस्तश्च ऊर्म्मिमन्तं ततो व्रजेत् ।
एकाकी विरही राजन्सत्यं पश्यसि पादपम् ॥२३२॥

हे राजन् ! तुम अगेले वेगसे विचरण करते करते परशु हाथमें लिये ऊर्म्मिमान् समुद्रतटपर जाकर निःसन्देह वृक्ष देखोगे ॥ २३२ ॥

इति कश्चित्समालोच्य छेदयन्त्रविशङ्कितः ।
पश्चिमायतनं वृक्षं प्रातरद्भुतदर्शनम् ।
छित्वा तैलरसं दत्त्वा तदा भूपाल चानय ॥ २३३ ॥
कुरु तत्प्रतिमां दिव्यां जहि चिन्तां विमोहिनीम् ।
एवमुक्त्वा महाबाहुरंतर्धानं गतो हरिः ॥ २३४ ॥

तुम मेरे वचनकी आलोचना कर निसंग हो, पश्चिमायतन (जो पश्चिममें स्थित हो) वह अद्भुतदर्शनवृक्ष प्रातःकालमें छेदन करके लाओ, फिर तेलरसप्रदानपूर्वक उसको लाकर उसके द्वारा दिव्यप्रतिमा निर्माण करो । अब तुम विमोहिनी चिन्ता मत करो । यह कहकर महाबाहु हरि अन्तर्धान होगये ॥ २३३ ॥ २३४ ॥

स चापि स्वप्नमालोच्य परं विस्मयमागतः ।
तां दिशं समुदीक्ष्यैव स्थितस्तद्गतमानसः ॥ २३५ ॥
व्याहरन्वैष्णवं मन्त्रमुक्तश्चैव तदात्मकम् ।

प्रभातायां रजन्यां तु स ततोनन्यमानसः ॥२३६॥

स स्नात्वा सागरे रम्ये यथाविधि महायशाः ।
तं ददर्श महावृक्षं परं तेजस्विनं द्रुमम् ॥ २३७ ॥

मोहान्तकं दुरारोहं पुण्यं विफलमेव च ।
महोच्छ्रायं महाकायं प्रसुप्तश्च जलान्तिके ॥ २३८ ॥

फिर वह राजाभी स्वप्नकी आलोचना करके विस्मित हुआ । फिर वह एकाग्रचित्तसे तदात्मक वैष्णवमंत्र उच्चारणपूर्वक उसी दिशाको देखता रहा । रात्रि बीतकर प्रभात होनेपर अनन्यमन उस राजाने मनोहर समुद्रके तटपर जाय जलान्तिकमें प्रसुप्त तेजस्वी, मोहान्तक; दुरारोह पुण्यविफल, महाकाय महोच्च उसी महावृक्षको देखा ॥ २३५ ॥ २३८ ॥

नीलरत्नाग्र्यवर्णाभं नामजातिविवर्जितम् ।
नरराजस्तथा विष्णोर्द्रुमं दृष्ट्वा मुदान्वितः ॥ २३९॥

यह वृक्ष नीलोज्ज्वलवर्ण और नाम जाति वर्जित है, नरराज इन्द्रद्युम्न विष्णुका यह वृक्ष देखकर प्रसन्न हुए ॥ २३९ ॥

चिच्छेदासौ परशुना निशातेन तदैव हि ।
सप्तधा द्रुमराजं तं पातयामास भूतले ॥ २४० ॥

और परशुसे काट उस द्रुमराजको सात खंडमें विभक्त करके भूमिमें गिरादिया ॥ २४० ॥

ओड्रदेशे मूलभागं कल्पयामास वै विभुः ।
तदूर्द्ध्वखण्डं काश्मीरे कबन्धाकारमेव च ॥ २४१ ॥

आदित्यं तं विजानीयाद्रामेण स्थापितं पुरा ।
शोणादित्यं तदूर्ध्वाङ्गं शुक्रेण स्थापितं प्रिये ॥२४२॥

देवदेव विभुने ओड्रदेशमें उसके मूलकी कल्पना करके वहां मूर्तिस्थापन करी । उसका ऊर्ध्वखंड कबन्धाकार था, रामने उसको काश्मीरदेशमें आदित्यरूपसे स्थापित किया ! हे प्यारी ! उसका ऊर्ध्वभाग शुककर्तृक शोणादित्यरूपमें स्थापित हुआ है ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

शिलारूपं महेशानि स्थापितं गुरुणा ततः ।
भागद्वयं कामरूपे भागैकं मलये गिरौ ॥ २४३ ॥

हे महेशानि ! तदूर्ध्व भाग गुरुको कर्तृकशिलारूपमें स्थापित हुआ-उसके दो ऊर्ध्व भाग कामरूपमें, उसके पीछेका एक भाग मलय गिरिमें ॥ २४३ ॥

मणिकूटे ततोर्द्धश्च स्थापितं वरुणेन हि ।
प्राच्यां नन्दीशमैशान्ये मत्स्याक्षो नाम माधवः २४४
शिलामयो दारुमयः कुबेरेणैव स्थापितः ।
महावराहनामा च योऽष्टादशभुजैर्युतः ॥ २४५ ॥

तदूर्ध्वभाग वरुणने पूर्वदिशामें मणिकूटमें नन्दीशरूपसे स्थापन किया । ईशानकोणमें कुबेरने मत्स्याक्षनामक शिलामय दारु (काष्ठ) मय माधवको स्थापित किया । महावराहनामक और अठारह भुजा युक्त॥२४४॥२४५॥

हयाख्यो मणिकूटे च माधवाख्यो व्यवस्थितः ।
सम्भवः कथितो देवि प्रापणं शृणु पार्वति ॥ २४६ ॥

मणिकूटमें हयाख्य और मानव नामक विभु अवस्थित है । हे देवि ! संभव अर्थात् उत्पत्ति कहीगई है । अब प्रापण अर्थात् उपहार द्रव्य सुनो ॥ २४६ ॥

इङ्गुदीफलबिल्वानि बदरामलकानि च ।
खर्ज्जूरं पनसश्चैव तथा तालफलानि च ॥ २४७ ॥

इंगुदी फल (जियापोता या हिंगोट) बेल बदर (बेर) आमला खजूर पनस तालफल ॥ २४७ ॥

दाडिमं कदलींचैव प्रयत्नेन नियोजयेत ।
लकुचं मधुकं युक्तं तथा पूगफलानि च ।
वीरपूरश्च मधुरं कर्कन्धूश्च निवेदयेत् ॥ २४८ ॥

दाडिम और कदली यत्नपूर्वक नियोजित करे, लकुच (बडहल अथवा लुचकुच) मधुक (महुआ) सुपारी विजोरानींबू मधुर और कर्कन्धू (उन्नाव या छोटाबेर) निवेदन करे ॥ २४८ ॥

मूलकस्य च शाकश्चराजकस्य तथैव च ।
फलं यस्य विशालश्च तस्य शाकं प्ररोहकम्॥२४९॥

मूलीका शाक राजकशाक जिसका फल बडा हो उसका शाक और कलिका (कली) ॥ २४९ ॥

वास्तुकस्य च शाकश्च पालङ्कस्य मम प्रिये ।
विलयानि प्रियाण्यन्यान्यथो वै तिन्तिडीफलम्॥२५०

वास्तुकशाक (बथुआ) पलङ्कशाक तिन्तिडीफल अर्थात् इमली॥२५०

कूष्माण्डं पार्वतीयश्च तथा चारणसम्भवम् ।
कदलं वरिपूरश्च रामकं पौत्रकं तथा ।
अकालपनसश्चैव तथान्यदपि वर्जयेत् ॥ २५१ ॥

पार्वतीय कूष्माण्ड (पेठा) चारणसम्भव कदल (फल विशेष) और विजोरानींबू रामक (कूठ) और पौत्रिक (कौरामक्खीका शहद) अकाल पनस (बडहल) इस प्रकार अन्यान्य फल वर्जनीय हैं ॥ २५१ ॥

धान्यानाञ्च प्रवक्ष्यामि उपयोगांश्च शाङ्करि ।
एकचित्तं समाधाय प्रापणं शृणु पार्वति ॥ २५२ ॥

हे शांकरि ! अब धान्योंका प्रयोग कहताहूं. एकाग्रचित्तसे सुनो २५२

सोमधान्यं बृहद्धान्यं रक्तशालिकमेव च ।
राजधान्यं षष्ठिकञ्च देववल्लभकं तथा ॥ २५३ ॥

सोमधान्य (समा) बृहद्धान्य लाल सट्ठी, राजधान्य (श्यामाक) षष्ठिक (सट्ठी) देववल्लभ ॥ २५३ ॥

चणकं कोद्रवञ्चैव वर्जयेन्मम सुन्दरि ।
क्षारञ्च कृष्णक्षीरञ्च वर्णं वै मार्तिकोद्भवम् ॥ २५४ ॥

चना, कोदों यह सब धान्य वर्जित हैं। हे सुन्दरि ! क्षार कृष्णक्षीर मूर्तिकोद्भववर्ण ॥ २५४ ॥

लवणं प्राचि सम्भूतं तथोत्तरसमुद्भवम् ।
पशूनाञ्च प्रवक्ष्यामि वन्यानां ग्रामवासिनाम् ॥२५५॥

वर्णक प्राच्य और उत्तरसम्भूत लवण (खारी अथवा नमक जो खानिज नहीं है) को प्रयोग न करे। अब ग्राम और वनके पशुओंका प्रयोग कहताहूं सुनो ॥ २५५ ॥

येन यान्युपभोग्यानि यव्यं देवि पयोमृतम् ।
मार्गं मात्स्यं तथा छागं शालनं शाशकं तथा॥२५६॥
एतैस्तु प्रापणं दद्याद्विष्णोश्चैव प्रियंकरम् ।
माहिषं वर्जयेन्मांसं क्षीरं दधि घृतं तथा ॥ २५७ ॥

गायका दूध, मृग, मत्स्य, छाग, शालन (एक प्रकारकी मछलीका मांस), खरगोशका मांसप्रदान करनेसे विष्णु प्रसन्न होते हैं । महिषमांस, दूध, दही और घृत वर्जित है ॥ २५६ ॥ २५७ ॥

पाक्षिणाश्च प्रवक्ष्यामि ये प्रयोज्या मम प्रिये ।
हारितश्च मयूरं च नायकं वार्त्तकं तथा ॥ २५८ ॥
कपिलश्चैव चाषश्च काककुक्कुटकौ शिरः ।
वन्यकुक्कुटकश्चैव शरारूश्च कपोतकः ॥ २५९ ॥

पक्षिगणोंमें जो प्रयोज्य हैं । सो कहताहूं, सुनो । हारीत (हरियल) मोर नायक (पक्षिविशेष) वत्तक कपिल (पीली) चाष नीलकण्ठ या (खुटबडई) काक कुक्कुट (मुर्गा) शिर वन्यकुक्कुट शरा कपोतक (जंगली कबूतर अथवा पंडाकता) ॥ २५८ ॥ २५९ ॥

बिल्वकः कुलिकश्चैव रक्तपुच्छश्च टिट्टिभः ।
कृष्णमत्स्याशनं चैव पत्रिणां च विशिष्यते ॥२६०॥

बिल्वक, कुलिक, रक्तपुच्छक, टिट्टिभ, कृष्णमत्स्याशन गह सब पक्षियोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २६० ॥

अभक्ष्यश्चैव मांसश्च यद्वा पञ्चनखस्य च ।
चित्रमत्स्यं रोहितश्च मांसकं च विवर्जयेत ॥ २६१ ॥

अभक्ष्य पंचनखमांस, चित्रमत्स्य, रोहितमांस यह सब वर्जित हैं॥२६१

महाशल्यश्च राजीवं सिंहतुंकं महेश्वरि ।
मात्स्यान्येतानि देयानि विभालीश्च विवर्जयेत॥२६२
जालपादाश्च सकुलान्देवि वाराहकं तथा ।
कौसुन्तशाकं पिण्याकं रक्तपादाश्च केसरान्॥२६३॥

महाशल्य (मेंडक) राजीव सारस और सिंहतुंक देना चाहिये । विसाली, जलपाद (हंस) शउल मछली, और वाराहक नहीं देवे । साधकोत्तम कौसुन्तशाक (शाक विशेष) खजूर रक्तपाद केशर ॥ २६२ ॥ २६३ ॥

शोभाञ्जनं रक्तशेलुं कौमुकं तिन्दुकं तथा ।
पूतिकं कानकञ्चैव वर्जयेत्साधकोत्तमः ॥ २६४ ॥

सहँजना, रक्तशेलु, केंद,, तेंदुआ, पूतिक और कानक त्यागदे ॥२६४

यथोक्तं साधयेन्मत्रं योगी ध्यानपरायणः ।
अभक्ष्यं वर्जयेत्सर्वं देवताध्यानसाधने ॥ २६५ ॥

योगी जन ध्यानपरायण होकर सब देवताओंके साधनमें अभक्ष्य-त्यागपूर्वक ॥ २६५ ॥

हविष्याशी शुचिर्भूत्वा मन्त्रतन्त्रविशारदः ।
अहर्निशं जपेद्विद्यांतद्गतेनान्तरात्मना ॥ २६६ ॥

हविष्याशी, पवित्र और मंत्रतंत्रविशारद हो अन्तरात्माके सहित एकाग्रचित्तसे रात दिन विद्याका जप करे ॥ २६६ ॥

स भवेत्कालिकापुत्रः सर्वतो निर्भयो भवेत् ।
रहस्यं परमं देवि तव स्नेहात्प्रकाशितम् ॥ २६७ ॥

तो वह मनुष्य कालिकाका पुत्र और सर्वत्र निर्भय होता है। हे देवि ! यह मैंने तुम्हारे प्रति स्नेहके कारण रहस्य प्रकाशित किया ॥ २६७ ॥

इति श्रीयोगिनीतन्त्रे सर्वत-न्त्रोत्तमोत्तमे देवीश्वरसम्वादे चतुर्विंशतिसा-
हस्रे द्वितीयभागे मुरादाबादनिवासी-कान्यकुब्जकुल-
कमलदिवाकरभुवनविख्यातस्वर्गीयमिश्रसुखानन्द
सूरिसूनुपण्डितकन्हैयालालकृत भाषाटीका
यामष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु नवबाणांकभूमिते (संवत् १९५९)
वर्षे विक्रमभूपस्य त्रयोदश्यां गुरोर्दिने ॥ १ ॥

कन्हैयालालमिश्रो वै योगिनीत्याख्यतन्त्रके ।
तान्त्रिकाणां प्रमोदाय भाषाटीकां व्यधामहम् ॥ २ ॥
नराणामल्पविषया मतिर्भवति सुस्फुटम् ।
अतोऽत्र स्खलनं यत्स्यात्तत्क्षन्तव्यं सुहृज्जनैः ॥ ३ ॥
गूढभावसमायुक्तं तन्त्रमेतत्सुदुर्लभम् ।
परोपकारिणे श्रीमत्क्षेमराजक्षितिस्पृशे ॥ ४ ॥
मुद्रणार्थं समूल्यं च विक्रयार्थं समर्पितम् ।
ईश्वरश्चानुकूल्यं च भजत्विति शिवं सदा ॥ ५ ॥

श्री श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ।

समाप्तोऽयं ग्रंथः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी-बम्बई.